ओ३म्

सामवेदसंहितायाः

मन्त्राणां वर्णानुक्रमसूची

(इ)

(ऊ)

(भ)

(स)

(इति)

ओ३म्

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदाज्जगतेऽखिलान् ॥
प्रददौ तमहं वन्दे परमात्मानमव्ययम् ॥ १ ॥
आगमप्रवणश्चाहं नापवाद्यः स्खलन्नपि ।
नहि सद्वर्त्मना गच्छन्स्खलितोऽप्यपोद्यते ॥ २ ॥

(१) पूर्वार्चिके ६ अध्यायेषु ६४० मन्त्राः

१ अध्यायः		२ अध्यायः		३ अध्यायः		४ अध्यायः		५ अध्यायः		६ अध्यायः	
दशतयः	मन्त्राः	दशतयः	मन्त्राः	दशतयः	मन्त्राः	दशतयः	मन्त्राः	दशतयः	मन्त्राः	दशतयः	मन्त्राः
१	१०	१	१०	१	१०	१	८	१	१०	१	९
२	१०	२	१०	२	१०	२	१०	२	१०	२	७
३	१४	३	१०	३	१०	३	११	३	१०	३	१३
४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१४	४	१२
५	१०	५	१०	५	१०	५	८	५	१२	५	१४
६	८	६	१०	६	१०	६	१०	६	१०		
७	१०	७	२०	७	१०	७	१०	७	१२		
८	८	८	९	८	१०	८	८	८	९		
९	१०	९	१०	९	१०	९	१०	९	१२		
१०	६	१०	१०	१०	९	१०	१०	१०	१२		
११	१०	११	९	११	१०	११	१०	११	८		
१२	८	१२	१०	१२	१०	१२	०	०	१०		
योगः	११४		१८		११९		११५		११९		५५
१२	द	१२	श	१२	ति	१२	यो	११	गाः	५=६४	

६४० मन्त्रयोगः

एवं ६४ दशतिषु ६४० मन्त्राः ॥

महानाम्न्यार्चिके तु १० दशैव मन्त्राः ॥

उत्तरार्चिके च १२२५ मन्त्राः ॥

सर्वमन्त्रयोगः १८७५

(२)

२२ अध्यायेषु ४०२ सूक्तानि चेत्थम्-

												योग
अ०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	
मं०	६२	६२	५५	५६	६९	७६	८३	५९	७८	९४	३२	७२६
सू०	२३	२१	१९	१९	२२	२३	२४	१५	२०	२३	११	२२०
अ०	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	
मं०	५६	५३	४६	३८	४४	४०	५४	७४	५१	३३	२७	४९७
सू०	२०	२०	१६	१४	२१	१४	१९	१८	१८	१३	९	१८२

एवं सूक्तानि १८२+२२०=४०२ एवं मन्त्राः ४९७+७२६=१२२३

श्लोकार्थ-वेद जिस के श्वासवत् हैं और जिसने सम्पूर्ण जगत् के लिये समस्त वेद दिये हैं उस अविनाशी परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूं॥१॥

क्योंकि मैं वेदों की ओर झुका हूं इसलिये कहीं भूल होजावे तो भी अपवाद के योग्य नहीं हूं। जैसे कोई स्वच्छ मार्ग में चलता हुवा रपट गिरे तो भी निन्दायोग्य नहीं होता ॥ २ ॥

चारों वेदों में सामवेद तीसरा है, उस का प्रथम भाग " छन्दआर्चिक " है। दूसरा " महानाम्न्यार्चिक" नाम और तीसरा "उत्तरार्चिक" नाम भाग है। इन में से पहिले छन्दआर्चिक नाम भाग में ६ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में जितनी दशति और प्रत्येक दशति में जितने मन्त्र हैं वह सब ऊपर लिखित चक्र के अनुसार जानो॥

इस प्रकार छन्दआर्चिक के छः अध्याय हैं, उन में ६४० छःसौ चालीस मन्त्र हैं॥ (देखो चक्र १)

दूसरे महानाम्न्यार्चिक में १० मन्त्र हैं॥

तीसरे उत्तरार्चिक के २२ अध्यायों में ४०२ सूक्त हैं उन में १२२३ मन्त्र हैं (देखो चक्र २) यह सब मिला कर सामवेद की १८७३ ऋचा हुईं॥

इस प्रकार महानाम्न्यार्चिक के अतिरिक्त २८ अध्याय हुवे। परन्तु सायणाचार्य्य ने उत्तरार्चिक के २१ ही अध्याय माने हैं जो सब मूल ग्रन्थों से बेमेल हैं। उन के मत में २० वां और २१ वां अध्याय मिलाकर एक ही २० वां अध्याय है तथा छन्दआर्चिक के ६ मिलाकर सब २७ ही हैं॥

इस सामवेद संहिता में प्राचीन काल से ही प्रपाठक आदि विभाग ही समस्त मूल पुस्तकों में ठीक २ लिखे ही हैं। और उसी क्रम से इस के प्रकरण बन्धे हुए हैं। तदनुसार मैं जो यह भाष्य करूंगा सो भी प्रकरणानुसार होगा।

सामवेदीयः प्रथमोमन्त्रः—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३
अग्न आयाहि वीतये गृणानोहव्यदातये ।
१ र २र ३ १ २
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ १ ॥

"गोतमस्य पर्क्काविभितः कश्यपस्य बर्हिष्यम्" अस्यायमर्थः—अभितःउभयतः प्रथमतृतीयौ गोतमेन ऋषिणा गीतौ पर्क्कसंज्ञकौ सामविशेषौ,मध्ये चैकःकश्यपेन गीतोबर्हिष्य नामा सामविशेषः। तत्र गोतमस्याद्यः पर्क्को यथा—

४ २र र १ २ – १ –
(१) ओग्नाई। आ या ही ३ वी इ तो या २ इ। तो या २ इ।
१र २र १ – १ – १ २र १
गृणानो ह। व्यदातो या २ इ। तो या २ इ। ना इ होता
३ ५र र ३
सा २ ३ त्सा २ इ। बा २ ३ ४ औहोवा। र्हीं २ ३ ४ षी ॥१॥

कश्यपस्य मध्यमं बर्हिष्यं यथा

४ ५ ४र ५र ४ १ र र
(२) अग्न आ याहि वी। तयाइ। गृणानो हव्यदाता।
२ १र र २ १ ५ १ ३
२ ३ याइ। नि होता सत्सि बर्हा २ ३ इषि। बर्हा २ इषा
५र र २ १ १ १ १
२ ३ ४ औहोवा। बर्ही ३ षी २ ३ ४ ५ ॥ २ ॥ १ ॥

पुनर्गौतमस्य पर्कस्तृतीयोयथा--

४ ५ ४र ५र ३ ४ १ र र २
(३) अग्न आ या हि । वा ५ तयाइ । गृणानो हव्यदा १
२ १ २ ५ १ २ १
ता ३ ये । नि होता २ ३ ४ सा । त्सा २ ३ ४ इ षा ३ । ह्रौ
५ ५
२ ३ ४ ४ इषो ६ हा इ ॥ ३ ॥ १ ॥

गानप्रक्रिया का प्रकार वही है जो " नारदीशिक्षा " आदि ग्रन्थों में कहा है । और गानादि उस विषय के ग्रन्थ छप ही गये हैं । जो कि कलकत्ता आदि से मिलते ही हैं । तथा गीति भी "बंगाल एसियाटिक सुसाइटी" के छपाये सायणभाष्ययुक्त सामवेद के पुस्तकों में सब को मिलनी सुगम ही है । इसलिये उस गीति के छापने में धनव्यय अधिक है तथा कोई विशेष फल भी नहीं है, इसलिये सम्प्रति हम उसे नहीं छापते हैं । इस के अतिरिक्त यह भी है कि गीति अन्यत्र की छपी और हमारी छापी (यदि छापें तो) भी समान ही होंगी क्योंकि उस में कोई अन्तर नहीं है, केवल मन्त्रों के अर्थ ही प्रायःअन्य टीकाकारों के किये हुए कहीं २ युक्तिविरुद्ध अनुपकारक न्यूनोपकारक अथवा हानिकारक होगये हैं जिन से वैदिक धर्मप्रचार में बड़ी बाधा आपड़ी है, उस के निवारणार्थ ही इस नवीन (परन्तु प्राचीन ऋषिसिद्धा-न्तानुकूल) भाष्य का उद्योग है । और उस प्रकार की कोई हानि गीति में नहीं है । इसलिये गीति छाप कर ग्रन्थ बड़ा करना निष्फल नहीं तो उस के ही लगभग है । समस्त गीतियों के छापने से मूल से चार पांच गुणा पाठ बढ़ जाता परन्तु निदर्शन (नमूना) के लिये यहां सामवेद के प्रथम मन्त्र में जो ३ गान निकलते हैं उन्हें हमने ऊपर संस्कृत में छाप दिया है सो देख लीजिये । पहिले गान का (१) नाम "पर्क" है, दूसरेका (२) "बार्हिष्य" और तीसरे का भी (३) "पर्क" ही नाम है । इन सामगानों के नाम और ऋषि का वर्णन "आर्षेय ब्राह्मण" के द्वितीय खण्ड के आरम्भ में इस प्रकार लिखा है कि-"प्रथम तृतीय पर्क नाम वाले हैं, उन का ऋषि गोतम है, दूसरा बार्हिष्य नामक साम है, उस का कश्यप ऋषि है" ॥

नोट-(१) देखो पृष्ठ ३५ पं० १४ (२) देखो पृष्ठ ३५ पं० २१ (३) देखो पृष्ठ ३६ पं० ३

इसी प्रकार जिस ऋचा में जितने साम आर्षेयब्राह्मणानुसार निकले हैं वे प्रायः लिखे और छपे पुस्तकों में मिलते ही हैं परन्तु हमारा पुस्तक गान सहित भाष्ययुक्त छापने से बहुत बड़ा होकर अधिक मूल्य का होने से अल्पधन वालों को दुर्लभ न हो जावे, इसलिये गान छोड़कर ही छपाया जाता है। नारदीशिक्षानुसार स्वर विषयः—

अथातः स्वरशास्त्राणां सर्वेषां वेदनिश्चयम्।
उच्चनीचविशेषाद्धि स्वरान्यत्वं प्रवर्त्तते (१।१)
उदात्ते निषादगान्धारावनुदात्तऋषभधैवतौ॥
स्वरितप्रभवाह्येते षड्जमध्यमपञ्चमाः (८।८)
षड्जश्च ऋषभश्चैव गान्धारोमध्यमस्तथा।
पञ्चमोधैवतश्चैव निषादः सप्तमः स्वरः (२।५)
प्रथमश्च द्वितीयश्च तृतीयोऽथ चतुर्थकः।
मन्द्रः क्रुष्टोह्यतिस्वारएतान्कुर्वन्ति सामगाः (१।१२)
यः सामगानां प्रथमः स वेणोर्मध्यमः स्वरः।
योद्वितीयः स गान्धारस्तृतीयस्त्वृषभः स्मृतः (१३।१)
चतुर्थः षड्ज इत्याहुः पञ्चमोधैवतोभवेत्।
षष्ठोनिषादोविज्ञेयः सप्तमः पञ्चमः स्मृतः (१३।२)
"नासाकण्ठमुरस्तालुजिह्वादन्तांश्च संश्रितः।
षड्भिः संजायते यस्मात्तस्मात्षड्जइति स्मृतः (५।७)
वायुः समुत्थितोनाभेः कण्ठशीर्षसमाहतः।
नर्दत्यृषभवद्यस्मात्तस्मादृषभ उच्यते (५।८)
वायुः समुत्थितोनाभेः कण्ठशीर्षसमाहतः।
नासागन्धावहः पुण्योगान्धारस्तेन हेतुना (५।९)
वायुः समुत्थितोनाभेरुरोहृदि समाहतः।

नाभिं प्राप्तोमहानादोमध्यमत्वं समश्नुते (५।१०)
वायुः समुत्थितोनाभेरुरोहृत्कण्ठशिरोहतः।
पञ्चस्थानोत्थितस्यास्य पञ्चमत्वं विधीयते (५।११
अतिसन्धीयते यस्मादेतान्पूर्वोत्थितान्स्वरान्।
तस्मादस्य स्वरस्यापि धैवतत्वं विधीयते (५।१७)
निषीदन्ति स्वरा यस्मान्निषादस्तेन हेतुना।
सर्वांश्चाभिभवत्येषयदादित्योऽस्य दैवतम् (५।१८),,

उदात्तादि स्वरों का व्यवहार सामवेद में निराले ढंग से है जैसा कि नारदीशिक्षा में कहा है कि- (श्लोक ऊपर देखो)

अर्थः-" अब सब स्वरशास्त्रों का वेद निश्चय (वर्णन करते हैं क्योंकि) ऊंचे नीचे के विशेष से स्वर में भेद प्रवृत्त होता है (१।१)"

तथा उसी नारदीशिक्षा में पाणिनि के माने हुए उदात्तादि ३ स्वरों के बीच गानविद्या के ७ स्वर इस प्रकार निवेशित किये हैं:-

"उदात्त में निषाद और गान्धार, अनुदात्त में ऋषभ और धैवत, तथा स्वरित में षड्ज मध्यम और पञ्चम उपजे हैं (८।८)"

इस प्रकार ७ स्वर, ३ के भीतर आगये हैं। और वे यहीं:-

षड्ज ऋषभ गान्धार मध्यम पञ्चम धैवत और निषाद ७ वां स्वर है (७।५)"

इस प्रकार नाम रखकर भी सामवेद के लिये विशेषसंज्ञाओं से बोले जाते हैं, जैसा कि वहीं कहा है कि:-

" १ प्रथम २ द्वितीय ३ तृतीय ४ चतुर्थ ५ मन्द्र ६ क्रुष्ट और ७ अतिस्वार। इन्हें सामग लोग उच्चारते हैं। (१।१२)"

अर्थात् मध्यमादि ७ स्वरों के गान में ये विशेष नाम हैं जैसा कि वहीं फिर लिखा है कि:-

" जो सामगों का प्रथम स्वर है वह वेणु का मध्यम नामक है। जो द्वितीय है वह गान्धार। और तृतीय ऋषभ को माना है। चतुर्थ को षड्ज कहते हैं। पञ्चम धैवत है। षष्ठ निषाद जानना चाहिये। और सप्तम का नाम पञ्चम है। (१३।२)"

इस प्रकार १=मध्यम २=गान्धार। ३=ऋषभ। ४=षड्ज। ५=मन्द्र वा

धैवत । ६=क्रुष्ट या निषाद । ७=षड्ज वा अतिस्वार है ॥

इसी नारदीशिक्षा में षड्जादि स्वरों के नामार्थ भी लिखे हैं कि:—

"नासिका कण्ठ उरः तालु जिह्वा और दान्त इन छः से उत्पन्न होता है इस कारण षड्ज कहाता है (५।७) । नाभि से उठा वायु, कण्ठ और शीर्ष से टकराया हुआ ऋषभ (बैल) की नाई नादता है इस कारण ऋषभ कहा जाता है (५।८) । नाभि से उठा वायु, कण्ठ और शीर्ष से टकराया हुआ नासिका में पवित्र गन्ध को लाने वाला है इस हेतु गान्धार है (५।९) नाभि से उठा वायु उरः और हृदय में टकराया हुआ (मध्य) नाभि को प्राप्त हुआ वही महानाद मध्यमत्व को प्राप्त होता है (५।१०) । वायु १ नाभि से उठा हुवा और २ उरः ३ हृदय ४ कण्ठ और ५ शीर्ष से टकराया हुवा होता है इस लिये इन ५ स्थानों से उत्पन्न होने वाले को पञ्चमत्व किया जाता है (५।११) इन पूर्व उठे हुवे स्वरों को अतिसन्धान करता है इसलिये इस स्वर को धैवतत्व किया गया है (५।१७) । जिस कारण इस (निषाद) से सब स्वर बैठ जाते (दब जाते) हैं इस से यह निषाद है इत्यादि० (नारदी० ५।१८)" ॥

— जो सामगानविद्या की प्राप्ति चाहता है उसे तो सम्पूर्ण "नारदी शिक्षा" तथा "रागविरोध" आदि अन्य ग्रन्थ ही पढ़ने चाहियें ॥

परन्तु हमने तो अर्थ समझने के लिये यहां केवल उदात्तादि स्वर ही बतलाये हैं क्योंकि-जब शब्द में वर्ण का दोष वा स्वर का दोष हो जाता है तब वह शब्द जिसके लिये बोला गया है उस (ठीक) अर्थ को नहीं कहता, जैसे स्वर० दोष-"इन्द्रशत्रुः" इस पद में तत्पुरुष समास में "इन्द्रस्य शत्रुः=इन्द्रशत्रुः" ऐसा अन्तोदात्त प्रयोग होता है । परन्तु बहुव्रीहि में-"इन्द्रः शत्रुर्यस्य सः-इन्द्रशत्रुः" यहां अन्तोदात्त न होकर पूर्वपदप्रकृतिस्वर हो जाता है और उस से इन्द्र शब्द आद्युदात्त हो जाता है। अष्टाध्यायी के सूत्र तथा स्वर के चिह्न संस्कृतभाष्य में लिखे हैं वहां देख लीजिये । इस प्रकार तत्पुरुष समास में तो इन्द्रशत्रु का अर्थ यह है कि "इन्द्र जो सूर्य उसका काटने वाला" । परन्तु यह अर्थ असम्भव है क्योंकि वृत्र जो मेघ है वह इन्द्र=सूर्य के साथ लड़ कर सूर्य को काट नहीं सकता किन्तु स्वयं ही कट कर वर्षता है इसलिये बहुव्रीहि समास ही ठीक है जिस में यह अर्थ होता है कि "इन्द्र=सूर्य है काटने वाला जिसका" वह मेघ इन्द्रशत्रु पद का वाच्य है । परन्तु यह ठीक अर्थ तभी हो सकता है जब कि कोई बोलने वाला बहुव्रीहि समास वाले स्वर से उच्चारण करे । और यदि स्वर का ज्ञान न हो और इस कारण तत्पुरुषसमास वाले स्वर से बोल देवे तो वही असम्भव अनर्थ आवेगा जो ऊपर लिखा गया ॥

जो सूक्त एक ही ऋचा में समाप्त होता है उस को "एकर्च" कहते हैं और दो ऋचाओं में पूर्ण होने वाले को "प्रगाथ" कहते हैं। तीन ऋचा वाले को "तृच"। ४ वाले को "चतुर्ऋच" इसी प्रकार पञ्चर्च, षडृच, सप्तर्च इत्यादि संज्ञा जानो, जिन का पूर्व आचार्य लोग व्यवहार करते रहे हैं॥

यद्यपि जिस मन्त्र का जो ऋषि देवता और छन्द होगा वह प्रतिमन्त्र के ऊपर वहां २ लिखा जायगा तथापि यहां केवल यह दिखलाया जाता है कि सात ७ छन्दों ७ अतिच्छन्दों और ७ विच्छन्दों में से किस २ में कितने २ अक्षर होते हैं। जैसे-

१-२४ अक्षर की गायत्री। २-२८ अक्षर की उष्णिक्। ३-३२ अक्षर की अनुष्टुप्। ४-३६ की बृहती। ५-४० की पङ्क्ति। ६-४४ की त्रिष्टुप्। ७-४८ की जगती। ये ७ छन्द हुवे॥ और १-५२ अक्षर की अतिजगती २ ५६ की शक्वरी। ३ ६० की अतिशक्वरी। ४-६४ की अष्टि। ५-६८ की अत्यष्टि। ६-७२ की धृति। ७ ७६ की अतिधृति। ये ७ अतिच्छन्द हुवे॥ तथा। १-८० अक्षर की कृति। २-८४ की प्रकृति। ३-८८ की आकृति। ४-९२ की विकृति। ५-९६ की संस्कृति। ६-१०० की अतिकृति। ७-१०४ की उत्कृति। ये ७ विच्छन्द हुवे॥ जैसा कि-

गायत्र्या वसवः (३। ३) से लेकर-चतुश्शतमुत्कृतिः (४। १) पर्यन्त पिङ्गलसूत्रों में निकलता है। और भुरिक् स्वराट् विराट् निचृत् विचृत् आदि भेद तो पिङ्गल में ही देखने चाहियें॥

सामवेद के उपव्याख्यान रूप ८ ब्राह्मण ग्रन्थ हैं, उन के नाम ये हैं-१-प्रौढ या ताण्ड्यमहाब्राह्मण २-षड्विंश ३-सामविधान ४-आर्षेय ५-देवताध्याय ६-उपनिषद् ७-संहितोपनिषद् वा मन्त्रब्राह्मण। ८-वंश। इन में से चौथे और पांचवें ब्राह्मणों के अनुसार सामवेद के ऋषि देवता और छन्द जानने चाहियें। मन्त्रब्राह्मण में सब संस्कारों के मन्त्र पढे हैं। वंशब्राह्मण में ब्रह्मा से आरम्भ करके सामगों की वंशावली का वर्णन है। इसी प्रकार अन्य ब्राह्मणों में भी प्रायश्चित्त प्रयोगादि का ही वर्णन है किन्तु मूल सामवेद के अक्षरों की व्याख्या का अंश विशेष कर नहीं है। इसलिये इस भाष्य में उन २ ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रमाणों की आवश्यकता प्रायः नहीं है॥

इस द्वितीयवार में संस्कृत भाष्य नहीं छपाया, केवल आर्यभाषा भाष्य और मूल तथा देवता और छन्द का नाम छपा है॥ तुलसीराम स्वामी

ओ३म्

सामवेदसंहिता

छन्द आर्चिकः

अथाग्नेयं पर्व काण्डं वा

तत्र

प्रथमे प्रपाठके-प्रथमार्द्धः ।

(प्रथमाध्याये-प्रथमा दशतिः)

अग्न आयाहीत्यस्या भरद्वाज * ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ १२ ३ २ ३ १
अग्न आयाहि वीतये गृणानोहव्य-
२ १ २ २र ३ १ २
दातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ १ ॥

अब प्रकरणशः मन्त्र भाष्य का आरम्भ किया जाता है ॥

इस छन्दआर्चिक नामक सामवेद के प्रथम भाग में ३ पर्व हैं १-आग्नेय २-ऐन्द्र और ३-पावमान । इन में से पहिले आग्नेय पर्व में ११४ मन्त्र हैं जिन में विशेष कर अग्निपद्वाच्य का वर्णन है ॥

उस में-

प्रथम प्रपाठक का प्रथमार्ध-

पहिले अध्याय की पहिली दशति

भावार्थः-(अग्ने) हे प्रकाश के पुञ्ज ! (वीतये) कान्ति प्रक्षेप वा हव्य खाने के लिये (आयाहि) प्राप्त हूजिये। कैसे हो तुम ? (गृणानः) स्तुति किये हुवे और (होता) हव्यपदार्थों के लेने वाले हो । (बर्हिषि) यज्ञ में (नि, सत्सि) विराजिये (हव्यदातये) वायु आदि देवों को हव्य देने=पहुंचाने के लिये ॥

---

* वाजस्यान्नस्य भरणाद्भरद्वाजः इति सार्थकं संज्ञा=अन्न के भरण से "भरद्वाज" नाम हुवा ॥

इस प्रकार के मन्त्रों में "हे अग्ने" इत्यादि सम्बोधन के व्यवहार को देख कर कोई लोग शङ्का करते हैं कि "वेदों में विशेष करके अचेतन जड़ों का सम्बोधन देखा जाता है सो किस कारण ?"

उत्तर-निरुक्त अध्याय ७। खं० १) में लिखा है कि वेद में तीन प्रकार की ऋचा हैं। १-परोक्षकृता २-प्रत्यक्षकृता ३-और आध्यात्मिकी। फिर उसी निरुक्त (७। २) में लिखा है कि १-प्रत्यक्षकृता वे हैं जिन में मध्यम पुरुष का योग है और 'त्वम्' इस सर्वनाम से व्यवहार है। इसीलिये वेदों में अग्नि आदि प्रत्यक्ष देवताओं (व्यावहारिकों) का मध्यम पुरुष के प्रयोगों और "तुम" इस सर्वनाम से सम्बोधन करके वर्णन किया है। अर्थात् वेद की यह शैली (मुहावरा) है कि प्रत्यक्ष अग्न्यादि पदार्थों का वर्णन इस ढंग से किया जाता है। ऐसा ही आगे भी सर्वत्र जानो। बार २ न लिखेंगे। तात्पर्य यह है कि अग्नि को अग्निकुण्ड में बुलाना अर्थात् आधान करना चाहिये इस लिये कि होमे हुवे द्रव्यों को वायु आदि में फैलावे और हुतद्रव्यों को प्र-क्षेप करके फैलाने वा भक्षण करने के लिये। प्र०-वह अग्नि कैसा है ? उ०-जिस की स्तुति की जाती है। प्र० अग्नि आदि जड़ पदार्थों की स्तुति से क्या फल है ? उ० जिस प्रकार परमेश्वर की स्तुति अर्थात् गुणानुवाद करने से उस में श्रद्धा उत्पन्न होती है इसी प्रकार अग्नि आदि जड़ पदार्थों के गुण वर्णन करने से उन गुणों के द्वारा उपकार लेने की श्रद्धा उत्पन्न होती है अर्थात् होमादि करने का क्या फल है, शिल्पादि में अग्नि क्या काम देता है, इत्यादि विदित होता है। इस लिये गुणकीर्त्तन व्यर्थ नहीं। इस मन्त्र का अग्नि देवता है अर्थात् अग्नि का इसमें वर्णन=स्तुति है। अग्नि शब्द मुख्य करके परमात्मा का वाचक है इसलिये ईश्वरपक्ष के श्लेषालङ्कार वाले अर्थ में यह आशय होगा कि-

हे (अग्ने) प्रकाशमय ! आप हमारे (बर्हिषि) यज्ञ में अर्थात् ज्ञान-यज्ञरूप ध्यान में (आयाहि) प्राप्त हूजिये, (गृणानः) आप स्तुत किये हुवे हैं, (होता) आप सब को सब पदार्थों के दाता हैं। (नि, सत्सि) विराजिये। किस लिये ? (वीतये) हृदय में प्रकाश करने के लिये और (हव्यदातये) भक्ति का फल देने के लिये ॥

वेदों में प्रायः * श्लेषालङ्कार है जिससे दो अर्थ होते हैं, जिनमें से परमार्थविषयक ईश्वरार्थ तो मुख्य ही है। क्योंकि कठोपनिषद् (२। ५) में लिखा है कि:—(सर्वे वेदा यत्०)

"समस्त वेद जिस पद का सब प्रकार से मनन करते हैं वह ओंकार है" ओ३म् परमात्मा का नाम है। जैसा कि योगशास्त्र में लिखा है कि "परमात्मा का वाचक प्रणव ओंकार है (१। २७)" तो जब कि अग्नि आदि पदों से परमात्मा का ग्रहण किया जावे तभी यह ठीक घट सक्ता है कि समस्त वेद परमात्मा का वर्णन करते हैं। वास्तव में प्रकाशादि जो दिव्य गुण हैं सो परमात्मा में असीम (बेहद्द) भाव से वर्त्तमान हैं इसलिये अग्नि आदि पदों का मुख्य अर्थ तो परमात्मा ही है परन्तु वे प्रकाशादि गुण ससीम (हद्द वाले) हो कर अग्नि आदि भौतिक पदार्थों में भी किसी अंश तक रहते हैं इस लिये उस अंश में वे भौतिक पदार्थ देवता कहे जाते हैं। इसी लिये सम्पूर्ण देवतावाचक पदों से पूर्ण भाव से तो परमात्मा ही वेदों में विवक्षित है परन्तु यौगिकार्थ से किसी अंश तक भौतिक पदार्थ भी विवक्षित जानने चाहियें॥

इस प्रकार इस जगह देवता शब्द से उस मन्त्र का वर्णन किया पदार्थ और ऋषि शब्द से उस २ मन्त्र के अर्थ का अनुभव करने वाला ऋषि, तथा स्तुति शब्द से उस के गुणों का वर्णन (बयान), और संबोधन से उस २ पदार्थ का प्रत्यक्ष होना, समझना चाहिये। यह ठीक स्मरण रखना चाहिये क्योंकि आगे वार २ यह नहीं लिखा जायगा। यह ऋचा ऋग्वेद मं० ६। सूक्त १६। ऋ० १० में भी ज्यों की त्यों है॥ १॥

अथ द्वितीया। ऋष्याद्याः पूर्ववत्

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
त्वमग्ने यज्ञानाᳬहोता विश्वेषाᳬ
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
हितः। देवेभिर्मानुषे जने॥ २॥

भावार्थः-(अग्ने) हे अग्ने! तुम (विश्वेषाम्) सब (यज्ञानाम्) अग्निष्टोमादि कर्मयज्ञों के (होता) होम करने वाले (देवेभिः) विद्वान् ऋत्विजों द्वारा (मानुषे, जने) यजमान के यहां (हितः) स्थापन किये जाते हो॥

* श्लेषालङ्कार के २ भेद हैं, शब्दश्लेष और अर्थश्लेष। जिनमें से अर्थश्लेष वह कहाता है जिसमें एक पद वा वाक्य में अनेक अर्थ हों॥

भावार्थ स्पष्ट है कि अग्नि ही सब यज्ञों का होता है, वही हव्यपदार्थों को होमता=फूंकता है, उसे ही होता उद्गाता अध्वर्यु आदि ऋत्विक् लोग यजमान के घर कुण्ड में स्थापित करते हैं सो करें ॥

ईश्वर विषय में-(अग्ने) हे प्रकाशमान! तुम (विश्वेषाम्) समस्त (यज्ञानाम्) ब्रह्मयज्ञादि ज्ञानयज्ञों के (होता) ग्रहण करने वाले यज्ञस्वामी हो, तुम (देवेभिः) विद्वान् उपासकों से (मानुषे, जने) मनुष्य वर्ग में (हितः) धारण किये जाते हो ॥

इस से विदित कराया गया है कि परमात्मा सब ज्ञानयज्ञों का स्वामी अधिष्ठाता है, सब मनुष्यों में वे मनुष्य जो उपासक हैं उन का ध्यान करते हैं सो करें ॥ यह ऋचा भी ऋग्वेद (६।१६।१) में ज्यों की त्यों है ॥ २ ॥

अथ तृतीया-अग्निं दूतमित्येषा कण्वपुत्रेण मेधातिथिना दृष्टा ।

छन्दोदेवते पूर्ववत्

१ २   ३ १ २   २   ३   १   २   ३ १ २

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववे-

३   २   ३ १ २   ३ १ २

दसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ३ ॥

भावार्थः-(विश्ववेदसम्) सब को जताने वाले (होतारम्) देवों के बुलाने वाले (अस्य) इस (यज्ञस्य) यज्ञ के (सुक्रतुम्) सुधारने वाले (दूतम्) दूत (अग्निम्) अग्नि को (वृणीमहे) हम वरण करते हैं अर्थात् स्वीकार करते हैं ॥

तात्पर्य यह है कि यज्ञ का अग्नि दूत है । जिस प्रकार दूत द्वारा बुलाने वा सत्कार करने योग्यों को बुलाते हैं इसी प्रकार अग्नि द्वारा वायु आदि देवों को बुलाया जाता है । इस का प्रकार यह है कि जब कुण्ड में अग्नि स्थापन करके होम करते हैं तो अग्निकुण्ड के ऊपर छाये हुये वायु और वायु के अन्तर्गत अन्य ३३ में से कई भौतिक देवों को आहुति पहुंचा कर अग्नि अपनी उष्णता से हलका कर देता है, तब हलकी (लघु) वस्तु स्वाभाविक रीति पर जल पर तैल के समान ऊपर को हट जाती है और उसका स्थान रिक्त (ख़ाली) हो जाता है परन्तु चारों ओर का वायु और उस के अन्तर्गत अन्य देव फिर उस स्थान को भर देते हैं, अग्नि फिर उन्हें भी अपनी उष्णता से आहुति पहुंचाय हलका करके ऊपर को हटा देता है। इसी प्रकार वार २

वार होता है, इस रीति से अग्नि दूत है जो वायु आदि देवतों का आवाहन कर करके विसर्जन करता जाता है। अग्नि सबका जताने वाला इस लिये है कि अग्नि में प्रकाश है और प्रकाश ज्ञान का साधन है, जहां प्रकाश होता है वहां जाना जाता है कि क्या है क्या नहीं है; अन्धकार में अज्ञान होता है॥

ईश्वर विषय में-(विश्ववेदसम्) सब के लिये वेदों द्वारा ज्ञान के दाता (होतारम्) व्यापकता से सब को ग्रहण करने वाले (दूतम्) कर्मों का फल पहुंचाने वाले (अस्य) इस (यज्ञस्य) योगयज्ञ के (सुक्रतुम्) संवारने वाले (अग्निम्) परमात्मा को [हम यजमान उस के भक्त उपासक लोग] (वृणीमहे) वरण करते हैं स्वीकार करते हैं॥

परमात्मा ही वेद द्वारा सब को ज्ञान का दाता, सब को कर्मफलप्रदाता, सब को सर्वत्र व्यापक होता हुआ पकड़ रहा है वा धारण कर रहा है, वही हमारी उपासना के सुन्दर फल का सम्पादक है, उसी को हम भक्तिकरें यह आशय है॥

अष्टाध्यायी ३।२।१३५॥ ६।१।३४॥ उणादिकोष ४।२३८॥ निघण्टु २।१॥ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखो। सायणाचार्य भी लिखते हैं कि तैत्तिरीय में कहा है कि "अग्नि देवों का दूत है" इत्यादि॥ यह ऋचा भी ऋग्वेद (१।१२।१) में भी ऐसे ही है॥३॥

अथ चतुर्थी-अग्निर्वृत्राणीत्येषा भरद्वाजेन दृष्टा। छन्दोदेवते पूर्ववत्।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३
अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विप-
१ २ १ २ ३ १ २ २ २
न्यया। समिद्धः शुक्र आहुतः॥४॥

भाषार्थः-(विपन्यया) कीर्त्तन से कीर्त्तित (द्रविणस्युः) बल चाहता हुआ (समिद्धः) सुलगाया हुआ (शुक्रः) श्वेत=प्रज्वलित होता हुआ (आहुतः) सब ओर से होमा हुआ (अग्निः) अग्नि (वृत्राणि) दुःखदायक रोगादिकों को (जङ्घनत्) हनन करे॥

आशय यह है कि वेदोक्त मन्त्रों से अग्नि का कीर्त्तन करना चाहिये इस से होम के साथ मन्त्र पढ़ने से तात्पर्य है। जिस से अग्नि के गुण ज्ञात

होकर उस के उपयोग की शिक्षा मिले। वह अग्नि बल को चाहता अर्थात् समिधा आदि द्वारा अपने को बढ़ाना चाहता है, उसे बढ़ना चाहिये, यह शिक्षा है। प्र० अग्नि जड़ है उस में चाहना नहीं बन सकती। उ० भींत गिरया चाहती है, आग फूंकना चाहती है। जैसे यह व्यवहार है वैसे ही यहां भी जानो। जब वह अग्नि सुलगाया जाता है और प्रदीप्त होता है और चारों ओर से होम किया जाता है तब सब ओर से वृत्र अर्थात् अन्धकारों दुःखदायक रोगों और अनावृष्ट्यादि दुःखों को हनन करता है, या करे। इसलिये मनुष्यों को यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये ॥

ईश्वर विषय में-(विपन्यया) स्तुति से (द्रविणस्युः) भक्तों को आत्मिक बल का चाहने वाला (समिद्धः) अच्छे प्रकार ध्यान किया हुआ (शुक्रः) बलवान् और बलप्रदाता (आहुतः) सर्वथा भक्ति किया हुआ (वृत्राणि) अविद्यादि अन्धकारों दुःखों और दुःखसाधनों को (जङ्घनत्) हननकरे। इस लिये सबको नित्य परमात्मा की स्तुति प्रार्थना उपासना श्रद्धा भक्ति से करनी चाहिये। निघण्टु ३।१४॥ २।९॥ अष्टाध्यायी ७।४।३३॥ ७।४।३५॥ ७।४।३६॥ ३।४।७॥ ३।२।१६८॥ ३।२।१७१ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखने चाहियें। यह ऋचा भी ऋ० ५।१६।३४ में ठीक इसी प्रकार है ॥४॥

अथ पञ्चमी-उशनसा दृष्टा। छन्दोदेवते उक्ते।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
प्रेष्ठं वो अतिथिंᳪस्तुषे मित्रमिव
३ २ २ ३ २ ३ १२३२
प्रियम्। अग्ने रथं न वेद्यम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः-हे मनुष्यो! (मित्रमिव प्रियम्) मित्र के समान हितसाधक (प्रेष्ठम्, अतिथिम्) अत्यन्त प्रिय, अतिथि (वेद्यम्) वेदी में स्थित (रथं, न) रथ के समान देवतों के वाहन (अग्ने) अग्नि को (वः) तुम्हारे उपकारार्थ (स्तुषे) कीर्त्तन करता कहता अर्थात् उपदेश करता हूं ॥

परमात्मा उपदेश करता है कि अग्नि तुम्हारा मित्र के समान हितसाधक है, तुम को उस से अत्यन्त प्रीति करनी चाहिये, वह अतिथि के समान एक स्थान में स्थित नहीं रहता, उसका स्वभाव सदा चलने का है, तुम उसे वेदी में स्थापन करो, वह रथ के समान वायु आदि का वाहन है अर्थात्

अग्नि की सहायता से वायु चलता और अन्य सब भौतिक देश चलते हैं। इसी अग्नि से आन्धी आती तथा वायु का संचार होता है, इत्यादि जानो॥

उणादिकोष ४। २॥ निरुक्त १। ४॥ ऋग्वेद ८। ७३। १॥ अष्टाध्यायी ३। १। ३४ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखने चाहियें॥

ईश्वर विषय में-हे मनुष्य! (मित्रमिव, प्रियम्) मित्र के समान, कल्याणकारक (प्रेष्ठम्) अतिप्रिय (अतिथिम्) निरन्तर व्यापक (वेद्यम्) जानने योग्य वा हृदयरूप वेदी में ध्यान करने योग्य (रथं, न) रथ के समान सब के आधार और वाहक पहुंचाने वाले (अग्निम्) प्रकाशमान परमात्मा को (स्तुषे) स्तुति कर तू॥ ऋ० ८। ७३। १ में "अग्ने" के स्थान में "अग्नि" यही भेद है अन्य सब पद तुल्य हैं॥५॥

अथ षष्ठी-सुहोतिपुरुमीढाभ्यां तयोरन्यतरेण वा दृष्टा। छन्दोदेवते उक्ते॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २२ ३
त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या
१ २ ३ २ ३ १ २ २ २
अराते:। उत द्विषो मर्त्यस्य॥ ६॥

भावार्थः-(अग्ने, त्वम्) अग्ने! तुम (महोभिः)हवनादि से (विश्वस्याः) सब (अरातेः) दुःखदायक (उत) और (मर्त्यस्य, द्विषः) मनुष्य के शत्रु से (नः) हम को (पाहि) बचाओ॥

अर्थात् जब मनुष्य होमादि से अग्नि का उपयोग लें और अग्नि को अपने अनुकूल करें तब वह अग्नि वायु आदि की शुद्धि द्वारा मनुष्य के शत्रु दुःखदायक जो रोग शोक दुःखादि हैं उन सब से बचाता है। इस लिये मनुष्यों को अग्निद्वारा यज्ञ करना चाहिये जिस से मनुष्य के हानिकारक जो वाय्वादिगत दोष हैं और उस में उत्पन्न हुवे जो सूक्ष्म संक्रामक कीड़े आदि हैं उन का नाश हो और मनुष्य सुखी हों॥ प्र० अग्नि जड़ है वह प्रसन्न वा अनुकूल कैसे हो सकता है? उ०-जब जिस पदार्थ के गुण भले प्रकार सेवन किये जाते हैं तब वह चेतन वा अचेतन कोई हो, अनुकूल हो जाता है। पित्तकोप वा कफप्रमाद के समान जड़ में भी कोप और शान्ति का व्यवहार होता है। इसलिये प्रश्न को अवकाश नहीं॥

ईश्वरपक्ष में भी यही अर्थ है कि मनुष्यों को परमात्मा की पूजा अर्थात

स्तुति प्रार्थना उपासनादि करनी चाहिये जिस से सब प्रकार के मनुष्य के दुःख और दुःखदायक शत्रु निवृत्त हों ॥ ऋग्वेद ८। ६०। १ में भी ऐसी ही ऋचा है ॥६॥

अथ सप्तमी-भरद्वाजेन दृष्टा। छन्दोदेवते उक्ते ॥

२३ १२२२ ३ १ २३ १२३
एह्यूषुब्रवाणि तेऽग्नइत्थेतरा
१ २ ३१२ ३१२
गिरः। एभिर्वर्द्धास इन्दुभिः ॥७॥

भावार्थः-(अग्ने) हे अग्ने (एहि) आओ (ते) तुम्हारे द्वारा (इत्था) सत्य [वैदिक] और (इतराः) अन्य लौकिक (गिरः) वाणियों को (सु,ब्रवाणि) उच्चारण करूं। और तुम (एभिः) इन (इन्दुभिः) यज्ञों से (वर्द्धासि) बढ़ते हो ॥

तात्पर्य यह है कि लौकिक वैदिक सब प्रकार की वाणी अग्नि ही की सहायता से बोली जाती हैं क्योंकि वाक् इन्द्रिय का अग्नि देवता है वा यह समझिये कि वाक् इन्द्रिय अग्नि का प्रधान कार्य है। इसी से " मुख से अग्नि उत्पन्न हुआ " यह यजुः ३१।१२ में तथा " शब्द स्पर्श और रूप ये तीन अग्नि के गुण हैं " यह महाभारत शान्तिपर्व अध्याय १८४ श्लोक ३२ में कहा गया है (मूल प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखो) वह अग्नि यज्ञों से बढ़ता है इसलिये यज्ञानुष्ठान से वागिन्द्रिय का सुधार भी जतलाया गया है। क्योंकि सदा वाणी आदि सब इन्द्रियां अपने २ नियमानुकूल निज २ अग्नि आदि भौतिक देव का ग्रहण करते रहते हैं और इसी से समस्त व्यवहार की सिद्धि है ॥

ईश्वरविषय में भी यही अर्थ होगा कि-(अग्ने) ज्ञानदातः परमात्मन्! (एहि) हमें प्राप्त होओ (ते) तुम्हारे द्वारा ही, मैं (इत्था) सत्य [वैदिक] (इतराः) और लौकिक (गिरः) वाणियों को (सु, ब्रवाणि) भले प्रकार बोलूं और आप (एभिः) इन (इन्दुभिः) ज्ञानयज्ञों से (वर्द्धासि) हमें बढ़ाते हैं ॥

अर्थात् ईश्वरदत्त वेदवाणी के ही द्वारा मनुष्यों ने लौकिक वैदिक शब्द बोलने का सामर्थ्य प्राप्त किया है और वेदपाठ वा परमात्मा की, स्तुति प्रार्थनोपासना आदि ज्ञानयज्ञों के करने से जो हमारा बोलने का ज्ञान बढ़ता है, उसे परमात्मा ही बढ़ाता है ॥७॥

अथाष्टमी—कण्वगोत्रेण वत्सेन दृष्टा । छन्दोदेवते उक्ते ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३
आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्स-
१ २ २ ३ १ २ ३ २
धस्थात् । अग्ने त्वां कामये गिरा ॥८॥

भावार्थः—(अग्ने) हे प्रीतिकारक ! (गिरा) वाणी के सहित (त्वाम्) तुम को (कामये) कामना करता हूं। क्योंकि (ते) तुम से ही (वत्सः) बोलने वाला (मनः) मन रूप विद्युत्पदार्थ, (परमाच्चित्) उत्कृष्ट (सधस्थात्) हृदय स्थान से (आ-यमत्) फैलता है ॥

अर्थात् अग्नि की ही सहायता से मनरूप बिजुली हृदय से सम्पूर्ण शरीर में फैलती है और उसी से सब कोई बोल सकता है इसलिये प्रत्येक बोलनेवाले को आग्नेय वाणी इन्द्रिय का उपयोग अच्छे प्रकार करना चाहिये और कामना करनी चाहिये कि यह वाणी रूप अग्नि मुझे प्राप्त हो। अग्नि और वाणी में क्या सम्बन्ध है सो मन्त्र ७ की व्याख्या में प्रमाणपूर्वक सिद्ध कर चुके हैं और जैसा कि शिक्षा में कहा है कि—(आत्मा बुद्ध्यासमे०)

"आत्मा बुद्धि से मिलकर अर्थों के बोलने की इच्छा से मन को युक्त करता है, मन देहस्थ अग्नि का ताड़न करता है, वह अग्नि वायु को प्रेरित करता है, वायु उरःस्थल में विचरता हुआ मन्द्रस्वर को उत्पन्न करता है"

मूल श्लोक संस्कृत भाष्य पृष्ठ २८ पं० २३ में देखिये। ऋग्वेद (८।११।७) में 'कामये' के स्थान में 'कामया' ऐसा पाठान्तर और तदनुसार अर्थान्तर भी है। इस मन्त्र का द्रष्टा ऋषि वत्स नामक है और इस मन्त्र में भी वत्स पद आया है इसलिये कोई लोग यह शङ्का करते हैं कि वत्स ऋषि ने ही यह मन्त्र बनाया है। परन्तु वेद में जो वत्स पद है वह ऋषि विशेष का नाम नहीं किन्तु मन्त्र में वत्स पद देख कर ही उसके द्रष्टा ऋषि ने अपना नाम भी वत्स रख लिया, ऐसा समझना चाहिये। लोक में भी जब किसी के पुत्र का जन्म होता है तो उस के नाम रखने को किसी अपूर्व शब्द को नहीं उपजाया जाता किन्तु प्राचीन शब्दसमूह में से छांटकर जो अपने को अच्छा लगता है सो नाम रख देते हैं। इसी प्रकार उक्त वत्स पद को अनादि अपौरुषेय वेदों से लेकर ऋषि विशेष ने वा उसके इष्ट मित्रों ने उसका वत्स नाम रख दिया है। यह

नहीं है कि वत्स ऋषि ने बनाया इस से उस मन्त्र में वत्स का नाम है। क्योंकि अन्य मन्त्रों में भी उन २ मन्त्रों के द्रष्टा ऋषियों के नाम नहीं हैं तथा अपौरुषेय वेद वा उसका कोई मन्त्र किसी ऋषि का बनाया नहीं है, और वेद में वत्स शब्द का यौगिकार्थ "बोलने वाला" है। जैसा कि उणादि सूत्र ३। ६२ संस्कृतभाष्य में लिखा है॥ ८॥

अथ नवमी-भरद्वाजेन दृष्टा। छन्दोदेवते उक्ते॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत।
३ १र २र ३ १ २
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः॥ ९॥

भाषार्थः-(अग्ने) हे अग्ने! (त्वाम्) तुझ को (अथर्वा) परमात्मा ने (मूर्ध्नः) शिर के समान धारक और (विश्वस्य) सबके (वाघतः) अग्निजन्यप्रकाश के लेचलने वाले (पुष्करात्, अधि) आकाश में (निरमन्थत) उत्पन्न किया है॥

तात्पर्य यह है कि परमात्मा ने अग्नि को आकाश में उत्पन्न किया है और इस का प्रयोजन वेदमन्त्र बतलाता है कि वह आकाश सब का धारण करता है और उत्पन्न हुवे अग्नि के प्रकाश का वही वाहन है अर्थात् आकाश ही प्रकाश को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाता है (सूर्यादि का प्रकाश आकाश द्वारा ही हम तक आता है)॥

ईश्वर पक्ष में-(अग्ने) हे ज्ञानप्रद! परमात्मन्! (त्वाम्) तुझ को (अथर्वा) ज्ञानी पुरुष (मूर्ध्नः) मस्तिष्क [दमाग़] से और (विश्वस्य) सबके (वाघतः) वाहक (पुष्करात्) हृदय कमल (अधि) में (निरमन्थत) आविर्भूत=प्रत्यक्ष करता है॥

अर्थात् परमात्मा ज्ञानियों के हृदय में प्रत्यक्ष होता है। परन्तु सामान्य तया नहीं किन्तु मस्तिष्क से अर्थात् विचार के बल से। इस मन्त्र में हृदय को सबका वाहन बताया गया है। यथार्थ में हृदय के ज्ञान बिना प्राणिमात्र जड़ है और हिलचल सकने को असमर्थ है इसलिये हृदय ही सबका वाहन है॥

निघं० १।३ ऋ० १। १६४। २० के प्रमाण संस्कृतभाष्य पृष्ठ ६० में देखिये। ऋग्वेद ६। १६। १३ में भी यही पाठ है॥ ९॥

अथ दशमी-वामदेवेन दृष्टा। छन्दोदेवते पूर्वोक्ते॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने विवस्वदाभरास्मभ्यमूतये
३ २ ३ १ २ २ २ ३ २
महे । देवोह्यसि नो दृशे ॥ १० ॥

इति प्रथमा दशतिः ॥१॥

भावार्थः-(अग्ने) हे अग्ने । (महे) बड़ी पूरी (ऊतये) रक्षा के लिये (विवस्वत)सुख में रखने वाले यज्ञादि को (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (आ-भर) सिद्ध कराइये (हि) क्योंकि (नः) हमारे (दृशे) देखने के लिये (देवः) प्रकाशक (असि) हो ॥

तात्पर्य यह है कि अग्नि से बड़ी रक्षा और सुख सम्पादन करना चाहिये। तथा अग्नि ही की सहायता से नेत्रेन्द्रिय की उत्पत्ति से देखने का काम सिद्ध होता है सो करना चाहिये । और यज्ञ वा शिल्प कर्म से सुख में निवास करना चाहिये ॥

ईश्वर पक्ष में-(अग्ने) हे जगदीश । (महे) पूर्ण (ऊतये) रक्षाके लिये (विवस्वत्) सुख में बसाने वाले यज्ञादि कर्म को (अस्मभ्यम्) हमारे लिये [आ-भर) पूर्ण कीजिये [क्योंकि आप ही] (नः) हमारे (दृशे] देखने के लिये [देवः] प्रकाशक (असि) हैं ॥

अर्थात्-परमात्मन् ! यज्ञादि कार्यों में हमारी सहायता कीजिये जिस से हम सुख में निवास करें। आपही बड़े भारी रक्षक और मार्ग दिखाने वाले हैं । आपने ही कान और आंख आदि इन्द्रियां दी हैं, वे इन्द्रियां भी आप ही की सहायता से अपने काम करने में समर्थ होती हैं ॥

अष्टाध्यायी ३ । ३। ९७ सूत्र संस्कृत भाष्य पृष्ठ ३१ पं० २४ में देखिये ॥१०॥

यह प्रथम दशति पूर्ण हुई॥१॥

—:0:*:0:*:0:—

अथ द्वितीया दशतिस्तत्र प्रथमाऽऽनुष्टुप्छन्दाङ्गिना दृष्टा । छन्दोदेवते पूर्वोक्ते ॥

१ २ ३ १ २ ३ १र
(११)नमस्ते अग्नओजसे गृणन्ति
३ १ २ १ २ ३ १ २
देव कृष्टयः । अमैरमित्रमर्दय ॥१॥

अब दूसरी दशति का प्रारम्भ किया जाता है ॥

भावार्थः-(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप ! परमात्मन् ! (नमः,ते) आपको नमस्कार है (ऋषयः) भक्त मनुष्य (ओजसे) बल के लिये (गृणन्ति) स्तुति करते हैं (देव) हे सर्वप्रकाशक!(अमैः) रोगों वा भयों से (अमित्रम्) शत्रु [पापी] को (अर्दय) पीड़ित कीजिये ॥

तात्पर्य यह है कि परमात्मा की स्तुति करनी चाहिये, इससे आत्मिक बल बढ़ता है और ज्ञान का प्रकाश होता है। और जो लोग परमात्मा से विमुख होकर अधर्माचरण करते हैं वे उनका फल रोगादि दुःख भोगते हैं।

अग्नि के पक्ष में-(अग्ने) हे अग्ने (ते) तेरे लिये (नमः) अन्नादि की आहुति हो (ऋषयः) मनुष्य लोग (ओजसे) बल के लिये (गृणन्ति) गुणकीर्तन करते हैं (देव) दिव्यप्रताव! (अमैः) रोगों वा भयों से (अमित्रम्) [पापी] शत्रु को (अर्दय) नष्ट करो ॥

अर्थात् अग्नि में अन्न यवादि ओषधियों का होम करना चाहिये जिस से बल की वृद्धि हो। साथ में वेदमन्त्रों द्वारा अग्नि का वर्णन भी करना चाहिये। जिससे अग्नि के गुणों को जान कर रोगादि से बचना ज्ञात हो जावे, क्योंकि अग्नि के गुण न जानने और वेदोक्त विधि से उपयोग में न लाने वाले और इसी कारण वेदविरुद्ध अधर्माचरण करने वाले पापी जन अनेक प्रकार के रोग तथा भय से पीड़ित होते हैं इस कारण उसको जान कर यज्ञादि से रोगनिवृत्ति तथा युद्धयज्ञ में आग्नेयाऽस्त्रादि के प्रयोग से शत्रुओं को दूर करना चाहिये ॥

निघं० २।३।२७ के प्रमाण संस्कृतभाष्य पृष्ठ३३ पं० ७।११ में देखो ॥ ऐसी ही ऋचा ऋग्वेद (८।६४ ११) तथा उत्तरार्चिक अ० १७ सूक्त १२ में है ॥

प्र०-(कोई लोग ऐसी शङ्का करते हैं कि) ऋग्वेद के मन्त्र वा सूक्त यजुः साम और अथर्व में आते कहीं२ देखे जाते हैं और इसी प्रकार अन्य वेदों के वाक्य मन्त्र वा सूक्तादि दूसरे वेदों में देखे जाते हैं, तथा एकही वेद में एक वाक्य मन्त्र वा सूक्तादि अनेक बार आते हैं, सो ऐसा जान पड़ता है कि पूर्व२ से उत्तरोत्तर में उद्धृत करलिया गया है ॥

उत्तर-यदि ऐसा हो तो आप को यह भी शङ्का होनी चाहिये कि काक शब्द में प्रथम ककार आकर फिर कर्पूर शब्द में भी ककार देखा जाता है तो काक शब्द का ककार कर्पूर शब्द में उद्धृत किया गया है ! ! ! इसी

प्रकार एक अक्षर एक पुस्तक में सहस्रों वा लक्षों वार आता है और एक ही अग्नि वायु आदि शब्द सैंकड़ों वार ग्रन्थों में आते और हम आप सब एकही शब्द को दिन भर में अनेक वाक्यों में सम्मिलित करके बोलते हैं, तो क्या पूर्वोच्चारित को ही उठार कर रक्खा करते हैं? यदि नहीं, तो फिर अक्षर, पद वा वाक्य के समान मन्त्र वा सूक्त के द्वितीय वार आने से भी शङ्का कहां रहती है? यथार्थ यह है कि जिस २ अक्षर, पद, वाक्य, मन्त्र वा सूक्त का जितनी वार प्रयोजन आता है उतनी वार उस २ अक्षर, पद, मन्त्र, वाक्य वा सूक्तादि को पुनः पुनः एक ही वेद वा अनेक वेदों में प्रयुक्त किया गया है॥१॥

अथ द्वितीया-वामदेवेन दृष्टा। उक्ते छन्दोदेवते॥

३१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१२) दूतं वोविश्ववेदसᳬहव्यवाहममर्त्यम्।
१ २ ३ २
यजिष्ठमृञ्जसे गिरा॥२॥

भावार्थः-हे "अग्ने" यह पूर्व मन्त्र से अनुवृत्ति करी जाती है। हे ज्ञानस्वरूप! परमात्मा! (विश्ववेदसम्) सर्वज्ञ (अमर्त्यम्) अविनाशी (हव्यवाहम्) कर्मफल के पहुंचाने वाले। इसीलिये (दूतम्) दूत के समान (वः) आप को (गिरा) वाणी से (ऋञ्जसे) स्तुत करता हूं=प्रसन्न करता हूं॥

भोगने योग्य कर्मफल हव्य है, उस को परमात्मा यथायोग्य दूत के समान विभागपूर्वक पहुंचाता है इस लिये उस को हव्यवाह कहा है॥

भौतिक पक्ष में-(विश्ववेदसम्) सब प्रकार के धनों वाले (अमर्त्यम्) अमनुष्य अर्थात् देव (यजिष्ठम्) अतिशय से यजन के योग्य (हव्यवाहम्) होम किये पदार्थों के पहुंचाने वाले (दूतम्) दूत [अग्नि] को (ऋञ्जसे) अनुकूल=प्रसन्न करता हूं वा करूं॥

अग्नि को सब धनों वाला इस कारण कहा है कि सुवर्णादि समस्त धन आग्नेय हैं। इसीसे सुवर्णरत्न मणि माणिक्यादि सब रत्न चमकीले और देखने में रमणीय हैं। अमर्त्य इसलिये कहा है कि मनुष्यादि प्राणियों के समान अग्नि नहीं है किन्तु दिव्य प्रभाव और शक्ति रखने से देव है। (वः) त्वाम् के स्थान में और (ऋञ्जसे) ऋञ्जामि वा ऋञ्जाति के स्थान में व्यत्यय से हुवा है॥ ऋग्वेद (४।८।१) में भी ऐसा ही पाठ है॥२॥

अथ तृतीया-प्रयोगेण दृष्टा । छन्दोदेवते पूर्ववत् ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

(१३) उप त्वा जामयोगिरोदेदेशतीर्हविष्कृतः ।

३ १२ २ २

वायोरनीके अस्थिरन् ॥ ३ ॥

भावार्थः-प्रथम ऋचा से "अग्ने" यह अनुवृत्ति आती है । हे उपासनीय देव ! (हविष्कृतः) भक्ति करने वाले की (जामयः) स्त्रियों के समान (देदेशतीः) अत्यन्त त्याग वाली (गिरः) वाणी, (वायोः, अनीके) वायु के, मण्डल में (त्वा) आप का (उप, अस्थिरन्) उपस्थान करती हैं ॥

अर्थात् हे जगत्पति ! आप के भक्तों की वाणी जो यज्ञादि कर्मों में अत्यन्त दक्षिणादि द्वारा दान वा त्याग वा विरक्त भाव को उच्चारती हैं उन वाणियों ने इस वायु मण्डल को भर रक्खा है, और मानो वे वाणी वायुमण्डल में आप का उपस्थान कर रही हैं । यथार्थ में जो परमात्मा की भक्ति की ओर झुकते हैं उन्हें क्रमशः सांसारिक धनादि पदार्थों में वैराग्य भाव उत्पन्न होता जाता है, और वे उन धनादि पदार्थों का सत्पात्रों में दान करने के लिये प्रायः त्याग किया करते हैं और करना चाहिये । तथा तदनुकूल वाणी भी उन की वैसा ही दानादि शब्दों का प्रयोग करती हैं और जितना धनादि का त्याग करती जाती हैं उतना ही परमात्मा का उपस्थान (सामीप्य) करती जाती हैं ॥

भौतिक पक्ष में-हे अग्ने ! (हविष्कृतः) यज्ञ करने वाले की (जामयः) स्त्रियों के समान (देदेशतीः) अत्यन्त त्यागशील (गिरः) वाणियें (वायोः, अनीके) वायुमण्डल में (त्वा) तेरे (उप) समीप (अस्थिरन्) ठहरती हैं ॥

अर्थात् यज्ञकर्त्ताओं को चाहिये कि वाणी से दान वा त्याग का प्रयोग करें जैसा कि प्रति मन्त्र के अन्त में हवन करने वाले "स्वाहा" बोलते हैं, वा "इदन्न मम" इत्यादि बोलते हैं । उन स्वाहा आदि का अर्थ दान त्याग वा छोड़ना आदि है । वे वाणियें वायुमण्डल में अग्नि के समीप गूंजती हुई वायुमण्डल को अलंकृत करें । इस मन्त्र से यह भी विज्ञान का अंश जतलाया गया है कि वाणी आग्नेय है और वह वायु के आधार पर एक मनुष्यादि से उच्चारण की हुई दूसरे मनुष्यादि के श्रोत्र द्वारा उसे प्राप्त होती है ॥

अष्टाध्यायी ३।४।६।।१।३।२३ संस्कृत भाष्य पृष्ठ ६७ पं० १ से देखिये ॥ ऐसी ही ऋचा ऋग्वेद (८।९।११३) में आई है ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी-मधुच्छन्दसा दृष्टा । छन्दोदेवते उक्ते ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २
(१४) उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् ।
२ ३ १ २ ३ १ २
नमोभरन्तएमसि ॥ ४ ॥

भावार्थः-(अग्ने) मार्गदर्शक ! परमात्मन् ! (वयम्) हम लोग (धिया) मन से (नमः,भरन्तः) नमस्कार, लिये हुवे (दिवे दिवे) प्रतिदिन (दोषावस्तः) सायं और प्रातः (त्वा) आप को (उप, एमसि) उपासना करें ॥

इस मन्त्र से प्रातः सायं नित्य प्रति मनुष्यमात्र को परमात्मा की उपासना मन लगाकर करने की शिक्षा दी गई है । ब्रह्मयज्ञ सन्ध्योपासन के अनुष्ठान का समय बताया गया है। दोषा रात्री को और वस्तः दिन को कहते हैं सो जिन गृहाश्रमी आदि मनुष्यों से अन्य कार्यों के वश समस्त दिन रात्रि में उपासना नहीं हो सक्ती, क्योंकि वेद ने उन २ आश्रमों के अन्य कर्त्तव्य भी बतलाये हैं जिन का करना भी आवश्यक है और समय चाहता है। इसलिये रात्री दिन के अर्थ में संकोच विवक्षित समझ कर प्रातः सायं समझना ठीक है॥

भौतिक पक्ष में- (अग्ने) प्रत्यक्ष अग्नि ! (वयम्) हम लोग (दिवे दिवे) प्रतिदिन (दोषावस्तः) सायं प्रातः(धिया) मन लगाकर (नमः) चरु वा आहुति के अन्न को (भरन्तः)[स्रुवादि में] लिये हुये (त्वा) तेरे (उप)समीप (एमसि)आवें॥

अर्थात् मनुष्य को योग्य है कि प्रातः सायं नित्य विधिपूर्वक मन लगा कर श्रद्धा से होम करने को होमसामग्री लिये हुवे अग्निकुण्ड के समीप जावे ॥

शान्तनसूत्र ५ । ११ ॥ अष्टा० ३ । १ । ४ ॥ ६ । १ । १९६ ॥ ६ । १ । १६२ ॥ ७ । १ । ४६ ॥ ८ । १ । २३ ॥ निघं० २ । ७ ॥ १ । ७ ॥ १ । ९ ॥ महाभाष्य ६ । १। १५८ के प्रमाण संस्कृतभाष्य पृष्ठ ३९ से देखो ॥ ऋग्वेद १ । १ । ७) में भी ऐसा ही पाठ है ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी-शुनःशेपेन दृष्टा । छन्दोदेवते पूर्वोक्ते ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २
(१५)जराबोध तद्विविड्ढि विशे विशे यज्ञियाय ।
१ १ ३ १ २ ३ २
स्तोमꣳरुद्राय दृशीकम् ॥ ५ ॥

भावार्थः-(जराबोध) हे स्तुति से बोध्यमान ! (विशे विशे) सर्व प्रजाके हितार्थ (तत्) उस [पूर्व मन्त्रोक्त हमारे मन] को (विविड्ढि) प्राप्त हूजिये अर्थात् ध्यानपथ को प्राप्त हूजिये। "वयम्" यह पूर्व मन्त्र से अनुवृत्ति होती है। हम लोग (यज्ञियाय) तुम योगयज्ञ के हितकर (रुद्राय) न्यायकारी के लिये (दृशीकम्) मनोहर (स्तोमम्) स्तोत्र " करते हैं " ॥

अर्थात् हे परमात्मन् ! हम आपको स्तुतिपूर्वक सम्बोधन करते हुए प्रार्थना करते हैं कि कृपया हमें हमारे हृदय में प्राप्त हूजिये। अर्थात् आप का प्राप्त होना कठिन है जब तक कि हमारी भक्ति से प्रसन्न वरद होकर आप स्वयं हमें प्राप्त न हों। किसी प्रकार तर्कादि के बल से आपका साक्षात्कार नहीं होसक्ता। इसलिये दया करके हमें प्राप्त हूजिये। और हमारे इस ध्यान यज्ञ के आप हितैषी यज्ञस्वामी हैं, परन्तु आप पापियों को दण्ड देकर रुलाने वाले रुद्र हैं, इस कारण आप न्यायकारी के लिये हम लोग दर्शनीय उत्तम स्तुति करते हैं। जिससे आपके कृपाकटाक्ष से समस्त पापों से बचे रहें, आप के दण्डपात्र न बनें ॥

भौतिक पक्ष में-(जराबोध) गुणकीर्त्तनपूर्वक प्रदीप्त किये हुवे! अग्ने! (तत्) उस [अग्निकुण्ड] में (विविड्ढि) आहित हो (यज्ञियाय) यज्ञ के सिद्ध करने वाले (रुद्राय) तीव्र प्रज्वलित के लिये (दृशीकम्) मनोहर (स्तोमम्) वेद-पाठ से स्तुति "करते हैं" यह क्रियापद जोड़ना चाहिये ॥

इस पक्ष में भाव यह है कि हम को प्रत्येक दिन की सायं प्रातः की वेला में पूर्व मन्त्र के अनुसार अग्नि के समीप आकर इस मन्त्र के अनुसार कुण्ड में अग्न्याधान करना चाहिये जिससे अग्नि उस कुण्ड में आहित हो। फिर स्तुतिपूर्वक अर्थात् अग्नि के गुणों का कीर्त्तन करने वाले " उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते॰" इत्यादि (यजुः १५।५४) मन्त्र से प्रदीप्त वा उद्बुद्ध करके समिधाओं में अग्नि प्रविष्ट करना चाहिये। यह अग्नि, यज्ञ का साधने वाला और रुद्र अर्थात् अनाहिताग्नि लोगों को जोकि होम नहीं करते हैं पीड़क प्रतीत होता तथा दुष्ट शत्रुओं का आग्नेयास्त्रादि में प्रयुक्त होकर रुलाने वाला है। हमको योग्य है कि कुण्ड के समीप बैठ कर पुष्कल मनोहर अग्नि देवता वाले मन्त्रों का पाठ करें ॥

निरु॰ १०।८॥ अष्टाध्यायी ३।३।१०४॥ ३।३।९१॥ ६।१।१९८॥ ३।४।८३॥ ८।२।१॥ ८।१।४॥ ८।१२॥ ८।१।३॥ ५।१।७१॥ ६।१।१९७ इत्यादि प्रमाण संस्कृत भाष्य पृष्ठ ४१ से देखिये॥ ऋग्वेद १। ८७।१० में भी ऐसा ही पाठ है ॥५॥

अथ षष्ठी-मेधातिथिना दृष्टा । छन्दो गायत्री ॥

२ ३ १ २ र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१६) प्रति त्यञ्चारुमध्वरं गोपीथाय प्रहूयसे ।
३ १ २ ३ १ २
मरुद्भिरग्न आगहि ॥ ६ ॥

भावार्थः-(अग्ने) हे ज्ञानमय ! तुम (मरुद्भिः) उपासकों से (गोपीथाय) आनन्दलाभ के लिये (त्यम्) उस (चारुम्) रमणीय (अध्वरम्) ज्ञानयज्ञभूमि=हृदयदेश को (प्रति) लक्ष्य करके (प्र हूयसे) ध्यान किये जाते हो । वह तुम (आगहि) प्राप्त होओ ॥

अर्थात् परमात्मा जो ज्ञानमय है उस का, ज्ञानयज्ञ के ऋत्विज् (मरुत्) उपासक लोग, (गोपीथाय) सोमपान के तुल्य परमानन्द की प्राप्ति के लिये ध्यान करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि सुन्दर यज्ञस्थल जो हमारा हृदयदेश है उस में परमात्मा हमें मिले ॥

भौतिक पक्ष में-(अग्ने), तू (चारुम्) सुन्दर (अध्वरम्) यज्ञस्थल (प्रति) को (गोपीथाय) सोमादि रस पीने के लिये (प्रहूयसे) बुलाया जाता है, सो तू (मरुद्भिः) वायुओं के साथ (आगहि) आ ॥

तात्पर्य यह है कि कर्मयज्ञ का साधक अग्नि चारु=सुन्दर सुनिर्मित यज्ञकुण्ड में बुलाया जाता अर्थात् स्थापित किया जाता है और वायुओं के साथ आता है अर्थात् स्थापित होकर प्रदीप्त होते ही अपने मित्र वायुओं को प्रेरित करता है । विज्ञान की रीति से यह नियम है कि अग्नि अपने आस पास के वायु को हलका करके उस में गति उत्पन्न करता है । इसी लिये जहां अग्नि अधिक प्रचण्ड होता है वहां वायु भी वेग से बहने लगता है ॥

निरुक्त १०।३६॥ अष्टाध्यायी ७।२।१०२॥ १।४।८८॥ १।३।८॥ उणादि १।३।१.८॥ निघण्टु ३।१८ के प्रमाण संस्कृत भाष्य पृष्ठ १३ से देखिये । ऐसी ही ऋचा ऋग्वेद १ । १९ । १ में है ॥ ६ ॥

अथ सप्तमी-शुनःशेपेन दृष्टा । छं० दे० उक्ते ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
(१७) अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः ।
३ १ २ ३ १ २
सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥ ७ ॥

भावार्थः-पूर्व मन्त्र से अनुवृत्ति करके "हे अग्ने" प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (अध्वराणाम्) ज्ञानयज्ञों के मध्य में (सम्राजन्तम्) भले प्रकार प्रकाशमान (अग्निम्) पूजनीय उपासनीय (त्वा) आप को (नमोभिः) प्रणामों से (वन्दध्यै) वन्दना करने के लिये "आहुवे" ध्यान करता हूं, यह अगले मन्त्र से सम्बन्ध जोड़ना चाहिये । (वारवन्तम्) बालों वाले (अश्वं, न,) अश्व के समान । जिस प्रकार बाल वाला घोड़ा दंश मशकादि का निवारण करता है इसी प्रकार आप भी हमारे बाधक काम क्रोधादि दुर्गुणों को अपने बालतुल्य सर्वोपकारक सामर्थ्यों से दूर करते हैं ॥

भौतिक पक्ष में-अग्ने ! (अध्वराणाम्) कर्मयज्ञों के मध्य में (सम्राजन्तम्) अच्छे प्रकार प्रदीप्त (त्वा) तुझ (अग्निम्) अग्नि को (नमोभिः) स्थालीपाकादिसहित (वन्दध्यै) स्तुति करने=गुण वर्णन करने के लिये "आहुवे" आधान करता हूं (वारवन्तम्) बालों वाले (अश्वं, न) घोड़े के समान । अर्थात् जिस प्रकार घोड़ा पुच्छादि के बालों से डांस मच्छर आदि को निवृत्त करता है इसी प्रकार अग्नि में होम करने से अग्नि भी अपने चारों ओर से वायु आदि में रहने वाले दोषों वा कीड़ों को निवृत्त करता है । इसलिये यज्ञों के सम्राट् अग्नि को स्थालीपाकादि साथ लेकर कुण्ड में आहित करना चाहिये और साथ में उस अग्नि के गुणों का कीर्त्तन करना चाहिये ॥

अष्टाध्यायी ३।१।१२४॥३।४।९॥ निघं० २।७॥३।१७॥ निरुक्त १।२० के प्रमाण संस्कृत भाष्य पृष्ठ ४५ से देखिये ॥ ऋग्वेद १।२७।१ में भी ऐसा ही पाठ है ॥७॥

अथाऽष्टमी-प्रयोगेण दृष्टा । छं० दे० उक्ते ॥

३ १ २र ३ १ २र

(१८) और्वभृगुवच्छुचिमप्नवानवदाहुवे ।

३ १ २ ३ १ २

अग्निंसमुद्रवाससम् ॥ ८ ॥

भाषार्थः-(और्वभृगुवत्] पृथिवी के उपदेष्टाओं के समान और [अप्नवानवत्] कर्मकाण्डियों के समान, मैं (समुद्रवाससम्) आकाश में व्यापक (शुचिम्) पवित्र (अग्निम्) पूजनीय परमात्मा को (आ-हुवे) आह्वान करता हूं कि वह मुझे प्राप्त हो ॥

भौतिक पक्ष में-(और्वभृगुवत्) पृथिवी के ज्ञानकाण्डियों के समान और (अप्नवानवत्) कर्मकाण्डियों के समान, मैं (समुद्रवाससम्) आकाश में व्यापी [शुचिम्] शोधने वाले (अग्निम्) अग्नि को (आ-हुवे) आधान करता हूं ॥

उत्तम पुरुष दो प्रकार के हैं १-और्वभृगु ज्ञानकाण्डी जो पृथिवी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। ऋग्वेद में "अग्निमीळे पुरोहितं" इत्यादि मन्त्रों से मुख्य करके अग्न्यादि पदार्थों के गुणों का वर्णन किया है। २-अप्नवान जो कर्मकाण्ड में कुशल हैं, "इषेत्वोर्जेत्वा" इत्यादि मन्त्रों से यजुर्वेद में मुख्य करके कर्मकाण्ड यज्ञ जिस का शिल्पविद्या का उपयोग भी बहुत है उस का वर्णन है। तो तात्पर्य यह हुआ कि ऋग्वेदज्ञ ज्ञानकाण्डियों के समान मैं अग्नि के गुणों को जानकर यजुर्वेदज्ञ कर्मकाण्डियों के समान अग्नि को यज्ञकुण्ड में या शिल्पसाधक यन्त्रादि में आधान करता हूं। यह अग्नि शुचि है अर्थात् स्वयं मलिनतादि दोष रहित है और अपने संसर्ग से अन्य पदार्थों के मलिनता आदि दोषों का दूर करने वाला है। और अन्तरिक्ष में वायु के समान व्याप रहा है। जब हम कहीं अग्नि जलाते हैं तो थोड़ी देर में भस्म शेष रह जाता है और अग्नि गतिशील होने से आकाश में फैल जाता है। इस प्रकार अग्नि की अदृश्य अवस्था होजाती है और वह आकाश में व्यापा रहता है ॥

निघण्टु १।१॥३।३८॥५।५॥२।१॥१।३॥ अष्टाध्यायी ३।३।१२१॥ उणादि ४।२१८ के प्रमाण संस्कृत भाष्य पृष्ठ ४७ में देखिये ॥८॥

अथ नवमी-प्रयोगेण ऋषिः। छं० दे० उक्ते ॥

३ १ २ ३ १ २ र ३ १ २ ३ १ २
(१९) अग्निमिन्धानो मनसा धियꣳसचेत मर्त्यः।
३ १ २ ३ १ २
अग्निमिन्धे विवस्वभिः ॥ ९ ॥

भावार्थः-(मर्त्यः) मनुष्य (मनसा) श्रद्धा से (अग्निम्,) इन्धानः परमात्मा का, ध्यान करता हुआ (धियम्) बुद्धि को (सचेत) अच्छेप्रकार प्राप्त हो, इसलिये (विवस्वभिः) सूर्यकिरणों के साथ (अग्निम्) परमेश्वर को (इन्धे) हृदय में विराजित करे॥

अर्थात् परमात्मा की उपासना " तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् " इत्यादि मन्त्रों से करने वाला मनुष्य बुद्धि को प्राप्त करता है । इसलिये उसे चाहिये कि सूर्य की किरणों के साथ ही (प्रातः ही) परमात्मा की उपासना करे । " मर्त्य " पद से यह दिखलाया है कि मनुष्य मरणधर्मा है और मृत्यु से बचना चाहता है तो परमात्मा की उपासना करे । उस का फल मन्त्र में यह सुझाया है कि बुद्धि बढ़ती है । बुद्धि बढ़ने से मिथ्याज्ञान निवृत्त होता है, मिथ्याज्ञान की निवृत्ति से "दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः" न्यायदर्शन सूत्र के अनुसार मोक्ष होने से मर्त्य=मनुष्य का मृत्यु छूट जाता है । " मनसा " पद इस लिये है कि मन से अर्थात् श्रद्धा से उपासना करे, न कि देखाने के लिये दम्भमात्र । "इन्धानः" का ठीक अर्थ "सुलगाता हुआ" है, सो ध्यान करके परमात्मा को हृदय में प्रकाशमान करना ही हृदयकुण्ड में ज्योतिःस्वरूप अग्नि परमात्मा का सुलगाना है । सूर्यकिरणों के साथ प्रातः होते ही तमोगुण वा अन्धकार क्षीण होता है और ज्ञान वा प्रकाश की उन्नति होती है इसलिये उस प्रातःकाल को विशेष करके उपासना का काल ठहराया गया है ॥

भौतिकपक्ष में-(मर्त्यः) मनुष्य (मनसा) जी लगाकर (अग्निम्, इन्धानः) अग्नि को, प्रदीप्त करता हुआ (धियम्) कर्म को (सचेत) संप्राप्त हो, इस लिये (विवस्वभिः) सूर्य की किरणों की सहायता से (अग्निम्) अग्नि को (इन्धे) सुलगावे ॥

इस में मुख्य करके दो बातों का ज्ञानोपदेश है । एक तो यह कि मनुष्य अग्नि को प्रदीप्त करता हुआ कर्म को प्राप्त हो, इस से यह शिक्षा है कि यज्ञ शिल्प युद्ध आदि समस्त कर्त्तव्य कर्मकाण्ड की सिद्धि अग्नि द्वारा होती है । यथार्थ में अग्नि का गुण प्रकाश ही प्राणियों को विशेष करके कर्म में प्रवृत्त करता है, अन्धकार में सब कर्म बन्द होना चाहते हैं, रात्रि में कर्म करने वालों को अग्नि के प्रकाश की आवश्यकता होती है । दूसरी बात यह कि सूर्यकिरणों की सहायता से मनुष्य अग्नि को प्रदीप्त करता है, जब शीतऋतु में सूर्य की किरणें अधिक तीव्र नहीं पड़तीं तब उतना ही अग्नि का बल घटजाता है, ग्रीष्मऋतु में सूर्य की प्रचण्डता के साथ दाहवनादि अग्नि में कैसी तीव्रता होजाती है, जिससे स्पष्ट है कि अग्नि के

प्रदीप्त वा उद्बुद्ध होने के लिये सूर्यकिरणों की सहायता अपेक्षित है। जिसको जान कर मनुष्य नाना प्रकार अग्निसम्बन्धी कार्य सिद्ध कर सुख पासकते हैं॥

निघण्टु ३।९ और ३।१ के प्रमाण संस्कृत भाष्य पृष्ठ ४९ से देखिये॥

तथा तीसरी बात इस मन्त्र में यह भी दिखाई गई है कि होम का काल नित्य प्रातः काल है। क्योंकि इस में कहा गया है कि "सूर्यकिरणों के साथ"॥ ऋग्वेद ८।९१।२२ में केवल "इन्धे" के स्थान में "ईधे" इतना पाठभेद है॥९॥

अथ दशमी-वत्सेन दृष्टा। छं० दे० चक्के॥

२उ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(१०) आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति

३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २

वासरम्। परोयदिध्यते दिवि ॥१०॥

भावार्थः-(आत्, इत्) यह, भी कि (यत्) जो (परः) अतिशयित (दिवि) द्युलोक में (इध्यते) चमकता है [सूर्य से तात्पर्य है] जिसको (वासरम्] दिन भर (पश्यन्ति) देखते हैं, उस में भी (प्रत्नस्य) सनातन (रेतसः) सामर्थ्यवान् परमात्मा की (ज्योतिः) ज्योति है॥

अर्थात् जिस प्रकार सोना चान्दी पीतल आदि पदार्थ सूर्य की ज्योति की सहायता से प्रकाशित होते हैं, इसी प्रकार सूर्य स्वयं भी परमात्मा की ज्योति से प्रकाशित होता है। जैसा कि श्वेताश्वतरोपनिषद्वाक्य (६।१४) संस्कृतभाष्य पृष्ठ ५१ में लिख आये हैं कि "न वहां सूर्य चमकता है, न चन्द्र, तारे, न ये बिजुलियां चमकतीं, फिर यह अग्नि कहां। किन्तु उसी की चमक से लौटे हुए प्रकाश से सब कुछ अनुप्रकाशित है, उसी की चमक से यह सब चमकता है"॥

भौतिक पक्ष में-(आत्, इत) यह, भी कि (यत्) जो (परः) अत्यन्त (दिवि) आकाश में (इध्यते) चमकता है [सूर्य], जिसे (वासरम्) दिन भर (पश्यन्ति) देखते हैं, उसमें भी (प्रत्नस्य) नित्यस्वरूप (रेतसः) वीर्यवान् कारणाग्नि का ही (ज्योतिः) प्रकाश है॥

अर्थात् कारण रूप अग्नि तत्त्व जो नित्य है उसी से सूर्यादि प्रकाशक लोक भी प्रकाशित हैं। इसमें एक बात यह निकलती है कि सूर्य का प्रकाश

अत्यन्त है, दूसरी यह कि सूर्य से दिन बनता है, तीसरी यह कि कारणाग्नि से सूर्य बना है ॥

निघं० ३।२७॥ १९॥ उणादि ४।२०२ के प्रमाण संस्कृतभाष्य पृष्ठ ५१ में देखिये । ऋग्वेद ८।६।३० में "दिवि" के स्थान में "दिवा" यह पाठभेद है ॥१०॥

यह दूसरी दशति समाप्त हुई ॥२॥

अथ तृतीया दशतिस्तत्र प्रथमा प्रयोगेण दृष्टा । छन्दोदेवते प्रकृते ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

(२१) अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् ।

२ ३ २ ३ १ २

अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥ १ ॥

अब तीसरी दशति का आरम्भ किया जाता है ॥

भावार्थः-(वः) तुम्हारे (अध्वराणाम्) ध्यानयज्ञों को (पुरूतमम्) अतिशयित (वृधन्तम्) बढ़ाते हुवे(नप्त्रे)बन्धुतुल्यसहायक (सहस्वते) बलवान् (अग्निम्) तेजोमय परमात्मा को (अच्छ) तुम अच्छे प्रकार उपासित करो ॥

परमात्मा तुम्हारे ध्यान का सहायक है और बढ़ाने वाला है तथा बल का धारण करने वाला और बल का दाता है, तुम उस की अच्छे प्रकार उपासना करो ॥

भौतिक पक्ष में-(वः) तुम्हारे (अध्वराणाम्) कर्मयज्ञों को (पुरूतमम्) अतिशयित (वृधन्तम्) वृद्धि करते हुवे (नप्त्रे) बन्धुतुल्य सहायक (सहस्वते) बलवान् (अग्निम्) अग्नि को (अच्छ) भले प्रकार प्रयुक्त करो ॥

अर्थात् अग्नि तुम्हारे समस्त देवयजन शिल्प युद्धादि क्रियाकलाप की अत्यन्त सहायता करने वाला है, वह तुम्हारा बन्धु के तुल्य सहायक है। जिस प्रकार बान्धव लोग अपने कार्यों की सहायता करते हैं, इसी प्रकार अग्नि भी सहस्रों भाइयों का काम अकेला ही करता है । मेघमण्डलादि दूरवर्ती स्थानों में तुम्हारे इष्टसाधक यज्ञ को फैलाता है, शिल्पविद्या में प्रयुक्त होकर अनेकशःकार्यों को साधता,तथा युद्धादि में आग्नेयास्त्रादि द्वारा सहस्रों लक्षों मनुष्यों का काम करता है । इस लिये " अच्छे प्रकार " पूर्ण ध्यान विचार तत्परता से उसके प्रयोग करने में प्रवृत्त होओ ॥

अष्टाध्यायी ६ । ३ । १३६ उणादि २८५ के प्रमाण संस्कृत भाष्य पृष्ठ ५३ में देखिये ॥ ऐसी ही ऋचा ऋ० ८। ९१ । ७ में है ॥१॥

अथ द्वितीया—भरद्वाजेन दृष्टा । छं० दे० नक्के ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ १ २
(२२) अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यꣳसद्विश्वं न्यत्रिणम् ।

३ १ २ ३ ३
अग्निर्नो वꣳसते रयिम् ॥ २ ॥

भावार्थः—(अग्निः) तेजोमय न्यायकारी (तिग्मेन) वज्रतुल्य तीक्ष्ण (शोचिषा) तेज से (विश्वम्) सम्पूर्ण (अत्रिणम्) दुष्ट हिंसक शत्रु को (नि-यंसत्) निगृहीत करता है (अग्निः) वही (नः) हमारे लिये (रयिम्) धनादि को (वंसते) बांटता है ॥

परमात्मा न्यायकारी है इस लिये वह परपीडक दुष्टों को दण्ड देता और धर्मात्माओं को उन के कर्मानुसार धनादि पदार्थ बांटता है ॥

भौतिक पक्ष में(अग्निः) तेजोमय अग्नि (तिग्मेन) तीक्ष्ण (शोचिषा) तेज से (विश्वम्) सब (अत्रिणम्) हिंसक शत्रु को (नि–यंसत्) निगृहीत करता है (अग्निः) वही, तब (नः) हमारे लिये (रयिम्) राज्यादि धन को (वंसते) बांटता है ॥

मनुष्यों को जानना चाहिये कि अग्नि में तीव्रता है, इसलिये उस से आग्नेयादि अस्त्र शस्त्र बन सक्ते हैं, उन से शत्रुओं का निग्रह हो सकता है, इसलिये उसे प्रयुक्त करके अपना जय और परपीडक दुष्ट दस्यु आदि का पराजय करके अपने २ उचित परिश्रमानुसार धनादि पदार्थ बांट लेने चाहियें । इस मन्त्र में ३ बातों की मुख्य शिक्षा है । एक तो यह कि अग्नि की तीव्रता का ज्ञान प्राप्त करो और उस से अस्त्रादि बनाओ, दूसरी यह कि संसार के सभ्य परोपकारक नीतिमान् पुरुषों का विरोध नहीं करना किन्तु दुष्ट हिंसक परपीडक शत्रु का ही निग्रह करना, क्योंकि अपने सुखभोग के लिये पराया राज्यादि धन हरण नहीं करना किन्तु परायी रक्षार्थ, तीसरी बात यह है कि इस प्रकार विजय द्वारा प्राप्त हुए धनादि का योग्यतानुसार बांट करना ॥

निघण्टु २।२०॥३।१३॥२।१०॥ उणादि १।१४६॥२।१०८॥४।६८ के प्रमाण सं-स्कृत भाष्य पृष्ठ ५४।५५में देखिये ॥ ऋग्वेद ६।१६।२८ में-यंसत्=यासत्, वंसते=वनते, इतना पाठभेद है ॥ २ ॥

अथ तृतीया—वामदेवेन दृष्टा । छ० दे० उक्ते० ॥

१ २ ३ २३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र

(२३) अग्ने मृडमहाँअस्यय आ देवयुं जनम् ।

३१ २ ३ २ ३ १ २

इयेथ बर्हिरासदम् ॥ ३ ॥

भावार्थः—(अग्ने) पूजनीय ईश्वर ! हम को (मृड) सुख दो (महान्, असि) तुम महान् हो और (देवयुम्, जनम्) देवयजन चाहने वाले, मनुष्य को (अयः) प्राप्त होने वाले हो (बर्हिः) यज्ञस्थल में (आ—सदम्) विराजने को (आ—इयेथ) प्राप्त होते हो ॥

परमात्मा अपने धर्मात्मा भक्त उपासकों को सुख देता है और प्राप्त होता है जिससे परमानन्ददायक है। परन्तु देवयु अर्थात् देव परमात्मा का यजन पूजन चाहने वाले को ही, न कि अभक्त अनुपासक नास्तिकादि को। वह महान् है। यद्यपि वह सर्वान्तर्यामी होने और सर्वगत होने से सब ही के हृदय में विराजता है परन्तु देवयु पुरुष के ही हृदय में उस को मिलता है, अन्य साधारण को नहीं ॥

भौतिक पक्ष में—(अग्ने) अग्ने ! (मृड) सुख दो (महान्, असि) तू महान् है (देवयुं, जनम्) वाय्वादि देवों के गुण खोजने की इच्छा वाले, पुरुष को (अयः) प्राप्त होने वाले हो (बर्हिः) यज्ञ और शिल्पस्थल में (आ—सदम्) स्थापित होने को (आ—इयेथ) प्राप्त होते हो ॥

आशय यह है कि यदि अग्नि को शिल्पी लोग और ऋत्विक्लोग नाना विध क्रियाकलाप तथा यज्ञ में अच्छे प्रकार प्रयुक्त करें तो " सुखदायक " है, परन्तु साधारण लोग उससे सुख नहीं प्राप्त करसक्ते हैं, न उनके इन गुणों को पा सकते हैं, किन्तु " देवयु " लोग जो वाय्वादि पदार्थविद्या की खोजमें रहते हैं वे ही प्राप्त होते हैं। वह अग्नि अपने गुणों से "महान्" है, उसे " यज्ञ और शिल्प कार्य्यालय स्थल में" स्थापित करना और सब प्रकार से प्राप्त करना चाहिये ॥

निघं० २।१४॥३।१८॥ अष्टाध्यायी ३।४।६ के प्रमाण संस्कृत भाष्य पृष्ठ ५३ में देखिये ॥ ऋग्वेद (५।९।१) में " महांअसि यद्देवादेवयुम् " इतना पाठभेद है ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी-वसिष्ठेन दृष्टा । छ० दे० उक्ते ॥

२ ३ १२ ३ १ २३ १२
(२४) अग्ने रक्षाणो अंहसः प्रति स्म देव

३२ १२ ३१२
रीषतः । तपिष्ठैरजरोदह॥४॥

भावार्थः-(अग्ने) सदुपदेशकेश्वर ! (नः) हमारी (रक्ष) रक्षा करो (देव) हे परमात्मन् ! (अजरः) आप अजर हैं, (अंहसः) पापियों और विशेषतः (रीषतः) हिंसकों को (तपिष्ठैः) तीव्र तेजों से (प्रति, दह, स्म) भस्म करो ॥

भौतिक पक्ष में-(अग्ने) अग्ने ! (नः) हमारी (रक्ष) रक्षा कर और (देव) दिव्यगुणयुक्त ! (अजरः) शिथिलतारहित तू, (अंहसः) अन्यायी (रीषतः) हिंसकों को (तपिष्ठैः) अत्यन्त तेजस्वी अस्त्रों से (प्रति,दह, स्म) भस्म कर ॥

अर्थात् अग्नि दिव्यगुणयुक्त देव और शिथिलतारहित अजर होता हुआ उस से सिद्ध हुये अस्त्रों द्वारा अन्यायियों के दमन और धर्मात्माओं की रक्षा में प्रयुक्त करना चाहिये ॥

अष्टाध्यायी ६।३।१३३ ॥ ६।१।१३५॥ ८।४।२६॥ उणादि ४।२१३॥ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में ऊपर देखिये ऋग्वेद ७।१५।१३ में "स्म" के स्थान में " उत " इतना पाठभेद है ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी-भरद्वाजेन दृष्टा । छ० दे० उक्ते ॥

१ २ ३ १२ २२ ३ १ २
(२५) अग्ने युङ्क्ष्वाहि ये तवाश्वासो देव साधवः ।

३१ २३ १ २
अरं वहन्त्याशवः ॥ ५ ॥

भावार्थः-(देव) द्योतमान-प्रकाशमान !(अग्ने) पूजनीयेश्वर ! (ये, तव) जो, तेरे (साधवः) साधने वाले(आशवः) शीघ्र करने वाले (अश्वासः) व्यापक गुण हैं, उन्हें (हि) शीघ्र (युङ्क्ष्व) युक्त कर, वे गुण (अरम्) भरपूर (वहन्ति) पहुंचाते हैं ॥

जिस प्रकार कोई राजा आदि वेग वाले अश्वादि पर चढ़कर तत्काल अपनी प्रजा की रक्षार्थ पहुंचता है, इसी प्रकार परमात्मा से इस मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि आप कृपा करके उन गुणों को जो साधने वाले हैं, जिन से आप अपने कर्त्तव्य समस्त कार्यों को सिद्ध करते हैं, और तत्क्षण ही उन उन कार्यों को सिद्ध करने को समर्थ हैं, और अश्वासः गो=व्यापक हैं। अर्थात् राजा आदि तो यानादि द्वारा प्रजा की रक्षार्थ पहुंचें इतने कुछ देर भी लगे परन्तु आप सर्वव्यापक हैं, साथ ही आप के वे गुण भी गुणी के साथ २ व्यापक हैं, इसलिये प्रतिक्षण आप अपने गुणों सहित सर्वत्र पहुंचे पहुंचाये हैं। इस लिये आपको शरणागत धर्मात्मा भक्तों की रक्षा में देरी करने का कारण नहीं॥

भौतिकपक्ष में-(देव) दिव्यशक्तियुक्त! विद्युत् रूप! (अग्ने) अग्ने! (ये, तव) जो, तेरे (आशवः) शीघ्रगामी (साधवः) हितसाधक (अश्वासः) तीव्र गुण हैं उन्हें (हि) शीघ्र (युङ्क्ष्व) प्रयुक्त कर, वे तुझ को (अरम्) भरपूर (वहन्ति) वहाते पहुंचाते अर्थात् भौतिकाग्नि में दिव्यगुण हैं इसलिये वह देव है, वे गुण "साधवः" जगत् के कार्यसाधक और "अश्वासः" घोड़ों के समान तीव्रगामी हैं तथा "आशु=" शीघ्र काम करने वाले हैं, इन गुणों से अग्नि सर्वत्र बड़ी शीघ्रता से पहुंच सक्ता है, इसलिये उन को यथावत् जान कर शिल्प यज्ञ और संग्राम आदि में भले प्रकार शीघ्रता से प्रयुक्त करना चाहिये। जिस से नालिक (बन्दूक) आदि द्वारा वे गुण शीघ्र अपना कार्य आरम्भ करें॥

निघण्टु २।१५ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में ऊपर देखिये॥ ऋग्वेद ६।१६।४३ में "युङ्क्ष्व" के स्थान में "युक्ष्व" इतना भेद है॥५॥

अथ षष्ठी--वसिष्ठेन दृष्टा। छ० दे० उक्ते।

१ २ ३ १ २ २ २

(२) नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं धीमहे वयम्।

३ १ २

सुवीरमग्न आहुत॥ ६॥

भावार्थः-(नक्ष्य) हे शरण्य! (विश्पते) हे प्रजापते! (आहुत) हे भक्तों से आह्वान किये हुवे! (अग्ने) परमात्मन्! (वयम्) हम लोग (सुवीरम्) श्रेष्ठ भक्त पुरुषों वाले (द्युमन्तम्) प्रकाशस्वरूप (त्वा) आपका (नि-धीमहे) निरन्तर-ध्यान करते हैं॥

भौतिक पक्ष में-(नक्ष्य) सेवनीय। (विश्पते) प्रजापालक। (आ-हुत) सब ओर से जिस में होम किया जावे ऐसे (अग्ने), (वयम्) हम (त्वा) तुझे (नि-धीमहे) नितराम्-आधान करते हैं॥

आशय यह है कि अग्नि सेवनयोग्य है, यज्ञ और शिल्पद्वारा प्रजा का पालक है, और सब ओर से होम करने योग्य तथा शिल्प में उपयोग लेने योग्य है, द्युमान्=प्रकाशगुणविशिष्ट है, जो उस को होम या नानाविध शिल्पक्रिया में प्रयुक्त करते हैं वे सुन्दर वीर होते हैं इस लिये उस का नीप में स्थापन करके चारों ओर बैठकर होम करना चाहिये तथा शिल्पक्रियाद्वारा अनेक प्रकार से उपयोग लेना चाहिये॥

निघं० १।६।२।१८॥ के प्रमाण संस्कृतभाष्य पृष्ठ ६२ में देखिये॥ ऋ० ३।१५।३ में "धीमहि वयम्" के स्थान में "देव धीमहि" इतना पाठान्तर है॥६॥

अथ सप्तमी-विरूपेण दृष्टा। छ० दे० उक्ते॥

३ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र ३ २ ३ २

(२७) अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्।

३ १ २र

अपाᳬरेताᳬसि जिन्वति॥ ७॥

भावार्थः-(अयम्) यह (अग्निः) प्रकाशमान परमात्मा (मूर्द्धा) सर्वोच्च है और (दिवः, ककुत्) प्रकाश की, टाट है। जिस प्रकार बैल की टाट सब अङ्गों से ऊंची होती है इसी प्रकार परमात्मा का प्रकाश अन्य सब के प्रकाशों से उत्तम है। (पृथिव्याः) पृथिव्यादि लोकों का (पतिः) पालक है और (अपाम्) कर्मों के (रेताᳬसि) बीजों को (जिन्वति) जानता है॥

सर्वोच्च सर्वोत्तम प्रकाशस्वरूप परमात्मा सब के कर्मों का साक्षी और फलप्रदाता तथा ज्ञाता है॥

भौतिक पक्ष में-(अयम्, अग्निः) यह, अग्नि (मूर्द्धा) ऊर्ध्वगमनशील होने से उच्च और (दिवः ककुत्) प्रकाश की टाट है। तथा (पृथिव्याः) पृथिव्यादि लोकों का पालक है और (अपाम्) अन्तरिक्ष के मध्य में (रेताᳬसि) जलों को (जिन्वति) पहुंचाता है॥

अर्थात् अग्नि सदा ऊपर को जाने वाला, वाय्वादि देवों का मस्तक के समान

है, और प्रकाश का उत्तुङ्ग पुञ्ज है, तथा शिल्पक्रियाकलाप यज्ञ आदि द्वारा पृथिव्यादिलोकस्थ प्राणिवर्ग का पति है, और यही अत्यन्त नीचे स्थान समुद्र के जल अकूपार अन्तरिक्ष के मध्य में पहुंचाय मेघ बनाय वर्षाता है ॥

निघं० २ । १ ॥ १ । ३ ॥ २ । १४ ॥ १ । १२ ॥ के प्रमाण संस्कृत भाष्य पृष्ठ ६४ में देखिये ॥ ऋग्वेद (८।४४।१६) में भी ऐसा ही पाठ है ॥ ७ ॥

अथाऽष्टमी-शुनःशेपेन दृष्टा । छ० दे० उक्ते ॥

३ २ ३ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
(२८) इममू षु त्वमस्माकꣳ सनिं गायत्रं नव्याꣳसम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २
अग्ने देवेषु प्रवोचः ॥ ८ ॥

भावार्थः-(अग्ने) ज्ञानप्रद ! (अस्माकम्, इमम्, नव्याꣳसम्, सनिम्) हमारे, इस, नवीनतर, हव्य को (उ) और (देवेषु) देवों के विषय में (गायत्रम्) गायत्र्यादि छन्दोविशिष्ट मन्त्रपाठ को (त्वम्) आप (सु-प्र-वोचः) भले प्रकार उपदेश करते हैं । हे परमात्मन् ! आप बड़े दयालु हैं जो कि हमारे लिये हव्यदान और साथ में मन्त्रपाठ के गान का उपदेश करते हैं, जो हमारे कल्याण का हेतु है ॥

भौतिकपक्ष में-(अग्ने) अग्ने ! (त्वम्) तू (अस्माकम्, इमम्, नव्याꣳसम्, सनिम्) हमारे, इस, नवीनतर, हव्य को (उ) और (देवेषु) देवों के विषय में (गायत्रम्) मन्त्रगान को (सु-प्र-वोचः) भले प्रकार प्राप्त कराता और बोलता है ॥

अग्नि ही आहवनीयादि रूप से हमारे उत्तम २ नवीन (ताज़े) हव्य पदार्थों को देवतों में पहुंचाता है । और अग्नि ही वाणी रूप होकर मन्त्रपाठ करता है । अग्नि के वाणीरूप होने में १ दशति के ६ मन्त्रभाष्य में प्रमाण देखिये ॥

अष्टाध्यायी ६।३।१३६॥३।२।२७॥८।३।१०७॥ ३।४।६॥३।१।५२॥७।४।२० के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद १।२७।४ में भी ऐसा ही पाठ है ॥८॥

अथ नवमी-गोपवनेन दृष्टा । छ० दे० उक्ते ॥

१ २ ३ १ ३ १र २र
(२९) तं त्वा गोपवनो गिरा जनिष्ठदग्ने अङ्गिरः ।
१ २ ३ १ २
स पावक श्रुधी हवम् ॥ ९ ॥

भाष्यार्थः-(अग्ने) ज्ञानसागर ! (तम्) पूर्वोक्त (त्वा) आपको (गोपवनः) वाणी का पवित्र रखने वाला (गिरा) वाणी से (जनिष्ठत्) प्रकट करता है, अर्थात् वाणी से स्तुति करता है कि (अङ्गिरः) हे ज्ञाननिधे ! (पावक) हे पवित्र कारक ! पतितपावन ! (सः) ऐसे तुम (हवम्) स्तोत्र को (श्रुधि) अङ्गीकार करो॥

पवित्रवाणी वाला पुरुष परमात्मा से प्रार्थना करे कि दयानिधे ! मेरी प्रार्थना स्तुति को अङ्गीकार कीजिये ॥

भौतिक पक्ष में-(अग्ने) अग्ने ! (तम्) पूर्वोक्त (त्वा) तुझ को (गोपवनः) पवित्र वाणी वाला उद्गाता (गिरा) वाणी से (जनिष्ठत्) प्रकट करता है कि (अङ्गिरः) अङ्गारों वाले दहकते ! (पावक) शोधने वाले ! (सः) इस प्रकार के तुम (हवम्) गुणवर्णन को (श्रुधि) अङ्गीकार करो ॥

संसार भर की पवित्रता चाहने वाले को योग्य है कि प्रथम स्वयं पवित्र होकर अग्नि का आधान और गुणवर्णन वाले मन्त्रों का पाठ करे । ऐसा करने से दहकता हुआ शोधक अग्नि उस के वर्णन को अङ्गीकार करता है । अर्थात् उस के जाने तथा वर्णन किये अनुसार काम देने लगता है । खोजने से मिलता है ॥

मन्त्र में गोपवन शब्द देकर कोई लोग शङ्का करते हैं कि इस के द्रष्टा का नाम भी गोपवन है इसलिये यह मन्त्र उसी ने रच लिया है । इस का समाधान १ दशति के आठवें मन्त्र के भाष्य में कर चुके हैं ॥

निघं० १ । ११ ॥ ५ । ५ ॥ उणादि २।६७॥ अष्टाध्यायी ३।६।१३७॥ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ८।६३।११ में "तम्" के स्थान में "यम्" पाठ है ॥ ९ ॥

अथ दशमी-कामदेवेन दृष्टा । छ० दे० चक्ते ॥

३ २ १ २ ३ २ ३ २ ३ १
(३०) परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् ।
२ ३ १ २ ३ १ २
दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ १० ॥

भावार्थः-(वाजपतिः) अन्नपति अन्नदाता (कविः) बुद्धिमान् (अग्निः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा (दाशुषे) दानी के लिये (हव्यानि) ग्रहणयोग्य (रत्नानि) धनों को (दधत्) देता हुआ (परि-अक्रमीत्) सर्वत्र व्याप रहा है॥

यथार्थ में परमात्मा ही सब का अन्नदाता है और अनन्त ज्ञानवान् तथा प्रकाशवान् है। वह दानशीलों को अपनी व्यापकता से कर्मानुसार धनादि पदार्थ देता है॥

भौतिक पक्ष में-(वाजपतिः) अन्न का पालक (कविः) बुद्धितत्त्ववाला (अग्निः) सूर्यरूप अग्नि (दाशुषे) यज्ञ करने वाले के लिये (हव्यानि) हवनयोग्य (रत्नानि) धनों को (दधत्) देता हुआ (परि-अक्रमीत्) सब ओर व्यापता है॥

सूर्यरूप अग्नि वृष्टिद्वारा अन्न का पति है और प्रकाशद्वारा तमोगुण की निवृत्ति और बुद्धितत्त्व की वृद्धि करने से बुद्धितत्त्व वाला है। इसलिये उस सूर्य के द्वारा जगत् के उपकारार्थ हवनयोग्य अनेक रमणीय पदार्थों की प्राप्ति के लिये मनुष्यों को हवनशील होना चाहिये॥

निघं० २।७॥ ३।१५ ॥ २।१०॥ ३।२० के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऐसा ही पाठ ऋग्वेद ४।१५।३ में है॥ १०॥

अथैकादशी-कण्वेण दृष्टा। सौरोऽग्निर्देवता। गायत्री छन्दः।

२३ २ ३१२ ३१ २ ३१२
(३१) उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
३१र २र३ १ २
दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ ११॥

भावार्थः-(उ) प्रश्न। हम परमात्मा को कैसे जानें? उत्तर-(त्यम्) उस (जातवेदसम्) वेदों का प्रकाश करने वाले (देवम्) दिव्यगुणी (सूर्यम्) चराऽचरात्मा परमात्मा को (केतवः) प्रज्ञान अर्थात् उस के ज्ञानादि गुण (विश्वाय, दृशे) सब के, देखने के लिये (उत्-वहन्ति) जताते हैं॥

जिस प्रकार सूर्य अपने किरणों से जाना जाता है इसी प्रकार दिव्य गुणों वाला चराऽचर का आत्मा परमात्मा अपने चेतनत्वादि गुणों से सब जगत् को अपना ज्ञान कराता है अर्थात् सृष्टि को ज्ञानपूर्वक ज्ञानी प्रज्ञावान् ने रचा है। जड़कृत रचना सुडौल नहीं होती। इत्यादि प्रकार से परमात्मा

का ज्ञान उस के गुणों से होता है । इसी प्रकार से वेदमन्त्र उन प्रकरणों का मूल हैं जो दर्शनशास्त्रों में परमात्मा की सिद्धि के विषय तर्कवाद है ॥

भौतिकपक्ष में-(अ) प्रश्न । इतनी दूर का सूर्य हम तक कैसे व्यापता है? उत्तर-(त्यम्) उस[पूर्वमन्त्र में वर्णित] (जातवेदसम्) ज्ञान के प्रकाशक अन्धियारे को मिटाकर अज्ञान के नाशक (देवम्) दिव्य आश्चर्यगुणयुक्त (सूर्यम्) सूर्य को (केतवः) उस की किरणें (विश्वाय) सब के (दृशे) देखने के लिये (उत्-वहन्ति) पहुंचाती हैं ॥

अर्थात् सूर्य अपनी किरणों द्वारा हमें व्यापता, प्रकाश करता, जगा कर ज्ञान को उत्तेजित करता और सर्व वस्तुओं को दिखाता है ॥

निघण्टु ५।१॥३।९॥ ५।६ तथा निरुक्त १२।१५ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद १।५०।१ में भी ऐसा ही पाठ है ॥ इस ऋचा का देवता सूर्य=अग्नि है । इस पर्व का नाम "आग्नेय" है इस लिये अन्य देवता भी इसी प्रसङ्ग का समझना चाहिये ॥ ११ ॥

अथ द्वादशी-मेधातिथिना दृष्टा । छ० दे० उक्ते

३ २ ३ १२ ३२ ३ १ २ ३ २

(१२) कविमग्निमुपस्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे ।

३ १ २ ३ १ २

देवममीवचातनम् ॥ १२ ॥

भावार्थः-(कविम्) सर्वज्ञ (सत्यधर्माणम्) सत्यधर्मी (देवम्) प्रकाशक (अमीवचातनम्) रोगविनाशक (अग्निम्) तेजस्वी परमात्मा की (अध्वरे) ब्रह्मयज्ञादि में (उप-स्तुहि) उपासना और स्तुति कर ॥

भौतिक पक्ष में-(कविम्) जगाने वाले (सत्यधर्माणम्) नियम से न हिगने वाले (देवम्) प्रकाशयुक्त (अमीवचातनम्) रोगनिवारक (अग्निम्) सूर्याग्नि का (अध्वरे) विज्ञानकाण्ड में (उप-स्तुहि) वर्णन कर ॥

मनुष्य को विहित है कि वह विज्ञान (साइंस) के प्रसंग में सूर्य की स्तुति करे कि सूर्य जगाने वाला है क्योंकि उसके उदय से अन्धियारा मिटता, आनन्द होता, निद्रा और तमोगुण निवृत्त होता है, जिससे यह कहा जाता है कि बुद्धि का प्रेरक होने से कवि अर्थात् मेधावी है। वह सत्यधर्मा है, क्योंकि उसके उदय अस्त नियमबद्ध होते हैं। वह प्रकाशक होने से देव है। उसके प्रकाश के साथ गरमी फैलती है, गरमी से वायु बहता है, वायु

बहने से सहन निवृत्त होती है और महन रोगों की उत्पादक है, वस सहन का निवारक होने से सूर्य रोगनिवारक है॥ ऐसा ही पाठ ऋग्वेद १।१२। ७ में आया है ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशी-सिन्धुद्वीपेनाऽम्बरीषेण त्रितेनाऽप्सेन वा दृष्टा ।
ऋग्वेदे आपोदेवता अत्र तु प्रकरणादनुक्तोऽप्यग्निरेव ।
गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(३३) शन्नोदेवीरभिष्टये शन्नोभवन्तु पीतये ।
२उ ३ १ २
शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥१३॥

भावार्थः-(देवीः) परमात्मा की दिव्य शक्तियें (नः) हमारे (अभिष्टये) मन चाहे आनन्द के लिये (शम्) सुखदात्री (भवन्तु) होवें। (नः) हमारी (पीतये) तृप्ति के लिये (शम्) सुखदा होवें। किन्तु (नः) हमारे लिये (शंयोः) अभीष्ट सुख को (अभि-स्रवन्तु) वर्षावें ॥

परमात्मा की स्तुति उपासना का फलरूप आशिष इस मन्त्र में मांगा गया है कि उसकी कृपा से हमें सब प्रकार सदा सुख मिले ॥

भौतिक पक्ष में भी-(देवीः) अग्नि आदि की दिव्यशक्तियां जानी हुई हम को सब प्रकार सदा सुखदायिनी हो सक्ती हैं। इसके लिये हम को सूर्यादि देवों की क्या २ शक्ति=सामर्थ्य है इस बात के जानने के लिये उस २ पदार्थ के गुणों का वर्णन यजन-मिलान करना चाहिये॥ ऋग्वेद १०।९।४ में "शन्नो" के स्थान में "आपो" ऐसा पाठ है और तदनुसार "आपोदेवताः" है परन्तु यहां पाठ में "आपः" न होने से तथा आग्नेयपर्व के प्रकरण से अग्नि देवता की ही अनुवृत्ति जाननी चाहिये ॥

निघं० ३।६॥ ५।६॥ ४।१ अष्टाध्यायी ३।३।९५॥ ६।४। ६५-६६ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशी-उशनसा दृष्टा। अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १र २र ३ १ २
(३४) कस्य नूनं परीणसि धियो जिन्वसि सत्पते ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
गोपाता यस्य ते गिरः ॥१४॥

भावार्थः-(सत्पते) हे भक्तों के रक्षक ! (यस्य) जिस की (गिरः) वाणी (ते) आप के विषय में (गोपाताः) अमृत भरी हैं, उसके लिये (कस्य) सुख की (परीणसि) बहुत सी (धियः) बुद्धियों को (जिन्वसि) भरपूर कर देते हो ॥

अर्थात् जो मनुष्य परमात्मा के भक्त हैं और अमृत भरी वाणी से परमात्मा का गुणगान करते हैं, उन्हें वह भक्तपरिपालक जगदीश सुख देने वाली बुद्धि से भरपूर कर देते हैं ॥

भौतिक पक्ष में-(सत्पते) यज्ञकर्त्ताओं के पालक ! अग्ने ! (यस्य) जिसकी (गिरः) वाणी (ते) तेरे विषय (गोपाताः) सोमादि ओषधियों का विभाग करने वाली हैं उस को तू (कस्य) सुख की (परीणसि) बहुतसी (धियः) बुद्धियों को (जिन्वसि) प्राप्त कर देता है ॥

अर्थात् अग्नि यज्ञकर्त्ताओं का पालक रक्षक है,वह उस मनुष्य के बुद्धितत्त्व को बढ़ाता है और पुष्ट शुद्ध करता है जो सोमादि का होम और अग्न्यादि देवों के गुणवर्णनपूर्वक यज्ञ करता है । क्योंकि अग्नि में होम करने से वायु आदि की शुद्धि, उस से अन्नादि भोज्य पेय पदार्थों का शोधन, उससे शरीरस्थ सांख्यप्रतिपादित बुद्धितत्त्व का परिशोधन वृद्धि और आप्यायन होता है । यह जानना सुगम ही है ॥

निघण्टु ३ ६॥ ३।१।३ ९ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ८।७३।७ में तो परीणसि=परीणसः । सत्पते=दम्पते, पाठ है ॥ १४ ॥

* यह तीसरी दशति पूर्ण हुई ॥ ३ ॥ *

अथ चतुर्थी दशतिस्तत्र प्रथमा-शंयुना दृष्टा । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

३ १ २ ३ १२३१ २ ३ १२ १२
(३५) यज्ञा यज्ञा वो अग्नये गिरा गिरा च दक्षसे । प्र प्र

२२३१२ ३१२ ३२३१२ २२
वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शꣳसिषम् ॥१॥

भावार्थः-हे [मनुष्यो !] (वयम्) हम (वः) तुम्हारे (यज्ञा यज्ञा) यज्ञ यज्ञ में और (गिरा गिरा च) वाणी वाणी २ [ऋचा ऋचा] से (अग्नये) ज्ञानस्वरूप (दक्षसे) महान् (अमृतम्) अमर (जातवेदसम्) वेदप्रकाशक [परमात्मा अपने आप] को (प्रियं, मित्रं न) प्यारे, मित्र के समान (प्र, प्र,

शंसिषम्) उपदेश करते हैं ॥

परमात्मा उपदेश करते हैं कि हम तुम्हारे समस्त ज्ञानयज्ञों में समस्त वेदमन्त्रों से तुम्हें अपना उपदेश करते हैं अर्थात् अपने ज्ञानस्वरूप, महान्, अमर, वेदप्रकाशक, ईश्वरभाव को बताते हैं ॥

भौतिकपक्षमें-(वयम्) हम (वः) तुम्हारे (यज्ञा यज्ञा) यज्ञ २ में (गिरा गिरा,च) और मन्त्र २ से (इससे) बड़े भारी (अमृतम्) देव (जातवेदसम्) बुद्धिप्रसारक (अग्नये) अग्नि को (प्रियं, मित्रं न) प्रिय, मित्र के समान (प्र प्र, शंसिषम्) बताते हैं ॥

अर्थात् परमात्मा बताते हैं कि हे मनुष्यो! तुम्हारे यज्ञ २ में हम ऋचा २ से तुम को यह बताते हैं कि अग्नि महान्, देव, बुद्धिप्रसारक है, उस से उपयोग लो, यह तुम्हारा हितसाधक मित्र के समान है ॥

अष्टाध्यायी ८।१।६ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ६।४८।१ में भी ऐसा ही पाठ है ॥ १ ॥

अथ द्वितीया-भर्गेण ऋषिः । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

३ १ २ ३ १२ ३ २ २ ३ १ २ ३ २
(२६)पाहि नो अग्न एकया पाह्यूऽ३त द्वितीयया । पाहि
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
गीर्भिस्तिसृभिरूर्जांपते पाहि चतसृभिर्वसो ॥२॥

भावार्थः-(ऊर्जांपते) हे बलपते ! (वसो) हे अन्तर्यामिन् ! (अग्ने) पूजनीयेश्वर ! (एकया) ऋग्वेद के उपदेश से (नः) हमारी (पाहि) रक्षा करो । (उत) और (द्वितीयया) यजुर्वेद की वाणी से (पाहि) रक्षा करो। (तिसृभिः, गीर्भिः) ऋग्यजुःसामरूप त्रयी की वाणीसे (पाहि) रक्षा करो। (चतसृभिः) चारों [वेदों] से (पाहि) रक्षा करो ॥

क्योंकि मनुष्यों की रक्षा जिस प्रकार वेदों के उपदेश से हो सकती है उस प्रकार की राजा आदि भी नहीं कर सकते । इसलिये मनुष्यों को सदा परमेश्वर से प्रार्थना करनी चाहिये कि वह चारों वेदों के सत्योपदेश से हमारी रक्षा करे ॥

भौतिकपक्ष में-(ऊर्जांपते) रसादि के पालक ! (वसो) ८ वसुओं में

एक (अग्ने) अग्ने । (एकया, नः, पाहि) एक [ऋग्वेदरूपवाणी] से हमारी, रक्षा कर । (उत,द्वितीयया, पाहि) और, दूसरी [यजुर्वेदरूप वाणी] से, रक्षा कर । (तिसृभिः, गीर्भिः, पाहि) तीन [ऋग्यजुःसाम की] वाणियों से, रक्षा कर । (चतसृभिः,पाहि) चारों [वेदोक्त वाणियों] से, रक्षाकर ॥

अग्नि ही सृष्ट्यादि द्वारा रस का फैलाने वाला, वसुसंज्ञक देव है । वही यजन करने से हम को चार वेदों में लिखे अनुसार फलदायक होता है ॥

निघं० २।७ शतपथ ५।१।२।८ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ८।४९।९ में भी ऐसा ही पाठ है ॥२॥

अथ तृतीया शंयुना दृष्टा । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

३ १ २   ३ १ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २

(३७) बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा । भरद्वाजे

३ १ २   ३ १ २

समिधानो यविष्ठ्य रेवत्पावक दीदिहि ॥ ३ ॥

भावार्थः-(देव) दिव्यैश्वर्य । (यविष्ठ) सब से बड़े । (पावक) पवित्रकर्त्ता । परमात्मन् । आप (बृहद्भिः, अर्चिभिः) महान्, किरणरूप गुणों से (शुक्रेण, शोचिषा) शुद्ध, तेज के साथ (भरद्वाजे) पुरुषार्थी उपासक में (समिधानः) प्रकाश करते हुवे (रेवत्) उसे विद्यादि धनयुक्त करते हुवे (दीदिहि) प्रकाश कीजिये ॥

भौतिकपक्ष में-(देव) चमकते । (यविष्ठ) दहकते । (पावक) शोधक । (अग्ने) अग्ने । तू बृहद्भिः,अर्चिभिः) भारी,लपटों से हुवे (शुक्रेण,तेजसा) श्वेत, तेज से (भरद्वाजे) स्थालीपाकादि अन्नवाले यजमान के यहां (समिधानः) प्रदीप्त होता हुआ (रेवत) नानाविध धनादियुक्त करता हुआ (दीदिहि) सुलग ॥

तात्पर्य यह है कि चमकता, दहकता, घर द्वार आदि को शुद्ध करता, भारी लपटों वाला, उज्ज्वल, तेजस्वी, अग्नि, प्रत्येक यजमान के अग्न्यागार नामक (आगरे) स्थान में सुलगता रहना चाहिये । ऐसा करने से सर्व रोगादि की निवृत्ति होकर धनादि पदार्थों की वृद्धि होती है ॥

निघं० ३।३॥२।८॥१।१७॥२।१०॥२।७।१।१६ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद (६।४८।७) में चतुर्थपाद में केवल " रेवच्छुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि " इतना पाठान्तर है ॥३॥

अथ चतुर्थी-वसिष्ठेन दृष्टा । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ २

(३८) त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः । यन्तारो ये

३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २

मघवानो जनानामूर्वं दयन्त गोनाम् ॥ ४ ॥

भाषार्थः-(स्वाहुत) अच्छे प्रकार ध्यान किये हुवे! (अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप! (ये) जो लोग (त्वे) आप के (प्रियासः) प्यारे (सूरयः) स्तुतिकर्त्ता हैं, वे (मघवानः) विद्यादिधनयुक्त और (जनानां, यन्तारः) मनुष्यों के नेता राजा वा उपदेष्टा (सन्तु) होवें और (गोनाम्) गौओं के (ऊर्वम्) बाहुल्य वा समूह को (दयन्त) रक्षित करें ॥

जो लोग मनुष्यों के अग्रणी मुखिया उपदेष्टा वा राजा हों उन्हें ईश्वर का भक्त, ईश्वर का प्यारा, विद्यादिधनयुक्त और गौ आदि का रक्षक, होना चाहिये॥

भौतिक पक्ष में-(स्वाहुत) अच्छे प्रकार आहुत! (अग्ने) अग्ने! (ये) जो लोग (त्वे) तेरे (प्रियासः) प्यारे हैं, वे (सूरयः) विद्वान् गुणज्ञ, (मघवानः) विद्यादिधनवान्, (जनानां, यन्तारः) मनुष्यों के नेता अग्रणी मुखिया उपदेष्टा वा राजा (सन्तु) हों और (गोनाम्) गौ आदि के (ऊर्वम्) समूह की (दयन्त) रक्षा करें ॥

भावार्थ यह है कि जो मनुष्य अग्निविद्या के द्वारा अग्नि से उपयोग लेना जानते हैं, वे सर्वप्रिय, यज्ञशील, विद्वान्, धनवान्, मुखिया, अगुवा वा राजा और गवादि पशुवों के रक्षक, होने चाहियें और होते हैं ॥

अष्टाध्यायी ७ । १ । ३९ ॥ ७ । १ । ५० ॥ ६।१।१०६ ॥ ८ । २ । ७६ ॥ ७ । १ । ५४ ॥ ७ । १ । ५६ ॥ ७ । १ । ५७ निघण्टु ३ । १६ ॥ २ । १० ॥ ३ । १ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ७ । १६ । ७ में भी ऐसा ही पाठ है ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी-भारद्वाजेन दृष्टा । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २

(३९) अग्ने जरितर्विश्पतिस्तपानो देव रक्षसः । अप्रोषि-

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

वान्गृहपते महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ॥ ५ ॥

भावार्थः-(जरितः) सर्व पदार्थों के गुण बताने वाले ! (देव) अलौकिक ऐश्वर्य वाले ! (गृहपते) हमारे घरों के स्वामिन् ! (अग्ने) हे परमात्मन्! आप (विश्पतिः) मनुष्यों के रक्षक और (रक्षसः, तपानः) राक्षसों के सन्तापक (अप्रोषिवान्) कभी प्रवास न करने वाले (दिवः) द्युलोकादि लोकों के (पायुः) रक्षक (दुरोणयुः) घर २ में ओत प्रोत और (महान्) पूजनीय (असि) हैं ॥

अर्थात् परमात्मा ऊपर कहे गुणों से युक्त सर्वकाल में सब का पूज्य है ॥

भौतिक पक्ष में (जरितः) वाणीरूप से वर्णन करने वाले ! (देव) ३३ देवों में एक ! (गृहपते) गार्हपत्य नाम (अग्ने) अग्ने ! तू (विश्पतिः) मनुष्यों का रक्षक (रक्षसः, तपानः) दुष्ट शत्रु का, नाशक (अप्रोषिवान्) अत्याधार से अलग न करने योग्य (दिवः, पायुः) प्रकाश का, रक्षक और (दुरोणयुः) घर २ मे मिला हुआ (महान्) हवन द्वारा प्रयोजनीय (असि) है ॥

तात्पर्य यह है कि अग्नि वाणीरूप से प्रत्येक पदार्थ के गुणों का बखानने वाला, गार्हपत्य नाम एक देव है, जो अपने गुणों से मनुष्यों का रक्षक,रोगादि दुष्ट शत्रु का नाशक,सदा अत्याधार नाम कमरे में रक्खा हुआ, घर २ में निरन्तर रखने योग्य और हवनादि की रीति से नानाविध शिल्प का उपयोगी है ॥ इस में कई वार गृह शब्द के आने से यह भी सूचित होता है कि गृहस्थों का ही गार्हपत्य नाम अग्नि से विशेष सम्बन्ध है। ऐसा अन्य आश्रमों का नहीं (अग्नि से वाणी-देखो १ दशति ७ वें मन्त्र का भाष्य) ॥

निघं० ३ । १६ ॥ २ । ३ ॥ ३ । १४ ॥ ३ । ४ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद (८ । ४३ । १९) में "गृहपतिः" इतना पाठान्तर है ॥५॥

अथ षष्ठी-प्रस्कण्वेन दृष्टा । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ र २ र २ ३ १ २
(४०)अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रꣳराधोअमर्त्य । आदाशुषे
३ २ ३ २ ३ १ १ ३ १ २
जातवेदो वहा त्वमद्यादेवाꣳ उषर्बुधः ॥६॥

भावार्थः-(जातवेदः) वेदों के प्रकाशक ! (अमर्त्य) अमर ! (अग्ने) परमात्मन् ! (त्वम्) आप (राधः) भक्तिधन (दाशुषे) देने वाले उपासक के लिये (उषसः) प्रभात वेला के (विवस्वत्) रङ्ग विरंगे वस्त्र से धारे हुये

(चित्रम्) चित्र और (उषर्बुधः) प्रभात में चेतने वाले (देवान्) ज्ञाने-न्द्रियों को (अद्य) अब (आ-वह) प्राप्त कराइये ॥

जो मनुष्य प्रभात उठकर परमात्मा का ध्यान उपासना करते हैं उन्हें दयालु जगत्पिता, प्रभात वेला के विचित्र चित्र और ज्ञानेन्द्रियों को चेत देते हैं, जिस से वे उन २ इन्द्रिय से धर्मानुकूल कार्य लेते हुवे सुखी होवें ॥

भौतिकपक्ष में-(जातवेदः) प्रकाश से ज्ञान के उभारने वाले ! (अमर्त्य) देव ! (अग्ने) अग्ने ! (त्वम्) तू (राधः) हव्यरूप धन (दाशुषे) देने वाले याज्ञिक के लिये (विभावसु) विविध वस्त्र से धारे हुवे (उषसः, चित्रम्) प्रभात वेला के, चित्र और (उषर्बुधः,देवान्) प्रभात में चेतने वाले, इन्द्रियों को (अद्य) अब (आ-वह) प्राप्त करा ॥

आशय यह है कि मनुष्य को प्रभात उठकर होम करना चाहिये। अग्नि के ही प्रभाव से सूर्य से उषा=प्रभातवेला उत्पन्न होती है जो लाल २ वस्त्र से धारती हुई अपने चित्र को दिखाती है और जिस के प्रभाव से मनुष्यों के रात्रि में मृतप्राय ज्ञानेन्द्रिय फिर जागते हैं। जो मनुष्य प्रभातयाजी हैं वे विशेष सुखपूर्वक उषा के उदय और ज्ञानेन्द्रियों की चेत को पाते और सुखी होते हैं ॥

निघं० २ । १० ॥ ३ । २० अष्टाध्यायी ६ । १ । १२ ॥ ६ । ३ । १३५ ॥ ६ । ३ । १३६ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऐसा ही पाठ ऋग्वेद १ । ४४ । १ में भी है ॥ ६ ॥

अथ सप्तमी-तृणपाणिना दृष्टा । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २
(४१) त्वं नश्चित्रऊत्या वसोराधाꣳसि चोदय । अस्य
३ १र ३ २र ३ १२ ३ २ ३ २ ३ १र ४ २र
रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदागाधन्तुचे तु नः ॥७॥

भाषार्थः-(वसो) घट घट वासी ! (अग्ने) ज्ञानस्वरूप ! (त्वम्) आप (नः) हमारी (ऊत्या) रक्षा के साथ (राधाꣳसि) विद्यादि धनों को (चोदय) प्राप्त कराइये, क्योंकि (त्वम्) आप ही (अस्य, रायः) इस, धन के (चित्रः, रथीः) विचित्र, दाता हैं। (तु) और (तुचे) सन्तान के लिये (गाधं, विदाः) आश्रय, दीजिये ॥

जो परमात्मा के प्यारे सदा उसी का भरोसा, शरण, आश्रय, रखते हैं, उसी के उपासक और आज्ञापालक रहते हैं,यह दयालु परमात्मा उन्हें और उन के सन्तानों को अनेकशः विद्यादि धनों से भरपूर करता और आश्रय देता है तथा उन की रक्षा करता है। क्योंकि वही सम्पूर्ण धन आश्रय और रक्षा के साधनों का स्वामी और उन में वास कर रहा है॥

भौतिकपक्ष में-(वसो) ८ वसुओं में एक। (अग्ने) अग्ने। (त्वम्) तू (नः) हमारी (ऊत्या) रक्षा से (राधांसि) रत्नादि धनों को (चोदय) प्राप्त करा। क्योंकि (त्वम्) तू (अस्य) इस युद्धादि में निर्जित (रायः) धन का (चित्रः) विचित्र (रथीः) नेता (असि) है। (तु) और (तुचे) सन्तान के लिये (गाधम्) आश्रय (विदाः) दिला॥

अग्नि ८ वसुओं में एक विचित्र वसु है जिस के प्रभाव से मनुष्य अपनी रक्षा और शत्रु का पराजय करके उस के धनादि को पा सक्ते हैं तथा अपनी सन्तान के लिये आश्रय दिला सक्ते हैं। अग्नि आश्चर्य्य गुणों से ऊपर कहे कार्य्यों का साधक है, उसके गुण खोजने और तदनुसार अग्नि को काम में लाना चाहिये॥

निघं० २। १४ ॥ २। २ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखने चाहियें॥ ऐसा ही पाठ ऋग्वेद (६। ४८। ९) में भी है॥ ७॥

अपाऽष्टमी-विरूपेण दृष्टा। अग्निर्देवता। बृहती छन्दः॥

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ १र २
(४२) त्वमित्सप्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋतः कविः। त्वां विप्रासः

३ १ २ ३ १ २
समिधान दीदिव आविवासन्ति वेधसः॥ ८॥

भावार्थः-(समिधान) ध्यान किये हुवे। (दीदिवः) तेजोमय। (त्रातः) रक्षक। (अग्ने) परमात्मन्। (त्वम्) आप (सप्रथाः) सर्वतोव्याप्त (ऋतः) सत्य और (कविः) ज्ञानी (असि) हैं (त्वाम्, इत) आप को, ही (वेधसः) मेधावी (विप्रासः) विप्र लोग (आ-विवासन्ति) सर्वतोभाव से भजते हैं॥

भौतिकपक्ष में-(समिधान) समिधाओं में स्थापित! (दीदिवः) दहकते! (त्रातः) रोग वा शत्रु से रक्षक! (अग्ने)अग्ने! (त्वम्) तू (सप्रथाः) साथ फैलने

वाला (ऋतः) प्राप्त और (कविः) वाणीरूप से बोलने वाला (अग्नि) है । (त्वाम्,इत्,वेधसः, विप्रासः, आ-विवासन्ति) तुझ को, ही, मेधावी, जानने वाले लोग, सब ओर से, सुप्रयुक्त करते हैं ॥

मन्त्र में लिखे गुणों वाले अग्नि को ही सब विद्वान् काम में लाते हैं और उस की सहायता से बोलते, उस से अपनी रक्षा करते, उसे प्रदीप्त करते और सब काम सिद्ध करते हैं ॥

निघं० ४ । ३ ॥ ५ । ४ ॥ ३ । १५ ॥ ३ । ५ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ८ । ४९ । ५ में भी ऐसा ही पाठ है ॥ ८ ॥

अथ नवमी-शुनः शेपेन दृष्टा । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३१ ३ ३ २ १ २
(४३)आ नो अग्ने वयोवृधꣳरयिं पावक शꣳस्यम् । रास्वा

३ २ ३ १ २ ३ १ २
च न उपमाते पुरूस्पृहꣳसूनीती सुयशस्तरम् ॥ ९ ॥

भाषार्थः-(उपमाते) हे धातः ! (पावक) हे पतितपावन ! (अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशक ! परमात्मन् ! [आप] (नः) हमारे लिये (वयोवृधं, शꣳस्यं, रयिम्) अन्न उपजाने वाला, उत्तम, जल (च) और (सूनीती) सुन्दर नीति से सहित(पुरूस्पृहं,सुयशस्तरम्)अत्यन्ताऽभीष्ट,अति सुन्दर यश (रास्व) दीजिये॥

भौतिकपक्ष में-(उपमाते, पावक) धारने वाले ! शोधक ! (अग्ने) अग्ने ! (नः, वयोवृधं, शꣳस्यं, रयिम्) हमारे लिये, अन्न उपजाने वाले, उत्तम,जल(च)और (सूनीती, पुरूस्पृहं, सुयशस्तरम) सुन्दर नीति के सहित अत्यन्ताऽभीष्ट, अति सुन्दर यश (रास्व) दे ॥

तात्पर्य यह है कि आग्नेयविद्या और यज्ञ द्वारा सुहुत अग्नि धाता अर्थात् जगत् को धारता है, वही पवित्र जल वर्षाता है, उस से उत्तम अन्न उपजाता है, उस से हृष्टि पुष्टि बल पुरुषार्थ द्वारा सुनीति के वर्त्ताव करने से सुन्दर कीर्त्ति बढ़ती है, जो सब मनुष्यों को चाहने योग्य है और चाहनी चाहिये ॥

अष्टाध्यायी ३।१।३९॥६।३।१३५, निघण्टु ३।३॥१।१२ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऐसा ही पाठ ऋग्वेद ८।४९।१४ में है परन्तु वहां "सुयशस्तरम्" के स्थान में " स्वयशस्तरम् " इतना पाठान्तर है ॥९॥

अथ दशमी–सौभरिणा दृष्टा । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

२उ ३ १२३१२३ १२३१र २र ३१र

(४४)यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् । मधोर्न

२र ३१ २ ३१र २र ३३ १२

पात्रा प्रथमान्यस्मै प्रस्तोमा यन्त्वग्नये ॥ १० ॥

* इति चतुर्थी दशतिः ॥४॥ *

भावार्थः–(यः) जो (होता) कर्मफलप्रदाता (मन्द्रः) आनन्ददाता (जनानाम्) मनुष्यों के लिये (विश्वा, वसु) सब प्रकार के, विद्यादि धन (दयते) देता है (अस्मै, अग्नये) इस, परमात्मा के लिये (मधोः, पात्रा, न) मधु के, पात्रों के, समान (प्रथमानि) मुख्य उत्तम (प्रस्तोमा) स्तोत्र (यन्तु) प्राप्त हों ॥

परमात्मा ही कर्म का फल पहुंचाता है उस के बिना, किये कर्मों की हानि और न किये पापों का शिर मढ़ा जाना होजाता । इसलिये उस दयालु के धन्यवादरूपी मधुर वचन जैसे मानो मधुर रस के पात्र हों ऐसे मधुर मुख्य स्तोत्र पढ़े जावें, वह हमको नाना प्रकार के विद्यादि रत्नरूप धन देता है ॥

भौतिकपक्ष में–(होता) होमने वाला (मन्द्रः) और उससे आनन्द का दाता (यः) जो (जनानाम्) मनुष्यों के लिये (विश्वा, वसु, दयते) सम्पूर्ण, सुखसाधन धन, देता है (अस्मै, अग्नये) इस, अग्नि के लिये (प्रथमानि, प्रस्तोमा) मुख्य, स्तुतियें (यन्तु) पहुंचें ॥

परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! जिस अग्नि में तुम सुगन्ध मिष्ट पुष्ट रोगनाशकादि नाना पदार्थों को होमते हो और उन पदार्थों को यथास्थान वायु बादल ओषधि वनस्पति आदि में पहुंचाता है और तुम्हें आनन्द देता है तथा सब धान्यादि धन देता है, तुम उस अग्नि के गुणों को स्वयं जानने और अन्योंको जताने के लिये साथ२ अग्नि की स्तुति किया करो अर्थात् अग्नि के गुण वर्णन वाले मन्त्रों का पाठ भी करते जाया करो । जिस से उस अग्निविद्या के द्वारा सब सुखों को प्राप्त करके कृतकृत्य होओ ॥

अष्टाध्यायी ७।१।३९॥२।३।५९॥२।३।६२॥ निघं० ४।१॥२।१०॥३।१४॥ निरुक्त १।४॥ उणादि १।९५॥२।१३॥२।११६॥१।१४० के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद (८।९२।६) में "यन्त्वग्नये" इतना पाठ में भेद है ॥१०॥

* यह चतुर्थ दशति पूर्ण हुई ॥४॥ *

अथ पञ्चमी दशतिस्तत्र प्रथमा-वामदेवेन दृष्टा । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र

(४५) एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमाहुवे । प्रियं चेतिष्ठ-

३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २

मरतिᳬस्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥१॥

भावार्थः-परमात्मा उपदेश करता है कि हे उपासको ! मैं (वः) तुम्हारे लिये (एना, नमसा) इस, स्तोत्र से (ऊर्जः, नपातम्) बल के, रक्षक (प्रियम्) हितकर (चेतिष्ठम्) ज्ञानदाता (अरतिम्) स्वामी (स्वध्वरम्) सुष्ठु पूजनीय (विश्वस्य, दूतम्) सब के, कर्मफल पहुंचाने वाले (अमृतम्) अमर (अग्निम्) अपने स्वरूप का (आ-हुवे) उपदेश करता हूं, जताता हूं॥

इस मन्त्र तथा पूर्व मन्त्रों में वर्णित स्तोत्र के अनुसार परमात्मा अपने स्वरूप का बोध कराता है॥

भौतिकपक्ष में-हे याज्ञिको ! मैं (वः) तुम्हारे लिये (ऊर्जः, नपातम्) अन्न और बल के, रक्षक (प्रियम्) हितसाधक (चेतिष्ठम्) अत्यन्त चेताने वाले (अरतिम्) गमनशील (स्वध्वरम्) यज्ञ के सुधारने वाले (विश्वस्य) संसार भर के (दूतम्) दूत के समान हुत हुत पदार्थों के पहुंचाने वाले (अमृतम्) अमर (अग्निम्) अग्नि का (एना, नमसा) उक्त, गुणवर्णन से (आ-हुवे) उपदेश करता हूं॥

मन्त्रोक्त गुणों के साथ अग्नि के जानने का परमात्मा उपदेश करता है । गुणों का वर्णन [बयान] स्तोत्र कहाता है । प्रकाश अग्नि का गुण है और प्रकाश से चेत होता है, इसलिये अग्नि को "चेताने वाला" कहा है । जिस प्रकार अमर जीवात्मा एक देह से दूसरे देह को धारण करता है, मरता नहीं, इसी प्रकार अग्नि एक काष्ठादि से निकल कर अन्य पदार्थों में प्रवेश करता है, मरता नहीं। इसलिये नित्य अग्नितत्त्व को "अमर" कहा गया है। जब तक देहादि में अग्नि रहता है तब तक देहादि का पात [नाश] नहीं होता, इस लिये इस को "बल का रक्षक" कहा है । कर्मकाण्ड का उपयोगी होने से "यज्ञ का सुधारने वाला" कहा है ॥

अष्टाध्यायी ३ । १ । ३९ ॥ निघण्टु २ । ७ ॥ ३ । ९ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ७ । १६ । १ में भी ऐसा पाठ है ॥१॥

अथ द्वितीया—भर्गो द्रष्टा । अग्निर्देवता । बृहतीच्छन्दः ॥

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ २ १ २
(४६) शेषे वनेषु मातृषु सन्त्वा मर्त्तास इन्धते। अतन्द्रो
३ १ २ ३ २ ३ २ उ ३ १ २
हव्यं वहसि हविष्कृत आदिद्देवेषु राजसि॥२॥

भावार्थः—आग्नेयकाण्ड के प्रकरण से हे अग्ने परमात्मन्! आप (वनेषु) वनस्थानी देहों में (मातृषु) आप के साक्षात्काररूप प्रकट होने के स्थान हृदयों में (शेषे) शयन करते हो। (त्वा) आप का (मर्त्तासः) मनुष्य (सम्-इन्धते) ध्यान करते हैं। (अतन्द्रः) आलस्यरहित जागरूक आप (हविष्कृतः) कर्मकर्त्ता के (हव्यम्) कर्मफल को (वहसि) पहुंचाते हैं। (आत्-इत्) इस के अतिरिक्त (देवेषु) पृथिव्यादि सब पदार्थों में (राजसि) प्रकाश करते हैं॥

जिस प्रकार वन के काष्ठों में अदृश्य रूप से अग्नि वर्त्तमान है और वे वन उस अग्नि को माता के समान गर्भ में ले रहे हैं और मनुष्य लोग उस छिपे अग्नि को मन्थन द्वारा प्रकट करके प्रदीप्त कर लेते हैं। इसी प्रकार परमात्मा रूप महान् अग्नि, देहरूप भस्मान्तभावी वनों में व्याप रहा है, उसे योगी लोग अपने हृदयों की भूमियों में प्रकाशित पाते हैं। वे हृदयभूमियें परमात्मा को प्रकट (साक्षात्) करने के स्थान हैं। ध्यानरूप मन्थन से वह प्रकट होता है। शयन कहने से निद्रा की भ्रान्ति न हो इसलिये "अतन्द्रः" कहा गया है। अर्थात् वह दयालु आलस्यरहित सब को कर्मों का फल पहुंचाता है तथा सम्पूर्ण देहों इन्द्रियों तथा पृथिव्यादि भूतों में प्रकाश कर रहा है॥

भौतिकपक्ष में—अग्ने! तू (मातृषु, वनेषु, शेषे) गर्भरूप से तुझे छिपा हुवा धारने वाले, वनों में, शयन करता है (मर्त्तासः, त्वा, सम्-इन्धते) मनुष्य लोग, तुझे, प्रदीप्त करते हैं (अतन्द्रः) प्रदीप्त हुवा तू (हविष्कृतः, हव्यं, वहसि) यज्ञकर्त्ता के, हव्य को, पहुंचाता और (आत्-इत्) अनन्तर ही (देवेषु) वाय्वादि देवों में (राजसि) जा विराजता है॥

अर्थात् वन के काष्ठ अग्नि की उत्पत्तिभूमि माता हैं, उन के गर्भ में छिपा हुवा अग्नि है, जिसे मनुष्य लोग यज्ञादि कार्यों में मथकर प्रदीप्त करलेते हैं और वह प्रदीप्त होकर हवन किये हुवे द्रव्यों को वाय्वादि देवों में पहुंचाता है॥

अष्टाध्यायी (अ० १।४।८७) का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये।

ऋग्वेद ८ । ७ । ६० में "गात्रोः, हव्या" इतना पाठभेद है ॥ २ ॥

अथ तृतीया-सौभरिणा दृष्टा । अग्निर्देवता बृहती । छन्दः ॥

१२ ३१ २३ १२ ३१ २३२ ३२ ३१र

(४७) अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादधुः। उपोषुजात-

२र २ ३ १ २ ३१ २

मार्यस्य वर्द्धनमग्निं नक्षन्तु नोगिरः ॥ ३ ॥

भावार्थः-(गातुवित्तमः) योगभूमि को उत्तम प्रकार से जानने वाले लोग (यस्मिन्) जिस परमात्मा में (व्रतानि) कर्मों को (आ-दधुः) अर्पण करते हैं वह (अदर्शि) साक्षात् होजाता है, उस (सु-जातम्) साक्षात् हुवे (आर्यस्य) उपासक की (वर्धनम्) उन्नति करने वाले (अग्निम्) परमात्मा को (नः) हमारी (गिरः) स्तुतियें (उप-उ-नक्षन्तु) उपस्थित हों ॥

अर्थात् जो योगभूमियों के उत्तम ज्ञाता योगी लोग उस परमात्मा को ही समस्त शुभ कर्मों का अर्पण कर देते हैं, और निष्काम भजन करते हैं। वह दयालु उन के हृदयकमलों में प्रकट होता है अर्थात् साक्षात् अनुभव में आता है। तथा उन आर्यों की वृद्धि-उन्नति करता है। इस लिये उस साक्षात् हुवे जगत्पिता को हमारी स्तुतियें प्राप्त हों ॥

भौतिक पक्ष में-(गातुवित्तमः) यज्ञ वा शिल्पभूमि के ज्ञाता (यस्मिन्) जिस अग्नि में (व्रतानि) कर्मों और शिल्पों को (आ-दधुः) आहित करते हैं, वह (अदर्शि) प्रदीप्त होता है और उस (सु-जातम्) भले प्रकार प्रदीप्त हुवे (आर्यस्य) आर्य याज्ञिक और शिल्पी की (वर्धनम्) उन्नति करने वाले (अग्निम्) अग्नि को (नः) हमारी (गिरः) वर्णन रूप वाणियें (उप-उ-नक्षन्तु) उपस्थित हों ॥

अर्थात् अग्नि से काम लेना चाहने वाले को प्रथम अग्निस्थापन की भूमि का ज्ञान अच्छे प्रकार प्राप्त करना चाहिये, तब अग्नि को प्रकट करना चाहिये, फिर जो कर्म करना हो अग्नि पर आरम्भ करना चाहिये। ऐसा करने से वह अग्नि उस आर्य यज्ञकर्त्ता वा शिल्पी की वृद्धि-उन्नति करता है। इस लिये हमारी वाणी जो अग्नि के गुण वर्णन करने वाली हैं वे उस में उपस्थित रहें, जिस से हम स्वयं अग्नि के गुणों को जान कर उपयोग लेते हुये इष्ट सुखों को प्राप्त हों और अन्यों को करावें ॥

निघं० १।१॥२।१ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऋग्वेद ८।१०३।१ में "नक्षन्त" इतना पाठभेद है॥३॥

अथ चतुर्थी-मनुना दृष्टा। अग्निर्देवता। बृहती छन्दः॥

३ २ ३ २ ३ १ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(४८)अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे। ऋचा यामि
३ २ ३ २ ३ १ २
मरुतो ब्रह्मणस्पते देवाअवो वरेण्यम्॥४॥

भाषार्थः-(उक्थे) वाङ्मय (अध्वरे) यज्ञ में (अग्निः) अग्नि (पुरोहितः) अग्रणी है। (ग्रावाणः) ताल्वादिस्थान (बर्हिः) कुशासन हैं। (देवाः) प्राणादिवायु (मरुतः) ऋत्विज् हैं। (ब्रह्मणस्पते) हे वेद के प्रकाशक! भगवन्! (ऋचा) मन्त्र से (वरेण्यम्, अवः) उत्तम, रक्षा को (यामि) मांगता हूं॥

जैसे कर्मयज्ञ में पुरोहित, कुशादि के आसन और होता उद्गाता आदि ऋत्विज् होते हैं, वैसे स्तुतिरूप वाणी के यज्ञ में अग्नि पुरोहित है क्योंकि इस के विना अग्रणी हुवे वाणी की उत्पत्ति ही नहीं, अग्नि से वाणी इन्द्रिय का बनना ७ वें मन्त्र के भाष्य में लिख ही चुके हैं। जैसे कर्मयज्ञ में ऋत्विजों के बैठने को आसन होते हैं वैसे इस वाग्यज्ञ में ताल्वादिस्थान आसन हैं, जिन पर वायुरूप ऋत्विज् लोग बैठकर अपने २ काम करते हैं, अर्थात् प्रयत्न गुरुत्व लघुत्वादि का विभाग करके बोलते हैं। क्योंकि वायु ही ताल्वादि स्थानों में आधार पाकर वर्णों का यथावत् उच्चारण करता है। इसलिये हे परमात्मन्! मैं ऋचा से अपनी रक्षा की प्रार्थना करता हूं॥

उणादि २।७॥ निघण्टु ३।१८॥ ३।१९॥ राधाकान्त देव बहादुर प्रकाशित "शब्दकल्पद्रुम" के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ताल्वादि स्थानों को "ग्रावा" इस लिये कहा है कि यौगिकार्थ इस शब्द का "निगलना और बोलना" है। तथा ग्रावा पत्थर को भी कहते हैं, बस जिस प्रकार ग्रावाओं से यज्ञसामग्री कूट छेत पार ठीक करते हैं इसी प्रकार वाग्यज्ञ की सामग्री दन्त तालु मूर्द्धा आदि से ठीक की जाती है॥

सायणाचार्य ने इस मन्त्र के भाष्य में ३ भूल की हैं। १-"यामि" की सिद्धि में वर्णलोपादि वृथा परिश्रम करना और निघं० ३।१९ में यामि का

याचना अर्थ न देखना॥ २-"याचामि" यह परस्मैपद का स्वयं प्रयोग करना॥ ३-मूलमन्त्र में "वः" यह पद ही नहीं है फिर निर्मूल "वः, युष्माकम्" यह भाष्य करना॥ यह ही तीनों भूलें गतानुगतिकता से ज्वालाप्रसाद भार्गव (आगरा) ने भी की हैं॥ ऋग्वेद (८। ६७। १) में "ब्रह्मणस्पतिं देवान्" यह द्वितीयान्त पाठभेद है॥४॥

अथ पञ्चमी—सुदीतिना पुरुमीढेन वाऽकम्भेण वा दृष्टा। अग्निर्देवता। बृहती छन्दः॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

(४९) अग्निमीडिष्वाऽवसे गाथाभिः शीरशोचिषम्। अग्निꣳ

३ १ २ ३ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २

राये पुरुमीढ श्रुतं नरोग्निः सुदीतये छर्दिः॥ ५॥

भाषार्थः-(पुरुमीढ) हे बहुधा उपदेश से सींचे हुवे जीवात्मन्! तू (शीरशोचिषम्) फैली हुई ज्योति वाले (श्रुतम्) वेदों में विख्यात (अग्निम्) परमात्मा वा भौतिक अग्नि को (अवसे) रक्षा के लिये और (अग्निम्) उसी को (राये) धन के लिये (गाथाभिः) स्तुतिरूपा वाणियों से (ईडिष्व) स्तुत वा वर्णित कर (नरः) हे मनुष्यो! (अग्निः) पूर्वोक्त दोनों अग्नि (सुदीतये) भले प्रकार रक्षा के लिये (छर्दिः) घर हैं॥

अर्थात् परमात्मा वा भौतिकाग्नि का उपदेश पाये हुवे मनुष्य को वर्णन करना चाहिये, परमात्मा की कृपा और भौतिकाग्नि के उचित व्यवहार से मनुष्य की रक्षा और रत्नादि धनों की प्राप्ति होती है। इस अग्नि की ज्योति सब ओर फैली है और यह वेदों में बहुधा वर्णित है। जिस प्रकार आंधी और वर्षा आदि उपद्रवों से मनुष्य को उस का घर बचाता है, उसी प्रकार पूर्वोक्त अग्नि मनुष्य को सब प्रकार के रोग शत्रु आदि के किये उपद्रवों वा काम क्रोधादि दुर्गुणों से बचाता है। परमात्मा के प्यारे लोगों को कामादि जगद्विध्वंसक शत्रु नहीं सता सक्ते। तथा भौतिकाग्नि से होम वा शिल्प द्वारा काम लेने वाले यजमान आदि शिल्पियों को रोग अकाल मरी शत्रु निर्धनता आदि की पीड़ा नहीं होती॥ यदि "श्रुतम्" को व्यत्यय से क्रियापद माने तो "हे मनुष्यो! सुनो" यह अन्वय होगा॥

उणादि २। ४॥ २। १३॥ निघण्टु १। ११॥ ३। ४॥ अष्टाध्यायी ३। १। ८५ इत्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये। ऋग्वेद ८। ७१। १४ में "अग्निं" पाठ है॥ ५॥

अथ षष्ठी-प्रस्कण्वेन दृष्टा। अग्निर्देवता। बृहती छन्दः॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २
(५०) श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः। आसीदतु
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावभिरध्वरे॥ ६॥

भावार्थः—(श्रुत्कर्ण) हे सुनने में समर्थ प्राणी! तू (श्रुधि) सुन-(अग्निः) परमात्मा और (मित्रः) प्राण वायु तथा (अर्यमा) मारक यम अपान वायु (प्रातर्यावभिः) प्रातः उठकर ध्यानस्थल को जाने वालों से अनुष्ठित (अध्वरे) योगयज्ञ के मध्य (बर्हिषि) जग का यज्ञिय आसन है, उस में (सयावभिः) सहवर्त्ती (वह्निभिः) देह को वहने वाले (देवैः) उदानादि अन्य वायुओं के साथ (आ-सीदतु) स्थिर होवे॥

तात्पर्य यह है कि मनुष्य को परमात्मा का यह उपदेश सुनना और तदनुकूल आचरण करना चाहिये कि प्रातः काल उठकर ध्यान करने की जगह को जावे और फिर प्राण अपान तथा इन के सहवर्त्ती उदानादि अन्य वायुओं सहित परमात्मा को उन के ठहरने के आसनरूप सुषुम्णादि में ठहरावें॥

भौतिकपक्ष में-(श्रुत्कर्ण) हे सुनने वाले मनुष्य! तू (श्रुधि) सुन-(अग्निः, मित्रः, अर्यमा) भौतिक अग्नि, मित्र और अर्यमा (प्रातर्यावभिः, अध्वरे) प्रातः उठ कर यज्ञ भूमि को जाने वालों से किये हुवे, यज्ञ के मध्य (बर्हिषी) कुशादि अपने २ आसन पर (सयावभिः) सहवर्त्ती (वह्निभिः) हव्य लेजाने वाले (देवैः) अन्य देवों के साथ (आ-सीदतु) आहित होवे॥

अर्थात् मनुष्यों को परमात्मा का यह उपदेश सुनना और तदनुकूल आचरण करना चाहिये कि प्रातःकाल उठकर यज्ञस्थल पर जावें और फिर अग्नि मित्र अर्यमा आदि देवों का अन्य सहवर्त्ती देवों के साथ स्थापन करें और उन्हें यज्ञ भाग दें। अग्नि के अतिरिक्त मित्र अर्यमा अंशुमान् आदि ऐसे कई देव विशेष हैं जो वायु आदि के भेद हैं और जिन को विशेष करके हम लोग (वैदिकप्रणाली के न रहने से) प्रायः भूल गये हैं॥

अष्टाध्यायी ६।४।१०२॥ उणादि ४।५१ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ऋग्वेद (१।३।४०) में "आ-सीदन्तु..........प्रातर्यावाणो अध्वरम्" इतना पाठभेद है॥ ६॥

अथ सप्तमी-सौभरिणा दृष्टा । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

१र २र ३ २३२उ ३ २ ३ १ २ . १ २ ३ १ २
(५१) प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न म*ज्मना। अनु मातरं

३ १र २र ३ १र २र ३ १ २
पृथिवीं विवावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ॥७॥

भावार्थः-(दैवोदासः) द्युलोक का दास अनुचर जो विद्युत्, तत्सम्बन्धी (अग्निः) आग (इन्द्रः, न) इन्द्र के समान (मातरम्, पृथिवीम्) माता, पृथिवी के (अनु) चारों ओर (मज्मना) बलपूर्वक (प्र-वि-वावृते) अत्यन्त भाव से फैल रहा है । और (नाकस्य, शर्मणि, तस्थौ) द्युलोक के, घर में, स्थित है ॥

पृथिवी में एक प्रकार की गरमी है जिस को वेद की भाषा में इस मन्त्र में दैवोदास कहा है क्योंकि वह पृथिवी से निरन्तर बाहर को निकलती रहती है । और जिस प्रकार सूर्य्य की धूप पृथिवी के चारों ओर छाती है इसी प्रकार विजुली के से बल से निकल कर वह भी अपनी माता पृथिवी के चारों ओर दूर २ द्युलोक के घर में अर्थात् द्युलोक रूप घर में स्थित है । और वर्षादि का हेतु है । प्रायः पाठक द्युलोक जानने की इच्छा रखते होंगे, इस लिये हमारी समझ में पृथिवी के दूर चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश है, वही द्युलोक है और उस में वर्तमान समस्त दिव्य पदार्थ निरुक्त में लिखे "द्युस्थान देवता" हैं । सूर्य्य पृथिवी से बहुत बड़ा है पृथिवी उस की अपेक्षा बहुत ही छोटी है, इस कारण सूर्य से जो प्रकाश की धारा बहती हैं वे पृथिवी के छोरों को छूतीहुई झुकड़ती २ चन्द्र से परे जिस बिन्दु स्थान पर मिल जायेंगी वहीं द्युलोक का आरम्भ है । बस इस दूरी से आगे पृथिवी के चारों ओर अन्धियारा नहीं है और वहां के स्थान को द्युलोक जानिये ॥

निघण्टु २ । ९ ॥ ३ । ४ ॥ १ । ४ ॥ उणादि ४ । ५७ ॥ २ । २८ ॥ ४ । १४५ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ इस मन्त्र में आये "न" पद की व्याख्या ही सायणाचार्य्य ने नहीं की और अन्वय पूरा कर दिया । ज्वाला प्रसाद जी ने "वः" यह पद मूल में न होने पर भी निर्मूल व्याख्यान किया है ॥ ऋग्वेद ८ । १०३।२ में "अग्निर्देवांअच्छा न मज्मना" "नाकस्य सानवि" इतना पाठभेद है ॥७॥

* मज्मना इत्यपि बहुषु पुस्तकेषु दृश्यते ॥

अथाऽष्टमी-मेधातिथिना मेध्यातिथिना च दृष्टा। इन्द्रोदेवता। बृहती छन्दः॥

२ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १
(५२) अध ज्मो अधवा दिवो बृहतोरोचनादधि। अया
२ क २२ ३ २उ ३ १ २
वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृण ॥८॥

भावार्थः-(सुक्रतो) इन्द्र ! तू (ज्मः, अधि) पृथिवी से ऊपर (अधवा) और (बृहतः, रोचनात्, दिवः, अध) बड़े, प्रकाशमान, द्युलोक से, नीचे (अया) इस (तन्वा) विस्तृत शरीर से (मम, गिरा) मेरी, वाणी के साथ ही (वर्धस्व) बढ़ और (जाता) यवादि सस्यों[पैदावार] को (पृण) तृप्तवा पुष्टकर॥

पूर्वमन्त्र में पृथिवी से ऊपर देवोदास का वर्णन हो चुका है। वही अग्नि दिव्लोक को पहुंच कर इन्द्र नामक हो जाता है। और वही वर्षा का देवता अर्थात् अपनी दिव्यशक्ति से वर्षा का कर्त्ता होता है। और वही दैवोदास इन्द्र पद को प्राप्त हो जाता है॥ इस ही कारण आग्नेय पर्व में यहां यह एक ऋचा इन्द्र की है। अन्यथा प्रकरणविरोध आता। इस मन्त्र में प्रार्थना है कि वह इन्द्र पृथिवी से ऊपर और दिवलोक से नीचे उतर कर फैले और हमारी खेती को तृप्त और पुष्ट करे। प्रार्थना मन से चाहना को कहते हैं जो यहां लोट्लकार से विवक्षित है। बस मन में यह चाहना उत्पन्न होती है जिसे ईश्वर पूरी करे कि इन्द्र से हमारी खेती आदि की पुष्टि हो। इसलिये यह भ्रान्ति न हो कि (भौतिक) इन्द्र ही से प्रार्थना की गई है कि वह ऐसा करे। "मेरी वाणी के साथ ही"। इस का यह तात्पर्य है कि हम चाहते हैं कि कहते के साथ ही अर्थात् शीघ्र परमात्मा ऐसी कृपा करे॥

निघण्टु १।१॥३।३॥ अष्टाध्यायी ६।३।१११॥६।३।१३७ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥

इस मन्त्र के भाष्य में-ज्वालाप्रसाद जी ने जो 'सुक्रतो" पद से "परमात्मा" अर्थ ग्रहण किया है सो भौतिक दैवोदास के प्रसङ्ग में ठीक नहीं॥ "अधज्मो" ऐसा अन्तस्थ यकार वाला पाठ भी बहुत से पुस्तकों में पाया जाता है॥ ऋग्वेद ८।१।१८ में भी ऐसा ही पाठ है॥८॥

अथ नवमी-विश्वामित्रेण दृष्टा। अग्निर्देवता। बृहती छन्दः॥

१ २ ३२उ ३१२२२ ३२ १२ २२
(५३) कायमानो वना त्वं यन्मातॄरजगन्नपः। न तत्तेअग्ने
३१२ ३१ २३२३२ ३१ २
प्रमृषे निवर्त्तनं यद्दूरे सन्निहाभुवः॥ ९॥

भावार्थः-(अग्ने) हे अग्ने! (यत्) जो कि (त्वम्) तू (वना) किरणों को (कायमानः) चाहता (सन्) हुआ (अपः) व्यापक बिजुली-रूप (मातॄः) माताओं को (अजगन्) प्राप्त होता है [उस से जाना जाता है कि] (यत्) जो (इह) यहां पृथिवी आदि पर (दूरे, आभुवः) तू दूर होगया (तत्, निवर्त्तनम्) वह, दूर होना (ते) तुझे (न, प्र-मृषे) नहीं अच्छा लगता॥

भाव यह है कि कार्यरूप अग्नि जो दैवोदासादि संज्ञक है और पृथिव्यादि से प्रतिक्षण निकल कर दिव् लोक की ओर जाता है, वह मानो अपने कारणरूप बिजुली में ऐसे जाता है जैसे बालक उत्पन्न होकर फिर अपनी माता की ओर जाता है। ऐसे ही वह अग्नि भी कार्यरूप में उत्पन्न होते ही फिर कारणरूप विद्युत् की ओर दौड़ता है और यहां माता [कारण] से दूर रहना इसे अच्छा नहीं लगता॥

निरुक्त में भी इस का यही व्याख्यान किया है। निरुक्त ४। १४॥ निघं० १। ५॥ २। १४॥ ५। ३ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ "आभवः" ऐसा भी पाठान्तर है। तथा ऐसी ही ऋचा ऋग्वेद ३। ९। २ में भी है॥९॥

अथ दशमी-कण्वेन दृष्टा। अग्निर्देवता। बृहती छन्दः॥

१ २ ३२ ३१२ ३२ ३ १२३१२ ३२३
(५४) नि त्वामग्ने मनुर्दधेज्योतिर्जनायशश्वते। दीदेथ
१२ ३ ३१२ २२३१ २ ३१२
कण्वऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः॥ १०॥

* इति पञ्चमी दशतिः॥ ५॥ *

भावार्थः-(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप! परमात्मन्! (मनुः) मैं मननशील मनुष्य (शश्वते, जनाय) सनातन, पुरुष के लिये अर्थात् आप की प्राप्ति के लिये (त्वाम्) आप (ज्योतिः) ज्योतिः स्वरूप को (नि-दधे) नितरां

ध्यान करता हूं। इस से आप (कण्वे) मुझ मेधावी में (दीदेथ) प्रकाश कीजिये। जिस से मैं (ऋतजातः) सत्य वेद से प्रसिद्ध (उक्षितः) महान् [होऊं] (यम्) जिस मुझको (कृष्टयः) मनुष्य लोग (नमस्यन्ति) सत्कृत करते हैं वा करें॥

अर्थात् हे दयालु! भगवन्! मैं विचार और ध्यान में परायण योगी, आपका ध्यान करता हूं। आप ज्योतिःस्वरूप हैं कृपया मुझे ज्योति दीजिये। जिस से मैं मेधावी, वेदपारंगत, आप की ज्योति से ज्योतिष्मान्, महात्मा और मनुष्यों से नमस्करणीय होऊं॥

भौतिक पक्ष में-(अग्ने) अग्ने! (मनुः) मैं मनन शील यजमान (शश्वते, जनाय) सनातन प्राणिमात्र के लिये अर्थात् प्राणिमात्र के उपकारार्थ (त्वाम्) तुझे (ज्योतिः) ज्योतिष्मान् को (नि-दधे) स्थापित करता हूं। मैं (ऋतजातः) धन में प्रसिद्ध (उक्षितः) महान् होऊं (यम्) जिसे (कृष्टयः) मनुष्य (नमस्यन्ति) सत्कृत करते हैं वा करें॥

अर्थात् हम यज्ञकर्त्ता लोगों को शिल्प वा यज्ञ में अग्नि का स्थापन करना चाहिये, जिस से प्राणिमात्र का उपकार हो, और हम उसके तेज से तेजस्वी, महात्मा, धनी और नमस्करणीय हो जावें। यथार्थ में यज्ञ और शिल्पद्वारा यह कार्य सिद्ध होसकता है॥

निघं० ५।६॥१।१६॥ ३।१५॥३।१०॥२।१०॥२।३॥ उणादि १।१० के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये। मनु और कण्व शब्द से किसी ऋषि विशेष का नाम न समझना चाहिये। क्योंकि निघण्टु के विरुद्ध होने, वेद के अनादि और यौगिक अर्थ की प्रधानता होने से। किन्तु मन्त्र में आये हुवे मेधावी के वाचक "कण्व" शब्द को देखकर ही इस ऋचा के द्रष्टाने अपना नाम भी कण्व रक्खा ऐसा समझना चाहिये॥ ऋग्वेद १।३६।१९ में भी ऐसा पाठ है॥१०॥

* यह पांचवी दशति समाप्त हुई॥५॥ *

—:*:—

अथ षष्ठी दशतिस्तत्रेयं प्रथमा-वसिष्ठेन दृष्टा। अग्निर्देवता। बृहती छन्दः॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २

(५५) देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम्। उद्वा

३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २

सिञ्चध्वमुपवा पृणध्वमादिद्वोदेव ओहते॥१॥

भाषार्थः-(द्रविणोदाः, देवः) अग्नि देवता (वः) तुम्हारी (पूर्णाम्, आसिचम्) भरी हुई, स्रुच् को (विवष्टु) चाहता है। तुम (उप-पृणध्वं वा) भरो और (उत्-सिञ्चध्वं, वा) ऊपर, छोड़ो (देवः) अग्नि (वः) तुम्हारी आहुति को (आत्-इत्) तत्काल, ही (ओहते) पहुंचाता है॥

अर्थात् परमात्मा विधिवाक्यद्वारा उपदेश करता है कि-अग्नि तुम्हारी भरी हुई स्रुच् को चाहता है, तुम भरो और अग्नि में सींचो अर्थात् छोड़ो। अग्नि में सींचा हुआ घृतादि व्यर्थ नहीं होता, यह बताने के लिये कहा है कि वह अग्नि तत्काल वायु आदि देवों को पहुंचा देता है। दो "वा" शब्द समुच्चयार्थ हैं अर्थात् भरो छोड़ो, भरो छोड़ो, तार बार बान्ध दो। निघं० २.९ और २।१० में द्रविण नाम धन और बल का है, अग्नि से ही शरीरों में बल है यह तो सब जानते ही हैं तथा अग्नि का बल अग्नियानों को देखने से जाना जासक्ता है और उसी से धन की प्राप्ति भी देखी जासक्ती है। इसी लिये निरुक्त ८।२ में भी धन और बल का दाता होने से अग्नि का नाम 'द्रविणोदा' ठहराया है। निरुक्त का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये जिस का तात्पर्य यह है कि "शाकपूणि आचार्य कहते हैं कि यही अग्नि 'द्रविणोदा' है, क्योंकि अग्नि के ही सूक्तों में 'द्रविणोदा' की चर्चा है जैसा कि-देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम्। यह वेदवचन है इत्यादि"। अग्नि में चाहना ऐसे ही समझिये जैसा-भींत गिरना चाहती है, वा यह रोगी मरना चाहता है अर्थात् अब मरा। इत्यादि॥ 'विवष्टु' के स्थान में 'विवष्टि' ऐसा साक्षात् पाठ भी किन्हीं पुस्तकों में पाया जाता है॥ ऋग्वेद ७।१६।११ में भी ऐसीही ऋचा है॥१॥

अथ द्वितीया-कण्वेन दृष्टा। ब्रह्मणस्पतिर्देवता। बृहती छन्दः॥

२३ १ २ ३ २ ३ २ क २र ३ १ २ १ २ ३ १र

(५६) प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता। अच्छा वीरं

२ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः॥२॥

भाषार्थः-(ब्रह्मणस्पतिः) परमात्मा (नः) हम को (प्रैतु) प्राप्त हो (देवी सूनृता) वेद की सत्यवाणी (अच्छा) भले प्रकार (प्र-एतु) प्राप्त हो (वीरम्) फैलने वाले (नर्यम्) मनुष्यों के हितकारक (पङ्क्तिराधसम्) पांच पुरुषों से सेवित (यज्ञम्) यज्ञ को (देवाः) अग्नि वायु आदि देवता (नयन्तु) लेजावें॥

मनुष्यों को तीन वस्तुओं की कामना करनी चाहिये । १-परब्रह्म की प्राप्ति,२-वेद विद्या,३-और यज्ञ। अथवा-१-यज्ञकर्त्ताओं को मन से परमेश्वर का चिन्तन,२-वाणी से वेदमन्त्रों का उच्चारण,३-और कर्म से आहुति छोड़ना और यज्ञ का सेवन ५ पुरुषों से किया जाय अर्थात् १-यजमान २-ब्रह्मा ३-अध्वर्यु ४-होता और ५-उद्गाता ॥

निघं० ५ । ४ और अष्टाध्यायी ६ । ३ । १३६ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद १ । ४० । ३ में भी ऐसा ही पाठ है ॥ २ ॥

अथ तृतीया-कण्वेन दृष्टा । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २ १ र २ र ३ २ ३ १ र

(५७) ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता। ऊर्ध्वो

२ र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥३॥

भावार्थः-प्रकरण से हे अग्ने । परमात्मन् । (नः ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (देवः, सविता, न) सूर्य देव के समान (ऊर्ध्वः) उच्च भाव से युक्त (सु, तिष्ठ) स्थित हूजिये (वाजस्य) आत्मिक बल के (ऊर्ध्वः) उच्च (सनिता) दाता हूजिये । (यत्) क्योंकि हम (अञ्जिभिः) स्नेह भक्तिवाले (वाघद्भिः) मेधावियों सहित (वि-ह्वयामहे) पूजते हैं । (ऊ) पादपूरणार्थ है ॥

हे दयालु ! पिता ! हमारी रक्षा के लिये ऊंचा हाथ करिये और हम को सूर्य के से प्रकाशित उच्चभाव से आत्मिक बल दीजिये अर्थात् महती रक्षा और आत्मिक बल का महादान दीजिये । हम सब बुद्धिमानों सहित आप की शरण में हैं, आप का पूजन करते हैं ॥

भौतिकपक्ष में-अग्ने ! तू (नः ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (देवः, सविता, न) सूर्य देव के, समान (ऊर्ध्वः) उच्च प्रदीप्त होकर (सु-तिष्ठ) भले प्रकार ठहर और (वाजस्य, ऊर्ध्वः, सनिता) बल और अन्न का, उच्च, दाता हो (यत्) क्योंकि हम (अञ्जिभिः) घृतादियुक्त (वाघद्भिः) होता आदि ऋत्विजों द्वारा (वि-ह्वयामहे) विशेष करके होम करते हैं ॥

तात्पर्य यह है कि यह भौतिक अग्नि कुण्डादि में उच्चभाव से सूर्य के समान प्रदीप्त किया जाना चाहिये । जिस से रोगादि से हमारी रक्षा हो। क्योंकि हम स्नेह अर्थात् घृतादि उत्तम पदार्थ वाले होता आदि से होम

कराते तथा करते हैं। जिस से हमारा वृष्टि द्वारा अन्न और बल बढ़े॥

इस मन्त्र में (ऊर्ध्वः तिष्ठ) इस चिह्न को देखकर किसी २ ने यज्ञ के "यूप" को खड़ा करने में इस ऋचा का विनियोग किया है। इसी कारण सायणाचार्य ने इस का " यूप " देवता लिखा है। परन्तु मूलमन्त्र में यूप वा यूप का वाचक कोई शब्द नहीं आया तथा अग्नि का प्रकरण भी आरम्भ से ही चला आता है इसलिये हम ने तो अग्नि ही देवता माना है। तथा सायणाचार्य ने भी (यद्वा, यूपात्मकदारुणिस्थाग्ने !) अर्थात् हे यूप के काष्ठ में रहने वाले अग्नि !, यह भी व्याख्या की है जिस से एक पक्ष में सायणाचार्य को भी अग्नि देवता सम्मत प्रतीत होता है॥

अष्टाध्यायी ८।३।१०७॥ ८।४।२६॥६।३।१३५॥ निघण्टु २।७॥२।९॥३।१४॥३।१५॥ ३।१८ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऋ० १।३६।१३ में भी ऐसी ऋचा है॥३॥

अथ चतुर्थी-सौभरिणा दृष्टा। अग्निर्देवता। बृहती छन्दः॥

२उ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
(५८) प्र यो राये निनीषति मर्त्तो यस्ते वसो दाशत्। स वीरं
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम्॥४॥

भावार्थः-(वसो) सब में वास करने वाले! (अग्ने) प्रकाशस्वरूप! (यः मर्त्तः) जो मनुष्य (त्मना) अपने को (राये) विद्यादि धन के लिये (प्र, निनीषति) पहुंचाना चाहता है (यः) और जो कोई (ते) आप को (दाशत्) आत्मा का समर्पण करता है (सः) वह मनुष्य अपने को (सहस्रपोषिणम्) बहुतों को पालने वाला (उक्थशंसिनम्) स्तोत्रपाठी (वीरम्) और पुरुषार्थी (धत्ते) धारता बनाता है॥

जो मनुष्य विद्यादि धन की प्राप्ति की इच्छा करता है। और आत्मा को आप के समर्पित करता है। वह अपने को वीर, सर्वोपकारक और स्तोत्रपाठी बनाता है। अर्थात् परमात्मा की कृपा से वह इन लक्षणों से युक्त हो जाता है॥

भौतिकपक्ष में-(वसो) आठ ८ वसुओं में एक (अग्ने) अग्ने! (यः, मर्त्तः, त्मना, राये, प्र, निनीषति) जो, मनुष्य, अपने को, धनादि के लिये, पहुंचाना चाहता है (यः, ते) जो, तेरे लिये (दाशत्) हविः देता है (सः) वह

मनुष्य अपने को (महस्तपोविणम्, उक्थशंसिनम्, वीरं, धत्ते) सर्वोपकारक, स्तोत्रपाठी और वीर बनाता है ॥

निघण्टु ३।१०॥२।३॥३।१॥ अष्टाध्यायी ६।४।१४१ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ८।१०३।४ में "प्र यं राये निनीषसि" ऐसा पाठ और अर्थ में भी भेद है ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमी—कण्वेन दृष्टा । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३

(५९) प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम्। अग्निꣳसूक्तेभि-

१ २ ३ २३ ३ २ ३ १ २

र्वचोभिर्वृणीमहे यꣳ समिदन्य इन्धते ॥५॥

भावार्थः—(वः) तुम (पुरूणाम्) बहुत (देवयतीनाम्) ईश्वरभक्त (विशाम्) प्रजाओं के (हितकर) (यह्वम्) महान् (अग्निम्) परमात्मा का (सूक्तेभिः, वचोभिः) सूक्तरूप, वेदवाक्यों सहित (प्र, वृणीमहे) हम वरण करते हैं (यम्) जिस का कि (अन्ये, इत्) और लोग, भी (सम्-इन्धते) भले प्रकार ध्यान करते हैं ॥

भौतिकपक्ष में-(वः, पुरूणां, देवयतीनां, विशां, यह्वम्, अग्निम्) तुम, बहुत, यज्ञप्रिय, प्रजाओं के [हितकारी], बड़े, अग्नि को (सूक्तेभिः, वचोभिः, प्र-वृणीमहे) हम सूक्तरूप, वेदवाक्यों के साथ, अच्छे प्रकार से आधान करते हैं। (यम्, अन्ये, इत्, सम्-इन्धते) जिस का कि, और लोग, भी, भले प्रकार ध्यान करते हैं ॥

निघण्टु ३।३॥ अष्टाध्यायी ७।१।१० के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद १।३६।१ में "वचोभिरीमहे यं सीमिदन्य ईळते" इतना उत्तरार्ध में पाठभेद है ॥ ५ ॥

अथ षष्ठी—वात्स्कीलेन दृष्टा । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

३ २ ३ २ ३ २ ३ १ ३ १२ २२ ३ १ २

(६०) अयमग्निः सुवीर्यस्येशे हि सौभगस्य । रायईशे

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

स्वपत्यस्य गोमतईशे वृत्रहथानाम् ॥६॥

भावार्थः—(अयम्) यह (अग्निः) परमात्मा वा भौतिक (सुवीर्यस्य, सौ-

भगस्य, हि) सुन्दर वीर्य और सौभाग्य का (ईशे) स्वामी है। (रायः) धन का (स्वपत्यस्य) सुन्दर सन्तान का (गोमतः) और गवादि पशुयुक्त होने का (ईशे) अधिकारी है। तथा (वृत्रहथानाम्) वृत्र जो रोगादि शत्रु असुर उन के नाशों का (ईशे) अधिष्ठाता है ॥

परमात्मा की भक्ति और भौतिक अग्नि में हवन करने वा उस से अनेक विध शिल्पप्रयोगादि द्वारा मनुष्यों को बल वीर्य पुरुषार्थ सौभाग्य धन सुसन्तान और गवादि पशु प्राप्त होते हैं और सर्व दुष्ट रोगादि असुर शत्रुगण का नाश होता है। क्योंकि परमात्मा वा भौतिकाग्नि इन सब का ईशिता है ॥ उणादि २। २ सूत्र संस्कृतभाष्य में देखिये। जिस से 'वृत्रहथानाम्' पद सिद्ध होता है। परन्तु इस पद की सिद्धि में सत्यव्रत सामश्रमी जी की छपाई कलकत्ते की सायणभाष्यसहित सामवेद संहिता की टिप्पणी में भूल से (देखो संस्कृतभाष्य पृ० १२८ पं०२१-२२) दो सूत्र इस पद की सिद्धि में छपे हैं, जिन से यह पद सिद्ध नहीं हो सक्ता। इस की देखा देखी अटकल पच्चू पं० ज्वालाप्रसाद भार्गव ने भी वही दोनों सूत्र अपने भाष्य में टीप दिये। यह नहीं विचारा कि धन आदेश से और इस से क्या सम्बन्ध। और यह भी नहीं सोचा कि अष्टाध्यायी के सप्तमाध्याय प्रथम पाद में १५५ समस्त सूत्र भी नहीं किन्तु १०३ हैं फिर "तप्तनप्तनथनाश्च" की संख्या १५५ कैसे हो सक्ती है किन्तु ४५ है। कलकत्ते की छपी ऊपर लिखी ऐसियाटिकसुसाइटी की पुस्तक से ज्यों का त्यों अशुद्ध १५५ का अङ्क उद्धृत कर दिया, न सूत्र संख्या देखी, न उन सूत्र के विषय को विचारा, शोक ! ॥६॥

अथ सप्तमी-वसिष्ठेन दृष्टा। अग्निर्देवता। बृहती छन्दः ॥

१ २ ३१२३ १२ २२ ३ १ १२ २२
(६१) त्वमग्ने गृहपतिस्त्वꣳहोता नो अध्वरे। त्वं पोता

३ १२ ३ २ ३ १ ५ ३ १ २
विश्ववार प्रचेता यक्षि यासि च वार्यम् ॥७॥

भाषार्थः-(अग्ने) प्रकाशस्वरूप! (विश्ववार) सब को भक्ति करने योग्य! परमात्मन्! (त्वम्) आप (नः) हमारे (अध्वरे) ज्ञानयज्ञ में (गृहपतिः) यजमान हैं (त्वम्) आप ही (होता) होता हैं (त्वम्) आप ही (पोता) शुद्ध करने वाले हैं (प्रचेताः) चेताने वाले भी आप ही हैं (यक्षि) यज्ञ भी आप ही करते हैं (च) और (वार्यं, यासि) कर्म फल भी, आप ही पहुंचाते हैं ॥

यद्यपि ज्ञानयज्ञ में जीवात्मा, यजमान और वाणी आदि होता पोता प्रचेता आदि ऋत्विज् हैं, परन्तु परमात्मा की कृपा विना कुछ नहीं, इस लिये परमात्मा की मुख्यता दिखाने को यह कहा गया है कि आप ही सब कुछ हैं ॥

भौतिक पक्ष में-(अग्ने) अग्ने ! (विश्ववार) सब को स्वीकार करने योग्य ! (त्वम्) तू ही (नः) हमारे (अध्वरे) कर्मयज्ञ में (गृहपतिः) घर धणी यजमान है और (त्वं, होता) तू ही, होता (त्वं, पोता) तू ही शोधने वाला (प्रचेताः) चेताने वाला है । (यक्षि) तू ही यज्ञ करता है (च) और (वार्यं, यासि) हव्य, पहुंचाता है ॥

यद्यपि कर्मयज्ञ में भिन्न २ यजमान होता पोता प्रचेता आदि ऋत्विज् होते हैं, परन्तु मुख्य अग्नि है इस लिये उस की मुख्यता दिखाने को यह कहा है कि अग्नि ही सब कुछ है ॥ ऋग्वेद ७ । १६ । ५ में "यक्षि वेपि च" ऐसा पाठ है ॥ ७ ॥

अथाऽष्टमी-विश्वामित्रेण दृष्टा । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

(६२)सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्त्तास ऊतये । अपान्नपातꣳ

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

सुभगꣳसुदꣳससꣳसुप्रतूर्त्तिमनेहसम् ॥ ८ ॥

*** इति षष्ठी दशतिः ॥ ६ ॥ ***

भाषार्थः-हम (सखायः) मित्र (मर्त्तासः) मनुष्य (त्वा) आप (देवम्) दिव्यगुणयुक्त(अपान्नपातम्) कर्मों के न गिराने वाले अर्थात् कर्मों के अनुसार याथातथ्य फल देने वाले, कर्मों का निक्षेप[अमानत वा धरोहर] रखनेवाले (सुभगम्) शोभन ऐश्वर्यशाली (सुदꣳससम्) उत्तम कर्मों के कर्त्ता (सुप्रतूर्त्तिम्) तत्क्षण कार्य करने वाले (अनेहसम्) उपद्रवरहित शान्तस्वरूप परमात्मा को (ऊतये) रक्षा के लिये (ववृमहे) सेवित करते हैं ॥

मनुष्यों को परस्पर मित्र होकर उक्त गुणयुक्त परमात्मा की स्तुति उपासना करनी चाहिये ॥

भौतिकपक्ष में-(सखायः, मर्त्तासः) हम मित्र, मनुष्य (त्वा, देवम्) तुझ देव (सुभगम्) शोभन ऐश्वर्यकारक (सुदꣳससम्) शुभ कर्म यज्ञादि के सहायक

(सुप्रतूर्त्तिम्) तीव्रतायुक्त (अनेहसम्) उपद्रव की शान्ति करने वाले (अपांनपातम्) अग्नि का (ऊतये) रोगादि शत्रुओं से बचने के लिये (वृणीमहे) वरण करते हैं ॥

अर्थात् उक्तगुणयुक्त अग्नि का सुप्रयोग करके मित्रतापूर्वक काम में लाना चाहिये ॥ अग्नि का नाम "अपांनपात्" इस लिये है कि यह अप्=जलों का, नपात्=पौत्र वा नप्ती है। इस विषय में निरुक्त८।५ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये। जिसका अर्थ यह है कि "तनूनपात्" और "अपांनपात्" अग्नि को कहते हैं, ऐसा शाकपूणि आचार्य का मत है। क्योंकि अन्तरिक्ष में फैले हुवे जल को अप् और तनू कहते हैं, उन जलों का पौत्र अग्नि को इस कारण माना है कि जल से ओषधि वनस्पति और ओषधि वनस्पति काष्ठों में से अग्नि उत्पन्न होता है। इसलिये अग्नि-जलों का पौत्र=नपात् वा नप्ता है ॥

निघं० २।१॥२।१३ के प्रमाण भी संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ३।९।१ में "सुभगं सुदीदितिम्" ऐसा पाठ है ॥८॥

* यह छठी दशति समाप्त हुई ॥६॥ *

---:o:---

खरहयोराजुहोतेति त्रिष्टुभो दश पञ्च च ॥
अग्निं नरो विराट्, चित्र- इमं स्तोममिति द्व्यृचः ॥
आगतोऽग्नेऋचः सर्वाः, पूष्णः शुक्रन्तइत्यसौ ॥

अथ सप्तमी दशतिस्तत्र प्रथमायाः-श्यावाश्वोवामदेवोवा ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
(६३) आ जुहोता हविषा मर्जयध्वं नि होतारं गृहपतिं दधिध्वम्
३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र
इडस्पदे नमसा रातहव्यꣳसपर्यता यजतं पस्त्यानाम् ॥१॥

भावार्थः-परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्यो! तुम (पस्त्यानाम्) घरों में (इडः, पदे) पृथिवी के, ऊपर [कुण्ड में] (गृहपतिम्) घर के रक्षक [अग्नि] का (नि, दधिध्वम्) नितरां आधान करो। (हविषा)

घृतादि से (आ-जुहोता) सब ओर से होम करो । (मर्जयध्वम्)[इधर उधर वेदी के] मार्जन करो । (रातहव्यम्) जिसने हव्य दिया उस (होतारम्) होता नामक ऋत्विज् को (नमसा) नमस्कारादि से (सपर्यता) सत्कृत करो ।(यजतम्) इस प्रकार यज्ञ करो । इसमें मनुष्य को यह उपदेश है कि तुम घरों में पृथ्वीपर अग्निकुण्ड में अग्न्याधान करो । घृतादि की आहुति दो। वेदी के समीप मार्जन [शुद्धि] करो । जिस होता आदि से यज्ञ कार्य कराओ उस का नमस्कारादि से वा अन्नादि द्रव्यों से सत्कार करो । इस प्रकार स्त्री पुरुष मिलकर यज्ञ किया करो ॥

ईश्वरपक्ष में-हे मनुष्यो ! तुम (पस्त्यानाम्) मन्दिरों में (इडः पदे) इडा नाड़ी के अधिष्ठान में (गृहपतिम्) घर आदि के स्वामी परमात्मा का (नि-दधिध्वम्) नितरां, ध्यान करो । (मर्जयध्वम्) मार्जन अर्थात् देह और आत्मा की शुद्धि करो । (रातहव्यम्)जिसने भक्ति का स्वीकार किया उस (होतारम्) फलप्रदाता को (नमसा) नमस्कार से (सपर्यता) पूजा करो । (यजतम्) इस प्रकार (स्त्री पुरुष वा गुरु शिष्य दोनों) उपासना किया करो ॥

निघं० १।१॥३।५॥३।४॥ अष्टाध्यायी ६।३।१३३ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः-वाष्ट्रह्व्योवार्पह्व्योवा उपस्तुतो वा ऋषिः ।
अग्निर्देवता । जगती छन्दः ॥

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

(६४)चित्रइच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावन्वेति धातवे

३ १२ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ १ २

अनूधा यदजीजनदधा चिदा ववक्षत्सद्यो महि दूत्यं चरन् ॥२॥

भावार्थः-परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्य ! (शिशोः) उत्पन्न होते ही [तरुणस्य] युवा के तुल्य काम करने वाले [अग्नि-प्रकरण से] का (वक्षथः) हविः ले जाना (चित्रः इत्) आश्चर्य ही है । (यः) जो कि (धातवे) स्तनपान के लिये (मातरौ) दोनों उत्तरारणि और अधरारणि रूप माताओं को (न, अन्वेति) नहीं, साथ लगता । किन्तु (यत,चित्) जब, ही (अजीजनत्) तुमने उत्पन्न किया (अध, सद्यः) तत्काल ही (अनूधाः) बाख विना ही (महि, दूत्यम्) भारी, दूत का काम (चरन्) करता हुआ (आ-ववक्षत्)

हव्य पहुंचाने लगता है ॥

तात्पर्य यह है कि जब बालक उत्पन्न होता है तो कुछ काल पर्यन्त बाल्यावस्था में कोई परिश्रम का काम नहीं करता, केवल माता का दुग्ध पीता और पुष्ट होता है। तब पीछे बड़ी अवस्था होने पर काम कर सक्ता है। परन्तु अग्नि का देवतों को हव्य पदार्थ पहुंचाना आश्चर्य है, जो शिशु ही तरुण है अर्थात् उत्पन्न होते ही बाल्य [स्तन] का सेवन विना किये ही अपनी माता के तुल्य अरणियों में पुष्टयर्थ कुछ काल बालक के समान श्रम-रहित वास नही करता। किन्तु तुम्हारे रगड़ने से दो अरणियों में उत्पन्न होते ही युवा के तुल्य अपना दूतकर्म अर्थात् वायु आदि देवतों को हव्य पहुंचाना रूप महत् कर्म करने लगता है ॥

महाभाष्य (३।१।८५ आ० ४) ॥ अष्टाध्यायी ३।४।९८॥८।१।७१॥२।२।२४॥५।४।१३१॥ ५।४।१२० के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ पं० ज्वालाप्रसाद् भार्गव ने छापे की अशुद्धि जैसी कि कलकत्ते की छपी सायणभाष्ययुक्त पुस्तक में छपी थी ज्यों की त्यों उद्धृत करदी, अष्टाध्यायी खोलकर नहीं देखी कि 'व्यत्ययो बहुलम्' सूत्र ३।४।९८ पर नहीं है किन्तु ३।१।८५ पर है। तथा 'दूत-कर्म' इस नपुंसकलिङ्ग का अपने संस्कृत में "महान्तम्" यह पुल्लिङ्ग जोड़कर समानाधिकरण कर डाला है ॥ ऋग्वेद १०।११५।१ में पाठ में बहुत अन्तर है (संस्कृत में देखिये) ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः-बृहदुक्थ ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(६५) इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषासंविशस्व

३ १ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
संवेशनस्तन्वे३चारुरेधिप्रियो देवानां परमे जनित्रे॥३॥

भावार्थः-[प्रकरण से अग्ने!] (ते) तेरी (इदम्) यह विद्युद्रूप (एकम्) एक (ऊ) और (ते) तेरी (परः) दूसरी आदित्यरूप (एकम्) एक [ज्योति है] (तृतीयेन) तीसरी पार्थिव (ज्योतिषा) ज्योतिः से (संविशस्व) आधान किया जावे। (परमे) श्रेष्ठ (जनित्रे) यज्ञ में (संवेशनः) आधान किया हुआ तू (देवानाम्) वाय्वादि देवों के (तन्वे) देह के लिये (प्रियः) प्यारा

और (चारुः) सुशोभित (एधि) होवे ॥

जगत् में अग्नि की तीन ज्योतियां हैं-१ विद्युत् । २ आदित्य । ३ सामान्य पृथिवी पर का अग्नि । इन में से तीसरी ज्योति से अग्नि का कुण्ड में आधान होता है और तब वह यज्ञ में स्थित अग्नि, वाय्वादि देवों के शरीरों का सुधार करता है । शोभा और प्रसन्नता को उत्पन्न करता है ॥ सायणाचार्य ने इस के भाष्य में वाशिनामक बृहदुक्थ के मृतपुत्र की कथा लिखी है परन्तु यहां उस का लेश भी मूल में नहीं है ॥

उणादि १ । ८० और ४।१५९ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद (१०।५६।१) में "संवेशने तन्वश्चारुः" ऐसा पाठ है ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः-कुत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । जगती छन्दः ॥

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(६६) इमꣳ स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सम्महेमा मनीषया

३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १र २ र ३ १ २

भद्रा हि नः प्रमतिरस्य सꣳसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥४॥

भावार्थः-(वयम्) हम उपासक लोग (इमम्, स्तोमम्) इस, स्तोत्र के(अर्हते) योग्य (जातवेदसे) वेदप्रकाशक परमात्मा को (मनीषया) सूक्ष्म बुद्धि से (रथमिव) रथ के समान (सम्महेमा) बढ़ावें । (अस्य) इस परमात्मा की (सꣳसदि) ध्यानशाला में (नः) हमारी (प्रमतिः) पवित्र बुद्धि (भद्रा, हि) सुधरती, ही है । (अग्ने) हे ज्योतिःस्वरूप।(तव) आप की (सख्ये) अनुकूलता में (मा) न (रिषामा) दुःखी होवें॥

तात्पर्य यह है कि परमात्मा उक्त प्रकार की स्तुति के योग्य है और हम को उचित है कि उस का वेद की श्रुतियों से थोड़ा सा श्रवण करके फिर अपनी बुद्धि से उसे बढ़ावें अर्थात् जिस प्रकार थोड़े से चलाये हुवे रथ को फिर अपनी बुद्धि से सारथि नवीन मार्गों में भी चला सकता है इसी प्रकार परमात्मविषयक ज्ञान की वृद्धि करें । क्योंकि उस के शरण में रहने से बुद्धि उज्ज्वल होती है और हिंसादि सब दुःख दोष दूर होते हैं ॥

भौतिकपक्ष में-(वयम्) हम याज्ञिक वा शिल्पी लोग (इमम्, स्तोमम्) इस, वेदोक्त गुणवर्णन के (अर्हते) योग्य (जातवेदसे) अग्नि को (मनीषया) बुद्धि से (रथमिव) रथ के समान (सम्महेमा) बढ़ावें। (अस्य) इस

अग्नि के (मधुमदि) यज्ञस्थल पर (नः) हमारी (प्रमतिः शुद्ध बुद्धि भद्रा, हि) सुधरती ही है । (अग्ने) अग्ने! (तव) तेरी (सख्ये) अनुकूलता में (मा) न (रिषामा) दुःखी होवें ॥

अग्नि स्तुतियोग्य अर्थात् इस वेदोक्त रीति से वर्णन करने के योग्य है। हम को उचित है कि इस के गुणों को बुद्धि से बढ़ावें अर्थात् थोड़ा वेद से सुन कर फिर अपनी बुद्धि और अनुभव से उस विषय में ज्ञान बढ़ावें । इस अग्नि के वर्णन रूप स्तोत्र से बुद्धि तीव्र होती है तथा इस के गुणों को जान कर सुप्रयोग करने से हिंसादि दुःख निवृत्त होते हैं ॥

अष्टाध्यायी ६।३।१३७ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वा ऋषिः ॥ अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २

(६७) मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम्

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ॥

भावार्थः—(देवाः) विद्वान् ऋत्विज् लोग (नः ऋते) हमारे, यज्ञ में (पृथिव्याः, दिवः, मूर्धानम्, अरतिम्,) पृथिवी से, द्युलोक के, ऊर्ध्व भागको जाने वाले (वैश्वानरम्) सब मनुष्यों के हितकारी (जातम्) उत्पन्न (कविम्) दिखाने वाले (सम्राजम्) दहकते हुवे (अतिथिम्) सदा चलने वाले (जनानां पात्रम्) प्राणियों के, रक्षक (आसन्) [देवों के] मुख । अग्निम् (अग्निको) (आ, जनयन्त) सब ओर से प्रकट करें ॥

अग्नि, पृथिवी से हव्य लेकर ऊपर द्युलोक को जाता, वहां जाकर वायु जलादि की पवित्रता द्वारा मनुष्यों का हित करता, उत्पन्न होकर प्रकाश से दिखाने का काम करता, स्वयं प्रकाशित होता, सदा ऊपर को चलता ही रहता, प्राणियों की रक्षा करता और वायु आदि देवों का मुख है, इसी से वे हव्य पदार्थ खाते हैं। इस प्रकार के अग्नि को अपने यज्ञ में विद्वान् ऋत्विजों से स्थापित कराके यज्ञ करना चाहिये ॥

उणादि ४ । ५९, ६० ॥ ३ । ८९ ॥ ४ । २ । ४ । १५९ ॥ निघं० ५ । ४ ॥ अष्टाध्यायी ६ । १ । ६३ ॥ ७ । १ । ३९ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ६ । ७ । १ में "आसन्ना पात्रम्" ऐसा पाठ है ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ्याः-भरद्वाजो भारद्वाजो वा ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

२उ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २

(६८) वित्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरग्ने जनयन्त देवाः

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

तं त्वा गिरः सुष्टुतयो वाजयन्त्याजिन्न गिर्ववाहो जिग्युरश्वाः

भाषार्थः-(अग्ने) अग्ने ! (देवाः) विद्वान् लोग (उक्थेभिः) वेदवाक्यों द्वारा (त्वत्) तुझ से (वि) विविध अस्त्रादि को (जनयन्त) उत्पन्न करते हैं । (न) जैसे (पर्वतस्य, पृष्ठात्) मेघ के, पृष्ठ से (आपः) [मेघस्थ] जल, (वि) अनेकविध विद्योतमान बिजुलियों को उत्पन्न करते हैं, तद्वत् । (तं, त्वा) उस, तुझ [अग्नि] को (सुष्टुतयः, गिरः) शोभन स्तुतिरूप, वेद-वाणियें (वाजयन्ति) बलिष्ठ करती हैं । और तब (न) जैसे (गिर्ववाहः) कहने में लेचलनेवाले (अश्वाः) घोड़े (आजिम्) संग्राम को (जिग्युः) जीतते हैं [तद्वत् तू संग्राम को जीतता है] ॥

तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार मेघस्थ जल अपने में से विविध प्रकार चमकने वाली बिजुलियों को उत्पन्न करते हैं । इसी प्रकार विद्वान् लोग भी वेदवाक्यों से अग्नि के गुणों को जान कर तदनुसार अनुभव करके अनेक विध अस्त्रों को अग्नि से उत्पन्न करें । क्योंकि वेद के वचन उस अग्नि को बलवान् करते हैं अर्थात् ऐसी रीति बताते हैं जिस के द्वारा आग्नेय बल उत्पन्न हो जावे । और जैसे कहने में चलने वाले घोड़ों के द्वारा युद्ध में दूरस्थ शत्रुओं को शीघ्र जीत सक्ते हैं । इसी प्रकार यह अग्नि भी अपने बल से अस्त्रादि रूप में परिणत हुआ, दूरस्थ शत्रुओं का पराजय करके अपना जय कराता है ॥

निघं० १।१०॥ २।९॥ उणादि ३।११०॥ शतपथ ब्राह्मण ॥ अष्टाध्यायी ३।४।६ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ६।२४।६ में "उक्थेभिरिन्द्रानयन्त यज्ञैः । तं त्वाभि सुष्टुतिभिर्वाजयन्त आजिं न जग्मुर्गिर्वाहो अश्वाः" ऐसा पाठ और अर्थ में भी भेद है तथा इन्द्र देवता है ॥६॥

अथ सप्तम्याः-वामदेवऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३

(६९) आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रꣳहोतारꣳसत्ययजꣳ

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
रोदस्योः। अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्य-
३ १ २
रूपमवसे कृणुध्वम् ॥ ७ ॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! (वः) तुम्हारे (तनयित्नोः) बिजुली के तुल्य (अचित्तात्) मृत्यु से (पुरा) पहिले ही (अध्वरस्य, राजानम्) योगयज्ञ के, राजा (होतारम्) कर्मफलदाता (रुद्रम्) पापियों को रोदन कराने वाले (रोदस्योः) द्यावापृथिवी के मध्य में (सत्ययजम्) सच्चा यज्ञ करने वाले (हिरण्यरूपम्) ज्योतिःस्वरूप (अग्निम्) प्रकाशमान परमात्मा को (अवसे) रक्षा के लिये (आ-कृणुध्वम्) बुलावो॥

अर्थात् बिजुली के समान मृत्यु शिर पर गर्जता है उस से पूर्व ही तुम लोग उक्तगुणयुक्त परमात्मा के शरण में प्राप्त हो जाओ, पीछे पछितावोगे॥

भौतिकपक्ष में-हे मनुष्यो! (वः) तुम्हारे (तनयित्नोः, अचित्तात्, पुरा) विद्युत्तुल्य, मृत्यु के, पूर्व ही (अध्वरस्य, राजानम्) कर्मकाण्ड के, राजा (होतारम्) हव्य ले जाने वाले (रोदस्योः, सत्ययजम्) द्युलोक और पृथिवी के बीच में, यथार्थ देवयजन करने वाले (हिरण्यरूपम्) तेजोयुक्त (रुद्रम्) प्रचण्ड (अग्निम्) अग्नि का (अवसे) रोगादि शत्रुओं से बचने के लिये (आ-कृणुध्वम्) आधान करो॥

अर्थात् मनुष्यो! तुम को मृत्यु पर्यन्त उक्तगुणयुक्त अग्नि का स्थापन करके यज्ञ करना चाहिये, मरने पर क्या बन पड़ेगा। यह अग्निहोत्र रोगादि की शान्ति वाय्वादि की शुद्धि करके मृत्यु से बचाने वाला है॥

निघण्टु ३।१० का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऋग्वेद ४।३।१ में भी सर्वथा ऐसा ही पाठ है॥७॥

अथाऽष्टम्याः-वसिष्ठ ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्छन्दः॥

३ २उ ३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(७०) इन्धे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २
नरो हव्येभिरीडते सबाध आग्निरग्रमुषसामशोचि॥८॥

भावार्थः-(यस्य) जिस परमात्मा का (प्रतीकम्) स्वरूप (घृतेन) प्रकाश से (आहुतम्) सब ओर से व्याप्त है। और जिस को (सबाधः) योगयज्ञ के ऋत्विज् (नरः) लोग (हव्येभिः) भक्तिरूप हव्यों के साथ (ईडते) स्तुति करते हैं। और जो (नमोभिः) नमस्कार वा प्रणामों से (सम्-इन्द्धे) हृदय में भले प्रकार प्रकाश करता है। वह (राजा) तेजोमय (अर्य्यः) चराचर का स्वामी (अग्निः) परमात्मा (उषसाम्, अग्रम्) उषःकाल में (आ, अशोचि) [उपासकों के हृदय में] सर्वतः पवित्रता करे॥

मनुष्यों को उचित है कि प्रातःकाल उठ कर परमप्रकाश, उपासकों से ध्याये हुये, सर्वाध्यक्ष, सर्वपूज्य, परमात्मा का ध्यान करें। जिस से वह अन्तः-करण को पवित्र करे और अविद्या की निवृत्तिद्वारा सर्व दुःख दूर हों॥

भौतिकपक्ष में-(यस्य) जिस अग्नि का (प्रतीकम्) स्वरूप (घृतेन) घृतादि हव्य से (आहुतम्) सब ओर से होम द्वारा हुत किया गया है। और जिस को (सबाधः) ऋत्विज् (नरः) लोग (हव्येभिः) होमने योग्य पदार्थों के साथ (ईडते) मन्त्रोक्तवर्णित करते हैं। और जो (नमोभिः) अन्न अर्थात् स्थाली-पाकादि चरु से (सम्-इन्द्धे) सम्यक् प्रदीप्त होता है। वह (राजा) देदीप्यमान (अर्य्यः) यज्ञ का स्वामी (अग्निः) प्रसिद्ध अग्नि (उषसाम्-अग्रम्) प्रातःकाल ही (आ, अशोचि) सर्वतः, पवित्र करे॥

उक्तगुणयुक्त अग्नि में नित्य प्रातःकाल उठते ही होम करना चाहिये जिस से वायु जल घर बाहर को पवित्र शुद्ध स्वच्छ करे॥

अष्टाध्यायी ३। १। १०३ निघण्टु ३। १८॥ उणादि ३। ८९ इत्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ऋग्वेद ७। ८। १ में "अग्निरग्र" पाठ है॥८॥

अथ नवम्याः-त्रिशिरास्त्वाष्ट्र ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्छन्दः॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ १

(७१)प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति।

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध॥९॥

भावार्थः-(अग्निः) अग्नि (बृहता, केतुना) बड़ी, लपट से (दिवः,चित्) द्युलोक के, भी (अन्तात्) पर्य्यन्त तक (प्र, याति) जाता है। (रोदसी) द्यावाभूमियों के मध्य में (आ) अतिव्याप्त होकर (वृषभः) वृष्टि का हेतु

(रोरवीति) गर्जता है । (अपाम्, उपस्थे) मेघस्थ जलों के, उपस्थान अन्तरिक्ष में (उपमाम्) समीप (उदानट्) ऊपर को व्यापता है। इस प्रकार (महिषः) महान् (ववर्ध) बढ़ता है ॥

इस मन्त्र में अग्नि का माहात्म्य दिखलाया है कि यही अग्नि ऊपर जाकर अन्तरिक्ष द्युलोक और मेघ को व्याप्त करके स्थित है। मेघों में गर्जन और वर्षा का हेतु भी यही है। इत्यादि ॥

उणादि ४।३४। निरुक्त ८।२२। निघण्टु २।१६॥३।३ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद में (१०।८।१) "दिवश्चिदन्ताँ उपमाँ उदानट्" ऐसा पाठ है ॥ ९ ॥

अथ दशम्याः-वसिष्ठ ऋषिः। अग्निर्देवता। विराट् छन्दः ॥

(७२)अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम्
दूरेदृशं गृहपतिमथव्युम् ॥ १० ॥

*** इति सप्तमो दशतिः ॥७॥ ***

भावार्थः-(नरः) हे मनुष्यो ! (दूरेदृशम्) दूर से दीखने वाले (गृहपतिम्) घर के पालक (अथव्युम्) गमनशील (प्रशस्तम्) उत्तम (हस्तच्युतम्) हस्तगत (अग्निम्) अग्नि को (अरण्योः) दो अरणियों में (दीधितिभिः) अङ्गुलियों से [रगड़कर] (जनयत) उत्पन्न करो ॥

निघण्टु २।१४॥२।१४॥ निरुक्त ५।१० के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ७।१।१ में "हस्तच्युती जनयन्त" और "अथर्युम्" इतना भेद है ॥ १० ॥

*** यह सातवीं दशति समाप्त हुई ॥ ७ ॥ ***

——:०*०:——

अथाऽष्टमी दशतिस्तत्र प्रथमायाः-बुधगविष्ठिरावृषी। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(७३) अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम्
३ २ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यह्वाइव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्त्रते नाकमच्छ १

भावार्थः—(अग्निः) अग्नि (जनानाम्) यज्ञकर्त्ताओं की (समिधा) समिध् से (अबोधि) प्रज्वलित होता तब (धेनुमिव) दुग्ध देने वाली गौ के समान (आयतीम्, उषासम्, प्रति,) आती हुई, उषा के, प्रति अर्थात् प्रातः काल ही (भानवः) लपटें (वयाम्, प्र, उज्जिहानाः) पक्षी के बच्चे को, छोड़ते हुए (यह्वाइव) बड़े पक्षियों के समान (अच्छ) अच्छे प्रकार (नाकम्) द्युलोक की ओर (प्र, सस्त्रते) फैलती हैं ॥

जिस प्रकार छोटे बच्चों को छोड़ कर पक्षिगण आकाश को उड़ जाते हैं इसी प्रकार प्रातःकाल के हवन समय जब अग्न्याधान करके समिदाधान किया जाता है और अग्नि का उद्बोधन होता है तब लपटें वेदी को छोड़ कर भले प्रकार से आकाश को चलती हैं और उपकार करती हैं ॥

अष्टाध्यायी ६। ३। १३७ निघण्टु ३। ३ उणादि ३। ३२ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ५। १। १ में "सिस्त्रते" इतना पाठ भेद है ॥१॥

अथ द्वितीयायाः—वत्सप्रिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ ३ १२ २२ ३ २ ३ १ २ १ २
(७४) प्रभूर्जयन्तं महां विपोधां मूरैरमूरं पुरां दर्माणम्। नयन्तं
३ २ ३ १२ ३२ ३ १ २ ३ १२ ३२ ३ २
गीर्भिर्वना धियं धा हरिश्मश्रुं न वर्मणा धनर्चिम् ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्य ! तू (जयन्तम्) जीतने वाले (महाम्) बड़े (विपोधाम्) बुद्धिमानों के धारक रक्षक (अमूरम्) अज्ञानरहित (पुराम्, मूरैः, दर्माणम्) दुर्गों का, मूल सहित, विदारण करने वाले (वना, नयन्तम्) चिनगारियों को, ले जाने वाले (हरिश्मश्रुं,न) सूर्य की किरण के समान तेजस्वी (धनर्चिम्) अग्नि को तथा (धियम्) पुरुषार्थ को (गीर्भिः) वेदवचनानुसार (वर्मणा) कवच के साथ (धाः) धारण कर और (प्र, भूः) समर्थ, हो ॥

राजा और योद्धाओं को योग्य है कि युद्ध में कवच पहर कर, आग्नेयास्त्र का प्रयोग करें, जिससे अपना विजय, बुद्धिमान् पुरुषों की रक्षा, शत्रु-

दुर्गों का दलन हो और सामर्थ्य बढ़े। क्योंकि अग्नि सूर्यकिरण के समान सीधी रेखा में चिनगारियों सहित गोलों द्वारा उक्त कार्यसिद्ध कर सक्ता है ॥

निघण्टु ३ । १५ ॥ १ । ५ ॥ २ । १ ॥ उणादि ४ । १०८ के प्रमाण तथा ऋग्वेद १०।४६ । ५ में जितना पाठ और अर्थ का भी भेद है वह संस्कृतभाष्य में देखिये ॥

भाषार्थः-हे स्तोता ! तुम, असुर सेना के जेता, षोडशकलावतार, मेधावी भक्तों के धारक, मुरदैत्य के सेनाजनों से, पूर्ण प्रकार आदि के, विदारक, दैत्य की पाशों से निर्मुक्त षोडश सहस्र कन्याओं के स्तोत्र, और कवचों के द्वारा, उन के निवासस्थानों को, द्वारिका में पहुंचाने वाले, और धन दानसे द्वारिकावासियों के पूजक, विष्णु नाम अग्नि के, स्तुति करने को समर्थ हो और सेवा रूप कर्म को विधान कर ॥

पं० ज्वालाप्रसाद भार्गव (आगरा) का संस्कृत और भाषाभाष्य देखिये जैसाकि अक्षरशःऊपर छपा है । सब जानते हैं कि इस काण्ड का नाम आग्नेय काण्ड है । और इस मन्त्र में कहीं भी मूल में, विष्णु १६कलावतार, दैत्य-पाश-१६००० कन्या-द्वारिका इत्यादि का लेशमात्र भी नहीं है । यदि इस प्रकार के वेदार्थदूषक निर्मूल भाष्य वेदों पर न हुवे होते तो क्यों वैदिक धर्म का इतना ह्रास होता और क्यों उस ह्रास के निवारणार्थ हम को भाष्य करने की आवश्यकता पड़ती ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः-भरद्वाज ऋषिः । पूषा देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २

(७५)शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि

२ ३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

विश्वा हि माया अवसि स्वधावन् भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु३

भावार्थः-(स्वधावन्) जलयुक्त ! (पूषन्) पुष्टिकारक देव ! तू (द्यौरिव) द्युलोक सा (असि) है। (ते, शुक्रम्, अन्यत्) तेरा, वीर्य, विलक्षण है (ते, यजतम्, अन्यत्) तेरी, सङ्गति, विलक्षण है । (विषुरूपे, अहनी) विषम रूप वाले, दिन [तुझ से ही बनते हैं] (विश्वाः, मायाः, हि, अवसि) समस्त, चेतनाओं को, निश्चय, रक्षा करता है । (ते, रातिः) तेरा, दान (इह) लोक में (भद्रा, अस्तु) सुखदायक, हो [ईश्वर कृपा से] ॥

अग्निमय सूर्य के प्रकाश से पूषा देवता की उत्पत्ति है इस लिये पूषा भी आग्नेय है। अतएव आग्नेय पर्व में पूषा का वर्णन ठीक है। पृथिवी के समीप २ सूर्य के प्रकाश से एक देवविशेष होता है जो कि पृथिवी पर के समस्त प्राणी अप्राणी वा ओषधि वनस्पति आदि का विशेष कर के पोषण करता है, उसी को पूषा कहते हैं। निरुक्त १२।१६ में लिखा है कि" किरणों से पुष्टि करता है इस से पूषा कहाता है। इस का उदाहरण यह ऋचा है॥शुक्रं ते" इति। उस आग्नेय पूषा का इस मन्त्र में वर्णन है-इस का विलक्षण वीर्य है, ओषध्यादि का सेचन करता है। इस की प्रकृति भी विलक्षण है, जिससे विविध प्राकृत विलक्षणता से युक्त चित्र उत्पन्न होता है। यहही विषम (छोटेबड़े) दिन उत्तरायण और दक्षिणायन भेद से बनाता है। क्योंकि यही द्युलोक के समान गतिभेद से दिन की छोटाई बड़ाई के भेद का कारण है। यही स्वधावान्·जलयुक्त किरणों के गिराने से ओषध्यादि का पोषक है। इसी से प्रजा पुष्ट होती हैं अर्थात् चेतना का व्यवहार बढ़ता है यदि सूर्य और उस से उत्पन्न पूषा न हो तो सम्पूर्ण लोक अन्धकार तम से आवृत हुआ चेतना से रहित सा हो जाय।इसलिये इस का बुद्धियों का सहायक होना और पुष्टि पहुंचाना, हम को शुभ हो, परमात्मा ऐसी कृपा करें॥

निघण्टु ३।९॥१।१२ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ऋग्वेद ६।५८।१ में " स्वधावः " ऐसा पाठ में अन्तर है॥३॥

अथ चतुर्थ्याः—विश्वामित्रऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्छन्दः॥

१२ ३१ २ २१र २र ३१र २र

(७६) इडामग्ने पुरुदꣳसꣳसनिंगोःशश्वत्तमꣳहवमानाय

१ २ ३१र २र ३२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

साध। स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ४

भाषार्थः—(अग्ने) भौतिकाग्ने। वा परमात्मन्। (ते) तेरे लिये वा तेरी आज्ञानुसार (शश्वत्तमं, हवमानाय) निरन्तर, यज्ञ करने वाले के लिये(गोः सनिम्) गवादि पशु जाति के, देनेवाला (पुरुदꣳसम्) सर्व कर्म सहायक (इडाम्) अन्न को (साध) सिद्ध करो। और (नः) हमारा (सूनु) पुत्र (तनयः) विस्तार करने वाला (विजावा) पुत्र पौत्रादि का जनयिता (स्यात्) होवे। तथा (अग्ने) अग्ने। (सा) वह [यज्ञ से प्रीति करने वाली] (अस्मे) हमारी (सुमतिः) शोभन मति (भूतु) रहे [यह ईश्वर

वे चाहते हैं) ॥

इस में यज्ञ के ३ फलों की प्रार्थना है । १-धनधान्यादि २-सुमन्तान ३-सुमति । इसी प्रकार के वेदमन्त्र सत्येष्टि पुत्रेष्टि आदि यज्ञों के मूल प्रतीत होते हैं ॥

निघं० २।७।२।१ ॥ अष्टाध्यायी ३।२।२७।३।१।८४॥ उणादि ४।९९ आदि के प्रमाण तथा ऋग्वेद के ६ सूक्तों के पते जहां ६ बार ऐसा पाठ आया है, संस्कृत भाष्य में देखिये ॥४॥

अथ पञ्चम्याः-वत्सप्रिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१र २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २३२ ३१२
(७७) प्र होता जातो महान्नभोविन्नृषद्मा सीददपां विवर्त्तेदध-

२ ३ २ ३ १र २र ३ १र २र ३१ २३ २
द्यो धायी सु ते वयाꣳसि यन्ता वसूनि विधते तनूपाः ॥५॥

भावार्थः- (यः) जो अग्नि (होता) होमसम्पादक (प्र, जातः) वेदी में प्रकट हुवा (महान्) बहु प्रकार उपयोग के योग्य (नभोवित्) आकाश को प्राप्त होने वाला (नृषद्मा) ऋत्विजों के समीप स्थित (तनूपाः) देह का रक्षक (सु, धायी) भले प्रकार, धारण करने वाला (वयाꣳसि) अन्नों और (वसूनि) धनों को (दधत्) धारता हुवा (ते) तुझ (विधते) परिचारक यज्ञकर्त्ता के लिये (यन्ता) अन्न का और धन पहुंचाने वाला है । वह (अपां, विवर्त्ते) जलों के, लौट पोट होने के स्थान अन्तरिक्ष में (सीदत्) स्थित होता है ॥

तात्पर्य यह है कि होमादि कार्यों के मध्य में अग्नि के गुणों को जान कर उपयोग लेने से अन्न धनादि पदार्थों की प्राप्ति होती है क्योंकि वृष्टि आदि के द्वारा अन्नादि की उत्पत्ति और अनेकविध शिल्प द्वारा अनेक धन रत्नादि की प्राप्ति होती है । इस लिये परमात्मा का उपदेश है कि अग्नि का सदुपयोग करो ॥

ईश्वरपक्ष में-(यः) जो जगदीश्वर (होता) कर्मफलप्रद (प्र, जातः) भक्त के हृदय में प्रादुर्भूत (महान्) पूजनीय (नभोवित्) आकाश में व्यापक (नृषद्मा) मनुष्यों के हृदयों में वास करने वाला, इसी से (तनूपाः) देह का पालन करने वाला (सु, धायी) शोभन धारण कर्त्ता (वयाꣳसि, वसूनि) अन्नादि तथा रत्नादि धनों को (दधत्) धारता हुवा (विधते, ते) भक्ति

करने वाले, तुझ उपासक के लिये (यन्ता) उग अन्न धनादि का पहुंचाने वाला, वह (अपां विवर्त्ते) आकाश भर में (सीदत्) व्याप्त है ॥

निघण्टु २।७॥३।५ के प्रमाण और ऋग्वेद १०।४६।१ में जो पाठान्तर है वह भी संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ्याः—वसिष्ठऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(७८) प्र सम्राजमसुरस्य प्रशस्तं पुꣳसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दद्वारा वन्दमाना विवष्टु ६

भावार्थः—ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्य ! भवान् [आप] (सम्राजम्) प्रकाशमान (असुरस्य) प्राणप्रद (पुꣳसः) पौरुषयुक्त (कृष्टीनाम्, अनुमाद्यस्य) मनुष्यों के, अनुमोदनीय (तवसः) बलवान् (इन्द्रस्येव) सूर्य के, जैसे (वन्दद्वारा) प्रशंसाप्रमुख (वन्दमाना) प्रशंसनीय (प्र, कृतानि) स्वाभाविक कर्म हैं [वैसे—प्रकरण से अग्नि वा परमात्मा के] (प्रशस्तम्) उत्तम कर्मों को (प्र, विवष्टु) अधिकता से कामना करिये ॥

अर्थात् जैसे प्रत्यक्ष सूर्य प्रकाशमान हो रहा है, प्राण को दे रहा है, (क्योंकि सूर्य द्वारा ही प्राणवायु का संचार होता है) धारणाकर्षणादि पुरुषार्थ युक्त है, मनुष्यों का मोदजनक अनुमोदन योग्य है और अत्यन्त बलवान् है और जैसे इस सूर्य के प्रशंसार्ह स्वाभाविक कर्म हैं, वैसे ही अग्नि के गुण कर्म भी कामना करने योग्य हैं तथा परमात्मा जो इन दोनों में इन गुणों का नियम पूर्वक रखने वाला तथा असीम भाव से उक्त गुणों का धर्त्ता है क्योंकि सूर्यादिधारकों का भी धारक प्रकाशकों का प्रकाशक, प्राणप्रदों का प्राणप्रद, वीरों का वीर्यप्रद, मनुष्यों का परमानुमोदनीय, बलवानों का बलदाता है, उस के अतुल प्रशस्त गुण कर्मों की कामना करो ॥

निघण्टु २।९ आदि के प्रमाण तथा ऋग्वेद ७।६।१ में जो पाठान्तर है वह संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः—विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २

(७९) अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भइवेत्सुभृतो गर्भिणीभिः

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क२र ३ २

दिवेदिवईड्योजागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ॥ ७ ॥

भावार्थः-(अग्निः, जातवेदाः) परमात्मा वा भौतिक अग्नि, वेदप्रकाशक वा ज्ञान का सहायक (अरण्योः) हृदयारणियों वा काष्ठारणियों में (निहितः) अदृश्य रूप से वर्त्तमान है । दृष्टान्त-(गर्भ इव, इत, सुभृतो, गर्भिणीभिः) जैसे गर्भवती स्त्रियों के गर्भाशय में अदृश्य भाव से गर्भ रहता है । वह (जागृवद्भिः) सावधान (हविष्मद्भिः) भक्ति वा हव्य वाले (मनुष्येभिः) मनुष्यों से (दिवे दिवे) प्रतिदिन (ईड्यः) स्तुति योग्य है ॥

ऋग्वेद ३ । २९ । २ में "इव सुधितः" इतना अन्तर है ॥७॥

अथाऽष्टम्याः-पायुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ १२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३
(८०) सनादग्ने मृणसि यातुधानान्न त्वा रक्षांसि

१२ १ २ ३ १ २ ३ २ ३
पृतनासु जिग्युः । अनुदह सहमूरान्कयादो

१ २ २ ३ १ २ ३ १ २
मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥ ८ ॥

* इत्यष्टमी दशतिः ॥ ८ ॥ *

भावार्थः-(अग्ने) परमात्मन् ! वा भौतिकाग्ने ! तू (यातुधानान्) राक्षसों वा प्राणदुःखदायी प्राणी और अप्राणियों को (सनात्) शीघ्र (मृणसि) नष्ट करता है (रक्षांसि) वे राक्षस वा उक्त प्राणी अथवा अप्राणी (त्वा) तुझ को (पृतनासु) संग्रामों में (न, जिग्युः) नहीं, जीत सके हैं । इसलिये-(कयादः) मांसभक्षक उन प्राणी वा अप्राणियों को (सहमूरान्) समूल (अनुदह) भस्म कर (ते) वे (दैव्यायाः, हेत्याः) दैवी, वज्र से (मा, मुक्षत) न, बचें ॥

मनुष्यों को शिक्षा है कि वे सम्पूर्ण दुष्ट प्राणियों वा अप्राणियों से [जो वायु आदि में विकार होकर रोग और मृत्यु के कारण होते हैं] बचने के लिये परमेश्वर की प्रार्थना और अग्नि में होम तथा आग्नेयास्त्रादि का प्रयोग करें, जिस से वे दुष्ट समूल नष्ट हों और धर्मात्माओं को सुख मिले । और यह भी जानना चाहिये कि वे दुष्ट उस दैवी वज्र से बच नहीं सक्ते ॥

निघण्टु २ । १९ ॥ २ । १७ ॥ २ । २० इत्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद १० । ८७ । १९ में भी ठीक ऐसा ही पाठ है ॥ ८ ॥

*यह आठवीं दशति समाप्त हुई ॥८॥ *

——:०*०:——

दशत्योरग्नओजीति षोडशाऽनुष्टुभो मताः ।
सोमं राजानमित्येषा वैश्वदेवी ततः परा ।
आङ्गिरसी ततः शिष्टाआग्नेय्यस्तु चतुर्दश ॥

श्लोकार्थः—अग्न ओजिष्ठ० इन दो दशतियों में १६ ऋचा हैं। अनुष्टुप् छन्द है। और १० वीं दशति की पहली (सोमंरा०) के विश्वेदेवाः तथा उस से अगली (तत०) के अङ्गिरस देवता हैं। शेष १४ का अग्नि देवता है॥

अथ नवमी दशतिस्तत्र प्रथमायाः—गयस्त्रिर्ऋषिः। अग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(८१) अग्न ओजिष्ठमाभर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो ।
१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रनो राये पनीयसे रत्सि वाजाय पन्थाम् ॥१॥

भावार्थः—(अध्रिगो) हे बेरोक गति वाले (अग्ने) परमात्मन्! वा भौतिक! (ओजिष्ठम्) अतिबल (द्युम्नम्) प्रकाशमान विद्यासुवर्णादि धन (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (आ-भर) प्राप्त करा और (नः) हम को (पनीयसे, वाजाय) श्रेष्ठ अन्न और (राये) धन के लिये (पन्थाम्) मार्ग (प्र, रत्सि) जतला॥

तात्पर्य यह है कि साक्षात् अग्नि के शुद्धव्यवहार और आग्नेय तेज के धर्त्ता लोगों और परमात्मा के साहाय्य से विद्या धन बल अन्न आदि की प्राप्ति करनी चाहिये॥

निघण्टु २।९॥ २।१० इत्यादि के प्रमाण और ऋग्वेद (५।१०।१) का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥१॥

अथ द्वितीयायाः—वामदेवो भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वा ऋषिः।
अग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः॥

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ १ ३ १ २
(८२) यदि वीरो अनुष्यादग्निमिन्धीत मर्त्यः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १र १ ३ १ २
आजुह्वद्धव्यमानुषक् शर्म भक्षीत दैव्यम् ॥२॥

भावार्थः-(यदि, मर्त्यः, अग्निम्, इन्धीत) यदि, मनुष्य, परमात्मा का

ध्यान करे (अनु) और फिर (आनुषक्) निरन्तर (आजुहुत्) आत्मसमर्पण करे [तो] (वीरः, स्यात्) वीर, हो जावे और (दैव्यम्, शर्म, भक्षीत) दिव्य, मोक्षानन्द को, भोगे ॥

भौतिकपक्ष में–(यदि, मर्त्यः, अग्निम्, इन्धीत) यदि, मनुष्य, अग्नि को, प्रदीप्त करे (अनु) और फिर (आनुषक्) निरन्तर (आजुहुत) हवन क्रिया करे [तो] (वीरः, स्यात्) वीर, होजावे और (दैव्यं, शर्म, भक्षीत) दिव्य, सुख, भोगे ॥२॥

अथ तृतीयायाः-भरद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ १ २ २ २

(८३) त्वेषस्ते धूमऋण्वति दिवि सञ्छुक्र आततः ।

३ २ ३ ३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २

सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥३॥

भावार्थः-(पावक) शोधकाग्ने ! (ते, त्वेषः) तुम्ह, प्रदीप्त हुवे का (शुक्रः) शुद्धिकारक (धूमः) धुवां (दिवि, आततः, सन्) आकाश में, फैला, हुआ (ऋण्वति) [मेघरूप में] परिणत हो जाता है । (हि) निश्चय (त्वम्) तू (सूरो, न) सूर्य, सा (कृपा, द्युता) समर्थ दीप्ति के साथ (रोचसे) प्रकाश करता है ॥

तात्पर्य यह है कि अग्नि में होम करने से उस का शुद्ध धुवां आकाश में मेघ बनता है और जगत् को शुद्ध जल वर्षा कर शुद्ध अन्नादि उत्पन्न कर शुद्ध बुद्ध्यादि द्वारा उपकृत करता है । अग्नि का प्रकाश सामर्थ्ययुक्त है तथा सूर्यवत् चमकने वाला है ॥

(ध्यान रहे कि जो बातें कोटिशः वर्ष वेद के प्रकाश को व्यतीत हो जाने से सामान्य प्रतीत होती हैं वे सृष्टि और वेद के आरम्भ समय में विना वेद के बहुत दुर्ज्ञेय थीं) ॥

ऐसा ही पाठ ऋग्वेद ६ । २ । ६ में भी है ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः-भरद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः ॥

१ २ २ २ ३ १ २ २ २ ३ १ २ २ २

(८४) त्वꣳ हि क्षैतवद्यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ २

त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥४॥

भावार्थः-(अग्ने) अग्ने ! (त्वम्) तू (क्षितवत, यशः) पृथिवी के हित-कारी अणुयुक्त, जल का (पत्यसे) ऐश्वर्य बढ़ाने वाला है । (विचर्षणे, वसो !) दृष्टि के सहायक ! और ८ वसुओं में एक ! (त्वम्) तू (हि) ही (मित्रो, न) मित्र के, समान (श्रवः) अन्न [खेती] को (पुष्टिं, न) पुष्टि सी (पुष्यसि) बढ़ाता है ॥

पूर्व मन्त्र में जो अग्नि के धूम का आकाश में जाकर मेघादि परिणाम कहा था उसी को स्पष्ट इस मन्त्र में किया है कि-अग्नि ही पृथिवी के हितकारी परमाणुयुक्त जल को बर्षाय, मित्र के तुल्य, खेती को पुष्ट करता है ॥

निघण्टु १ । १२ ॥ २ । २१ ॥ ३ । ११ ॥ २ । ७ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद (६ । २ । १) में भी ऐसा ही पाठ है ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः- सूक्तवाहा द्वित ऋषिः । अग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः ॥

३ २३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
(८५) प्रातरग्निः पुरुप्रियो विशः स्तवेताऽतिथिः । विश्वे
२ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
यस्मिन्नमर्त्ये हव्यं मर्त्तास इन्धते ॥ ५ ॥

भावार्थः-(विश्वे, मर्त्तासः, विशः) समस्त, मरणधर्मी, मनुष्य (यस्मिन्, अमर्त्ये) जिस, अमर अग्नि में (हव्यम्, इन्धते) होम करते हैं वा करें, वह (पुरुप्रियः) बहुतों का प्यारा इष्ट साधक (अतिथिः) सदागमन-शील (अग्निः) अग्नि (स्तवेत) वर्णित किया जावे ॥

परमात्मा की आज्ञा है कि पूर्व दो मन्त्रों में कहे फल की प्राप्ति के लिये समस्त मनुष्यों को प्रातः ही उठ कर होम तथा मन्त्रों से अग्नि का वर्णन करना चाहिये । यह अग्नि अमर देव है और सब मनुष्य उस की अपेक्षा मरणधर्मी हैं ॥

निघण्टु २ । ३ तथा ऋग्वेद (५ । १८ । १) के उत्तरार्ध में जो अन्तर है वह संस्कृत भाष्य में देखिये ॥५॥

अथ षष्ठ्याः-वसूयव आत्रेया ऋषयः । अग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः ॥

१र २र ३ १ ३ १ २ ३ १ २
(८६) यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो ।
१ ५ ३ २ ३ २उ ३ १ २
महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजाउदीरते ॥६॥

भावार्थः-हे मनुष्य ! तू (यत, बृहत्, वाहिष्ठम्) जो, बड़ा, वाही से वाही द्रव्य है (तत्) उसे (विभावसो, अग्नये, अर्च) प्रकाश से बसे हुवे, अग्नि में, होम कर। [ऐसा करने से] (महिषीव, त्वत्, रयिः) बहुतसा, तेरा, धन और (त्वत्, वाजाः, उदीरते) तेरे, अनाज, उपजते हैं ॥

निघण्टु ३।३ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद (५।२५।७) में भी ऐसा ही पाठ है ॥६॥

अथ सप्तम्याः-सोपवनः सप्तवध्रिर्वा ऋषिः । अग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(८७) विशो विशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥७॥

भावार्थः-(वाजयन्तः) हे अन्नाभिलाषी पुरुषो ! (वः) तुम्हारे (विशो-विशः) मनुष्यमात्र के (पुरुप्रियम्) अति हितकारी (अतिथिम्) निरन्तर गति वाले (शूषस्य, दुर्यम्) सुख के, धाम (अग्निम्) अग्नि की (मन्मभिः) मन्त्रात्मक (वचः) वचनों से (वः) तुम्हारे लिये (स्तुषे) प्रशंसा करताहूं॥

अर्थात् परमात्मा का उपदेश है कि हे मनुष्यो। यदि अन्न धन धान्यादि चाहते हो तो मनुष्यमात्र के हितकर, निरन्तर गतिशील, सुख के घर, अग्नि अर्थात् आहवनीयादि भौतिक वा सूक्ष्म परमात्मा के गुण जानो । मैं तुम्हें वेदमन्त्रों से बताता हूं ॥

निघण्टु ३।४।३।६ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद (८।७४।१) में भी ऐसा ही पाठ है ॥७॥

अथाऽष्टम्याः-पुरुरात्रेय ऋषिः । अग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः ॥

३ २उ ३ २ ३ १२ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १२
(८८) बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये । यं मित्रं न
२ २२ ३ १ २ ३ २ ३ १
प्रशस्तये मर्त्तासोदधिरे पुरः ॥ ८ ॥

भावार्थः-परमात्मा उपदेश करता है कि हे मनुष्य तू (यम्, मित्रं, न) जिस का, मित्र के, समान (प्रशस्तये) स्तुति के लिये (मर्त्तासः) मनुष्य लोग (पुरः, दधिरे) मुख्यतः, ध्यान करते हैं। उस (भानवे, देवाय, अग्नये) प्रकाशमान, देव,

परमात्मा के लिये (हि) निश्चय (बृहत्, वयः, अर्च) बड़ी, आयु, अर्पित कर ॥

भौतिकपक्ष में-हे मनुष्य ! तू (य म्, मित्रं, न) जिसे, मित्र के, समान (मर्त्तासः) मनुष्य लोग (प्रशस्तये) वेदोक्त वर्णन के लिये (पुरः, दधिरे) आगे, स्थापित करते हैं उस (मानवे, देवाय, अग्नये) प्रकाशयुक्त, देव, अग्नि के लिये (हि) निश्चय (बृहत्) बड़े २ वयः) स्थालीपाकादि अन्न (अर्च) चढ़ाव ॥

सुगन्ध मिष्ट पुष्ट इत्यादि उत्तम अन्नों को घृतादि से पाक करके बड़े भारी हवन करो और साथ में वेदोक्त वर्णन करते जाओ। जिससे पूर्व प्रतिपादित वृष्ट्यादि द्वारा उपकार हो ॥

निघण्टु २। ७ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद (५।१६।१) में भी ऐसा ही पाठ है ॥ ८ ॥

अथ नवम्याः-गोपवन ऋषिः। अग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३१२३ १२३१र २र

(८९) अगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम् ।

१ २३ २३१ ३१२ ३ १२

यः स्म श्रुतर्वन्नार्क्षे बृहदनीक इध्यते ॥९॥

भावार्थः-(यः) जो परमात्मा (आर्क्षे) नक्षत्रसम्बन्धी (बृहदनीके) बड़े समूह में और (श्रुतर्वन्) विख्यात किरण वाले सूर्य में (इध्यते स्म) प्रकाश कर रहा है। उस (वृत्रहन्तमम्) दुष्टविनाशक (आनवम्) मनुष्यहितकारी (ज्येष्ठम्) महान् (अग्निम्) ज्योतिःप्रद को (अगन्म) जानो ॥

भौतिकपक्ष में (यः) जो अग्नि (श्रुतर्वन्) सूर्य तथा (आर्क्षे, बृहदनीके) नक्षत्रसम्बन्धी, बड़े समूह में (इध्यते, स्म) प्रकाश कर रहा है। उस (वृत्रहन्तमम्) मेघविदारक शत्रुविध्वंसक (ज्येष्ठम्) बड़े (आनवम्) मनुष्यों के हितकार (अग्निम्) अग्नि को (अगन्म) जानो ॥

परमात्मा का उपदेश है कि अग्नि ही सूर्यादि नक्षत्रमण्डलों को प्रकाशित कर रहा है। और सूर्य रूप से मेघ वर्षाता तथा वायु आदि की शुद्धिद्वारा मनुष्यों का हित करता है सो जानिये। सायणाचार्य ने गोपवनादि का इतिहास व्याख्यान किया है सो मूल से विरुद्ध है।

निघण्टु २।३ आदि के प्रमाण तथा ऋ० ८।७४।४ में जो पाठभेद है, वह संस्कृत भाष्य में देखिये ॥९॥

अथ दशम्याः— वामदेवः कश्यपो वा मारीचो मनुर्वा, वैवस्वत उभौ वा ऋषयः । अग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः ॥

३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ

(९०) जातः परेण धर्मणा यत्सवृद्भिः सहाभुवः । पिता

३ १२ ३ २ ३ २ ३ १र २र ३ २

यत्कश्यपस्याऽग्निः श्रद्धा माता मनुः कविः ।१०।

भावार्थः-(यत्) जो (अग्निः) अग्नि (कश्यपस्य) सूर्य का (पिता) कारण वा जनक है वही (यत्) जब [कार्यावस्था में] (सवृद्भिः) सहवर्त्ति ऋत्विजों के (सह) साथ (परेण) श्रेष्ठ (धर्मणा) धर्म यज्ञ से (जातः, अभुवः) उत्पन्न, होता है तब (श्रद्धाः) सत्य का धर्त्ता (मनुः) मननशील (कविः) मेधावीपुरुष [उस अग्नि की] (माता) माता के तुल्य जन्मदाता होता है ॥

यह एक विचित्रबात है कि जिस कारणरूप अग्नि से महान् तेजस्वी सूर्य पुत्र जन्मता है, और जो अग्नि इस कारण सूर्य का पिता कहा जा सक्ता है वही अग्नि, कार्यरूप में परिणत होने से यज्ञ में ऋत्विजों के साथ होकर उत्पन्न होता है, तब अग्न्याधान करने वाले मेधावी मननशील पुरुष का पुत्र होजाता है, और वह पुरुष उस अग्नि को जन्म देने वाला होने से माता के तुल्य होजाता है ॥

निघं० १ । १२ ॥ ३ । १० ॥ ३ । १५ ॥ महाभाष्य आ० २ ॥ उणादि १ । १० के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥

पं० ज्वालाप्रसाद भार्गव ने अपने भाष्य में "धर्मेणकृ यज्ञनाम है निघं० ३ । १७" ऐसा लिखा है । परन्तु निघण्टु के तृतीय पाद सत्रहवें खण्ड में धर्म शब्दहै, घर्म नहीं । वास्तव में इन्होंने निघण्टु तो देखा नहीं केवल सत्यव्रत सामश्रमी जी की टिप्पणी में देख कर ज्यों का त्यों उद्धृत कर दियाहै । सामश्रमी जी ने लेखभ्रम से घ का ध समझा होगा । भला इस प्रकार के पुरुष भाष्यकार बने तब देश वा धर्म रसातल को न पहुंचे तो क्या हो । १० ।

* यह नवमी दशति पूर्ण हुई ॥ ९ ॥ *

अथ दशमी दशतिस्तत्र प्रथमायाः—अग्निस्तापस ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। अनुष्टुप्छन्दः।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ

(९१) सोमꣳराजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे। आदित्यं

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

विष्णुꣳ सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥ १ ॥

भावार्थः—हम (आदित्यम्) प्रकृति से उत्पन्न (अग्निम्) अग्नि (वरुणम्) जल और (राजानम्) प्रकाशमान (सूर्यम्) सूर्य को तथा (विष्णुम्) व्यापक (ब्रह्माणम्) जगत्कर्त्ता (बृहस्पतिम्) परमात्मा को (च) भी (अनु-आ-रभामहे) सत्कृत करते हैं ॥

जब हम होम करते हैं तो अग्नि जल सूर्यादि आदित्यमण्डल को अपने अनुकूल करते हैं। तथा परमात्मा की आज्ञा के पालने से उसे भी प्रसन्न करते हैं ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः—वामदेव ऋषिः। अङ्गिरसो देवताः। अनुष्टुप्छन्दः॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र

(९२) इत एत उदारुहन्दिवः पृष्ठान्यारुहन्।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र

प्रभूर्जयो यथा पथो द्यामङ्गिरसोययुः ॥२॥

भावार्थः—पूर्व मन्त्र में जो होम से समस्त देवों की अनुकूलता कही है उस की रीति इस मन्त्र में वर्णित की गई है कि—(यथा) जिस प्रकार (भूः) पृथिवी के (जयः) जीतने वाले (पथः) मार्गों को (उदारुहन्) उत्तर कर चलते हैं, तद्वत् (एते) ये (अङ्गिरसः) अग्निकुण्ड से उठे अङ्गारे वा लपटें (इतः) इस पृथिवी लोक से (दिवः) आकाश के (पृष्ठानि) पीठों को (आरुहन्) चढ़ते और (द्याम्) द्युलोक को (प्र, ययुः) जाते हैं ॥

अर्थात् जिस प्रकार भूमण्डल के विजयी लोग उन्नत होकर चलते हैं, इसी प्रकार अग्नि में होम किये हुवे उत्तम सुगन्ध मिष्ट पुष्ट रोगनाशकादि द्रव्यों सहित अङ्गारे वा लपटें जब आकाश तल के ऊपर चढ़ते और द्युलोक में पहुंचते हैं तो सूर्यादि द्युलोकस्थ देवों की अनुकूलता कराते और उस से

परमात्मा की आज्ञा का पालन होता है इस से परमात्मा की सत्कृति भी होती है। जैसा कि पूर्व मन्त्र में कहा था ॥

पं० ज्वालाप्रसाद भार्गव [आगरा] ने इस मन्त्र के व्याख्यान में इतनी भूलें की हैं-१-'वृते' इस प्रथमान्त पद को पदपाठ के विरुद्ध 'वृत' ऐसा क्रियापद लिखा ॥ २-'भू, जयः' इन दो पदों को भी पदपाठ के विरुद्ध 'भूर्जथा, उ' इस प्रकार विश्लिष्ट करके 'उ' का अर्थ 'समष्टिमूर्त्ति की पूजा प्रतिष्ठारूप मार्ग से' किया है। जो प्रमाणरहित और निर्मूल है। तथा (द्याम्) का अर्थ 'महानारायणलोकम्' किया है। यह इन का महानारायण शब्द निज का है जो किसी अन्य संस्कृतसाहित्यकारादि ने प्रयुक्त नहीं किया॥

सायणाचार्य ने भी इस में कई भूल की हैं। 'भूः, जयः' इन दो पदों को 'भूर्जयः' ऐसा भृज्जति धातु का एक प्रयोग माना है। जो पदपाठ के विरुद्ध है। इस की विरुद्धता को श्री सत्यव्रतसामश्रमी जी ने भी अपनी टिप्पणी में लिखा है कि "यह व्याख्यान ठीक नहीं क्योंकि पदकार ने भूः, जयः ऐसा दो पदों का विश्लेष किया है। जो कि भृज्जति धातु से भूर्जयः बनाने पर सम्भव नहीं और न फिर दो पदों के अधीन स्वर ही सम्भव है। विवरणकार तो-'भू पृथिवी को जो महावीरानुष्ठान से जीतते हैं वे, ऐसा कहते हैं" सामश्रमी जी ने भी विवरणकार और सायण के दोष बता कर निर्दोष क्या अर्थ है, यह नहीं लिखा। अस्तु यहां भूः यह षष्ठ्यर्थ में प्रथमा तथा जि धातु को छान्दस तुक् आगम के अभाव से जयः यह प्रथमा का बहुवचन समझना चाहिये। 'पथो' में सायणाचार्य और ज्वालाप्रसाद जी ने 'पथा, उ' ऐसा विश्लेष भी पदपाठ के विरुद्ध ही किया है ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः-कश्यपोऽसितो देवलो वा विवरणमते च वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः ॥

३१ २ ३२ ३ १ २३ १२
(९३) राये अग्ने महे त्वा दानाय समिधीमहि।

१ २ ३ २ ३१२३ १ २ ३ १ २ ३ २
ईडिष्वाहि महे वृषन्द्यावा होत्राय पृथिवी ॥३॥

भाषार्थः-(अग्ने) अग्ने! (महे,राये) महाधन धान्यादि के लाभार्थ (त्वा) तुझ को (दानाय) हव्य देने के लिये (समिधीमहि) हम प्रदीप्त करते हैं। (वृषन्) वृष्टि के हेतो! (द्यावा) आकाश (हि) और (पृ-

पिवो) भूमि पर (महे, होत्राय) भारी, होम के लिये (ईळिष्व), हम वर्णित करते हैं ॥

अर्थात् धनधान्यादि महालाभों के लिये मनुष्यों को हव्य होमना चाहिये और होम के लिये समिधों में अग्नि को प्रदीप्त करते हुवे उस का वर्णन करना चाहिये ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः-भार्गहुतिः सोमोवा ऋषिः । अग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः ॥

३ २ ३ २३ २३ २ ३ २उ ३ २३ २ २३

(९४) दधन्वे वा यदीमनु वोचद्ब्रह्मेति वेरु तत् । परि

१ २३ १ २ ३ २ ३ १ २

विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभुवत् ॥ ४ ॥

भावार्थः-(ब्रह्म) वेद को (वोचत्) बोलता [होता] (वा) निश्चय करके (यत्) जिस [हव्यादि] को (ईम्, अनु) हम अग्नि को, लक्ष्य करके (दधन्वे) धारण करता है [अध्वर्यु] । (तत्) उस [हव्य] को (इति) ऐसी रीति से धारण करना चाहिये [जिस से वह अग्नि] (वेः, उ) व्याप्त हो जावे । तथा (विश्वानि) समस्त (काव्या) ऋत्विजों के दिये हव्यों को (परि, अभुवत्) सब ओर से घेर लेवे । दृष्टान्त-(नेमिः) रथ के पहिये की पुट्ठी [परिधि] (चक्रमिव) पहिये को जैसे ॥

अर्थात् जब होता वेदमन्त्र पढ़ता और अध्वर्यु अग्नि में हव्य चढ़ाता है तब इस प्रकार चढ़ाना चाहिये कि चारों ओर काष्ठों में प्रज्वलित अग्नि रहे जैसे कि रथ के पहिये की पुट्ठी रहती है और बीच में हव्य छोड़ा जावे जिस से तत्काल अग्नि उस में व्याप्त सके और द्युलोक को ले जासके ॥

यहां आग्नेय पर्व के प्रकरण से अग्नि पद की अनुवृत्ति है । निघं० ४।२ इत्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद २।५।३ में " ब्रह्मेति " के स्थान में "ब्रह्म" और " अभुवत् " के स्थान में " आभवत् " इतना पाठ भेद है ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः-पायुर्ऋषिः । अग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

(९५) प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणाहि विश्वतस्परि ।

३ १२ ३२३ २३क२र ३क२र
यातुधानस्य रक्षसो बलं न्युब्ज वीर्यम् ॥५॥

भाषार्थः-(अग्ने) अग्ने ! वा परमात्मन् ! (यातुधानस्य) दुष्ट दस्यु वा रोगादि के (हरः) हरने वाले (बलम्) बल को (हरसा) अपने तेज से (विश्वतः) चारों ओर (परि) फैले हुवे को (प्रति, शृणाहि) नष्ट कर और (रक्षसः) दस्यु वा रोगादि के (वीर्यम्) पराक्रम को (न्युब्ज) निःशेष करके भस्म कर ॥

अर्थात् परमात्मा की कृपा और अग्नि के होम और अस्त्रादि प्रयोग से सर्व दुष्ट दोष रोग दस्यु आदि का नाश हो सक्ता है। इस लिये मनुष्यों को मन्त्रोक्त अनुष्ठान करना चाहिये ॥

निघण्टु १। १३।२।१३ के प्रमाण और ऋग्वेद १०।८७।२५ में जो पाठान्तर है वह संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ्याः-प्रस्कण्व ऋषिः । अग्निर्देवताऽनुष्टुप्छन्दः ॥

१ २५ १२ ३२ ३१ २३ २ ३२ १२
(९६) त्वमग्ने वसूंरिह रुद्रांऽ आदित्यांऽ उत। यजा

३२उ ३१ ३३ १२
स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम् ॥ ६ ॥

भाषार्थः-(अग्ने) अग्ने ! (त्वम्) तू (वसून्) ८ वसुओं (रुद्रान्) ११ रुद्रों (उत) और (आदित्यान्) १२ आदित्यों तथा (घृतप्रुषम्) पवन और (स्वध्वरम्) प्रजापति इन ३३ देवों और (मनुजातम्) ईश्वरसृष्टिगत (जनम्) प्राणिमात्र को (इह) इस यज्ञ में (यज) अनुकूल और सङ्गत [ठीक] कर ॥

अर्थात् अग्नि में होम करने से ३३ देवगणों की अनुकूलता होती है इस लिये नित्य होम करना चाहिये ॥

ईश्वरपक्ष में-(अग्ने) हे परमात्मन् ! (त्वम्) आप (इह) इस संसार में (वसून्) २४ वर्षावधि ब्रह्मचर्य के अनुष्ठानी, (रुद्रान्) ४४ वर्षावधि ब्रह्मचर्यानुष्ठानी (उत) और (आदित्यान्) ४८ वर्षावधि ब्रह्मचर्यानुष्ठानी पुरुषों तथा (स्वध्वरम्) भले प्रकार यज्ञानुष्ठानी (घृतप्रुषम्) घृतसेचक (मनुजातम्) मनुष्य और (जनम्) प्राणिमात्र को (यज) सङ्गत कीजिये ॥

निघण्टु १। १२ इत्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद १। ४५। १ में भी ऐसा ही पाठ है ॥

ऊपर लिखे शतपथमें इस प्रकार ३३ देवतों के नाम बताये हैं कि ८-वसु-अग्नि-पृथिवी वायु अन्तरिक्ष आदित्य द्यौः चन्द्र और नक्षत्र, ११ रुद्र-प्राण अपान उदान समान व्यान नाग कूर्म कृकल देवदत्त और धनञ्जय और ११वां आत्मा १२ आदित्य-वर्ष के १२मास, यह सब पदार्थ देवता हैं। पूर्वोक्त ८ पदार्थ वसु इस लिये हैं कि (एतेषु हीदꣳसर्वं वसु हितम्) इन में ही यह सब सुवर्णादि धन रखा है (एते हीदꣳसर्वं वासयन्ते) ये ही इस सब [जगत्] को बसाते हैं [इससे यह भी सूचित है कि सूर्यादि लोकों में भी वसतियां हैं] पूर्वोक्त ११ पदार्थ रुद्र इस लिये हैं कि-(यदास्मान्मर्त्याच्छरीरादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति तद्रुद्रो०) जब मनुष्य देह से ये प्राणादि ११ रुद्र निकलते हैं तब इष्ट मित्र सम्बन्धियों को रोदन कराते हैं बस रोदन कराने से रुद्र नाम पड़ा। पूर्वोक्त संवत्सर के १२ मास आदित्य इस लिये हैं कि (एते हीदꣳ सर्वमाददाना यन्ति०) ये चैत्रादि द्वादश मास ही सब जगत् को लिये हुवे जाते हैं इस से आदित्य नाम पड़ा। यह जो शतपथ ब्राह्मण के वचन का अर्थ है। विशेष यह है कि क्या सप्ताह के ७ वार; वा अहोरात्र के दो भाग दिन और रात्री, वा शुक्ल पक्ष कृष्णपक्ष ये सब भी तो जगत् को लिये हुवे जाते हैं ये भी आदित्य हो सक्ते हैं? नहीं, इस में सूक्ष्म विचार है। कल्पना करो कि आज रविवार है और ७ दिन पश्चात् यही रविवार फिर आवेगा परन्तु यह रविवार ठीक आगामी रविवार के तुल्य नहीं हो सक्ता क्योंकि इस रविवार में ४ तिथि है आगामी में ११ तिथि होगी जैसी और जितनी चन्द्र वा सूर्यादि की दशा और उष्णतादि आज है आगामी को ११ तिथि रविवार को न होगी क्योंकि चन्द्रकला न्यून हो जायंगी, दक्षिणायन के कारण सूर्य की उष्णता घटजायगी इत्यादि अनेक कारणों से आज का रविवार आगामी रविवारों की अपेक्षा बहुत ही भेद रखता है। इसी प्रकार आज के दिन और रात्री के सदृश आगामी दिन रात्री भी सूर्यादि की उष्णता आदि के भेद से कभी नहीं हो सक्ते हैं। तथा यही भेद वर्त्तमान शुक्ल कृष्ण पक्ष के सदृश आगामी शुक्ल कृष्ण पक्ष की तुल्यता में भी बाधक है। इस लिये चैत्रादि १२ मास ही पुनः २ लौट कर अधिकांश में तुल्यावस्था से आते हैं। जैसे-सास्मिन्पौर्णमासीति। अष्टाध्यायी ४।२।२० इस सूत्र के अनुसार चित्रा-नक्षत्रयुक्त पौर्णमासी जिस मास की वह चैत्र, विशाखानक्षत्रयुक्त पौर्णमासी जिस मास की वह वैशाख, इसी प्रकार ज्येष्ठा न०-ज्येष्ठ, आषाढा नक्ष०-

आषाढ, श्रवण न०-श्रावण, भाद्रपदा, न०-भाद्रपद,-अश्विनी०-आश्विन, कृत्तिका०-कार्त्तिक, मृगशिर०-मार्गशिर, पुष्य न०-पौष, मघा०-माघ और फल्गुनी०-फाल्गुन ॥

अब जिस नक्षत्र से युक्त जिस मास की पौर्णमासी इस वर्ष है प्रायः उसी नक्षत्रके लगभग सहस्रों वर्ष से उस २ मास की पौर्णमासी होती रही हैं। और सौर मास की रीति से संक्रान्तिमास १२-मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह कन्या, तुला, वृश्चिक, धनुः, मकर, कुम्भ, और मीन ये १२ संक्रान्ति भी इस वर्ष के समान सब वर्षों में हुईं और होंगी। इस कारण १ वर्ष के १२ सौर वा चान्द्र मास ही १२ आदित्य हो सक्ते हैं, अन्य कालविभाग नहीं॥

इस प्रकार शाकल्य ऋषि से याज्ञवल्क्य जी कहते हैं कि ३३ देवता कौन से हैं। ८ वसु ११ रुद्र १२ आदित्य ये ३१ हुवे। इन्द्र और प्रजापति ये मिल कर ३३ हुवे। इन्द्र किसे कहते हैं? स्तनयित्नु अर्थात् बिजुली को। प्रजापति कौन सा है? यज्ञ प्रजापति है। प्रजापति क्या है? पशु ही प्रजापति हैं क्योंकि प्रजा का पालन इन्हीं से होता है॥

* इति दशमी दशतिः ॥१०॥ *

—:०:—

एकादशदशत्यां पु-रुत्वेति दश चोष्णिहः ॥
ततोदशत्यां ककुभः प्रमहीत्यष्ट कीर्त्तिताः ॥ १ ॥
जज्ञानः पावमानी स्यादुतस्येत्यदितेः स्तुतिः ॥
शिष्टाः षोडश चाग्नेय्यः समाख्या छन्दिणो यथा ।२।

अथैकादशी दशतिस्तत्र प्रथमायाः-दीर्घतमाऋषिः। अग्निर्देवता। उष्णिक्छन्दः।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(९७) पुरु त्वा दाशिवाङ् वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा
३ १ २ ३ २उ ३ १ २
तोदस्येव शरण आ महस्य ॥

श्लोकार्थः-पुरु त्वा० इत्यादि १० ऋचा की ११ वीं दशति है। इस का उष्णिक् छन्द है। फिर १२ वी दशति में ८ ऋचा ककुभ् छन्द की हैं ॥१॥ जिन में "जज्ञानः०" इत्यादि ११ वीं दशति की ५ वीं ऋचा का पवमान

देवता तथा उस से अगली "उतस्या०" इत्यादि ६ ठी का अदिति देवता है। शेष दोनों दशतियों की १६ ऋचाओं का अग्नि देवता है। आग्नेय काण्ड में अन्य देवता वाली ऋचा हैं तो इस पर्व का नाम आग्नेय पर्व कैसे ठीक रहा? इस शङ्का का समाधान यह है कि जिसप्रकार "छत्रवाले जाते हैं" ऐसा कहने से उन छत्रवालों के सहचारी विना छत्रवाले भी कोई जाते हों, तब भी मुख्य ही को ध्यान में रखकर।" छत्रवाले जाते हैं" ऐसा कहने से विना छत्रवालों का भी ग्रहण होजाता है। इसी प्रकार यहां मुख्य करके अग्नि का वर्णन है उस के साथ में प्रकरण में आवश्यकता पड़ने से अन्यदेवता का वर्णन आजाना भी इस पर्व के आग्नेयनाम का बाधक न समझना चाहिये॥२॥

भावार्थः-(अग्ने) परमात्मन्! (दाशिवाङ्) भक्तिरूप भेंट देने वाला (अरिः) सेवक मैं (तव, स्वित्, आ) तुम्हारे, ही (शरणे) आश्रय में (त्वा) आप की (पुरु) बहुत (वोचे) स्तुति करता हूं। दृष्टान्त-(महस्य) बड़े (तोदस्येव) शिक्षक के आश्रय में जैसे [शिष्य] (आ) पादपूर्त्यर्थ है॥

जिस प्रकार शिष्य वा भृत्य लोग लोक में अपने शिक्षक गुरु वा स्वामी की आज्ञा में रहते हैं इसी प्रकार परमात्मा की आज्ञा आश्रय और स्तुति में लगना चाहिये॥

भौतिकपक्ष में-(अग्ने) अग्ने! (दाशिवाङ्) हव्य देने वाला (अरिः) अग्निहोत्रसेवन करने वाला मैं (तव, स्वित्-आ) तेरे ही (शरणे) गृह अर्थात् अग्न्यागार नामक शाला [रूम] में (त्वा) तुझे (पुरु, वोचे) बहुत वर्णित करूं। जिस प्रकार (महस्य) बड़े (तोदस्येव) शिक्षक के [आश्रय में शिष्य]॥

जिस प्रकार शिक्षक के सेवन में शिष्यादि प्रवृत्त रहते हैं तभी विद्यादि प्राप्त कर सकते हैं। इसी प्रकार अग्न्यागार नामक भवन में हवन तथा मन्त्र द्वारा अग्नि का वर्णन करने वाले ही लोग सर्व रोगादि शत्रुओं से बचते और सुख समृद्धि को पासकते हैं॥

अष्टाध्यायी ६।१।१२॥ निघण्टु ३।५॥३।४॥ निरुक्त ५।७ इत्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ पं० ज्वालाप्रसाद भार्गव (आगरा) ने "स्विदा" के "स्वित्, आ" इन दो पदों को "स्विदा" यह एक पद किया और परिचरणार्थक स्वद धातु से बनाया है। सो स्वद से स्विदा नहीं बनता और पदपाठ के विरुद्ध होने से भी अग्राह्य है॥ १॥

अथ द्वितीयायाः-विश्वामित्रऋषिः । अग्निर्देवता । विराडुष्णिक्छन्दः ॥

१२ २र ३ २उ ३ १ २ ३ २
(९८) प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत् ।
३ १र २र ३ १ २३ २ ३ १ २
विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे ॥२॥

भावार्थः-(वेधसे, न) जगत्कर्त्ता के, समान (विपां, ज्योतींषि, बिभ्रते) मेधावी लोगों में, ज्योतियों को, धारण करते हुवे (होत्रे) हवनकर्त्ता (अग्नये) अग्नि के लिये (पूर्व्यम्) सनातन [वैदिक] (बृहत्) बड़ा (वचः) सूक्त (प्र, भरत) उच्चारित करो ॥

जिस प्रकार जगत्स्रष्टा परमात्मा तेजों का धारण करता है इसी प्रकार किसी अंश में अग्नि भी तेज का धारण करता है । और जिस प्रकार परमात्मा कर्मफल पहुंचाता है, इसी प्रकार अग्नि भी हुत द्रव्यों को मेघमण्डलादि में पहुंचाता है । और जिस प्रकार उपासकों में [तेजोऽसि तेजोमयि धेहि० यजुः १९ । ९ के अनुसार] विशेष करके परमात्मा तेज का धारण करता है, इसी प्रकार अग्नि भी मेधावी होत्रादि ऋत्विजों में विशेष तेज को धारता है । और साधारणतया जिस प्रकार परमात्मा चराऽचर में तेज को धारण करा रहा है, इसी प्रकार घट पटादि समस्त पदार्थों में जो तेज है वह सब अग्नि का ही है । इस लिये परमात्मा के वर्णन और अग्नि के वर्णन को करो । जिस से दोनों के गुणकीर्तन से दोनों लोक का सुख प्राप्त करने में सुगमता हो ॥

निघण्टु ३ । १५ आदि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ३ । १० । ५ में भी ऐसा पाठ है ॥ २ ॥

अथ तृतीयस्याः-गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । उष्णिक्छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(९९) अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥३॥

भावार्थः-(जातवेदः) प्रकाश से बुद्धितत्व के फैलाने वाले ! (अग्ने)

प्रसिद्ध ! (गोमतः, वाजस्य) गवादिधनयुक्त, अन्न का । क्योंकि मेधा (अदितिः) (महसः, यहो) बल की, सन्तान ! (अस्मे) हमारे लिये (...को (अत्या) रक्षा के धन वा अन्न (देहि) दे ॥ ...(सा) वह

अग्नि से ही प्रकाश होता और प्रकाश से घट पटादि द्रव्यों पर ... तत्त्व फैलता है । इस लिये अग्नि जातवेदा है । और अग्नि में होम द्वारा जल वायु की शुद्धि, वृष्टि, धन धान्य तृणादि की वृद्धि होकर पशु भी बढ़ते हैं । इस लिये अग्नि पशुओं तथा धन धान्यादि का स्वामी है । और इसी कारण वह इन पदार्थों का दाता भी है । वह अग्नि बल की सन्तान इस लिये कहा गया है कि बल से क्रिया और क्रिया से अग्नि की उत्पत्ति है ॥

निघण्टु २ । ९ ॥ २ । २ ॥ २ । ७ ॥ २ । १० के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १ । ७९ । ४ में "धेहि" इतना अन्तर है ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः–विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । उष्णिक्छन्दः ॥

३ १२ ३२ ३१ २३२र २
(१००) अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान् देवयते यज ।

१ १ ३१र २र २ २ ३ १ २
होतामन्द्रो वि राजस्यति स्रिधः ॥४॥

भावार्थः–(अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! (यजिष्ठः) अत्यन्त यज्ञ करने वाले (होता) फलदाता (मन्द्रः) आनन्ददायक [आप] (देवयते) देव की कामना वाले के लिये (देवान्) इन्द्रियों को (यज) संगत कराइये और (स्रिधः) कामादि शत्रुओं को (अति) उल्लङ्घित कर के (अध्वरे) उपासना में (वि–राजसि) विशेष प्रकाश कीजिये है ॥

भौतिकपक्ष में–(अग्ने) अग्ने ! (यजिष्ठः) अत्यन्त यज्ञकारक (होता) हव्य पहुंचाने वाला (मन्द्रः) सुखदायक [तू] (देवयते) वाय्वादि देवों की कामना वाले के लिये (देवान्) वायु आदि को (यज) संगत करता और (अध्वरे) यज्ञ में (स्रिधः) रोगादि शत्रुओं को (अति) उल्लङ्घित करके (वि–राजसि) विशेष प्रकाश करता है ॥

अर्थात् गतिशील होने से अग्नि उस २ पदार्थ का उस २ स्थान में पहुंचाने वाला, वाय्वादि को ठीक करने वाला, उस की विद्या रखने वालों को सुखदायक और विरोधी दुष्ट रोग वा दस्यु आदि को नष्ट करके प्रकाशित होने वाला है ॥ ऋग्वेद ३ । १० । ७ में भी ऐसा ही पाठ है ॥४॥

अथ द्वितीयायाः-त्रित ऋषिः। पवमानोदेवता। उष्णिक्छन्दः॥

३ २ ३ १र २ ३ १र ३ २र १ ३ २

अजीजनः सप्त मातृभिर्मेधामाशासत श्रिये।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अयं ध्रुवो रयीणां चिकेतदा ॥५॥

भावार्थः-(अयम्) यह पवन (सप्त) सात (मातृभिः) माताओं से (अजीजनः) जन्मा हुवा (श्रिये) लक्ष्मी के लिये (मेधाम्) स्थिर बुद्धि को (आशासत) सर्वथा चाहता है और तब (ध्रुवः)स्थिरात्मा [यजमान](रयीणाम्) धनों के (आ,चिकेतत्) विचार को, सब ओर से कर सक्ता है।

अर्थात् मुण्डकोपनिषद् के लेखानुसार जो अग्नि में सात प्रकार की लपटें उठती हैं, उन से एक ऐसा वायु (पवमान) शोधने वाला उत्पन्न होता है जो कि हवनजन्य गुणों को लिये हुवे मनुष्यों के बुद्धितत्त्व की शुद्धि चाहता है। अर्थात् उस से बुद्धि तत्त्व में भी पवित्रता उत्पन्न होती है, जिस की सहायता से व्यवसायात्मक मनुष्य विद्या सुवर्णादि धन लक्ष्मी के लिये उस के विषय में स्थिर विचार कर सक्ता है। जड़ पवन में इच्छा का व्यवहार इसी प्रकार जानो जिस प्रकार "दीवार गिरना चाहती है" इत्यादि में होता है॥

मुण्डकोपनिषद् १।२।४॥ अष्टाध्यायी २।४।३३॥ १।४।३९ के प्रमाण तथा ऋग्वेद ९।१०२।४ में जितना पाठ में अन्तर है वह संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ऋग्वेद के पाठ में "मेधाम्" की जगह वेधाम् पाठ है और सायणाचार्य ने "मेधां" का भी वही अर्थ किया जो कि वह ऋग्वेद में "वेधां" का कर चुके थे, यह विचारणीय है। तथा उन्होंने "आशासत" इस पद की जगह "अनुशासत" का अर्थ किया है। और उन की देखा देखी पं॰ ज्वालाप्रसाद भार्गव ने भी "मक्षिका स्थाने मक्षिका" ही घसीटा है॥

यद्यपि इस मन्त्र का अग्निदेवता मान कर भी व्याख्यान ठीक होसक्ता था, परन्तु परम्परा के अनुरोध से हम ने भी पवनपरक व्याख्या की है॥५॥

अथ षष्ठ्याः-इरिम्बिठिर्ऋषिः। अदितिर्देवता। उष्णिक्छन्दः॥

२ ३उ २ १ १ ३ १र २र ३ १ २ १र

(१०२) उत स्या नो दिवा मतिरदितिरूत्यागमत्॥ सा

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

शन्ताता मयस्करदप स्रिधः॥ ६॥

भावार्थः-(उत) और (स्या) वह (मतिः) पूर्वोक्त मेधा (अदितिः) [अखण्डिता स्थिर अदिति नाम देवता] बुद्धि (नः) हम को (ऊत्या) रक्षा के साथ (दिवा) जागरणकाल में (आगमत्) प्राप्त होवे और (सा) वह (शन्ताता)सुखकरी (मयः) सुख को (करत्) करे और (स्रिधः) शत्रुओं को (अप) दूर करे ॥

यह स्पष्ट है कि सर्व सुखों का मूल शुद्धमति ही है । बुद्धि के अभाव में सब दुःख घेरते हैं तथा शत्रु दबाते हैं । इस लिये पूर्वोक्त मन्त्र में कहे प्रकार से अग्नि की ७ प्रकार की लपटों से शुद्ध हुआ पवन हमारी बुद्धियों को पवित्र करे जिस से वह बुद्धि सुख दे और शत्रुओं को दूर करे, रक्षा हो । इस से और गायत्री मन्त्र द्वारा जो सब आर्य लोग बुद्धि ही को वेदानुसार सर्व बलों और सर्व धनों से अधिक मान कर मांगते हैं । यह वैदिक धर्म के उच्चभाव का कारण समझना चाहिये ॥ ऋ० ८।१८।७ शन्तातिः ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः-विश्वमना वैयश्व ऋषिः । अग्निर्देवता । उष्णिक्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २३ २ १ २ ३ १ २
(१०३) ईडिष्वा हि प्रतीव्या ३० यजस्व जातवेदसम् ।
३ १ २ ३ २ ३
चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम् ॥ ७ ॥

भावार्थः-हे मनुष्य ! तू (चरिष्णुधूमम्) धुआं चढने वाले (अगृभीतशोचिषम्) जिस की लपटें पकड़ी नहीं जा सकीं (प्रतीव्यम्) सामने ही आने वाले (जातवेदसम्) अग्नि को (हि) निश्चय (ईडिष्व) वर्णित कर और (यजस्व) यज्ञ वा शिल्प में प्रयुक्त कर ॥ ऋग्वेद ८।२३।१ में भी ॥ ७ ॥

अथाऽष्टम्याः-पूर्ववदृषि देवता छन्दांसि ॥

१२ ३ २ ३१ २ ३ २ १ ३ १ २
(१०४) न तस्य मायया चन रिपुरीशीत मर्त्यः ।
३ १ २ ३ २ ३ २
यो अग्नये ददाश हव्यदातये ॥ ८ ॥

भावार्थः-(यः, मर्त्यः) जो, मनुष्य (हव्यदातये) देवों को हव्य देने के लिये (अग्नये,ददाश) अग्नि को, देता है (तस्य,रिपुः) उस का, शत्रु (मायया, चन) छल बुद्धि से, भी (न, ईशीत) नहीं, कुछ कर सक्ता ॥

प्रायः निर्बुद्धि मनुष्यों को शत्रु लोग छल से जीत लेते हैं, परन्तु जो मनुष्य पूर्वोक्त प्रकार से अग्नि में होम करके उस से उत्पन्न हुवे शुद्ध पवन के सेवन से शुद्धबुद्धियुक्त हो जाता है, वह दुष्ट शत्रुओं के वश में नहीं आता। यह उपदेश है। ऋ० ८। २३। १५ में "हव्यदातिभिः" इतना पाठभेद है ॥ ८॥

अथ नवम्याः-भरद्वाज ऋषिः। अग्निर्देवता। उष्णिक् छन्दः॥

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ ३ क २र

(१०५) अपत्यं वृजिनꣳ रिपुꣳ स्तेनमग्ने दुराध्यम्।

१ २ ३ २ ३ २

दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥९॥

भाषार्थः-(सत्पते) सज्जनों के पालयितः! (अग्ने) परमात्मन्! (त्वम्) उस (वृजिनम्) पापी (रिपुम्) शत्रु (स्तेनम्) और चोर (दुराध्यम्) दुःखदायी को (दविष्ठम्) अत्यन्त दूर (अप, अस्य) फेंकिये अथवा (सुगम्) सीधा (कृधि) कर दीजिये॥

भौतिकपक्षे।-(सत्पते) याज्ञिकों के रक्षक! (अग्ने) आग्ने! (त्वम्, वृजिनं, रिपुं, स्तेनं, दुराध्यम्) उस, पापी, शत्रु चोर और दुःखदायी को (दविष्ठम्) अत्यन्त दूर (अप, अस्य) फेंक अथवा (सुगं, कृधि) सीधा, कर॥

आग्नेय प्रयोग से मन्त्रोक्त दुष्ट दूर हो सकते हैं। अथवा भय से सुपथगामी हो जाते हैं॥ ऋ० (६। ५१। १३)॥ ९॥

अथ दशम्याः-विश्वमना ऋषिः। अग्निर्देवता। उष्णिक्छन्दः॥

३कर२ ३ १ २ ३ १ २

(१०६) श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते।

३ १र ३ १ २ ३ १ २

नि मायिनस्तपसा रक्षसो दह ॥१०॥

* इत्येकादशी दशतिः॥ ११॥ *

भावार्थः-(वीर) हे अनन्त पराक्रम! (विश्पते) हे प्रजानाथ! (अग्ने) परमात्मन् (मे) मेरे (नवस्य) अभी अनुष्ठान किये हुवे (स्तोमस्य) सूक्तपाठ के (मायिनः) छलिया शत्रु (रक्षसः) राक्षसों को (तपसा) अपने तेज से (नि) नितराम् (दह) भस्म कीजिये॥

भौतिकपक्ष में-(वीर) तीव्रता युक्त ! (विश्पते) प्रजा के रक्षक ! (अग्ने) अग्ने ! (मे, मयस्य, स्तोमस्य) मेरे, सम्मति के, स्तोत्र के (मायिनः) छलिया शत्रु (रक्षसः) राक्षसों को (तपसा, नि, वृह) तेज से, गिरा, भस्म कर ॥

अर्थात् वेदपाठ तथा वैदिकधर्मप्रचार के रोकने वाले विघ्नरूप शत्रु अग्नि का भले प्रकार उपयोग लेने से गिरे पाप्म अर्थात् निवृत्त हो जाते हैं॥

निरुक्त ६ । १२ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । २३ । १४ में "तपसा" के स्थान में "तपुषा" पाठ है ॥ १० ॥

* यह ग्यारहवीं दशति पूर्ण हुई ॥११॥ *

—=:०:=—

अथ द्वादशी दशतिस्तत्र प्रथमायाः—प्रयोगो भार्गव ऋषिः । अग्निर्देवता । ककुप्छन्दः ॥

१ २ २२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१०७) प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे ।

३ १ २ ३ २
उपस्तुतासो अग्नये ॥ १ ॥

भावार्थः-(उपस्तुतासः) हे वर्णनीय अग्नि के समीप वर्त्तियो ! तुम (मंहिष्ठाय) अत्यन्त बढ़े और बढ़ाने वाले (ऋताव्ने) यज्ञ वाले (बृहते, शुक्रशोचिषे) बड़े, शुक्र तेज वाले (अग्नये) अग्नि वा परमेश्वर के लिये (प्र, गायत) [उस के गुण] वर्णित करो ॥

अष्टाध्यायी ५ । ३ । ५९ ॥ ६ । ४ । ५४ ॥ निघं० ५ । ४ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ९२ । ८ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः-सौभरिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । ककुप्छन्दः ॥

१२ २२ ३ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१०८)प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजक-

२ ३ २ ३ १२ २२
र्मभिः । यस्य त्वं सख्यमाविथ ॥ २ ॥

भावार्थः-(अग्ने) हे परमात्मन् ! वा भौतिक ! (त्वं, यस्य, सख्यम्, आविथ) तू, जिस की ,अनुकूलता को प्राप्त होता है (सः) वह (तव) तेरी (वाजकर्मभिः) बलकारिणी (सुवीराभिः) सुन्दर वीर्यवती (ऊतिभिः) रक्षाओं से (प्र, तरति) पार हो जाता है ॥

जो पुरुष परमात्मा के मित्र हैं वे उस की ओर से हुई बलवती पराक्रम और पुरुषार्थवती रक्षाओं से सर्व दुःखों से पार होजाते हैं, उन्हें आत्मिक बल की सहायता मिलती है। और जो लोग अग्नि के मित्र हैं अर्थात् अनुकूलसेवी हैं वे भी ॥

निघं० २। ९ का प्रमाण और ऋग्वेद ८। १९। ३० का अन्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २॥

अथ तृतीयस्याः-पूर्ववदृष्यादयः ॥

१ २ क २र ३ १ ३ ३ १ २ ३ १ २

(१०९) तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे।

३ २ ३ १ २

देवत्रा हव्यमूहिषे ॥ ३॥

भाषार्थः-(देवत्रा) वाय्वादि देवों के समीप (हव्यम्) हव्य पदार्थ (ऊहिषे) पहुंचाने के लिये [जिस] (स्वः, नरम्) सुख के नेता (अरतिम्) गतिशील (देवम्) [अग्नि] देव को (देवासः) ऋत्विज् लोग (दधन्विरे) धारते प्राप्त होते हैं (तम्) उस को [तू भी] (गूर्धय) वर्णित कर ॥

ईश्वरपक्ष में-(देवत्रा) दिव्य शरीरों में (हव्यम्) भोक्तव्य कर्म फल (ऊहिषे) पहुंचाने के लिये, जिस (स्वः, नरम्) सुख के, नेता (अरतिम्) व्यापक (देवम्) परमात्मा देव को (देवासः) विद्वान् योगीजन (दधन्विरे) प्राप्त होते हैं (तम्) उस को तू भी (गूर्धय) वर्णित कर ॥

अष्टाध्यायी ६। ३। १३७॥ ५। ४। ५६॥ ३। ४। ९॥ निघं० २। १४ के प्रमाण तथा सायणाचार्य और ज्वालाप्रसाद जी की भूल संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८। १९। १ में "ओहिरे" पाठ है ॥ ३॥

अथ चतुर्थ्याः-प्रयोगो भार्गवऋषिः सौभरिः काण्वो वा। अग्निर्देवता। ककुप्छन्दः ॥

१ २ १ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ २

(११०) मा नो हृणीथा अतिथिं वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः।

३ १ २ ३ २

यः सुहोता स्वध्वरः ॥ ४॥

भावार्थः-(यः, एषः, अग्निः) जो, उक्त दोनों प्रकार का, अग्नि (नः) हमारा (स्वध्वरः) यज्ञ सुधारने वाला (पुरुप्रशस्तः) बहुतों से प्रशंसित (सुहोता) शोभन होता (वसुः) बसाने वाला है, उस (अतिथिम्) व्याप्तिशील को कोई (मा, हृणीयाः) न, हरे ॥

अर्थात् कर्मयज्ञ वा ज्ञानयज्ञ में कोई विघ्नकारक न हो। यह प्रार्थना है ॥ ऋ० ८।८४।१२ में हृणीतातिथिः ऐसा पाठ है ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः-सौभरिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। ककुप्छन्दः ॥

३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(१११) भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः।
३ २ ३ १र २र
भद्रा उत प्रशस्तयः ॥५॥

भावार्थः-किन्तु (सुभग) हे शोभनैश्वर्य ! परमेश्वर! आप की कृपा से (नः) हमारा (आहुतः) सब प्रकार ध्यान किया वा हवन किया (अग्निः) परमात्मा वा भौतिक (भद्रः) कल्याणकृत् हो। हमारा (रातिः) दान (भद्रा) उत्तम हो। हमारा (अध्वरः, भद्रः) यज्ञ, सुफल हो। (उत) और हमारी (प्रशस्तयः) स्तुतियें (भद्राः) उत्तम हों ॥ऋ० ८।१९।१९॥५॥

अथ षष्ठ्याः-पूर्ववदृष्यादयः ॥

१ २ ३ १र २ ३ १र २र ३ १ २
(११२) यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम्।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥६॥

भावार्थः-हम लोग (देवत्रा) देवतों में (यजिष्ठम्) अत्यन्त यज्ञकर्त्ता (होतारम्) होता (अमर्त्यम्) अमर (अस्य, यज्ञस्य, सुक्रतुम्) इस, कर्मयज्ञ और ज्ञानयज्ञ के, सुधारने वाले (त्वा) तुझ (देवम्) अग्नि वा परमात्मा को (ववृमहे) वरते हैं ॥

अग्नि में दी हुई आहुति वायु आदि सब देवों को प्राप्त हो जाती है इसलिये देवतों में से अग्नि का वरण करना मानों सब का वरण हो गया।

तथा परमात्मा के वरण में भी मन्त्र का वरण आ जाने से इसी का वरण उत्तम है ॥ ऋग्वेद ८ । १९ । ३ ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः-ऋष्याद्याः पूर्ववत् ॥

१ २ ३ १र २र २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
(११३) तदग्ने द्युम्नमाभर यत्सासाहासदने कञ्चिद-
१ २ ३ १र २र ३क २र
त्रिणम् । मन्युं जनस्य दूढ्यम् ॥ ७ ॥

भावार्थः-(अग्ने) हे परमात्मन् । वा भौतिक । (तत्) ऐसा (द्युम्नम्) अन्न (आभर) प्राप्त कराव (यत्) जो (आसदने) योगाभ्यासादि में (कञ्चित्) अवर्णनीय (दूढ्यम्) बुद्धि को बिगाड़ने वाले (जनस्य, अत्रिणम्) भक्ष्याभी जन के, भक्षक शत्रु (मन्युम्) क्रोध को (सासाह) दबावे ॥

अग्नि में होम कर शुद्ध जल पवन के योग से उत्पन्न हुवे वा परमेश्वर की कृपा से पवित्र हुवे आहार करने से मनुष्यों का क्रोध रूप दुर्जय शत्रु दबता है । आहार की शुद्धि से सात्विक बल बढ़ता और तामस बल घटता है ॥

निघण्टु ४ । २ ॥ निरुक्त ५ । ५ ॥ उणादि ४ । ६८ के प्रमाण तथा ऋ० ८ । १९ । १५ का अन्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ७ ॥

अथाऽष्टम्याः-विश्वमना ऋषिः । अग्निर्देवता । ककुप्छन्दः ॥

१र २ २र ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २
(११४) यद्वाउ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशे ।
२उ ३ २उ ३ १ २
विश्वेदग्निः प्रतिरक्षांऽसि सेधति ॥ ८ ॥

* इति द्वादशी दशतिः ॥१२॥ *

भावार्थः-(यद्, वै, उ) जब कि (विश्पतिः) प्रजा का पालक (शितः) तीव्र सूक्ष्म (अग्निः) परमेश्वर वा भौतिक (मनुषः) मनुष्य के (विशे) घर में (सुप्रीतः) भक्ति वा हवन से अनुकूलता को प्राप्त होता है (इत्) तभी (विश्वा) सब (रक्षांऽसि) विघ्नकारक दुष्ट रोग दस्युआदि राक्षसों को (प्रति, सेधति) निवृत्त करता है ॥

परमात्मा की प्रसन्नता और अग्नि में भले प्रकार होमकरणादि से ही मनुष्य के घर की पवित्रता होती है और समस्त दुष्ट रोग शोक दस्यु आदि राक्षसों का निवारण होता है। पं० ज्वालाप्रसाद भार्गव ने मूल में शुद्ध "सेधति" पाठ होते हुये भी सायणभाष्य के अशुद्ध मुद्रित "निषेधति" को देखकर वैसा ही व्याख्यान कर दिया। तथा "प्रकट होता है" यह निर्मूल अर्थ किया है। ऋ० ८। २३। १३ में "विशि" इतना अन्तर है॥ ८॥

यह बारहवीं दशति और आग्नेय पर्व वा काण्ड समाप्त हुआ।

कण्ववंशावतंस श्रीमान् स्वामी हज़ारीलाल के पुत्र, परीक्षितगढ़
(ज़िला मेरठ) निवासी, तुलसीराम स्वामी के निर्मित
सामवेदभाष्य में प्रथमाध्याय समाप्त हुआ॥ १॥

—:*:*:*:—

ओ३म्

अथ द्वितीयाध्यायः ॥

अब इन्द्र का पर्व वा काण्ड है । यह ३ अध्यायों का दूसरा पर्व है। इस ३५२ ऋचाओं वाले पर्व में विशेष करके इन्द्र का वर्णन है । इस लिये इन्द्र शब्द के अर्थ का विचार किया जाता है । जिस से पर्वमात्र का प्रकरणानुकूल अर्थ ठीक समझा जावे । वेदों के शब्दों का मुख्य करके यौगिक अर्थ होता है । इदि परमैश्वर्ये धातु को उणादि २। २८ सूत्र (संस्कृत में देखिये) लग कर इन्द्र पद बना है । सब से अधिक ऐश्वर्य परमेश्वर का है, इस लिये इन्द्र शब्द का मुख्यार्थ परमेश्वर है । और अग्नि वायु इन्द्रादि पद जो वेद में सम्बोधनयुक्त आते हैं उस का कारण यह भी है कि इन शब्दों का मुख्यार्थ परमात्मा है । तब गौणार्थ देवताविषयक में भी वे अग्न्यादि पद उसी स्वरूप से रहते हैं। तत्पश्चात् इन्द्र पदका अर्थ निरुक्त के मतानुसार देवता विशेष भी है । और वह हमारी समझ में अन्तरिक्षस्थ विद्युद्विशेष है। यह बात प्रसिद्ध है कि इन्द्र नामक मेघशत्रु और वर्षा का कर्त्ता कोई देवता है। सो यदि इन्द्र पद से केवल सूर्य ही अर्थ लिया जावे तो प्रायः सूर्य छिपने पर रात्रि में भी वर्षा हुवा करती हैं इसलिये दोष आता है। और निरुक्तकार ने १० अध्याय के आरम्भ में अधिकार किया है कि "अब मध्यस्थान देवतों का वर्णन है,, । और "उन में वायु प्रथम आने वाला है" ऐसा आरम्भ करके उसी अध्याय के ८वें खण्ड में इन्द्र पद का व्याख्यान किया है। इस से जाना जाता है कि इन्द्र मध्यस्थान अर्थात् अन्तरिक्षस्थान देवता है । और निरुक्तकार ने १२ वें अध्याय के आरम्भ में "अब द्युस्थान देवतों का वर्णन है" ऐसा अधिकार करके उसी अध्याय के १४ । १५ खण्डों में द्युस्थान सूर्य की व्याख्या की है। इसमे सूर्य को द्युस्थान देवता माना है। यद्यपि सब लोकों में सूर्य लोक का ऐश्वर्य परम होने से परमैश्वर्यार्थ को लेकर सूर्य भी इन्द्र कहाता है, परन्तु इन्द्र पदवाच्य कोई अन्य भी देवता इस निरुक्त से पाया जाता है जो कि अन्तरिक्षस्थान देवता है आकाशमण्डल में

पृथिवी से ऊपर और द्युलोक (जिस का वर्णन अध्याय १ मन्त्र ५१ पर किया है) के नीचे वायु है । वही वायु सूर्य्य की किरणों की गरमी से संयुक्त होकर एक प्रकार के विद्युत् को उत्पन्न करता है,वही इन्द्र कहाता है । इसी अभिप्राय से निघण्टु ५ २ में वायु से चतुर्थ इन्द्र पद है। यद्यपि वायु और सूर्य का ही विकार इन्द्र भी है परन्तु उसे वायु ही वा सूर्य ही नहीं कह सक्ते । जिस प्रकार दुग्ध का विकार दधि है, परन्तु दधि को ही दुग्ध वा दुग्ध को ही दधि भी नहीं कह सक्ते । अब निरुक्तकार की लिखी हुई इन्द्र पद की निरुक्तियां सुनिये-"इरा को विदीर्ण करने, वा देने, वा दारण करने वा धारण करने से, अथवा इन्दु के लिये दौड़ने, वा इन्दु में रमने से अथवा भूतों को प्रकाशित करने से इन्द्र कहाता है । जो इसे प्राणों से प्रकाशित करते हैं इस से इन्द्र (जीवात्मा) है, ऐसा माना जाता है । आग्रयण कहते हैं कि इदं करण से अर्थात् उस की चमक पर अङ्गुलि उठाने से इन्द्र कहाता है औपमन्यव कहते हैं कि इदं दर्शन अर्थात्'यह दीखता है'कहने से इन्द्र है । अथवा परमैश्वर्य्यार्थ इदि धातु से है। अथवा इत् शत्रुवों का फाड़ने वा भगाने वाला वा याज्ञिकों का आदर कराने वाला होने से इन्द्र है । " इत्यादि निरुक्त १० । ८ । इस पर निरुक्त के टीकाकार देवराज यज्वा कहते हैं कि "इरा अन्न को कहते हैं उसके सम्बन्ध से वा हेतु हेतुमत्व से बल लक्षित होता है। और बल की लक्षणा से उसका आधार भूत मेघ समझना चाहिये" इससे यह तात्पर्य्य निकला कि मेघ का धारण वा दारण करने से ऊपर कहा विद्युद्विशेष इन्द्र कहाता है।तथा इन्द्र शब्द के राजा आदि भी अर्थ हैं। किसी अंश में माण्डलिक राजों की अपेक्षा चक्रवर्ती राजा परमैश्वर्य-वान् होते हैं । इन्द्रियमिन्द्र० (अष्टाध्यायी ५ । २ । ९३) के अनुसार इन्द्रिय शब्द की निरुक्ति ५ हैं । इन्द्र जीवात्मा का चिह्न होने वा उस से सेवित होने से इन्द्रिय शब्द बना है । अथवा इन्द्र परमात्मा से दृष्ट वा सृष्ट वा दत्त होने से भी इन्द्रिय कहाता है। इस प्रकार जीवात्मा और परमात्मा भी इन्द्र पद के अर्थ हैं । निरुक्त के प्रमाणों का मूल पाठ संस्कृतभाष्य में देखिये ॥

इस प्रकार इन्द्र पद का जो २ अर्थ इस ऐन्द्र पर्व के जिस २ मन्त्र में सम्भव हो वह २ वहां २ ग्रहण करना चाहिये । किन्तु वहां २ फिर से यह व्याख्या न लिखी जायगी ॥

(द्वितीयाऽध्याये प्रथमा दशतिः)

दशत्यां तद्व इत्यैन्द्र्यो गायत्र्यो दश कीर्तिताः ॥१॥

तत्र

प्रथमायाः-शंयुर्बार्हस्पत्यऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३१र २र ३ २ ३ १ २
(११५) तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने ।
३उ ३ २ ३ १ २
शं यद्गवे न शाकिने ॥१॥

भावार्थः—हे स्तोता ! तू (यत्) जो (गवे) पृथिवी के (न) समान (वः) तुम (सुते) स्तोता के लिये (शम्) सुखदायक हो (तत्) उसको (सत्वने) शत्रुगण को बिठा देने वाले (शाकिने) शक्तिमान् (पुरुहूताय) इन्द्र के लिये (सचा) साथ मिल कर (गाय) गा ॥

मनुष्यों को योग्य है कि शत्रुविनाशक इन्द्र अर्थात् परमेश्वर वा राजा, अथवा मेघविदारक इन्द्र अथवा अन्धकारनाशक सूर्य्य के लिये उस के गुणों का बखान मिल जुल कर करें। इन्द्र को "पुरुहूत" इस लिये कहते हैं कि वेदों के मध्य "बहुतायत से वर्णित" है, जैसा कि केवल ऋग्वेद मात्र में ही इन्द्र का सब से अधिक वर्णन है। ऋग्वेद के मन्त्रों के आदि में अन्य सब देवतों की अपेक्षा "अग्नि" पद अधिक अर्थात् २०८ बार आया है परन्तु इन्द्र पद उस से भी अधिक २५३ वार आया है। क्योंकि इन्द्र परमैश्वर्यवान् है उस की ईश्वरता का वर्णन अधिक आवश्यक भी है। और यह पद परमेश्वर की परमेश्वरता का वाचक भी है इस लिये वेदों में परमेश्वर का ज्ञान वर्णन आदि सब से अधिक है। यह भी कारण है कि वेदों के द्वारा ईश्वर का ज्ञान अधिक सम्भव है ॥

अष्टाध्यायी १ । २ । ५८ ॥ निघं० ३ । १६ ॥ १ । ११ निरुक्त ५ । ५ आदि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ६ । ४५ । २२ ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः सुमऋक्षऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३१ २ ३१२ ३ १ २३ १२
(११६) यस्ते नूनꣳशतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मदः ।
१ २ ३ १र २र
तेन नूनं मदे मदेः ॥२॥

भावार्थः-(शतक्रतो) हे बहुकर्मन् ! (इन्द्र) परमैश्वर्यवन् ! (यः) जो (ते) तेरा (नूनम्) निश्चय (द्युम्नितमः) अत्यन्त यशस्वी (मदः) आनन्द है (तेन) उस (मदे) आनन्द से (नूनम्) निश्चय [हम को भी] (मदेः) आनन्दित कर ॥

इन्द्र अर्थात् परमात्मा वा राजा वा सूर्य में जो अतिशयित आनन्द वा प्रकाश है उस से वह हम को भी आनन्दित वा प्रकाशित करे यह चाहते हैं ॥

निघण्टु ३ । १ ॥ २ । १ ॥ निरुक्त ५ । ५ ॥ अष्टाध्यायी ३ । १ । ८५ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ९२ । १६ । २ ॥

अथ तृतीयस्याः-इर्यतःप्रगाथ ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

२ ३ १२ ३२ ३ २ ३१ २३ १ २
(११७) गाव उपवदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा ।
३ १र २र ३ १ २
उभा कर्णा हिरण्यया ॥३॥

भावार्थः-(गावः) हे वाचः ! (अवटे) यज्ञकुण्ड के समीप (उप-वद) [प्रकरणगत इन्द्र का] वर्णन करो जिस से (यज्ञस्य, मही, रप्सुदा) यज्ञ की, भूमि, वेदपाठ के प्रवाह वाली हो, तथा (उभा, कर्णा, हिरण्यया) [श्रोतृवर्ग के] दोनों, कान, प्रकाशमय हो जावें ॥

निघण्टु १ । ११ ॥ अष्टाध्यायी ६ । १ । १९५ इत्यादि के प्रमाण तथा ऋग्वेद ८ । ७२ । १२ । का भाष्य संस्कृतभाष्य में देखिये ॥३॥

अथ चतुर्थ्याः-श्रुतकक्षऋषिः । इन्द्रोदेवता ॥ गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(११८) अरमश्वाय गायत श्रुतकक्षारङ्गवे ।
३ १ २ ३ १ २
अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ ४॥

भावार्थः-(श्रुतकक्ष) हे वेद को बग़ल में रखने वाले ! तुम (इन्द्रस्य) इन्द्र के (अश्वाय) किरण के लिये (अरम्) पर्य्याप्त (गायत) वर्णनकरो और उस के (गवे) वाण वा ज्या के लिये (अरम्) पर्य्याप्त, वर्णन करो। तथा उस के (धाम्ने) स्वरूप के लिये (अरम्) पर्य्याप्त वर्णन करो ॥

परमात्मा का उपदेश है कि वेद को कक्ष=बग़ल में रखने वालो ! तुम शिष्य पुत्रादि मिल कर इन्द्र के किरण, वाण वा ज्या और स्वरूप का पूरा वर्णन करो। इन्द्र जो कि एक प्रकार का विद्युत् है, उस के स्वरूप और उस की ज्या जो धनुष का एक अङ्ग है जिस से वाण छुटने पर टङ्कार शब्द होता है अर्थात् बिजुली की कड़क, तथा उस के वाण वा किरण अर्थात् उस की प्रकाशधाराओं का वर्णन (बखान) करो । उस के विज्ञान से फल प्राप्त करो। वेद को बाहुमूल (बग़ल) में दबाने वाले से वेदानुगामी समझना चाहिये। लोक में भी प्रसिद्ध है कि जो पुस्तक का अनुगामी होता है उस को पुस्तक बग़ल में रखने वाला कहते हैं ॥

उणादि १।१५१ ॥ निरुक्त २।५ ॥ २।६ इत्यादि के प्रमाण तथा ऋग्वेद ८।९२।२५ में जो अन्तर है वह संस्कृतभाष्य में देखिये ॥४॥

अथ पञ्चम्याः—ऋष्याद्याः पूर्ववत् ॥

१र २र ३ २ ३ २ ३ १ २

(११९) तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ॥

१र ५र ३ १ २

स वृषा वृषभो भुवत्॥ ५ ॥

भावार्थः-(महे) बड़े (वृत्राय, हन्तवे) मेघ को, गिराने के लिये, हम (तम्, इन्द्रम्) उस, इन्द्र को (वाजयामसि) बलिष्ठ करें, जिस से (सः, वृषा) वह, वर्षाने वाला (वृषभः, भुवत्) वर्षाने लगे ॥

मनुष्यों को वर्षा के निमित्त इन्द्रयाग करना चाहिये। इन्द्र नामक विद्युद्विशेष को यज्ञभाग द्वारा बलिष्ठ करने से वह मेघ को वर्षाता है। वा राजा को बलिष्ठ करने से वह वृत्र दुष्ट असुरों को हनन करे ॥

अष्टाध्यायी (गणसूत्र ३।१।२५)।६।४।१५५॥५।३।६५॥७।१।३९॥७।१।४६॥३।४।९॥ निघण्टु २।९ इत्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८।३।७।५॥

अथ षष्ठ्याः-देवजामय ऋषिकाः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ २३ २३ १२ ३ १र २र
(१२०) त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः ।
१र २र३ १र २र
त्वꣳसन् वृषन् वृषेदसि ॥ ६ ॥

भावार्थः-(इन्द्र) ! हे इन्द्र (त्वम्) तू (बलात्) बल से (सहसः) दबाव से (ओजसः) धैर्य से (अधि) अधिक (जातः) प्रसिद्ध (सन्) होता हुवा (वृषन्) सेचन करने वाले ! (त्वम्) तू (वृषा, इत, असि,) सेचन करने वाला, ही है । अर्थात् तेरे समान अन्य सींचने वाला नहीं ॥

बल ओजः और सहः ये बल ही के तीन भेद हैं। राजा वा इन्द्र देव विशेष वा परमेश्वर का बल सहः और ओजः सब से अधिक है और वह जल वा कामनाओं का सींचने वाला सर्वोत्तम है ॥ ऋ० १० । १५३ । २ में "सन्" इतना नहीं है, शेष समान है ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः-गोषूक्तयश्वसूक्तिनी ऋषी । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १र २र ३ २उ३ १ २
(१२१) यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्त्तयत् ।
३ १ २ ३ २ ३ २
चक्राण ओपशं दिवि ॥ ७ ॥

भावार्थः-(दिवि आकाश में (ओपशम्) फैलाव (चक्राणः) करता हुवा (यज्ञः) यज्ञ (यत्) जो (इन्द्रम्) वृष्टिकर्त्ता को (अवर्धयत्) बढ़ाता है सो (भूमिम्) पृथिवी को (व्यवर्त्तयत्) सुवृत्त करता है ॥ ऋ० ८ । १४ । ५ । ३ ॥

अथाऽष्टम्याः-ऋष्याद्या उक्ता एव ॥

१ २ ३ २उ ३ १र २र ३ २ ३ ३ २
(१२२) यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ।
३ २ ३ १ २
स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥ ८ ॥

भावार्थः-(इन्द्र) राजन् ! वा वृष्टिकर्त्तः ! (यथा) [पूर्वमन्त्रोक्त यज्ञ से]

जैसे (त्वम्) तू (एक, इत्) अकेला, ही [बढ़ता है] ऐसे (यत्) जब कि (अहम्) मैं (वस्वः) गवादि धन का (ईशीय) स्वामी हो जाऊं [तेरी अनुकूलता से] तब (मे) मेरा (स्तोता) यज्ञानुष्ठान का ऋत्विज् विशेष (गोसखा) गवादि धनों वा पृथिवी का मित्र (स्यात्) हो ॥

इन दोनों मन्त्रों का तात्पर्य यह है कि यज्ञ से इन्द्र नामक विद्युद्विशेष का ऐश्वर्य आकाश में बढ़ता है और उस से पृथिवी का ऐश्वर्य बढ़ता है और यज्ञकर्त्ता लोग उस से गवादि धन और पृथिवी के मित्र बनते हैं तथा राजा की वृद्धि करने वाले भी गवादि तथा पृथिवी के मित्र होते हैं ॥ ७ । ३ । १०९ के वार्त्तिकादि का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । १४ । १ । ८ ॥

अथ नवम्याः-मेधातिथिराङ्गिरस ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २
(१२३) पन्यंपन्यमित्सोतार आधावत मद्याय ।
१ २ ३ २ ३ १ २
सोमं वीराय शूराय ॥ ९ ॥

भावार्थः-(सोतारः) सोम के संपादको ! तुम (मद्याय) हर्षयोग्य (शूराय) विक्रमशील (वीराय) शौर्यवान् [इन्द्र वा राजा] के लिये (पन्यं,पन्यं, सोमम्, इत्) उत्तम, उत्तम, सोम, ही (आधावत) प्राप्त कराओ ॥

सोम एक राजा ओषधि है जिस के भले प्रकार सम्पादन करके होम करने से वृष्टिहेतु और राजादि क्षत्रियवर्ग को प्राप्त कराने से रक्षा भी भले प्रकार प्राप्त करनी चाहिये । निरुक्त ११ । २ में लिखा है कि " सोम एक ओषधि का नाम है जो सुनोति धातु से बना है क्योंकि उसे निचोड़ते हैं । इस का निघण्टुसम्बन्धी व्याख्यान बहुत प्रकार का और आश्चर्य सा है " । इस से जाना जाता है कि सोम इस समय में ही आश्चर्य की बात नहीं प्रतीत होता किन्तु निरुक्तकार के समय में भी ॥ ऋ० ८।२।२५ ॥ ९ ॥

अथ दशम्याः-काण्वः प्रियमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्रीछन्दः ॥

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१२४) इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् ।
१ २ ३ १ २
अनाभयिन् ररिमा ते ॥ १० ॥

* इति प्रथमा दशतिः ॥१॥ *

भावार्थः-(वसो) वसाने वाले । (अनाभयिन्) भयरहित । इन्द्र । (इदम्) यह (सुतम्) सवनादित (अन्धः) भोगारूप अन्न (ते) तेरे लिये (ररिम) देते हैं (उसे तुम) (सुपूर्णम्, उदरम्) भर पेट (पिब) खाओ ॥

पूर्व मन्त्र में कह आये हैं कि शूर वीर इन्द्र के लिये सोम पहुंचाओ । इस मन्त्र में उस के देने का वचन बताया गया है कि ऐसा कह कर देना चाहिये । इन्द्र के राजार्थ में तो स्पष्ट ही है, परन्तु देवविशेष अर्थ में उदर-स्थानी अन्तरिक्ष समझना चाहिये । पं० ज्वालाप्रसाद भार्गव ने दीर्घविधायक सूत्रों को न जान कर " पिब, आ, ररिम, आ " यह पदपाठ के विरुद्ध पदच्छेद कर के व्याख्या की है । तथा "आनुदरम्" यह मूल के भी विरुद्ध व्याख्यात किया है ॥

निघं० २ । ७ अष्टाध्यायी ३ । ४ । ६ ॥ ६ । ३ । १३३ ॥ ऋ० ८ । २ । १ ॥१०॥

* यह द्वितीयाऽध्याय में प्रथम दशति पूर्ण हुई ॥१॥ *

—:*0*:—

दशत्यामुद्ध इत्यैन्द्र्यो गायत्र्यो दश पूर्ववत् ॥१॥

अथ द्वितीया दशतिस्तत्र प्रथमायाः—सुतकक्षः श्रुतकक्षो वा ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

२उ ३२ ३ १ २ ३ १र २र
(१२५) उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् ।
१ २
अस्तारमेषि सूर्य ॥१॥

भावार्थः-(सूर्य) लोक विशेष । वा परमेश्वर । (इत्) ही (श्रुतामघम्) विख्यात ऐश्वर्यधन वाले (वृषभम्) वर्षा के कर्ता वा कामपूरक राजा (अस्तारम्) मेघ वा शत्रुओं के फेंकने वाले [इन्द्र वा राजा को] (अभि, उत्, एषि) अभ्युदययुक्त करता है ॥

इन्द्र अर्थात् देव विशेष को सूर्य, और राजा को परमात्मा ही प्रकाशित और अभ्युदित करता है ॥ ऋ० में भी ८ । ९३ । १ । १ ॥

अथ द्वितीयायाः-ऋष्याद्याः पूर्ववत् ॥

२ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
(१२६) यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य ।
३ १ २ ३ १ २
सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ २ ॥

भावार्थः-(वृत्रहन्) वृत्र अर्थात् जलों को रोकने वाले मेघ वा पाप के हन्ता ! (सूर्य) लोक विशेष ! वा परमेश्वर ! (अद्य) आज [प्राक्दिन में] (यत् कच्च) जो कुछ है (तत्) उस को (अभि, उदगाः) अभ्युदययुक्त करता है [इस से] (सर्वं, ते, वशे) सब, तेरे, वशवर्त्ती है ॥

परमात्मा और सूर्य के प्रकाश से समस्त ब्रह्माण्डवर्ती पदार्थ प्रकाशित हैं, इस लिये वे सब उस के धारण और आकर्षण से तदधीन हैं ॥ ऋग्वेद में भी ८ । ९३ । ४ । २ ॥

अथ तृतीयायाः-भरद्वाजऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१र २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१२७) य आनयत्परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् ॥
३ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्रः स नो युवा सखा ॥ ३ ॥

भावार्थः-(यः, इन्द्रः) जो इन्द्र (परावतः) दूरवर्त्तियों को भी (यदुम्) मनुष्यों को (सुनीती) सुन्दर नीति से (तुर्वशम्) समीप (आनयत्) ले आता है (सः, युवा) वह, बली (नः, सखा) हमारा, मित्र हो ॥

मनुष्यों को योग्य है कि जो बली इन्द्र अर्थात् देवविशेष वा राजा वा सूर्य्य वा परमेश्वर, उन मनुष्यादि को भी जो दूरवर्त्ती हैं वा अज्ञान में डूबे होने से दूर से हैं, वश में ले आता है वा कृपा करके उपासक बना लेता है, उस को अपना मित्र अर्थात् अनुकूल बनावें ॥

अष्टाध्यायी ७ । १ । ३९ ॥ निघण्टु २ । १६ ॥ ३ । २६ ॥ २ । ३ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ सायणाचार्य ने निघण्टु की उपेक्षा करके न जाने क्यों तुर्वश और यदु नामक राजा लिख दिये, जिस से कि वेद की अपौरुषेयता के व्याघात के अतिरिक्त यह भी दोष आता है कि इतिहास ग्रन्थों में भी कहीं इन्द्र के साथ यदु और तुर्वश राज की इस प्रकार की कथा नहीं सुनी जाती ॥ पं० ज्वालाप्रसाद जी ने प्रमाणरहित यदु का अर्थ नररूपाऽवतार किया है ॥ ऋग्वेद में भी (६ । ४५ । १) ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः-श्रुतकक्ष ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः।

१ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १र २र

(१२८) मा न इन्द्राभ्याऽऽदिशः सूरो अक्तुष्वायमत्।

३ १२ ३ २

त्वा युजा वनेम तत्॥ ४॥

भावार्थः-(इन्द्र) परमात्मन्! वा राजन्! वा सूर्य! (अक्तुषु) अज्ञानकालों में वा रात्रियों में (आ-दिशः) चारों तरफ किसी दिशा की ओर से (सूरः) काम क्रोधादि शत्रु वा चोरादि वा अन्धकार (नः) हम लोगों को (मा, अभि, आयमत्) न, सामने, आवे [यदि आवे तो] (त्वा, युजा) तेरे, योग से (तत्) उस दुष्ट को (वनेम) हनन करें॥

परमेश्वर की कृपा से काम क्रोधादि शत्रुगण प्रथम तो हम पर आक्रमण ही नहीं कर सकें। यदि करें भी तो परमात्मा की सहायता से ध्वस्त कर सके हैं॥ इसी प्रकार प्रथम तो राजा के प्रताप से दस्युप्रभृति दुष्ट प्रबलता ही नहीं कर सकें, यदि करें भी तो राजा की सहायता से प्रजा उन को नष्ट करे॥ तथा सूर्य के प्रकाश में प्रथम तो अन्धकार का प्रभाव ही नहीं हो सकता, यदि कदाचित् रात्रि आदि अन्धकारकाल में कुछ प्रभाव हो भी तो सूर्य की सहायता अर्थात् उससे उत्पन्न हुए प्राण वायुजन्य दीपकादि के प्रकाश से उस अन्धकार का नाश हो सकता है॥

निघण्टु १।७ इत्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये। ऋ० ८। ९२। ३१ में भी॥४॥

अथ पञ्चम्याः-मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

(१२९) एन्द्र सानसिꣳ रयिꣳ सजित्वानꣳ सदासहम्।

१ २ ३ १ २

वर्षिष्ठमूतये भर॥५॥

भावार्थः-(इन्द्र) परमेश्वर! वा राजन्! (वर्षिष्ठम्) बहुत और (सानसिम्) संभजनीय (रयिम्) धन को तथा (सदासहम्) सदा प्रहार सह सकने वाले (सजित्वानम्) साथ में विजयी [सेनासमूह] को (ऊतये) रक्षा के लिये (आ, भर) भरती करो॥

परमेश्वर की कृपा और सहायता की अपेक्षा करते हुए राजा को प्रजा की रक्षा के लिये पुष्कल धन तथा सेना भरती करनी चाहिये ॥

उणादि ४।१०७ अष्टाध्यायी ३।२।७५ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० १।८।१ में भी ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ्याः-ऋष्याद्याः पूर्ववत् ॥

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
(१३०) इन्द्रं वयं महाधनइन्द्रमर्भे हवामहे ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥६॥

भावार्थः-(वयम्) हम प्रजायें (महाधने) बड़ी लड़ाई में (इन्द्रम्) परमेश्वर वा राजा को (हवामहे) पुकारें तथा (अर्भे) छोटी [लड़ाई] में भी (वृत्रेषु, वज्रिणम्) रोकने वालों में, दण्डधारी (युजम्) सावधान (इन्द्रम्) ईश्वर वा राजा को [पुकारें] ॥

जहां अल्प वा महान् संग्राम हो वहां प्रजा को योग्य है कि दुष्ट शत्रुओं के निवारक परमात्मा वा राजा को पुकार करें ॥

"महाधन शब्द यद्यपि संग्रामवाची है तथापि यहां भारी धन से अभिप्राय है" इस प्रकार के सायणाचार्य के लेख पर सामश्रमी सत्यव्रत जी टिप्पणी में बूझते हैं कि "इसमें ज्ञापक क्या है ?" निघं० २ । १७ ॥ ३ । २ ॥ अष्टाध्यायी ६ । १ । ६२ ॥ ६ ।१।१३४॥ शतपथ ८।२।४।१० के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० १ । ७ । ५ में भी ॥६॥

अथ सप्तम्याः-त्रिशोक ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ।

१२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
(१३१) अपिबत्कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे ।
१ २ ३ १ २
तत्राददिष्ट पौंस्यम् ॥७॥

भावार्थः-(इन्द्रः) वृष्टिकर्त्ता देव वा राजा (सहस्रबाह्वे) बहुत बाधने वाले मेघ वा शत्रु के लिये (कद्रुवः) पीतवर्ण सोमौषधि से (सुतम्) निचोड़े हुवे सोमरस को (अपिबत) पीता है (तत्र) उस में (पौंस्यम्) पौरुष को (आददिष्ट) प्रकाशित करता है ॥

जब कि सोम के पत्ते पीले हो जावें अर्थात् पक जावें तब सोमरस निचोड़ना चाहिये। फिर उस से होम द्वारा अन्तरिक्षस्थान इन्द्र देवविशेष को पहुंचाने से मेघ जो असंख्य बाहु फैलाये गगनमण्डल को घेर रहा है, उसे इन्द्र गिराकर वर्षाता है, अथवा सोमादि वृक्ष वनस्पति जब तक कच्चे रहते हैं तब तक तो इन्द्र उन का रस बढ़ाता है और जब पक कर पीले [कद्रु] होजाते हैं तब उन का रस खींच लेता है वा पी लेता है। इसी से वर्षा होती है। राजा भी पक्व सोमरस पान करके उस के बल से पुरुषार्थ करे और 'सहस्र' असंख्यात शत्रु बाधाओं का दलन करे॥

सायणाचार्य "कद्रु" पद से ऋषिविशेष का और विवरणकार कश्यप की स्त्री का ग्रहण करते हैं। हम कहते हैं कि निघण्टु में कद्रु पद का कुछ भी अर्थ न लिखा हो, यदि ये दोनों भाष्यकार अमरकोष धीवर्ग श्लोक १६ को भी देख लिये होते तो "पीतवर्ण=कद्रु" कहाता है, यह जान लेते। और परस्पर विवाद न होता। प्रथम तो इतिहास के प्रतिपादक समस्त अर्थों से वेदों का अपौरुषेयत्व नष्ट करते हैं, फिर ज्वालाप्रसाद भार्गव जी की विचित्रता देखने योग्य है। वह कहते हैं कि "(इन्द्रः) परशुराम रूप परमेश्वर ने (सहस्रबाहू) सहस्रबाहु नामक राजा के लिये (कद्रुवः) कामवृक्ष देह के (सुतम्) अभिषुत क्रोध को (अपिबत्) मन में धारण किया" इत्यादि। अब विचारना चाहिये कि इन के मत में सायणाचार्य का विरोध १। और विवरणकार जो कहते हैं कि "सहस्र बहुत का नाम है [निघं० ३। १] बाहुशब्द से भी अवयव से समुदाय का सम्बन्ध होने से कर्त्ता का ग्रहण है। अर्थात् बहुत हैं कर्त्ता जिस में उस सत्र=यज्ञविशेष का नाम सहस्रबाहु है" इत्यादि। इस से विरोध २। वेद की अपौरुषेयता का भङ्ग ३। इन्द्र पद से परशुराम अर्थ में प्रमाण न होना ४। कद्रु पद से देह अर्थ लेने में प्रमाण रहितता ५। सुतम् का प्रकरणानुकूल निचोड़े सोम अर्थ का त्याग और निष्प्रमाण क्रोध अर्थ लेना ६। तथा प्रकरणागत राजाद्यर्थ का त्याग ७ वां दोष है॥ ऋग्वेद ८। ४५। २६ में "अत्रादेदिष्ट" इतना पाठ में अन्तर है॥ ७॥

अथाष्टम्याः—वसिष्ठऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः॥

३ १ ३ २ ३ १२ २२
(१३२) वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्रनोनुमो वृषन्।
३ २ ३ १ २
विद्धी त्वा३स्य नो वसो॥ ८॥

भावार्थः-(इन्द्र)परमैश्वर्यशाली इन्द्र! वा राजन्! (वयम्) हम (त्वायवः) तेरा यजन चाहते हुवे (त्वा) तेरा (अभि-प्र-नोनुमः) सब ओर से-प्रशस्त-वर्णन करते हैं। (वृषन्) जलों वा कामनाओं के वर्षक! (वसो) वसाने वाले! (अस्य) इस को (विद्धि) प्राप्त हो वा जान ॥

अष्टाध्यायी ७।४।३५॥३।२।१७० के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ सायणाचार्य ने "नु" पद व्याख्यात किया है परन्तु मूल में नहीं पाया जाता॥ ऋग्वेद १०।१३३।६ में "वयमिन्द्र त्वायवः" केवल इतनी ही समानता है॥ ८॥

अथ नवम्याः-त्रिशोक ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः॥

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(१३३) आघा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक्।
३ २ ३ २ ३ १ २
येषामिन्द्रो युवा सखा॥ ९॥

भावार्थः-(ये) जो लोग (आ, घ) अभिमुखता से (अग्निम्, इन्धते) अग्नि को, प्रदीप्त करते हैं (येषाम्) जिन का (इन्द्रः) वृष्टिकर्ता (युवा) बलवान् (सखा) अनुकूल है वे (आनुषक्) क्रमपूर्वक (बर्हिः) कुशादि के आसन (स्तृणन्ति) बिछाते हैं॥

जो लोग याज्ञिक हैं वे बीच में अग्नि सिलगा कर चारों ओर आसन बिछाय इन्द्रयाग करते हैं जिस से बलवान् वृष्टिकर्ता उन के अनुकूल होकर वर्षा करता है। पं० ज्वालाप्रसाद जी ने (आ, घ) इन दो अव्ययों को एक करके (आघाः) निर्धापाः, यह हंसी योग्य व्याख्या की है॥

निरुक्त ६।१४ में लिखा है कि "आनुषक्,यह क्रमपूर्वक का नाम है जैसा कि 'स्तृणन्ति बर्हिरानुषक्, यह वेदवाक्य है" देखिये ठीक ऐसे ही मन्त्र के ऋग्वेदस्थ (८।४५।१) पाठ का निरुक्तकार ने उदाहरण दिया है॥ ९॥

अथ दशम्याः-ऋष्याद्याः पूर्ववत्॥

३ २उ ३ २३ २ ३ २३ १ २ ११र २र
(१३४) भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः।
१ २ ३ १र २र
वसु स्पार्हं तदाभर॥ १०॥

*इति द्वितीया दशतिः॥ २॥ *

भावार्थः [प्रकरणागत इन्द्र ! परमात्मन् ! राजन् ! वा देवविशेष !] (विश्वाः) सब (द्विषः) द्वेषकर्त्री और (बाधः) बाधती हुइयों को (अप, भिन्धि) छिन्न भिन्न करो (मृधः) संग्रामों को (परि, जहि) सब ओर से, मारिये (तत्) उन का वह (स्पार्हम्) कामनायोग्य (वसु) धन (आभर) प्राप्त कराइये ॥

राजा का धर्म है कि सज्जनों की रक्षा के लिये दुष्टों की सेनाओं का छेदन भेदन, शत्रुओं का नाश और धन को लेकर न्याय कार्य में व्यय करे॥ इन्द्र=वृष्टिकर्त्ता का काम है कि घुमड़ घुमड़ कर सामने आते मेघों की सेनाओं का छेदन भेदन करके प्रजा के चाहे हुए उन के जल रूप धन को प्रजा को पहुंचाना ॥ सर्व दुष्टों अधार्मिकों के दमन और श्रेष्ठों की रक्षार्थ परमेश्वर से भी प्रार्थना करनी चाहिये ॥ ऋ० ८ । ४५ । ४० में भी ॥ १० ॥

*** यह द्वितीयाऽध्याय में द्वितीय दशति पूर्ण हुई ॥२॥ ***

इहेव इत्यपीन्द्रस्य गायत्र्यो दशती दश ॥१॥

अथ तृतीया दशतिस्तत्र प्रथमायाः-कण्वो घौर ऋषिः । इन्द्रस्य सखायोमरुतोदेवताः । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र

(१३५) इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान् ।

१र २र ३ १ २

नियामं चित्रमृञ्जते ॥१॥

भावार्थः-(यत्) जब कि हम दोनों (वदान्) बात करते हैं तब (इहेव) समीप ही के समान (शृण्वः) सुनते हैं [इस से जाना जाता है कि] (एषाम्) इन के (हस्तेषु) हाथों में (कशाः) वाणी हैं (चित्रम्) आश्चर्यकारक (यामम्) मार्ग को (नि-ऋञ्जते) नितरां सुधारता है ॥

जब हम दो आपस में वार्त्तालाप करते हैं । तो अपने से भिन्नदेशवर्त्ती दूसरे का शब्द हम को ऐसे सुनाई देता है जैसे कोई कान से कान लगा कर कहे । इस से जाना जाता है कि इस बोलने और सुनने के आश्चर्यजनक मार्ग की डोर वायु के हाथों में है अर्थात् वायु के अधीन बोलना सुनना है।

इन इन्द्र के सहचारी वायुओं में मैक्समूलर साहिब ने जो इस ऋचा में बलिदानादि की चर्चा की है, वह निर्मूल प्रतीत होती है क्योंकि मूलमन्त्र में इस अर्थ का वाचक कोई पद नहीं दीखता ॥

निरुक्त ६ । २१ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद १ । ३१ । ३ में 'यामन्' ऐसा पाठ है ॥१॥

अथ द्वितीयायाः-त्रिशोक ऋषिः । वन्द्रोदेवते उक्ते ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१३६) इम उ त्वा विचक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २
पुष्टावन्तो यथा पशुम् ॥२॥

भावार्थः-(इन्द्र) देवविशेष ! (इमे) ये पूर्व मन्त्र में कहे वायु (सोमिनः) सोम लिये हुवे (सखायः) तेरे मित्र (उ) भी (त्वा) तुझे (विचक्षते) देखते हैं अर्थात् तेरा उपस्थान करते हैं । दृष्टान्त-(यथा) जैसे (पुष्टावन्तः) पोषण वाले (पशुम्) पशु को ॥

तात्पर्य यह है कि वायु इन्द्र के मित्र हैं, वे सोम की लताओं में से शोष कर तथा हवन किए हुए सोमों को लेकर इन्द्र को ऐसे उपस्थित होते हैं, जैसे पशु के पोषण करने वाले घास आदि उत्तम चारा लेकर गवादि पशुओं को उपस्थित होते हैं । पशु की उपमा अपमान के योग्य नहीं है, पशु भी इन्द्र के समान जगत् के उपकारक हैं ॥

निघण्टु ३ । ११ आदि के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८।४५।१६ में भी ॥२॥

अथ तृतीयस्याः-वत्सः काण्व ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१३७) समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः ।

३ १ २ ३ १ २
समुद्रायेव सिन्धवः ॥३॥

भावार्थः-(विश्वाः) सब (कृष्टयः) मनुष्यरूप (विशः) प्रजायें (अस्य) इस [इन्द्र वा राजा वा परमेश्वर] के (मन्यवे) तेज के लिये (सम्, नमन्त) भले प्रकार झुकते हैं (समुद्रायेव, सिन्धवः) जैसे समुद्र के लिये, नदियें ॥

अर्थात् बिजुली वा राजा वा परमेश्वर का तेज सब तेजों का दबाने वाला सर्वोपरि है, इस लिये सब उस के सामने नम्र हो जाते हैं। मन्यु शब्द का अर्थ क्रोध है और क्रोध भी तेज की परा काष्ठा है इसलिये यहां प्रकरण में मन्यु पद से तेज का ग्रहण करना चाहिये ॥ ऋ० ८।६।४ में भी ॥३॥

अथ चतुर्थ्याः-कुसीदी काण्व ऋषिः। इन्द्राद्या देवताः। गायत्री छन्दः॥

३ २ ३ २र ३१र २र ३ २
(१३८) देवानामिदवो महत् तदा वृणीमहे वयम्।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
वृष्णामस्मभ्यमूतये ॥४॥

भावार्थः-(अस्मभ्यम्) हमारे लिये (वृष्णाम्) जलादि वर्षाने वाले (देवानाम्) इन्द्र वायु आदि देवों की (इत्) जो (महत्) बड़ी (अवः) रक्षा है (तत्) उसको (वयम्) हम लोग (ऊतये) बचने के लिये (आ-वृणीमहे) स्वीकार करते हैं॥ स्पष्ट है॥ ऋग्वेद ८।८३।१ में भी ॥४॥

अथ पञ्चम्याः-मेधातिथिर्ऋषिः। [इन्द्रोऽपरनामा] ब्रह्मणस्पतिर्देवता। गायत्री छन्दः॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २
(१३९) सोमानाᳪस्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते।
३ १ २ ३ १ २ ३ २
कक्षीवन्तं य औशिजः ॥५॥

भावार्थः-(ब्रह्मणस्पते) परमेश्वर! (यः) जो मैं (औशिजः) मेधावी विद्वान् का पुत्र हूं [उस मुझ को] (सोमानाम्) सब प्रकार की सोमौषधियों का (स्वरणम्) सुन्दर बनाने वाला (कक्षीवन्तम्) शिल्पी के समान (कृणुहि) कीजिये॥

अर्थात् हे परमात्मन्! पूर्वमन्त्रोक्त इन्द्र के अनुकूल होने और वृष्टि आदि सुख के लिये कृपया जो हम लोगों में विद्वान् लोगों के शिष्य पुत्र हैं उन को शिल्पियों के समान सोमों का सुन्दर रीति से बनाने वाला कीजिये॥

कक्षीवन्तं के आगे 'इव' और माम्, ये पद निरुक्तकार के मत में अध्याहृत समझने चाहियें जैसा कि यास्क मुनि कहते हैं कि "सोम का सम्पादक प्रकाशन वाला करो हे परमेश्वर! जैसा कि शिल्पी को। जो मेधावी

की सन्तान हूं। कक्षीवान् कक्ष्यावान् को और औशिज उशिज के पुत्र को समझो, उशिज् कान्तिकर्मा से बना है और कक्ष से मनुष्यकक्ष अभिप्राय है। उस मुझ को हे ब्रह्मणस्पते! सोम का सम्पादक प्रकाश वाला कीजिये॥" ऋग्वेद १।१८।१। में 'सोमानम्' पाठ है इसलिये निरुक्त में उसी की व्याख्या है, सोमानाम् की नहीं। कक्षीवन्तम् पद की सिद्धि में व्याकरणानुसार सामान्य संज्ञा समझनी चाहिये, न कि किसी विशेष की। सायणाचार्य्य ने इस में कक्षीवान् और औशिज का इतिहासपरक अर्थ किया है और तैत्तिरीय का पाठ उद्धृत किया है परन्तु उस पाठ में ऋषियों के कक्षीवान् आदि नामों के आने से यह किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं होता कि इस वेदमन्त्र में भी कक्षीवान् वही ऋषि समझा जावे। और निरुक्तकार की व्याख्या से भी ऐसा ही अर्थ निकालना आवश्यक नहीं है। क्योंकि सामान्यवाचक कक्षीवान् से शिल्पिमात्र और उशिज से सब किसी मेधावी सामान्य का अर्थ लिया जा सक्ता है॥ ज्वालाप्रसादजी भार्गव ने तो व्याकरण और निरुक्त दोनों से विरुद्ध अर्थ किया है। यथा-"कक्षं पापम्" इत्यादि और "सोमानम् वाम्" इत्यादि॥

निघण्टु ३।१४॥२।५॥३।१५ निरुक्त ६।१०॥ अष्टाध्यायी ४।४।११०॥ ४।२। ८४॥६।१।३७।८।२।१२॥८।३।५३ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥५॥

अथ षष्ठ्याः-श्रुतकक्षऋषिः। इन्द्रोदेवता। गायत्री छन्दः॥

१२ ३ १२ ३१ २
(१४०) बोधन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
शृणोतु शक्र आशिषम्॥६॥

भावार्थः-(वृत्रहा) अविद्याविनाशक (भूर्यासुतिः) बहुतआनन्दस्वरूप (शक्रः) शक्तिमान् परमात्मा (नः) हमारी (आशिषम्) प्रार्थना को (शृणोतु) सुने (इत्) और (बोधन्मनाः) मन को बोध कराने वाला (अस्तु) हो॥

अर्थात् परमात्मा हमारी पूर्व मन्त्रोक्त प्रार्थना को सुनकर हमारे मन में ज्ञान दे जिस से हम सोमों के अच्छे बनाने वाले हो जावें॥ ऋ० ८।९३।१८ में "बोधिन्मनाः" पाठ है॥६॥

अथ सप्तम्याः-श्यावाश्व ऋषिः। इन्द्रोदेवते उक्ते॥

१ १ २ ३ १२ ३ १२
(१४१) अद्यनो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम् ।
१२ ३ १ २
परा दुष्वप्न्यꣳसुव ॥ ७ ॥

भावार्थः—(सवितः) सर्वोत्पादक ! (देव) परमेश्वर ! (अद्य) अब कृपया (नः) हमारे लिये (प्रजावत्) सुसन्तानयुक्त (सौभगम्) शोभन धन (सावीः) प्रेरिये दीजिये और (दुःष्वप्न्यम्) दारिद्र्य को (परा, सुव) दूर कीजिये ॥

ऋ० ५ । ८२ । ४ में "अद्या" ऐसा दीर्घपाठ है ॥ ७ ॥

अथाऽष्टम्याः—प्रगाथः काण्वऋषिः । छन्दोदेवते उक्ते ॥

२ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
(१४२) क्वा ३ स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः ।
३ १र २र
ब्रह्मा कस्तꣳसपर्यति ॥ ८ ॥

भावार्थः—(स्यः) वह (वृषभः) वर्षाने वाला (युवा) बलवान् (तुविग्रीवः) बहुत ग्रीवाओं वाला (अनानतः) नम्रता रहित [तेजस्वी इन्द्र] (क्व) कहां है ? और (कः) कौनसा (ब्रह्मा) वेदज्ञ (तम्) उस को (सपर्यति) आहुति देता है ?

इस मन्त्र में ये दो प्रश्न हैं कि इन्द्र का स्थान कहां है ? और किस प्रकार का विद्वान् यज्ञ करे । अगले मन्त्र में दोनों प्रश्नों का उत्तर कहेंगे ॥

ज्वालाप्रसाद भार्गव जी ने (क्वा३स्य) इस प्लुत को बिना समझे (क्व, आस्य) ऐसा विश्लेष कर डाला और सायण, सत्यव्रत, पदपाठ और मूल के विरुद्ध व्याख्या कर डाली। भला जिन्हें शुद्ध पाठ का भी निश्चय नहीं वे भाष्य करने की इच्छा करते हैं ? निघण्टु ३।१ अष्टाध्यायी ६ । १ । १३३॥८ । २ । १००के प्रमाण तथा ऋ० ६ । ४ । २७ में जो पाठ में भेद है वह संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ८ ॥

अथ नवम्याः—वत्सऋषिः । छन्दोदेवते उक्ते ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१४३) उपह्वरे गिरीणाꣳसङ्गमे च नदीनाम् ।
३ १ १ २र
धिया विप्रो अजायत ॥ ९ ॥

भावार्थः-(गिरीणाम्) मेघों के (उपह्वरे) प्रान्त में (च) और (नदीनां, सङ्गमे) समुद्र पर [इन्द्र का स्थान है, यह प्रथम प्रश्न का उत्तर है] (धिया) जो बुद्धि से (अजायत) प्रसिद्ध होता है वह (विप्रः) विद्वान् [उस इन्द्र का यजन करता है, यह द्वितीय प्रश्न का उत्तर है] ॥

इस में सायणाचार्य ने प्रश्नोत्तर की सङ्गति नहीं लगाई ॥ ऋ० ८।६।२८ में "सङ्गथे" पाठ है ॥ ९ ॥

अथ दशम्याः-इरिमिढ ऋषिः । छन्दोदेवते उक्ते ॥

२ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २

(१४४) प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रꣳस्तोता नव्यं गीर्भिः ।

१ २ ३ २ ३ १ २

नरं नृषाहं मꣳहिष्ठम् ॥ १० ॥

* इति तृतीया दशतिः *

इति द्वितीयप्रपाठके प्रथमाऽर्धः ॥

भावार्थः-(चर्षणीनाम्, सम्राजम्) मनुष्यादि के, राजा (नव्यम्) स्तुतियोग्य (नरम्) नायक (नृषाहम्) मनुष्यों को न्याय व्यवस्था के अधीन रखने वाले (मꣳहिष्ठम्) भारी दाता (इन्द्रम्) परमेश्वर को (गीर्भिः) वेदवाणियों से (प्र, स्तोत) वर्णित करो ॥

निघण्टु २।३॥ ३।२० अष्टाध्यायी ३।३।६३॥ ८।३।१०६ ॥५३।५९ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८।१६।१ में भी ॥ १० ॥

* यह द्वितीयाऽध्याय में तीसरी दशति और द्वितीय प्रपाठक का प्रथमार्ध समाप्त हुवा *

अपादितिदशैन्द्रिप्रा-या गायत्र्यः प्रकीर्तिताः ॥

अथ चतुर्थी दशतिस्तत्र प्रथमायाः-श्रुतकक्षऋषिः । इन्द्रोदेवता गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(१४५) अपादु शिप्रयन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः ।

२ ३ २ ३ १ २

इन्दोरिन्द्रो यवाशिरः ॥ १ ॥

भाषार्थः-(शिप्री) शीघ्रगामी (इन्द्रः) इन्द्र (सुदक्षस्य) चतुर (महोषिणः) होता के (यवाशिरः) यव के साथ पकाये (अन्धसः) भोज्य (इन्दोः) गीले सोम का (अपात्) पान करता है ॥

अर्थात् यज्ञकर्त्ता के दिये हुवे यवमिश्रित भोज्य सोम ओषधि को त्वरायुक्त इन्द्र पान करता है ॥

व्याकरणप्रमाद भार्गवजी ने अद्भुत मनमुखी अर्थ किया है कि (शिप्री-श महानारायण । ह शक्ति । प ब्रह्मा । र रुद्र । ण विष्णु) इत्यादि । निघं० ४।३।२।३॥ १ ।१२॥ उणादि २।१५॥ अष्टाध्यायी ६।२।३६ इत्यादि के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये । ऋग्वेद ८।९२।४ में भी ॥१॥

अथ द्वितीयस्याः—मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २
(१४६) इमा उ त्वा पुरूवसोऽभि प्रनोनवुर्गिरः ।
१ २ ३ २२ ३ १ २
गावो वत्सं न धेनवः ॥ २ ॥

भाषार्थः-(पुरूवसो) बहुयश ! वा बहुधन ! ईश्वर ! वा राजन् ! (इमाः) ये (गिरः) वाणियें (अभि) चारों ओर से (त्वा उ) तुझ को ही (प्रनोनवुः) प्राप्त होती हैं ; दृष्टान्त-(धेनवः) दूधाली (गावः) गौवें (वत्सं न) जैसे बछड़े को ॥

जिस में गुण अधिक होते हैं सब ओर से उसी की प्रशंसा में वाणी ऐसे पहुंच जाती हैं जैसे दुधाल गायें चारों ओर जङ्गल में विचरती हुई सायङ्काल प्यारे बछड़े ही के पास को दौड़ती हैं ॥ ऋ० ६।४५।२५ में जो पाठ का भेद है वह संस्कृतभाष्य में देखिये ॥२॥

अथ तृतीयस्याः—गौतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ क २२
(१४७) अत्रा ह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् ।
३ २ ३ १ २ ३ २
इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ ३ ॥

भाषार्थः-(अत्र) इस (चन्द्रमसः गृहे) चन्द्रमा के मण्डल में (त्वष्टुः) सूर्य की (गोः) किरण का (नाम ह) स्वरूप ही है (इत्था) इस प्रकार (अमन्वत) मानो ॥

अर्थात् परमेश्वर का उपदेश है कि हे मनुष्यो ! सूर्य की किरण चन्द्रमा को प्रकाशित करती है । यह जानो तथा मानो ॥

इस मन्त्र में 'त्वष्टुः' पद का अर्थ सूर्य है और परमैश्वर्य वाला होने से सूर्य भी इन्द्रपदवाच्य है । त्वष्टुः का अर्थ सूर्य करने में निरुक्तकार ने ऋग्वेद की ऋचा प्रमाण देकर कहा है कि "त्वष्टा पुत्री का लेजाना करता है और इस सब जगत् में व्यापता है और ये सब भूतमात्र का समागम करते हैं । (यम) दिन की माता (उषा) लेजायी जाती है बड़े विवस्वान् की जाया अदृष्ट होती है अर्थात् आदित्य की जाया रात्रि आदित्य के उदय पर छिप जाती है" यह निरुक्त के पाठ का भावार्थ है जो निरुक्तकार ने "त्वष्टा दुहित्रे" इत्यादि ऋग्वेद १०।१७।१ की ऋचा का व्याख्यान किया है ॥

गोशब्द से सूर्य की किरण अर्थ लेने में निरुक्तकार कहते हैं कि "और इस की एक किरण चन्द्रमा की ओर प्रकाश करती है और इस से उपेक्षा करनी चाहिये आदित्य से इस (चन्द्रमा) का प्रकाश होता है जैसा कि-सुषुम्नः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमागन्धर्वः, यह वेदवाक्य है । इसलिये किरण भी गौ कही जाती है । अत्राह गोरमन्वत इस मन्त्र पर आगे (४।२१ में) व्याख्या करेंगे । सब ही किरणें गौ कही जाती हैं" यह निरुक्तस्थ पाठ का भावार्थ है ॥

ऋग्वेद १।८४।१५ में भी ऐसा ही पाठ है जिस पर निरुक्तकार ने सूर्य की छिपी हुई वा प्रतिगत किरण चन्द्रमण्डल पर पड़ती हैं, यह लिखा है ॥

प्रायः इस प्रकार के व्याख्यानों पर लोगों को भ्रम हुआ करता है कि व्याख्याता ने वेद के विज्ञान की प्रशंसार्थ पक्षपात से खैंच तान करके वर्त्तमान काल में प्रसिद्ध हुये विज्ञान की बातें वेद में घुसेड़ दी हैं । परन्तु उन संशयात्माओं को इस से शान्ति मिलेगी कि आज कल के वैज्ञानिकों के जन्म से बहुत वर्ष पूर्व यास्कमुनि ने ऊपर लिखा सिद्धान्त कहां से निकाला ? वेद से । क्योंकि निरुक्तकार अपने मत में "सुषुम्नः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमागन्धर्वः" इस वेद वचन का प्रमाण देते हैं ॥

इस में तो सायणाचार्य्य ने भी स्पष्ट स्वीकार किया है कि "चन्द्रबिम्ब में सूर्य की किरणें प्रतिफलित होती हैं" इत्यादि ॥

तथा एसियाटिकसोसाइटी के सुयोग्य सभ्य पं० सत्यव्रत सामश्रमी जी अपनी टिप्पणी में विवरणकार का मत लिखते हैं कि-"गो शब्द से यहां सुषुम्ना नाम सूर्य की किरण लेनी चाहिये जो चन्द्रमण्डल को छोटा होने

से चन्द्रमण्डल पर जाकर लौट कर पृथिवी पर चान्दनी के रूप से प्रकाश करती हैं वही यहां गोशब्द से अभिप्राय है" ॥

अष्टाध्यायी ६ । ३ । १३६ ॥ ५ । ३ । १११ निरुक्त १२ । ११ ॥ २ । ६ ॥ ४ । २५ ऋग्वेद १० । १७ । १ सायणभाष्य और श्री सत्यव्रत सामश्रमी जी की टिप्पणी इन सब का याथातथ्य पाठ संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः—भरद्वाज ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र

(१४८) यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

तत्र पूषा भुवत्सचा ॥४॥

भावार्थः-(यत्) जब कि (इन्द्रः) बिजुलीरूप अग्नि (वृषन्तमः) अत्यन्त वर्षाने वाला (रितः) धारों से बहते हुए (महीः) भारी (अपः) जलों को (अनयत्) पृथिवी पर पहुंचाता है (तत्र) तब (पूषा) सूर्य की पोषक किरण (सचा) सहकारी (भुवत्) होती हैं ॥

जब कि अत्यन्त वर्षा का कर्त्ता इन्द्र भारी मूसलाधार जल वर्षाता है तो सूर्य की पुष्टिकारक किरण वृक्ष वनस्पत्यादि का पोषण करने में सहकारी होती हैं, वही किरणें शुष्क होने पर नाश करती हैं और वर्षा में मिल कर पुष्टि करने से पूषा देवता कहाती हैं ॥ ऋ० ६ । ५७ । ४ में भी ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः-विन्दुः पूतदक्षोवा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्रीछन्दः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

(१४९) गौर्धयति मरुतांश्रवस्युर्माता मघोनाम् ।

३ २उ ३ १ २

युक्ता वह्नी रथानाम् ॥५॥

भावार्थः—(मघोनाम्) धन धान्यादि वालों की (माता) मातृतुल्य (श्रवस्युः) अन्न उत्पन्न करना चाहने वाली (रथानां मरुताम्) गमनशील वायुवों की (वह्नी) साथ घुमाने वाली (गौः) पृथिवी (युक्ता) वायु से जुड़ी हुई (धयति) पीती है ॥

पूर्वमन्त्रानुसार जब इन्द्र और पूषा वर्षा और पुष्टि करते हैं तब पृथिवी वायुवों को साथ घुमाती हुई उस वृष्टि पुष्टि को धारती है और उस से अन्न उत्पन्न करना चाहती है ॥

निघण्टु १।१॥२७॥२।१० अष्टाध्यायी ३।१।८॥३।२।६७ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ॥ ऋ० ८।६४।१ में भी ॥.॥

अथ पष्ठ्याः-श्रुतकक्षः सुकक्षोवा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

(१५०) उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते ।

१ २ ३ १ २ ३ २

उप नोहरिभिः सुतम् ॥ ६ ॥

भावार्थः-(मदानां पते) आनन्दों के पति ! [इन्द्र ! परमात्मन्] (नः) हम में से (सुतम्) आप के स्तोता को (हरिभिः) व्यापक गुणों से (उप, याहि) प्राप्त हूजिये (नः, सुतं, हरिभिः, उप याहि) हम में से, स्तुति करने वाले को, प्राप्त हूजिये । यह पुनरुक्ति अधिक इच्छा को प्रकाशित करती है ॥

देवपक्ष में-(मदानां पते) सोमों के पति ! [इन्द्र !] (नः) हमारे (सुतम्) सम्पादित सोमको (हरिभिः) व्यापक किरण रूप अश्वों से (उप, याहि) प्राप्त हो ॥

अर्थात् मनुष्यों को ऐसा करना चाहिये जिस से यज्ञ में इन्द्र नामक विद्युत् को सोमरस पहुंचे ॥

निघण्टु १ । १५ ॥ २ । ७ ॥ ३ । १६ इत्यादि के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ९३ । ३१ में भी ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः-श्रुतकक्ष ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १२ २२ ३१ २ ३ १ २ ३ २

(१५१) इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधन्तो अध्वरे ।

१ २ ३ १२ २२

अच्छाऽवभृथमोजसा ॥ ७ ॥

भावार्थः-हे मनुष्यो ! (अध्वरे) यज्ञ में (ओजसा) बल से (इन्द्रम्) वृष्टिदेव को (वृधन्तः) बढ़ाते हुवे तुम (इष्टाः) मन चाही (होत्राः) आहुतियां (असृक्षत) छोड़ो और तब (अवभृथम्) यज्ञान्त स्नान को (अच्छ) ओर प्राप्त हो ॥

अष्टाध्यायी ६ । १ । ११५ उणादि २ । ३ इत्यादि के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ९३ । २३ में वृधासः ऐसा पाठान्तर है ॥७॥

अथाऽष्टम्याः-वत्सः काण्व ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ २उ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

(१५२) अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह ।

३ २र २र

अहꣳसूर्य इवाजनि ॥ ८ ॥

भावार्थः-(अहम्) मैंने (इत् हि) ही (पितुः) पालन करने वाले [इन्द्र परमेश्वर] से (ऋतस्य) सत्य वेद की (मेधाम्) धारणावती बुद्धि (परि, जग्रह) ग्रहण की है । (अहम्) मैं (सूर्यइव) सूर्य सा प्रकाशमान (अजनि) प्रसिद्ध हुवा हूं ॥

अर्थात् जो मनुष्य पिता परमात्मा से सत्यवेदविद्या का ग्रहण करते हैं वे ही सूर्यवत् संसार भर को ज्ञान से प्रकाशित करते हैं । ऋ० ८ । ६ । १० में जग्रह के स्थान में जग्रभ पाठ है ॥ ८ ॥

अथ नवम्याः-शुनःशेप ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ ३ १ २

(१५३) रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः ।

३ २ ३ २३१२

क्षुमन्तोयाभिर्मदेम ॥ ९ ॥

भावार्थः-(इन्द्रे) परमेश्वर वा राजा वा देशविशेष के (सधमादे) प्रसन्नता सहित वा अनुकूल होने पर (नः) हमारी (रेवतीः) धन धान्यादि वाली (तुविवाजाः) बहुत बलयुक्त [प्रजा] (सन्तु) होवें (याभिः) जिन के साथ (क्षुमन्तः) बहुत भोजनादिसामग्री युक्त हम (मदेम) हर्ष को प्राप्त हों ॥

परमेश्वर और राजा के प्रसन्न रहने तथा पृथिवी के अनुकूल रहने पर सब प्रजा को उत्तम धन धान्य शारीरक आत्मिक और सामाजिक बल की प्राप्ति हो जिस से हम सब उन प्रजाओं सहित आनन्द में रहैं ॥

अष्टाध्यायी ६ । १ । ३७ ॥ ८ । २ । १५ ॥ ७ । १ । ३९ ॥ ६ । ३ । ९६ ॥ निघण्टु १ । ७ ॥ २ । ९ ॥ ३ । १ इत्यादि के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० १ । ३० । १३ में भी ॥९॥

अथ दशम्याः-शुनः शेपो वामदेवोवर्षिः ।

इन्द्रासोमौ देवते । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

(१५४) सोमः पूषा च चेततुर्विश्वासाꣳसुक्षितीनाम् ।

३ २ क २र ३ २

देवत्रा रथ्योर्हिता ॥१०॥

* इति चतुर्थी दशतिः ॥४॥ *

भावार्थः-(देवत्रा) सब देवतों में (पूषा) पुष्टिकर्त्ता इन्द्र सूर्य (च) और (सोमः) चन्द्रमा (चेततुः) चेताते हैं (विश्वासाम्) और समस्त (सुक्षितीनाम्) पृथिव्यादि लोकों के (रथ्योः) सम विषम मार्गों में (हिता) हितकारक हैं ॥

अष्टाध्यायी ६ । ३ । १३१ ॥ ७ । १ । ३९ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये । सायणाचार्य ने "रथ्यः, अर्हिता, ऐसा पदच्छेद पदपाठ और विवरण के विरुद्ध किया है," यह सामश्रमी सत्यव्रत जी भी स्वीकार करते हैं॥१०॥

* यह द्वितीयाऽध्याय में चतुर्थ दशति समाप्त हुई ॥४॥ *

——:॥०॥:——

पान्तमेति दशत्यामा-द्याऽनुष्टुप् परिकीर्त्तिता ।

अवशिष्टा दशत्यामै-न्द्र्यो गायत्र्यो नवस्मृताः ॥१॥

अथ पञ्चमी दशतिस्तत्र प्रथमायाः-श्रुतकक्ष ऋषिः ।

इन्द्रोदेवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र

(१५५) पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्रगायत ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

विश्वासाहꣳशतक्रतुं मꣳहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥१॥

भावार्थः-हे मनुष्यो ! (वः) तुम्हारे (अन्धसः) भोजनादि की (आपान्तम्) रक्षा करते हुवे (विश्वासाहम्) सर्वोपरि विराजमान (शतक्रतुम्) अनन्तकर्मा वा अनन्तज्ञानी (चर्षणीनाम्) ज्ञानी पुरुषों के (मꣳहिष्ठम्) पूजनीय वा दाता (इन्द्रम्) परमेश्वर को (अभि, प्र, गायत) गावो ॥

ऋ॰ ८ । ९२ । १ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः-वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्रोदेवता। गायत्रीछन्दः॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(१५६) प्र व इन्द्राय मादनꣳहर्यश्वाय गायत।

१ २ ३ १ २

सखायः सोमपाव्ने॥ २॥

- भावार्थः-(सखायः) मित्रो! तुम (वः) अपने को (मादनम्) आनन्द जैसे हो वैसे (हर्यश्वाय) हरण शील और व्यापक गुणों वाले (सोमपाव्ने) सौम्य भक्तों के रक्षक (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (प्र, गायत) श्रेष्ठगान करो॥

अष्टाध्यायी ३।२।७४ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऋ० ७।३१।१ में भी॥ २॥

अथ तृतीयस्याः-मेधातिथिप्रियमेधावृषी। इन्द्रोदेवता। गायत्री छन्दः॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

(१५७) वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः।

१ २ ३ १ २

कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते॥ ३॥

भावार्थः-(इन्द्र) हेपरमेश्वर! (सखायः) मित्र (कण्वाः) मेधावी लोग (त्वा) तेरा (उक्थेभिः) वेदमन्त्रों से (जरन्ते) पूजन करते हैं और (त्वायन्तः) तुझे चाहते हुये (तदिदर्थाः) अनन्य भक्त (वयम्) हम (उ) भी [तुझे ही पूजते हैं]॥

निघण्टु ३। १४॥ ३। १५ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऋ० ८। २। १६ में भी॥३॥

अथ चतुर्थ्याः-श्रुनकक्षऋषिः। इन्द्रोदेवता। गायत्री छन्दः॥

१ २३ १ २ ३ १र २र ३ १ २

(१५८) इन्द्रायमद्वने सुतं परिष्टोभन्तु नोगिरः।

३ १ २ ३ १ २

अर्कमर्चन्तु कारवः॥४॥

भावार्थः-(कारवः) स्तुतिकर्त्तालोग (अर्कम्) पूजनीय परमेश्वर

की (अर्चन्तु) स्तुति करें और (नः गिरः) हमारी वाणियें (मद्वने इन्द्राय) हर्षशील इन्द्र के लिये (सुतम्) सम्पादित सोम को (परिष्टोभन्तु) सर्वतः वर्णित करें ॥

निघण्टु ३।१६॥ ३ । १४ ॥ अष्टाध्यायी ३ । २ । ७५ ॥ उणादि ३ । ४० के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८।९२।१९ में भी ॥४॥

अथ पञ्चम्याः-इरिमिठ ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(१५९) अयन्त इन्द्र सोमो निपूतो अधिबर्हिषि ।

१ २ ३ २ ३ ३ १ २

एहीमस्य द्रवापिब ॥५॥

भावार्थः-पूर्वमन्त्र में इन्द्र के लिये सोम का वर्णन करो, यह कहा था। को वर्णन करते हैं कि-(इन्द्र) वृष्टिकर्त्ता ! (अयम्) यह (निपूतः) नितरां संस्कार किया हुवा (सोमः) सोम (ते) तेरे लिये (बर्हिषि, अधि) यज्ञ में [हवन किया है](अस्य) इस का (पिब) पान कर (एहि) आ (द्रव) दौड़ ॥

जब कि मनुष्य वृष्टि के हेतु इन्द्रयाग के लिये सोम को तय्यार करें तब प्रथम परमेश्वर की स्तुति (देखो पूर्वमन्त्र) करके फिर अग्नि में सोम का हवन करें जिस से इन्द्र नामक अग्नि दौड़ जावे और उसे शोषण कर वर्षा का हेतु हो ।। ऋ० ८ । १७ । ११ में भी ।५।।

अथ षष्ठयाः-मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्रीछन्दः ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(१६०) सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे ।

३ २ ३ १ २

जुहूमसि द्यविद्यवि ॥६॥

भावार्थः-हम लोग (ऊतये) अनावृष्ट्यादि से रक्षा के निमित्त (सुरूपकृत्नुम्) शोभन रूप करने वाले [सोम का इन्द्र के लिये] (द्यविद्यवि) प्रतिदिन (जुहूमसि) हवन करें। दृष्टान्त-(गोदुहे सुदुघामिव) जैसे गाय दुहने वाले के लिये दुधार गाय को ॥

भाव यह है कि जैसे गाय दुहने वाले के लिये प्रतिदिन दुधार गौ को उपस्थित करते हैं जिस से वह दुग्ध दुह कर हमें देवे इसी प्रकार अकाल

अवर्षणादि से रक्षित रहने के लिये इन्द्र के निमित्त सोम उपस्थित करना चाहिये जिस से वह जल वर्षा कर सुवर्ष करे ॥ ऋ० १। ४। १में भी ॥६॥

अथ सप्तम्याः-त्रिशोक ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

(१६१) अभि त्वा वृषभा सुते सुतꣳसृजामि पीतये ।

३ १ २ ३ १ २

तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥७॥

भावार्थः-(वृषभ) वृष्टिकर्त्तः इन्द्र ! (सुते) तैयार होने पर (सुतम्) सोम को (पीतये) पीने के लिये (त्वा) तुझ को (अभिसृजामि) हवन करता हूं । (तृम्प) तृप्त हो (मदं, व्यश्नुहि) हर्ष को, प्राप्त हो ॥

भाव यह है कि इन्द्र वर्षा करता है इस लिये उस की तृप्ति अर्थात् वृद्धि पुष्टि के लिये सम्पन्न (तैय्यार) होने पर सोम का हवन करना चाहिये । इन्द्र का मेघ वर्षाने के लिये उपयुक्त होना ही हर्ष है ॥

अष्टाध्यायी ६। ३। १३५॥ ६। ३। १३७ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ज्वालाप्रसाद जी भार्गव ने (भ×ह) इत्यादि पदपाठ के विरुद्ध निर्मूल व्याख्या की है । ऋ० । ८ । ४५ । २२ ॥७॥

अथाऽष्टम्याः-कुसीद ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ २

(१६२) य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः ।

१२ २२ ३ १ २

पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥८॥

भावार्थः-फिर सोम को वर्णित करते हैं । (इन्द्र) इन्द्र ! वा राजन् ! (यः सोमः) जो सोम (चमूषु) पात्रों में (ते) तेरे लिये (सुतः) सिद्ध किया है (अस्य) इस सोम का (त्वम्) तू (आ,ईशिषे) सब प्रकार, अधिष्ठाता है (इत्) इस कारण (चमसेषु) चमस नाम के कलशों में (पिब) पी ॥

यज्ञकर्त्ताओं को योग्य है कि चमू नामक पात्रों में प्रथम सोम का अभिषव करें फिर चमस नामक पात्रों द्वारा इन्द्रादि देवों वा राजादि के लिये दें और वे उसे शीघ्र पान करते हैं वा करें, क्योंकि वे ही ओषधि वर्ग के अधिष्ठाता हैं,उनके आनुकूल्य से उन की उत्पत्ति आदि का व्यवहार अच्छा

बनता है। इस से यह भी सूचित होता है कि सोम राजकीय ओषधि है उसका स्वास्थ्य राजा के हाथ में होना चाहिये ॥ ऋ० ८।८२।७ में भी ॥८॥

अथ नवम्याः—शुनः शेप ऋषिः। इन्द्रोदेवता। गायत्री छन्दः॥

१२ ३ १ २ ३ १ २
(१६३) योगे, योग तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
सखाय इन्द्रमूतये ॥९॥

भावार्थः—(वाजे वाजे) प्रत्येक लड़ाई में (योगे योगे) प्रत्येक ऐसे अवसर में वा योग में (सखायः) हम मित्र (तवस्तरम्) अतिबल (इन्द्रम्) राजा वा परमात्मा की (ऊतये) रक्षा के लिये (हवामहे) पुकार करें॥

मनुष्यों को परस्पर मित्र होना चाहिये तथा योगानुष्ठान के शत्रु काम क्रोधादि से बचने को परमात्मा और लौकिक कार्यों के शत्रु दस्यु आदि से लड़ाई के समय राजा की सहायता ग्रहण करनी चाहिये॥ ऋ० १।३।७ ॥९॥

अथ दशम्याः—मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रोदेवता। गायत्री छन्दः॥

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
(१६४) आ त्वेता निषीदतेन्द्रमभिप्रगायत।
१ २ ३ १ २
सखायः स्तोमवाहसः॥१०॥

भावार्थः—(सखायः) हे मित्रो! (स्तोमवाहसः) स्तुति का प्रवाह चलाते हुवे (आ तु आ इत) आओ आओ (निषीदत) बैठो और (इन्द्रम्) परमेश्वर का (प्रगायत) कीर्त्तन करो॥

यद्यपि स्तोम का सामान्य अर्थ स्तुति मात्र है परन्तु ताण्ड्य महाब्राह्मण में स्तोमों के भेद वर्णन किये हैं। लोकों के प्रमोदार्थ हम थोड़े से यहां उद्धृत करते हैं। ताण्ड्य महाब्राह्मण के द्वितीय और तृतीय अध्यायों में १ त्रिवृत् २ पञ्चदश ३ सप्तदश ४ एकविंश ५ त्रिणव ६ त्रयस्त्रिंश ये पृष्ठ्यषडह यज्ञ में छः स्तोम होते हैं। अनन्तर छन्दोमों के ३ स्तोम कहे हैं। उन में से बहिष्पवमान के साधन त्रिवृत् नामक स्तोम की ३ विष्टुति हैं, उद्यती परिवर्त्तिनी और कुलायिनी। प्रथम ३ अनुवाकों से कही गई हैं। प्रथम उद्यती का स्वरूप यह है:—

तिसृभ्यो० २ । २ । १ ।

एक एक साम की ५ विभक्ति होती हैं, हिङ्कार प्रस्ताव उद्गीथ प्रतिहार उपद्रवनिधन । उन में से हिङ्कार ३ उद्गाताओं को करना चाहिये । अष्टाध्यायी २ । ३ । १५ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये । पहला उद्गाता पहली ऋचा को तीन वार, दूसरा दूसरी और तीसरा तीसरी को । इस प्रकार त्रिवृत् नामक स्तोम की पहली उद्यती नाम विष्टुति कहाती है ॥ अब दूसरी परिवर्त्तिनी नाम विष्टुति का वर्णन करते हैं:-

तिसृभ्यो० २ । २ । १ । इत्यादि

प्रथम उद्यती में तो ३ ऋचाओं में एक २ ऋचा को एक २ उद्गाता तीन २ वार पढे यह कहा । इस दूसरी परिवर्त्तिनी नामक विष्टुति में १ उद्गाता १, २, ३, ऋचाओं को पढ़े फिर दूसरा उद्गाता तीनों को पढ़े । फिर तीसरा भी । इस प्रकार दूसरी परिवर्तिनी नाम विष्टुति कहाती है ॥ अब तीसरी कुलायिनी को सुनियेः-

तिसृभ्योहिं० २ । ३ । १ ॥

पहिला उद्गाता इस क्रम से पढ़े कि पहली दूसरी तीसरी ॥ दूसरा उद्गाता दूसरी तीसरी पहिली । तीसरा उद्गाता तीसरी पहिली दूसरी । इस प्रकार तीन पर्य्याय मिल कर तीसरी कुलायिनी नाम त्रिवृत् स्तोम की विष्टुति कहाती है । ३ विष्टुति से ही इसे त्रिवृत् स्तोम कहते हैं ॥

इसी प्रकार पञ्चदशादि स्तोमों की पृथक् २ विष्टुतियां कही गई हैं जो वहीं ताण्ड्य महाब्राह्मण में देखनी चाहियें ॥ ऋ०१ । ५ । १ में भी ॥१०॥

यह द्वितीयाध्याय में पांचवीं दशति समाप्त हुई ॥५॥

इदं हीतीन्द्रदैवत्या गायत्र्यो दशतौ दश ॥ १ ॥

अथ षष्ठी दशतिस्तत्र प्रथमायाः-विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १२ २२ ३ १ २

(१६५) इदꣳह्यन्वोजसा सुतꣳराधानां पते ।

३ २ १ २

पिबा त्वा३स्य गिर्वणः ॥१॥

भावार्थः-(राधानाम्) धनों के (पते) स्वामिन् ! राजन् ! (गिर्वणः) वाणी से प्रशंसा योग्य ! (ओजसा) परिश्रम से (सुतम्) सिद्ध किये हुवे (अस्य) इस सोम के (इदम्) इस भाग को (पिब) पीजिये । (अनु, हि, तु) पादपूरणार्थ हैं ॥

मनुष्यों को उचित है कि राजा के लिये सोमरस सिद्ध करके अर्पित करें और राजा उसका पान करे। और प्रजा को जीविका तथा रक्षा का दान करे, वह प्रशंसा के योग्य है ॥

ज्वालाप्रसाद भार्गव जी ने अनुक्रमणिका के विरुद्ध महानारायण देवता, (अ, अस्य) यह पदपाठ के विरुद्ध पदच्छेद, राधः पद निघण्टु २।१० में धन का वाचक होने से निघण्टु और सायण के विरुद्ध राधानाम् का अर्थ राधांश देवी, किया है ॥ ऋ० ३ । ५१ । १० में भी ॥१॥

अथ द्वितीयायाः-मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(१६६) महाँ इन्द्रः पुरश्च नो महित्वमस्तु वज्रिणे ।

१र २र ३ १र २र

द्यौर्न प्रथिना शवः ॥२॥

भावार्थः-(इन्द्रः) परमैश्वर्ययुक्त राजा (महान्) प्रौढ़ (अस्तु) होवे (च) और (वज्रिणे) शस्त्रास्त्रधारी के लिये (नः) हमारे (पुरः) आगे (महित्वम्) बड़प्पन हो और (शवः) सेनाबल (प्रथिना) विस्तार से (द्यौर्न) द्युलोक के समान हो ॥

राजा को उचित है कि महान् बलवान् शस्त्रास्त्र वाला और न्याय-प्रकाश वाला हो ॥

सायणाचार्य ने " परश्च नु " ऐसा पदच्छेद करके व्याख्या की है जो पदक्रम और समस्त मूल ग्रन्थों के विरुद्ध है । यथार्थ पाठ "पुरश्चनः" है । इस पर सत्यव्रत सामश्रमी जी कहते हैं कि "आश्चर्य है ! मूल में 'नु' पद कहाँ है ? " परन्तु हमारी सम्मति में आश्चर्य नहीं किन्तु ऋग्वेद (१।८।५) में "परश्चनु" यही पाठ है । इसलिये ऋग्वेदभाष्यकार सायणाचार्य ने वहीं की भ्रान्ति से सामवेद के पाठभेद को भूल कर वही ऋग्वेदतुल्य व्याख्या कर दी है ॥ निघं० २ । ९ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीयस्याः कुसीदी काण्व ऋषिः ।
इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१र ४र ३ १ २ ३ १ ३ १र २र
(१६७) आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभꣳ संगृभाय ।
३ १र ५र
महाहस्ती दक्षिणेन ॥ ३ ॥

भावार्थः—(इन्द्र) हे राजन् ! तू (महाहस्ती) आजानुबाहु अर्थात् बड़े हाथों वाला (दक्षिणेन) अपने दहिने वा चतुर हाथ से (नः) हमारे (क्षुमन्तम्) भोजनीय अन्न से युक्त (चित्रम्) विविध (ग्राभम्) न्यायोपार्जित धन का (आ, संगृभाय) सब ओर से संग्रह कर ॥

लोक में भी क्षत्रिय की भुजा लम्बी घुटनों को स्पर्श करने वाली प्रसिद्ध हैं। बस बड़े हाथ वाले राजा को प्रजा के भोग के लिये धान्यादि सामग्री सहित विविध न्याय से कमाये धन का संग्रह करना चाहिये ॥

अष्टाध्यायी ६ । ३ । १३३ निघण्टु २ । ७ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ८ । ८१ । १ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः- प्रियमेध ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ।

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(१६८) अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे ।
३ २ ३ २ ३ १ २
सूनुꣳसत्यस्य सत्पतिम् ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्य ! (सत्पतिम्) सज्जनों के रक्षक और (गोपतिम्) पृथिवी के स्वामी (सत्यस्य, सूनुम्) सत्य के पुत्र (इन्द्रम्) राजा को (यथा विदे) जैसा जानता हो वैसा (गिरा) वाणी से (अभि, प्र, अर्च) सब प्रकार सत्कृत कर ॥

अर्थात् हे मनुष्यो ! राजा सज्जनों का तथा पृथिवीस्थ अन्य प्राणियों का रक्षक है और सत्य न्याय का पुत्र अर्थात् सन्तान के तुल्य सेवक है । तुम वाणी से उस की प्रशंसा करो परन्तु जैसा जानते हो वैसी ही । किन्तु चाटु (खुशामद) नहीं ॥ पं० ज्वालाप्रसाद जी ने गो शब्द निघण्टु १ । १ में पृथिवी का नाम होते हुवे और 'सत्य का पुत्र' होते हुवे भी वसुदेव के पुत्र कृष्ण-

गोपाल के अवतार का वर्णन करके अपने अर्थ की निर्मूलता दर्शायी है। परमात्मा को अजन्मा कहने वाली श्रुतियों से भी विरोध किया है। सायणाचार्य को भी यह अर्थ सम्मत नहीं है। न निरुक्त ने कहीं इन्द्र पद का अर्थ 'कृष्ण' किया और मन्त्र का देवता इन्द्र है॥ ऋ० ८।६९।४ में भी॥४॥

अथ पञ्चम्याः-वामदेवऋषिः। इन्द्रोदेवता। गायत्री छन्दः॥

१ २ ३ १२ २२ ३ २ ३ १२३ १ २
(१६९) कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा।
३ १ २ ३ २
कया शचिष्ठया वृता॥५॥

भावार्थः-प्रकरण से इन्द्र! राजन्! (कया) किस रीति से तू (नः) हमारा (सखा) मित्र (आभुवत्) होवे? उत्तर-(ऊती) रक्षा से॥ (कया) किस (वृता) कर्म से वा वृत्ति से (चित्रः) विचित्र गुण कर्म स्वभाव होवे? उत्तर-(शचिष्ठया) प्रज्ञायुक्त से॥ इस प्रकार (सदावृधः) सर्वदा वृद्धि युक्त होवे॥

अष्टाध्यायी (३।१।३९) निघण्टु ३।९ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऋग्वेद ४।३१ में भी॥५॥

अथ षष्ठ्याः-श्रुतकक्षऋषिः। इन्द्रोदेवता। गायत्री छन्दः॥

१ २ ३ २३ १ २ ३ १ २
(१७०) त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम्।
१ २ ३ १ २
आच्यावयस्यूतये॥६॥

भावार्थः-(वः) तुम्हारे (सत्रासाहम्) सत्य से सब के विजयी (विश्वासु) जहां २ इन्द्र का वर्णन है उन समस्त (गीर्षु) वाणियों में (आयतम्) विस्तारपूर्वक वर्णित (त्यम्, उ) उस, ही राजा को (ऊतये) रक्षा के लिये (आच्यावयसि) बुलाओ॥

निघण्टु ३।१० का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऋ० ८।९२।७ में भी॥६॥

अथ सप्तम्याः-मेधातिथिर्ऋषिः। इन्द्रोदेवता। गायत्री छन्दः॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(१७१) सदसस्पतिमद्भुतंप्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
३ २ ३ १ २
सनिं मेधामयासिषम् ॥७॥

भावार्थः-(इन्द्रस्य) जीवात्मा के (काम्यम्) उपास्य (अद्भुतम्) आश्चर्यस्वरूप (सदसस्पतिम्) सभापति के समान (प्रियम्) हितकारी (सनिम्) कर्मफलप्रदाता [ईश्वर की उपासना से] (मेधाम्) प्रज्ञा को (अयासिषम्) प्राप्त होऊं ॥

जो मनुष्य परमात्मा की उपासना करते हैं वे तथा जो सभापति राजा का निर्वाचन करते हैं वे उत्तम बुद्धि बल आरोग्यादि द्वारा सुख को प्राप्त होते हैं ॥ऋ० १ । १८ । ६ ॥ ७ ॥

अथाऽष्टम्याः-वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २उ क २र ३ १ २
(१७२) ये ते पन्था अधो दिवो येभिर्व्यश्वमैरयः ।
३१ २ ३ १ २
उत श्रोषन्तु नो भुवः ॥८॥

भावार्थः हे इन्द्र ! परमात्मन् ! (ये) जो (पन्थाः) मार्ग (ते) तुम्हारे निर्दिष्ट हैं (उत) और (येभिः) जिनसे (व्यश्वम्) वायु को (वि, ऐरयः) प्रेरित करते हो उन से (दिवः) द्युलोक के (अधः) अधोभाग में (नः) हमारी (भुवः) भूमियें अर्थात् भूमिस्थ लोग (श्रोषन्तु) सुनते हैं ॥

अर्थात् परमात्मा वा सूर्य्य रूप प्रेरणा से वायु बहता है, जिस से भूमण्डल के निवासी एक दूसरे का शब्द सुनते हैं ॥ सायणाचार्य ने यहां भी मूल के विरुद्ध "विश्वम्" पद की व्याख्या की है ॥ ८ ॥

अथ नवम्याः-श्रुतकक्ष ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३१२ ३ २ ३२३१२
(१७३) भद्रं भद्रं न आभरेषमूर्जं शतक्रतो ।
१२ ३१२
यदिन्द्र मृडयासि नः ॥९॥

भावार्थः-(इन्द्र) परमेश्वर ! (नः) हमारे लिये (भद्रं भद्रम्) अच्छे २ (इषम्) अन्न और (ऊर्जम्) रस को (आभर) प्राप्त कराइये (शतक्रतो) बहुकर्मन् ! (यत्) जिस से (नः) हम को (मृडयासि) सुखी कर ॥ ऋ० ८ । ९३ । २८ में भी ॥ ९ ॥

अथ दशम्याः-बिन्दुर्ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

(१७४) अस्ति सोमो अयꣳसुतः पिबन्त्यस्य मरुतः ।

३२ ३ १ २ ३ १ २

उत स्वराजो अश्विना ॥ १० ॥

* इति षष्ठी दशतिः ॥ ६ ॥ *

भावार्थः—हे परमात्मन् ! इन्द्र ! (अयम्) यह (सोमः) सोम (सुतः) सिद्ध (अस्ति) है (स्वराजः) स्वयं प्रकाश (मरुतः) वायु वा प्राण (अस्य) इस सोम का (पिबन्ति) पान करें (उत) और (अश्विना) दिन रात्री वा द्यौ और पृथिवी वा सूर्य और चन्द्रमा [पान करें] ॥

निरुक्त १२ । १का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ९४ । ४ में भी ॥ १० ॥

* यह द्वितीयाऽध्याय में छठी दशति पूर्ण हुई ॥ ६ ॥ *

———

ईङ्खयन्तीति चेन्द्रस्य गायत्र्यो दशतौ दश ॥ १ ॥

अथ सप्तमी दशतिस्तत्र प्रथमायाः– इन्द्रमातरो देवजामय ऋषिकाः । इन्द्रोदेवता । गायत्रीछन्दः ॥

३ १ २ ३ २३ १ २ ३ १ २र

(१७५) ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते ।

३ १ २ ३ १ २

वन्वानासः सुवीर्यम् ॥ १ ॥

भावार्थः-(ईङ्खयन्तीः) समझने वाली (अपस्युवः) कर्म चाहने वाली बुद्धि और (सुवीर्यम्) सुन्दर पुरुषार्थ का (वन्वानासः) सेवन करते हुवे

पुरुष (आतम्) हृदय में साक्षात् हुवे (इन्द्रम्) परमेश्वर को (उपासते) उपासित करते हैं ॥

निघण्टु २। १ ॥ २। १४ के प्रमाण और ऋ० १०। १५३। १ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः-गोधा ऋषिः। इन्द्रोदेवता। गायत्री छन्दः।

१ २ ३ १र २र
(१७६) नकि देवा इनीमसि नक्यायोपयामसि ।
३ १ २
मन्त्रश्रुत्यं चरामसि ॥ २ ॥

भावार्थः-(देवाः) हम उपासक लोग (नकि, इनीमसि) हिंसा न करें (आ) सब ओर से (नकि, योपयामसि) किसी को अज्ञानयुक्त, न करें और (मन्त्रश्रुत्यम्) वेदोक्त कर्मों का (चरामसि) अनुष्ठान करें ॥

अष्टाध्यायी ७। ३। ८१ ॥ ७। १। ४६ इत्यादि के प्रमाण तथा ऋ० १०। १३४। ७ का अन्तर संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीयस्याः-दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः ॥

३ १र २र ३ १ २ ३ १
(१७७) दोषो आगाद्बृहद्गाय द्युमद्गामन्नाथर्वण ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
स्तुहि देवꣳसवितारम् ॥ ३ ॥

भावार्थः-(बृहद्गाय) बृहत् साम के गाने वाले। (द्युमद्गामन्) प्रकाशयुक्त ज्ञानवाले। (आथर्वण) अथर्व वेद के ज्ञातः। ब्रह्मन्। तू जब कि (दोषा) रात्रि (उ, आगात्) आवे, तब (सवितारम्) सर्वोत्पादक (देवम्) परमात्मा की (स्तुहि) स्तुति कर ॥

ब्रह्मा का काम है कि यज्ञ में रात्रि का आरम्भ होते ही अर्थात् सायं सन्ध्या समय परमात्मा का धन्यवाद करके समाप्ति करे ॥ यहां आथर्वण पद से ब्रह्मा सूचित होता है। क्योंकि-"ऋचां त्वः पोषमास्ते०" ऋ०१०।७१।११ के प्रमाण से यज्ञ के होता अध्वर्यु उद्गाता और ब्रह्मा ये चार ऋत्विज् होते हैं। जिन में से आपस्तम्ब के सूत्र "ऋग्वेदेन होता०" इत्यादि १९। २०।

२१। के पश्चात् २२ के अनुसार ब्रह्मा का काम चारों वेदों से पड़ता है और अथर्ववेद से चार वेद पूरे होते हैं। इस लिये ब्रह्मा को अथर्ववेद जानना भी आवश्यक है। और इसी से ब्रह्मा को आथर्वण कहा गया है। १ऋग्वेद जानने वाला होता। २ ऋग्यजुः जानने वाला अध्वर्यु। ३ ऋग्यजुःसाम का ज्ञाता उद्गाता और ४ ऋग्यजुः साम अथर्व का ज्ञाता ब्रह्मा होता है॥ ऋ० १०। ७१। ११। आप-स्तम्ब १९। २०। २१। २२ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥

सत्यव्रत सामश्रमी कहते हैं कि "पदकार ने 'दोषा, उः' ऐसा पदच्छेद किया है।" इस लिये सायणाचार्य के भाष्य में "दोषः" यह एक पद करके जो अर्थ किया है वह पदकार के विरुद्ध है॥ ३॥

अथ चतुर्थ्याः-प्रस्कण्व ऋषिः। इन्द्रोदेवता। गायत्री छन्दः॥

३ २ ३ १र २र क २र ३ २ ३ २

(१७८) एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः।

३ १ २ ३ २

स्तुषे वामश्विना बृहत्॥ ४॥

भाषार्थः—पूर्व मन्त्र में सायं सन्ध्या पर परमात्मा का धन्यवाद सिखाया गया। इस में प्रातःकाल का धन्यवाद कहते हैं (एषा उ) यही (अपूर्व्या) नवीना (प्रिया) प्यारी (उषाः) पीली [अरुणोदय की वेला] निरु० २। १८ (दिवः) द्युलोक से (व्युच्छति) फैलती है अर्थात् प्रातः हो गया इस लिये (अश्विना) हे पढ़ने पढ़ाने वालो! (वाम्) तुम (बृहत्) बहुतायत से इन्द्र परमात्मा की (स्तुषे) स्तुति करो॥

जिस प्रकार सूर्य प्रकाश करता और चन्द्रमा प्रकाश लेता है इसी प्रकार पढ़ाने वाला विद्या का प्रकाश देता और पढ़ने वाला लेता है। इस लिये निरुक्त के मतानुसारी " अश्विनौ " के अर्थ सूर्य और चद्रमा से यहां पढ़ने पढ़ाने वाले का ग्रहण है॥ ऋ० १। ४६। १ में भी॥ ४॥

अथ पञ्चम्याः-गोतम ऋषिः। इन्द्रोदेवता। गायत्री छन्दः॥

१ २ ३ २- ३ १ २ ३ १र २र

(१७९) इन्द्रोदधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः।

३ १ २ ३ १र २र

जघान नवतीर्नव॥ ५॥

भावार्थः (अप्रतिष्कुतः) जिस के सामने कोई न ठहर सके ऐसा (इन्द्रः) परमैश्वर्यवन् सूर्य के तुल्य राजा (दधीचः) अवश्य ध्यान पड़ने योग्य पदार्थ के रचित (अस्थभिः) किरण तुल्य बाणों से (नव, नवतीः) नौ नव्वे ८१० (वृत्राणि) रोकने वाले अन्धकार वा मेघ तुल्य शत्रुसेना को (जघान) मारता है वा मारे ॥

संख्या के अङ्कों में ९ अङ्क ऐसा है जो किसी संख्या के साथ गुणो, योग से ९ ही रहता है । जैसे ९ को २ से गुणो तो १८ हुये, १८ में १ और ८ मिलाने से फिर ९ ही हुवे । ९ को ३ से गुणा तो २७ हुवे २+७=९ हुवे । ९ को ४ से गुणा तो ३६ हुवे ३+६=९ ही आये । फिर ९ को ५ से गुणिये तो भी ४५ हुवे ४+५=९ ही आये, ऐसा ही आगे जानो । जिस कारण ९ की संख्या दूसरी किसी संख्या से हनन करने पर भी पुनः पुनः उसी अपने स्वरूप में होजाती है इस कारण नव नव्वे के अङ्क से शत्रुसेना को गिना है ॥ अर्थात् वार वार जुड़ जुड़ कर उसी स्वरूप से सामने आवे ॥

सत्त्व रजः तमः इन तीन गुणों के भेद से तीन प्रकार की सेना होती है । फिर भूत भविष्यत् वर्त्तमान इन ३ कालकृत भेद से ९ प्रकार की हुई फिर प्रभाव उत्साह और मन्त्र इन ३ शक्तियों के भेद से २७ गुणी हुई । फिर उत्तम मध्यम और अधम भेद से ८१ प्रकार की हुई । और दश दिशा-के भेद से ८१० प्रकार हुए ॥

सायणाचार्य इस में इतिहास लिखते हैं कि-"शाकटायनी लोग इस में इतिहास कहते हैं कि जीवते हुवे आथर्वण दधीचि के दर्शनमात्र से असुर हार जाते थे । फिर जब दधीचि स्वर्ग सिधारा तो समस्त पृथिवी असुरों से भर गई । तब इन्द्र ने उन असुरों से युद्ध करने में असमर्थ हो, इस ऋषि (दधीचि) को ढूंढते हुवे सुना कि वह तो स्वर्ग को सिधार गया । तब इन्द्र ने वहां वालों से पूछा कि यहां उस का कुछ शेष अङ्ग कोई है ? उस (इन्द्र) से कहा कि उसका शिर शेष है जिस शिर से उसने अश्विवयों को मधुविद्या कही थी । परन्तु हम नहीं जानते कि वह कहां है ? । फिर इन्द्र ने कहा कि उसे ढूंढिये । उन्होंने ढूंढा । उसे शर्यणावती में पाय कर ले आये । (शर्यणावत् कुरुक्षेत्र का नाम है) उसके शिर की हड्डियों से इन्द्र ने असुरों को मारा ॥"

ऋग्वेद १ । ८४ । १ में भी ऐसी ही ऋचा है और उस पर स्वामी दयानन्द सरस्वती जी इस प्रकार भाष्य करते हैं कि—

"पदार्थः हे सेनापते जैसे (अप्रतिष्कुतः) सब ओर से स्थिर (इन्द्रः) सूर्य लोक (अस्थभिः) अस्थिर किरणों से (नव नवतीः) निन्नानवे प्रकार के दिशाओं के अवयवों को प्राप्त हुवे (दधीचः) जो धारण करने हारे वायु आदि को प्राप्त होते हैं उन (वृत्राणि) मेघ के सूक्ष्म अवयवरूप जलों का (जघान) हनन करता है वैसे तू अनेक अधर्मी शत्रुओं का हनन कर ॥

भावार्थः-अत्र वाचकलु०-वही सेनापति होने के योग्य होता है जो सूर्य के समान दुष्ट शत्रुवों का हन्ता, और अपनी सेना का रक्षक है ॥"

सायणाचार्योक्त इतिहास से विरुद्ध विवरणकार का मत सत्यव्रत सामश्रमी जी बताते हैं कि—

"कालखञ्ज नाम असुर थे। उन असुरों से सताये हुवे देवताओं ने ब्रह्मा के समीप जाकर कहा। भगवन्! कालखञ्ज असुर सताते हैं। उन के मारने का उपाय कीजिये। यह सुन वह (ब्रह्मा उन से बोला कि दधीचि नाम ऋषि है उस से जाकर कहो, वह मारने का उपाय करेगा। वे (देवता) यह सुन, बहुत अच्छा। कहकर उस दधीचि के समीप गये और कहा कि भगवन्! उन (असुरों) का पुरोहित शुक्राचार्य्य हमारे अस्त्रों का अपहरण कर लेता है। उन (अस्त्रों) की रक्षा कीजिये। तब उस ऋषि ने उन (देवतों) से कहा कि मेरे मुख में फेंक दो। तब मरुद्गणों सहित इन्द्रादि देवतों ने (अस्त्र) उस के मुख में फेंक दिये। फिर समय पाय देवाऽसुरसङ्ग्राम हुवा तो देवतों ने आकर कहा कि भगवन्! वे हमारे अस्त्र दीजिये। तब उस ने कहा कि वे तो मुझे पच गये अब वे फिर नहीं मिल सक्ते। तब ब्रह्मादि देवतों ने कहा कि भगवन्! प्राण त्याग कीजिये। यह सुन उस ने प्राण त्याग दिये। उस दधीचि की अस्थि=हड्डियों से इन्द्र ने वृत्रों को मारा" ॥

वेदों का ऐतिहासिक अर्थ उन की अपौरुषेयता का बाधक, और परस्पर सायण और विवरण का विरोध होने तथा मूल में इस प्रकार की कथा न होने से यह अनर्थ हमारे मन को नहीं भावता ॥

निरुक्त १२ । ३३ उणादि ३ । १५४ वा ७ । १ । ७६ तथा सायणाचार्यादि की सम्मतियां संस्कृतभाष्य में ज्यों की त्यों उद्धृत हैं ॥५॥

अथ षष्ठ्याः—मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

२उ ३ १२ ३२३ १ २ २१२
(१८०) इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः।
३१ २३ १२ ३२
महाँ अभिष्टिरोजसा ॥ ६॥

भावार्थः–(इन्द्र) राजन्! तुम (ओजसा) बल से (महान्) बड़े और (अभिष्टिः) शत्रुओं का दमन करने वाले (विश्वेभिः) समस्त (सोम पर्वभिः) सोम की गांठों सहित (अन्धसः) अन्नों को (एहि) प्राप्त हूजिये और (मत्सि) हृष्ट हूजिये ॥

राजा को सोम से पगे अन्न खाकर बलवान् हृष्ट पुष्ट शत्रुदमनकर्त्ता होना चाहिये ॥

अष्टाध्यायी ३।३।९६॥ ६।१।९४ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० १।९।१ में भी ॥ ६॥

अथ सप्तम्याः–वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः॥

१२ ३२ ३ २३२ ३१२
(१८१) आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमागहि।
३ २ ३१२ ३१२
महान्महीभिरूतिभिः ॥७॥

भावार्थः-(वृत्रहन्) रोकने वालों के हन्तः! (इन्द्र) राजन्! वा परमेश्वर! (महीभिः) बड़ी (ऊतिभिः) रक्षादिकों सहित (महान्) बड़े आप (अस्माकम्) हमारी (अर्धम्) ऋद्धि को (आगहि) प्राप्त कराइये (तु) और (नः) हम को (आ) प्राप्त हूजिये ॥

ऋ० ४।३२।१ में भी ॥७॥

अथाऽष्टम्याः–वत्स ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः॥

३ १ २ ३२उ ३ १ २
(१८२) ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्त्तयत्।
३ १२३ १ २
इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ ८॥

भावार्थः-(यत्) जब कि (अस्य) इस राजा वा परमात्मा का (ओजः) बल (तित्विषे) प्रकाश करता है (तत्) तब (इन्द्रः) राजा वा परमेश्वर

(उभे) दोनों (रोदसी) पृथिवी और द्युलोकों को (चर्मेव) ढाल के समान (समवर्तयत्) चारों ओर से वर्त्तमान कराता है ॥

अर्थात् जब परमात्मा और पूर्ण बलिष्ठ राजा न्यायपरायणता से प्रजा की रक्षा के लिये अपने बल का प्रकाश करते हैं तब द्युलोक और पृथिवी लोक चर्म=ढाल के समान बचाने वाले बन जाते हैं। अर्थात् दैवी वा पार्थिवी कोई बाधा नहीं होती ॥ ऋ० ८ । ६ । ५ में भी ॥ ८ ॥

अथ नवम्याः-शुनःशेप ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(१८३) अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् ।
३ १ २
वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ ९ ॥

भावार्थः-हे इन्द्र ! राजन् ! (ते) आप का (अयम्) यह प्रजाजन (उ) भी (गर्भधिम्) गर्भधारिणी कबूतरी को (कपोतइव) कबूतर के समान कामना करता हुवा (समतसि) प्राप्त होता है । (तत्) इस कारण (नः) हम प्रजाजनों के (वचः) प्रार्थना को (चित्) भी (ओहसे) प्राप्त हूजिये सुनिये ॥

कबूतर स्वाभाविक अत्यन्त कामी होता है । जैसा कबूतर को कबूतरी में अत्यन्त अनुराग होता है, वैसे ही न्यायपरायण राजा में प्रजा को अत्यन्त अनुराग होना चाहिये । ऐसा होता है तब राजा अवश्य प्रजा की पुकार सुनता है ॥

अथवा-इन्द्र ! हे परमात्मन् ! (ते) आप का (अयम् उ) यह प्राणी भी (गर्भधिम्) गर्भवास रूप समुद्र को (कपोतइव) जल की नौका के समान (समतसि) निरन्तर प्राप्त होता है (तत्) इस से (चित्) भी (नः) हम प्राणियों की (वचः) पुकार को (ओहसे) प्राप्त हूजिये वा सुनिये ॥ ऋग्वेद १ । ३० । ४ ॥ ९ ॥

अथ दशम्याः-वातायन उल्ल ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(१८४) वात आवातु भेषजꣳ शम्भु मयोभु नो हृदे ।
२ १ २
प्र न आयूꣳषि तारिषत् ॥ १० ॥

* इति सप्तमी दशतिः ॥ ७ ॥ *

भाष्यार्थः- हे इन्द्र ! राजन् ! वा परमात्मन् ! (नः) हमारे (हृदे) हृदय के लिये (शम्भु) रोगशमनकारक (मयोभु) सुखदायक (भेषजम्) औषध को (वातः) वायु (आवातु) बहावे और (नः) हमारी (आयूंषि) आयुओं को (प्र, तारिषत्) बढ़ावे ॥

राजा के सुप्रबन्ध और परमात्मा की कृपा से वायु की शुद्धि द्वारा मनुष्यों को औषध तुल्य वायु सेवन करने से बल नीरोगता दीर्घायुष्मता और सुख प्राप्त होता है ॥ ऋ० १० । १८६ । १ ॥ १० ॥

*** यह दूसरे अध्याय में सातवीं दशति पूर्ण हुई ॥७॥ ***

———:*:———

यं रक्षन्तीति चेन्द्रस्य गायत्र्यो दशतौ नव ॥ १ ॥

अथाऽष्टमी दशतिस्तत्र प्रथमायाः—कण्व ऋषिः । इन्द्रो देवता गायत्री छन्दः ॥

१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(१८५) यꣳ रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
३ १ २ ३ १ २
नकिः स दभ्यते जनः ॥ १ ॥

भाष्यार्थः- हे इन्द्र ! परमात्मन् ! वा राजन् ! (यम्) जिस जन को (प्रचेतसः) महाज्ञानी (वरुणः) वरणीय (मित्रः) सुहृद् (अर्यमा) न्यायकारी (रक्षन्ति) रक्षा करते हैं (सः) वह [जनः] जन [नकिः] नहीं [दभ्यते] मारा जाता ॥

ऋग्वेद १ । ४१ । १ में " नूचित्सदभ्यते " पाठ है ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः-वत्स ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १र २ २ ३ २
(१८६) गव्यो षु णो यथा पुराश्वयोत रथया ।
३ २ ३ १ २
वरिवस्या महोनाम् ॥ २ ॥

भाष्यार्थः–हे मनुष्य ! तू (यथा पुरा) पूर्व के समान (नः) हमारी (गव्या) गौ की इच्छा (उ) और (अश्वया) घोड़े की इच्छा (उत)

और (रथया) रथ की इच्छा और (सहस्रिणाम्) सहस्रों धनों की इच्छा से इन्द्र परमेश्वर को (सु, वरिवस्य) सेवित कर ॥

मनुष्यों को परमात्मा की सेवा भक्ति से गौ घोड़े रथ धन धान्यादि सर्व सुख भोग की इच्छा पूर्ण करनी चाहिये ॥

अष्टाध्यायी (अ) ३ । १ । ८ ॥ ७ । ४ । ३५ ॥ ७ । १ । ३४ इत्यादि के प्रमाण तथा ऋ० ८ । ४६ । ९ के पाठ का अन्तर संस्कृतभाष्य में देखिये ॥२॥

अथ तृतीयस्याः—वत्सऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(१८७) इमास्तइन्द्र पृश्नयोघृतं दुहत आशिरम् ।

३ २ ३ १ ३ ३ १ २

एनामृतस्य पिप्युषीः ॥३॥

भावार्थः—(इन्द्र) परमेश्वर ! वा सूर्य (ते) तेरी रची हुई वा तेरी ही (इमाः) ये (ऋतस्य) जल की (पिप्युषीः) बढ़ाने वाली (पृश्नयः) किरणें (एनाम्) इस (आशिरम्) टपकने वाले (घृतम्) जल को (दुहते) पूरती वा वर्षाती हैं ॥

निरुक्त २ । १४ निघण्टु १ । १२ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ६ । १८ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः—श्रुतकक्ष ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ १ २ २

(१८८) अया धिया च गव्यया पुरुणामन्पुरुष्टुत ।

१२ ३२ ३ १ २

यत्सोमे सोम आभुवः ॥ ४ ॥

भावार्थः—(पुरुणामन्) बहुकीर्त्ते ! (पुरुष्टुत) वेदों में सब से अधिक स्तुत ! इन्द्र ! परमात्मन् ! (यत्) जब कि आप (सोमे सोमे) प्रत्येक सौम्यपुरुष पर (आभुवः) कृपा करते हुवे साक्षात् हों तब हम (अया) इस (धिया) बुद्धि (च) और (गव्यया) गवादि धन की इच्छा से भरपूर हों ॥

इन्द्र ही के वेदों में सब से अधिक नाम और स्तुति हैं । यह पूर्व सिद्ध कर आये हैं ॥ ऋ० ८ । ९३ । १७ ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः—मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ २ ३ १२ ३ १२ ३ १ २
(१८९) पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
३ १ २ ३ १ २
यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥५॥

भावार्थः-प्रकरण से हे इन्द्र ! परमात्मन् ! (नः) हमारी (सरस्वती) ज्ञानयुक्त वाणी (पावका) पवित्र उपदेशिका और (वाजेभिः) अन्नादि से (वाजिनीवती) अन्नादि युक्त हो तथा (धियावसुः) शुद्ध कर्म वा प्रज्ञा के साथ बसाने वाली (यज्ञम्) अग्निहोत्रादि शिल्पान्त यज्ञ को (वष्टु) चाहने वाली हो ॥

अष्टाध्यायी ३ । २ । ३ ॥ ६ । ३ । १४ ॥ २ । २ । १९ ॥ उणादि । ४ १८९ ॥ शतपथ ६ । २ । ३ । १८ ॥ १ । १ । २ । १ ॥ निघण्टु १ । ११ ॥ निरुक्त ११ । २६ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० १ । ३ । १० में भी ॥ ५ ॥

अथ षष्ठयाः-वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्रीछन्दः ॥

२ ३ १र २र ३ २उ ३ १ २
(१९०) क इमं नाहुषीष्वा इन्द्रꣳसोमस्य तर्पयात् ।
२ ३ २ ३ १ २
स नो वसून्याभरत् ॥६॥

भावार्थः-(कः) परमेश्वर (नाहुषीषु) मानुषी प्रजाओं के निमित्त (इमम्) इस (इन्द्रम्) वर्षाने वाले को (सोमस्य) सोम से (तर्पयात्) तृप्त करे (सः) वह इन्द्र (नः) हमारे लिये (वसूनि) धन धान्यादि (आभरत्) प्राप्त करावे ॥

परमात्मा ऐसी कृपा करे कि वृष्टिकारक विद्युत् सोम से तृप्त अर्थात् पूर्ण आप्यायित हो, जिस से वह वृष्टि द्वारा धान्यादि का वर्धक हो ॥

निघण्टु २ । ३ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥६॥

अथ सप्तम्याः-इरिम्बिठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्रीछन्दः ॥

१ २ २ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
(१९१) आयाहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् ।
२ उ ३ १ २ ३ १ २
एदं बर्हिः सदो मम ॥७॥

भावार्थः-(इन्द्र) परमेश्वर ! (आयाहि) हमें प्राप्त हूजिये हम (ते) आप के लिये (सोमम्) सौम्यगुणविशिष्ट हृदय के शुद्ध भाव को (सुषुम) उत्पन्न करते हैं (इमम्) इस भाव का (पिब) ग्रहण कीजिये । (मम) मुझ उपासक के (इदम्) इस (बर्हिः) ज्ञानयज्ञस्थल को (आ-सदः) अपनी प्राप्ति से पवित्र कीजिये ॥

भौतिकपक्ष में-(इन्द्र) इन्द्र नामक विद्युत् ! (आ याहि) प्राप्त हो हमने (ते) तेरे लिये (सोमम्) सोम रस (सुषुम) तैयार किया है (इमम्) इस को (पिब) पी (मम) मेरे (इदम्) इस (बर्हिः) यज्ञस्थल को (आ-सदः) प्राप्त हो ॥

तात्पर्य यह है कि यज्ञकर्त्ता जब सोमरस को तैयार करके यज्ञ में होम करते हैं तो इन्द्र नामक विद्युत् उसे सब ओर से आकर शोषण करता है तब उत्तम वर्षा होती है ॥ ऋ० ८ । १७ । १ में भी ॥ ७ ॥

अथाऽष्टम्याः-वारुणिः सत्यधृतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ २
(१९२) महि त्रीणामवरस्तु द्युक्षं मित्रस्याऽर्यम्णः ।
३ २३ १ २
दुराधर्षं वरुणस्य ॥८॥

भावार्थः-हे इन्द्र ! परमात्मन् ! (मित्रस्य) मित्र (वरुणस्य) वरणीय और (अर्यम्णः) न्यायकारी (त्रीणाम्) इन तीनों विशेषणों वाले तुझ ईश्वर की किई हुई (महि) बड़ी (द्युक्षम्) प्रदीप्त (दुराधर्षम्) जिसे कोई दबा न सके ऐसी (अवः) रक्षा (अस्तु) हो ॥

यहां मित्र वरणीय और न्यायकारी ये तीनों विशेषण परमात्मा के हैं इस लिये 'त्रीणाम्' पद से तीनों विशेषणों वाले एकही परमात्मा का ग्रहण है। किन्तु स्वरूपतः उस में त्रित्व नहीं क्योंकि अथर्व १३ । ४ । १६ में "न द्वितीयः" इत्यादि मन्त्र द्वारा एकत्व से आगे द्वित्वादि धर्म परमात्मा में वर्जित हैं॥ ऋ० १० । १८५ । १ में "त्रीणामवोऽस्तु" यह पाठ में भेद है ॥८॥

अथ नवम्याः-वत्सऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१२ ३१२
(१९३) त्वावतः पुरूवसो वयमिन्द्र प्रणेतः ।
१२
स्मसि स्थातर्हरीणाम् ॥९॥

* इत्यऽष्टमी दशतिः ॥८॥ *

(इति द्वितीयः प्रपाठकः) ॥२॥

भावार्थः-(हरीणाम्) मनुष्यादि के (स्थातः) अधिष्ठातः ! (पुरूवसो) पुष्कल वास देने वाले ! (प्रणेतः) उत्तम नेता ! मार्गदर्शक ! (इन्द्र) परमात्मन् ! (वयम्) हम लोग (त्वावतः) आप सदृश ही के (स्मसि) हैं ॥

नत्वावाँ अन्य इत्यादि (ऋ० ७ । ३२ । २३) श्रुतिप्रमाण से परमात्मा के सदृश कोई नहीं, इस से वह अपने सदृश आप ही है ॥ अष्टाध्यायी ॥ ७ । २ । ९८ ॥ ६ । ३ । ९१ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ४ । ७ । १ ॥ ९ ॥

यह द्वितीयाध्याय में आठवीं दशति ॥ ८ ॥

और

* द्वितीय प्रपाठक समाप्त हुवा ॥ २ ॥ *

—=:*:=—

उत्वामदन्त्विवतीन्द्रस्य गायत्र्यो दशतौ दश ॥ १ ॥

अथ नवमी दशतिस्तत्र प्रथमायाः-प्रगाथ ऋषिः ।

इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २२ १
(१९४) उ त्वा मदन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः ।
१ २ ३ १ २
अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥

भावार्थः-(अद्रिवः) चराचर के ग्रहीता सूर्यादि वाले ! (सोमाः) सौम्य उपासक लोग (त्वा उ) आप को ही (मदन्तु) प्रसन्न करें । (राधः) विद्यादि धन (कृणुष्व) कीजिये । (ब्रह्मद्विषः) वेद शास्त्रादि के शत्रुओं को (अवजहि) दूर कीजिये ॥

अष्टाध्यायी ८।३।१॥ ८।२।१५ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥
ऋ० ६।४।२६ में स्तोमाः पाठ है ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः-विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१२ ३ १ २ ३१ च३ १ २
(१९५) गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे ।
३ १ २३ १ र २र
इन्द्रत्वादातमिद्यशः ॥ २ ॥

भावार्थः-(गिर्वणः) वाणी से भजनीय ! (इन्द्र) परमात्मन् ! वा राजन् ! (नः) हमारे मध्य में (सुतम्) स्तोता की (पाहि) रक्षा कीजिये । (मधोः) मधुर आनन्द की (धाराभिः) धारों से आप (अज्यसे) भरपूर हैं (यशः) जल अन्न वा धन (त्वादातम्) आप का शोधित (इत्) ही है ॥
निघण्टु १।१२॥ २।७।२।१० के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥
ऋ० ३।४०।६ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः-वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २३ १ ३ १ र २र ३ २
(१९६) सदा व इन्द्रश्चर्कृषदा उपो नु स सपर्यन् ।
३ २ ३ २उ ३ १ २
न देवो वृतः शूर इन्द्रः ॥ ३ ॥

भावार्थः-हे मित्रो ! (सः) वह (इन्द्रः) परमात्मा (वः) तुम्हें (सदा) सर्वदा (उप, उ,) समीप ही वर्त्तमान (आ, चकृषत्) आकर्षित करता है । (न) जैसे (सपर्यन्) सत्कार करता हुवा । (नु) परन्तु (इन्द्रः) परमेश्वर (शूरः) निर्भय (देवः) प्रकाशक है ऐसा (वृतः) भक्तिपूर्वक स्वीकार किया हो तब ॥

जो लोग परमेश्वर को निर्भय प्रकाशक जान कर भक्ति से उसका वरण करते हैं, उनके हृदय में सदा समीपता से वर्त्तमान परमेश्वर उन को अपने समीप आकर्षित करता है, मोक्ष देता है ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः-श्रुतकक्षऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१९७) आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः ।
२उ ३ १ २
न त्वामिन्द्राऽतिरिच्यते ॥ ४ ॥

भावार्थः-(इन्द्र) परमात्मन् ! (इन्दवः) मन की वृत्तियां (त्वा) आप में (आ, विशन्तु) लगें । (सिन्धवः) जैसे नदियां (समुद्रमिव) समुद्र को । (त्वाम्) आप से [कोई] (न, अतिरिच्यते) बढ़कर नहीं है ॥

ऋ० ८ । ९३ । २२ में भी ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः-मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ २ ३ १ २ ३र १ २र ३ १ २ ३ र २
(१९८) इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः
३ १ २
इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ५ ॥

भावार्थः-(गाथिनः) गीयमान साम के गाने वाले उद्गाता लोग (इन्द्रम्) परमेश्वर को (इत्) ही (बृहत्) बहुत (अनूषत) स्तुत करते हैं । (अर्किणः) मन्त्रवाले होता लोग (इन्द्रम्) परमेश्वर को (अर्कैभिः) ऋग्वेद के मन्त्रों से स्तुत करते हैं । शेष अध्वर्युलोग (इन्द्रम्) परमेश्वर को (वाणीः) यजुर्वेद की वाणियों से स्तुत करते हैं ॥

निरुक्त ५ । ४ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० १ । ७ । १ में भी ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ्याः-श्रुतकक्ष ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ २ ३ २
(१९९) इन्द्र इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभुꣳरयिम् ।
३ १ २ ३ १ २
वाजी ददातु वाजिनम् ॥६॥

भावार्थः-(इन्द्रः) परमेश्वर (इषे) अन्नादि (नः) हमारे लिये (ददातु) देवे । और (वाजी) बलिष्ठ परमात्मा (ऋभुक्षणम्) महान् (रयिम्) धनरूप (ऋभुम्) मेधावी (वाजिनम्) बलिष्ठ [अपने स्वरूप को हमें] (ददातु) देवे ॥

दयालु परमात्मा शरीर के पोषणार्थ अन्नादि और आत्मा के पोषणार्थ अपना ज्ञान देवे। यह प्रार्थना है।

निघण्टु ३।३॥ ३।१५॥ २।९ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ऋ० ८३।३४ में भी ॥६॥

अथ सप्तम्याः-गृत्समद ऋषिः। इन्द्रोदेवता। गायत्री छन्दः॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र
(२००) इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभीपदपचुच्यवत्।
२उ ३ १र २र
स हि स्थिरो विचर्षणिः॥७॥

भावार्थः-(अङ्ग) हे प्रिय जिज्ञासो (इन्द्रः) परमेश्वर और सूर्यलोक (अभीपत्) सब ओर से प्राप्त हुवे (महद्भयम्) बड़े भय को (अपचुच्यवत्) भगाता है (हि) क्योंकि (सः) वह (स्थिरः) कूटस्थ वा अपनी परिधि में स्थित (विचर्षणिः) ज्ञानदृष्टि वा भौतिकदृष्टि का दाता है। निघण्टु ३।११॥

परमात्मा कृपा करके मुमुक्षु के संसरण भय को दूर करता और ज्ञान से मुक्ति देता है: सूर्य भी अन्धकार भय को हटा कर सब को दिखाता है और अपनी परिधि में स्थिर है॥ ऋग्वेद २।४१।१०॥७॥

अथाऽष्टम्याः-भरद्वाजऋषिः। इन्द्रोदेवता। गायत्री छन्दः॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(२०१) इमा उ त्वा सुते सुते नक्षन्ते गिर्वणोगिरः।
१ २ ३ २उ ३ १ २
गावो वत्सं न धेनवः॥८॥

भावार्थः-(गिर्वणः) वाणी से भजनीय। परमेश्वर! (इमाः) ये (गिरः) हमारी वाणियें (सुते सुते) जब जब सौम्यभाव उत्पन्न होता है तब तब (त्वा उ) आप को ही (नक्षन्ते) प्राप्त होती हैं। स्नेह में दृष्टान्त-(न) जैसे (धेनवः) दुधार (गावः) गौवें (वत्सम्) प्यारे बछड़े को ही प्राप्त हो जाती हैं॥

जैसे गौवें प्यार के वशीभूत हुई जङ्गल में जहां तहां घूम कर जब दूध देने का समय आता है तब तब प्यारे बछड़े के ही समीप पहुंचती हैं। इसी प्रकार अनन्त आनन्द का सागर होने से प्रीतिपात्र परमात्मा को प्रत्येक

मनुष्य की वाणी पुकारने लगती है, जब २ कि वह एकान्त बैठ, राग द्वेषादि छोड़, हृदय में सौम्य शान्तभाव उत्पन्न करता है ॥

निघं० २ । १८ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ६ । ४५ । २८ ॥८॥

अथ नवम्याः—ऋष्याद्याः पूर्ववत् ॥

२ ३ २ ३१ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २
(२०२) इन्द्रा नु पूषणा वयꣳसख्याय स्वस्तये ।
३ २ ३ १ २
हुवेम वाजसातये ॥ ९ ॥

भावार्थः—(वयम्) हम (वाजसातये) धन अन्न और बल के दान के लिये (स्वस्तये) कल्याण के लिये (सख्याय) और मित्रता के लिये (इन्द्रा) ऐश्वर्यवान् (नु) और (पूषणा) पुष्टिकर्त्ता को (हुवेम) सत्कृत करें ॥

अष्टाध्यायी ७ । १ । ३९ ॥ ६ । १ । ३२-३४ ॥ ३ । ३ । ९७ ॥ निघण्टु ३ । १४ ॥ २ । ९ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ६ । ५७ । १ में भी ॥९॥

अथ दशम्याः—वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १२ २२ ३ १ २२
(२०३) नकि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् ।
२ ३ २उ ३ २
नक्येव यथा त्वम् ॥१०॥

* इति नवमी दशतिः ॥ ९ ॥ *

भावार्थः—(इन्द्र) परमैश्वर्यवाले ! (त्वत्) तुझ से (उत्तरम्) श्रेष्ठ (नकि) कुछ नहीं । (न) न तुझ से (ज्यायः) बड़ा (अस्ति) है (वृत्रहन्) मेघविनाशक के समान अविद्यादिनाशक ! (यथा) जैसे कि (त्वम्) तू [उपकार करता है वैसे] (नकि, एव) अन्य कोई नहीं ॥

निरुक्त ३ । १५ का प्रमाण और ऋग्वेद ४ । ३० । १ का पाठ भेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १० ॥

* यह द्वितीयाध्याय में नवमी ९ दशति समाप्त हुई ॥ *

तरणिं व इतीन्द्रस्य गायत्र्यो दशतौ दश ॥१॥

अथ दशमी दशतिस्तत्र प्रथमायाः-त्रिशोक ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ २ ३ १र २र २ १ २
(२०४) तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः ।
३ २३ १ २
समानमु प्रशंसिषम् ॥१॥

भावार्थः-हे मनुष्यो ! (वः) तुम्हारे (जनानाम्) मनुष्यों के (तरणिम्) तारने वाले (गोमतः) गवादि पशुयुक्त (वाजस्य) अन्न धन वा बल के (त्रदम्) प्रेरक (समानम्) एक रस को (उ) ही (प्रशंसिषम्) स्तुत करूं वा करो ॥ ऋ० ८ । ४४ । २८ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः-मधुछन्दा ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ २३ १र २र
(२०५) असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत ।
३ १ २ ३ १र २र
सजोषा वृषभं पतिम् ॥ २ ॥

भावार्थः-(इन्द्र) परमेश्वर ! (ते) आप की (गिरः) वेद वाणी को (असृग्रम्) मैं (सजोषाः) साथ सेवित करता हुवा (असृग्रम्) वर्णन करता हूं वे वेदवाणियें (त्वा प्रति) आप को (उदहासत) उच्च भाव से प्राप्त कराती हैं । जो कि आप (वृषभम्) धर्मार्थ काम के मोक्ष के वर्षाने वाले और (पतिम्) पालन कर्त्ता हैं उन को ॥

अष्टाध्यायी ७ । १ । ८ निरुक्त १ । ३ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ऋ० १ । ९ । ४ में "अजोषा" पाठ है ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः-वत्सऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ २ ३ २३ ३ ३ २-३२३ १२३ २
(२०६) सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा ।
३ २३ ३ १ २
मित्रस्पान्त्यद्रुहः ॥ ३ ॥

भाषार्थः-(ध) निश्चय (यम्) जिस को (अद्रुहः) द्रोहरहित (मरुतः) वायु वा ऋत्विज्लोग (पान्ति) रक्षा करते हैं (यम्) जिस मनुष्य को (अर्यमा) परमात्मा वा न्यायकारी (मित्रः) सुहृद् रक्षा करता है (सः) वह (मर्त्यः) मनुष्य (सुनीथः) प्रशंसित है ॥

निघण्टु ३ । ८ ऋ० ८ । ४६ । ४ में भी ॥३॥

अथ चतुर्थ्याः-त्रिशोक ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २
(२०७) यद्वीळाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् ।
१ २ ३ १र २र
वसु स्पार्हं तदाभर ॥ ४ ॥

भावार्थः-(इन्द्र) परमेश्वर ! (यत्) जो (वसु) धन (वीळौ) बल पुरुषार्थ में है और (यत्) जो धन (स्थिरे) स्थिर वस्तुओं में है और (यत्) जो (पर्शाने) मेघादि में (स्पार्हम्) स्पृहणीय धन है वह (आभर) प्राप्त कराइये ॥

निघण्टु २ । ९ ॥ १ । १० इत्यादि के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ऋ० ८ । ४५ । ४१ में भी ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः-श्रुतकक्षऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्रीछन्दः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
(२०८) श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्द्धं चर्षणीनाम् ।
३ २ ३ १ २ ३ २
आशिषे राधसे महे ॥ ५ ॥

भावार्थः-(वः) तुम (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के (महे) बड़े (राधसे) धन के लिये (वृत्रहन्तमम्) दुष्टदमन (श्रुतम्) विख्यात (शर्धम्) बल को (प्र, आशिषे) उच्च भाव से आशिष देता हूं ॥

निघण्टु २ । १० का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ९३ । १६ में भी ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ्याः-वामदेव ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(२०९) अरं त इन्द्र श्रवसे गमेम शूर त्वावतः ।

१ २ ३ १ २

अरꣳ शक्र परेमणि ॥ ६ ॥

भावार्थः-(शक्र) हे सर्वशक्तिमन् ! (शूर) हे परमसामर्थ्ययुक्त ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (त्वावतः) अपने ही तुल्य (ते) आप के (श्रवसे) यश के लिये (अरं, गमेम) सदा सर्वथा प्राप्त होवें और (परेमणि) मोक्षदायक समाधि में (अरम्) हम सर्वथा प्राप्त होवें ॥

हे परमेश्वर ! आप सर्वशक्तिमान् और अनन्त सामर्थ्ययुक्त हैं। आप ही अपने तुल्य हैं। हम को ऐसा सामर्थ्य दीजिये जिस से आप के यश और ध्यान में तत्पर होकर मोक्ष को प्राप्त हों ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः-विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(२१०) धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् ।

१ २ ३ १ २

इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥७॥

भावार्थः-(इन्द्र) हे परमात्मन् ! (नः) हमारे (धानावन्तम्) खीलों वाले (करम्भिणम्) दही सत्तू वाले और (प्रातः) प्रातः सवन में (अपूपवन्तम्) सवनीय पुरोडाश [वा पूड़े] वाले और (उक्थिनम्) स्तोत्र वाले को (जुषस्व) प्रीतिपात्र कीजिये ॥

जो मनुष्य प्रातःकाल उठ कर खील दधि सक्तु पुरोडाश (यज्ञार्थ पाकविशेष) पूड़े आदि उत्तम सात्त्विक पदार्थों से यज्ञ करते हैं उन से परमेश्वर प्रसन्न होता है ॥ ऋ० ३। ५२। १ में भी ॥७॥

अथाऽष्टम्याः-गोषूक्त्यश्वसूक्तिनावृषी । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(२११) अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्त्तयः ।

३ १२ २२ १ १ २

विश्वा यदजयः स्पृधः ॥८॥

भावार्थः-(इन्द्र) परमेश्वर ! वा वृष्टिकारक इन्द्र ! (अपाम्) जलों की (फेनेन) वृद्धि के सहित वर्त्तमान (नमुचेः) जल को न छोड़ने वाले मेघ के (शिरः) उत्तमाङ्ग को (उदवर्त्तयः) छिन्न करता है (यत्) जब कि (विश्वाः) समस्त (स्पृधः) स्पर्धा करने वाली सेना के समान मेघ की पङ्क्तियों को (अजयः) जीतता है ॥

पक्षान्तर में-शतपथ १२। ७ । ३ । ४ के अनुसार नमुचि पाप का नाम है। पूर्व मन्त्र में लिखे यज्ञ का फल इस मन्त्र में वर्षा होना कहा गया है॥

अष्टाध्यायी १ । १ । ३१ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । १४ । १३ में भी ॥ ८ ॥

अथ नवम्याः-वामदेवऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ २ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(२१२) इमे त इन्द्र सोमाः सुतासो ये च सोत्वाः ।
१ २
तेषां मत्स्व प्रभूवसो ॥९॥

भावार्थः (इन्द्र) परमेश्वर ! (ये) जो (ते आप के लिये (सोमाः) मन (सुतासः) शुद्ध किये हैं (च) और जो (सोत्वाः) शुद्ध किये जायंगे, वे हैं । (प्रभूवसो) हे बहुधन ! (तेषाम्) उन से (मत्स्व) प्रसन्न हूजिये ॥

हे परमात्मन् ! हम मुमुक्षु और आप के जिज्ञासुवों ने यथाशक्ति अपने अपने मन अन्तःकरण शुद्ध किये हैं और करेंगे। इस लिये हम पर प्रसन्न हूजिये ॥

भौतिकपक्षमें-(इन्द्र) मेघवर्षक ! (प्रभूवसो) पुष्कल वास के हेतु-भूत ! (ते) तेरे लिये (सोमाः) ओषधियां (सुतासः) संपादन की हैं (च) और (ये) जो (सोत्वाः) संपादित की जावेंगी (तेषाम्) उन से (मत्स्व) वृद्धि को प्राप्त हो ॥

अर्थात् कुछ ओषधियां ठीक संपन्न कर के शेष संपन्न होती रहें और इन्द्र के उद्देश से होम की जावें तो वह हृष्ट अर्थात् वृष्ट्यादि का हेतु होता है॥

ऋ० ८ । २ । १० में केवल "इमे त इन्द्र सोमाः" इतना आरम्भ का पाठ मिलता है, आगे नहीं ॥९॥

अथ दशम्याः-श्रुतकक्षऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(२१३) तुभ्यं सुतासः सोमास्तीर्णं बर्हिर्विभावसो ।
३ १ २
स्तोतृभ्य इन्द्र मृडय ॥१०॥

* इति द्वितीया दशतिः ॥२॥ *

भावार्थः-(विभावसो) प्रकाशधन परमेश्वर ! (तुभ्यम्) आप के लिये (सोमाः) जन (सुतासः) शुद्ध किये हैं और (बर्हिः) हृदयभूमि रूप आसन (स्तीर्णम्) बिछाया है । (इन्द्र) परमैश्वर्यवन् ! (स्तोतृभ्यः) उपासकों के लिये (मृडय) सुख दीजिये ॥

भौतिकपक्ष में-(विभावसो) चमकीले (इन्द्र) विद्युत् विशेष ! (तुभ्यम्) तेरे लिये (सोमाः) ओषधियां (सुतासः) संपन्न की हैं और (बर्हिः) यज्ञ के आसनादि (स्तीर्णम्) बिछाये हैं । अतः (स्तोतृभ्यः) यज्ञकर्त्ताओं के लिये (मृडय) सुख दे ॥

जब मनुष्य सोमादि ओषधियों को तैयार कर के यज्ञस्थल में आसनादि बिछाय यज्ञ करते हैं, तब उन्हें सुख प्राप्त होता है । ऋ० ८।९३।२५ में जो अन्तर है वह संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ १० ॥

* यह द्वितीयाध्याय में दशवीं १० दशति समाप्त हुई ॥ *

अथैकादशी दशतिस्तत्र प्रथमायाः-शुनःशेप ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्रीछन्दः ॥

आ व इन्द्रमितीन्द्रस्य गायत्र्यो दशती नव ॥१॥

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(२१४) आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् ।
१ २ ३ १ २
मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः ॥ १ ॥

भावार्थः-हे मनुष्यो ! मैं परमेश्वर (वः) तुम में (शतक्रतुम्) बहुत अनन्त कर्मवाले (मंहिष्ठम्) अत्यन्त पूजनीय (इन्द्रम्) अपने आत्मा को (आसिञ्चे) सींचता हूं । दृष्टान्तः-(यथा) जैसे (वाजयन्तः) अन्न की उत्पत्ति

चाहने वाले लोग (इन्दुभिः) जलों से (कृविम्) खेतों को सींचते हैं तद्वत् ॥

जैसे अन्न रस आदि देहपुष्टि के लिये कृषक लोग खेत को जल से सींचते हैं इसी प्रकार आत्मा की पुष्टि के लिये पूजनीय अनन्त ज्ञान वा कर्म वाले परमात्मा से हम को हृदय सींचने चाहियें। इस लिये परमात्मा ने मनुष्यों के हृदय को आत्मज्ञान का खेत बनाया है ॥

निघण्टु १।१२॥३।१७ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद १।३०।१ में "क्रिविम्" पाठ है ॥ १॥

अथ द्वितीयायाः—श्रुतकक्ष ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १र २र ३ १ २

(२१५) अतश्चिदिन्द्र न उपायाहि शतवाजया ।

३ २ ३ १ २

इषा सहस्रवाजया ॥२॥

भाषार्थः—(अतः चित्) इस लिये ही (इन्द्र) हे परमेश्वर ! आप (शतवाजया) अनन्त बलयुक्त और (सहस्रवाजया) अनन्त आत्मिक बल युक्त (इषा) आनन्दरूपी रस के साथ (नः) हम को (उपायाहि) प्राप्त हूजिये ॥

निघण्टु २।९।२।९ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ८।९२।१० में भी ॥ २॥

अथ तृतीयायाः—त्रिशोक ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

(२१६) आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छाद्वि मातरम् ।

३ २र २र

क उग्राः के ह शृण्विरे ॥ ३ ॥

भावार्थः-(वृत्रहा) शत्रुहा क्षत्रिय (जातः) धनुर्वेद के ज्ञान से प्रसिद्ध हुआ (बुन्दम्) बाण को (आ-ददे) ले और (मातरम्) जननी वा मान्यकर्त्री प्रजा से (वि, पृच्छात्) विविध प्रकार से पूछे कि (के) कौन (उग्राः) उपद्रवी हैं और (ह) प्रसिद्ध (के) कौन (शृण्विरे) विख्यात हैं ॥

क्षत्रिय को योग्य है कि धनुर्वेद में निष्णात हो कर, धनुष बाण ले, प्रजा से विविध प्रकार पूछे कि तुम्हें कौन उपद्रवी और विख्यात दस्यु जान

पढ़ते हैं ॥ निरुक्त ६ । ३२ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ४५ । ४ में "पृच्छत्" पाठान्तर है ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः-मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(२१७) बृहदुक्थꣳ हवामहे सृप्रकरस्नमूतये ।
१ २ ३ २ ३ १ २
साधः कृण्वन्तमवसे ॥ ४ ॥

भावार्थः—तब प्रजा कहें कि हे राजन् ! हम तो (बृहदुक्थम्) बड़ी प्रशंसायोग्य (सृप्रकरस्नम्) प्रलम्बबाहु (अवसे) रक्षा के लिये (साधः) साधनरूप धन को (कृण्वन्तम्) कर रूप से कमाने वाले आप को ही (हवामहे) पुकार करती हैं ॥

निघण्टु ४ । ३ ॥ २ । ४ ॥ निरुक्त ६ । १७ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ३२ । १० में "साधु कृण्वन्तम्" पाठ है ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः-गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(२१८) ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयति विद्वान् ।
३ २ ३ २ ३ १ २
अर्यमा देवैः सजोषाः ॥ ५ ॥

भावार्थः-फिर प्रजा इस प्रकार प्रार्थना करें कि-(वरुणः) सहर्ष वरने योग्य (मित्रः) मित्रता से वर्त्तने वाले (विद्वान्) हमारी अवस्था के जानने वाले (अर्यमा) न्याय करने वाले और (देवैः, सजोषाः) विद्वान् मन्त्रियों से, प्रीति रखने वाले आप (नः) हम को (ऋजुनीती) सरल नीति से (नयति) शासित कीजिये ॥

ऋ० १ । ९० । १ में तो "नयतु" ही पाठ है ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ्याः-प्रस्कण्वतिथिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(२१९) दूरादिहेव यत्सतोरुणप्सुरशिश्वितत् ।
३ २ ३ १ २
विभानुं विश्वथातनत् ॥ ६ ॥

भावार्थः-(उरुणच्क्षुः) सूर्य (यत्) जैसे (सतः) पदार्थों को (दूरात्) दूर से ही (इह, इव) समीप के तुल्य (अभिश्रिश्रतत्) श्वेत करता है प्रकाशित करता है । ऐसे ही हे राजन् ! आप (भानुम्) न्याय के प्रकाश को (वि, अतनत्) विस्तृत करें ॥

निघण्टु ३ । ७ अष्टाध्यायी ८ । १ । ६६ ॥ ५ । १ । १११ ॥ ३ । १ । ८५ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ५ । १ में "सत्यरुणच्क्षुः" पाठ है ॥६॥

अथ सप्तम्याः—विश्वामित्रो जमदग्निर्वाऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्रीछन्दः॥

१ २ ३ १र २र
(२२०) आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ।
३ १२
मध्वा रजाᳬसि सुक्रतू ॥ ७ ॥

भावार्थः-प्रकरण से हे इन्द्र ! राजन् ! (नः) हमारे लिये (सुक्रतू) शोभन कर्म वाले (मित्रावरुणा) सूर्यान्तर्गत वृष्टिहेतु देव (घृतैः) जलों से (गव्यूतिम्) गव्यूति उपलक्षित भूभाग पर्यन्त (मध्वा) मधुर रस से (रजाᳬसि) धरातलों को (आ, उक्षतम्) सींचें ॥

अर्थात् हे राजन् ! मानुष प्रबन्ध से सुख देने के अतिरिक्त वरुण और मित्र का यज्ञप्रबन्ध कीजिये जिस से पृथिवीतल पर भले प्रकार वर्षा हों ॥

निरुक्त १० । ३ ॥ १० । २१ निघण्टु १ । १२ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ३ । ६२ । १६ में भी ॥ ७ ॥

अथाऽष्टम्याः प्रकण्वऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

२ ३ २ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(२२१) उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा यज्ञेष्वत्नत ।
३ १ २ ३ १र २र
वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥ ८ ॥

भावार्थः-फिर प्रजा यज्ञ के लिये प्रार्थना करे कि हे राजन् ! (उ) और (त्ये) वे (वाश्राः) ध्वनि करने वाले (गिरः सूनवः) वेदवाणी के उत्पादक बालक से वायु (काष्ठाः) दिशाओं को (यातवे) जाने के लिये (यज्ञेषु) यज्ञों में (अभिज्ञु) घुटनों के बल (उत्, अत्नत) फैलें ॥

अर्थात् यज्ञों का ऐसा प्रचार हो कि स्वाहान्त मन्त्रों की ध्वनि दिशाओं में व्याप जावे । जैसे बालक घुटनों के बल रेंगते हैं ॥

उणादि० ३। ९३॥ ३। ३५॥ अष्टाध्यायी २। १। ६॥ ५। ४। १२९॥ ५।४ ९ निघण्टु १।६ और शिक्षा के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऋ० १। ३७। १७ में "अउमेष्वसन्" यह पाठ में भेद है॥ ८॥

अथ नवम्याः—मेधातिथिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः॥

२ ३उ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
(२२२) इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
१ २ ३ २
समूढमस्य पांसुले॥ ९॥

* इत्येकादशी दशतिः॥ ११॥ *

भावार्थः—(विष्णुः) यज्ञ वा परमेश्वर (इदम्) इस जगत् को (त्रेधा) पृथिवी अन्तरिक्ष और द्यौः इन ३ प्रकार (विचक्रमे) पुरुषार्थयुक्त करे वा करता है। और (अस्य) इस जगत् के (पांसुले) प्रत्येक रज वा परमाणु में (समूढम्) अदृश्य (पदम्) स्वरूप को (निदधे) निरन्तर धारण करे वा करता है॥

भले प्रकार अनुष्ठान किया हुआ यज्ञ, पृथिवी अन्तरिक्ष और द्युलोक में फैले और अपने अदृश्य स्वरूप को जगत् के रज २ में पहुंचावे। अथवा व्यापक परमात्मा ने पृथिवी अन्तरिक्ष और द्युलोक को तीन प्रकार से विक्रम पुरुषार्थयुक्त किया है। और जगत् के प्रत्येक परमाणु तक में अपने अदृश्य स्वरूप को अन्तर्यामी रूप से वर्त्तमान कर रक्खा है॥

इस मन्त्र को सायणाचार्य ने त्रिविक्रमावतार पर लगाया है। सो निर्मूल है। क्योंकि परमेश्वर अकाय होने से निराकार और क्लेश कर्म विपाकाशयों से छुवा हुआ नहीं है॥ और निरुक्तकार ने भी इस में वामनावतार का ग्रहण नहीं किया। जैसा कि निरुक्त १२। १९ "व्यापक विष्णु ने इस सब जगत् को तीन प्रकार के होने को विक्रान्त किया है १ पृथिवी, २ अन्तरिक्ष, ३ द्युलोक, यह शाकपूणि आचार्य का मत है। १ समारोहण, २ विष्णुपद, ३ गयशिर, ये और्णवाभ का मत है। उस का पद अदृश्य हो वा उपमा है कि जैसे रेत में पांव नहीं दीखता। पांसु रेणु का नाम है क्योंकि वे पावों से उत्पन्न होती वा पड़ी रहती हैं" इत्यादि॥ गयशिरसि में गय सन्तान का नाम निघण्टु २। १० के अनुसार और शतपथ १४। ७। १। ७ के अनुसार प्राण का नाम भी गय है॥ ऋ० १। २२। १७ और यजुः ५। १५ में "पांसुरे" पाठ है॥ ९॥

* यह द्वितीयाध्याय में ११ वीं दशति समाप्त हुई ॥ *

अतीहीतीन्द्रदैवत्या गायत्र्यो दशतौ दश ॥१॥

अथ द्वादशी दशतिस्तत्र प्रथमायाः—मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
(२२३) अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसमुपेरय ।
३ २ ३ २ ३ १ २
अस्य रातौ सुतं पिब ॥ १ ॥

भावार्थः-प्रकरण से हे इन्द्र ! जीवात्मन् ! वा राजन् ! तू (मन्युषाविणम्) वेगमात्र से सोम खींचने वाले को (अतीहि) त्याग दे । किन्तु (सुषुवांसम्) अच्छा सोम खींचने वाले को (उपेरय) पास रख और (अस्य) इस अच्छे के (सुतम्) संपादित सोम को (रातौ) देने पर (पिब) पी ॥

ऋ० ८ । ३२ । २१ में "उपारणे" पाठान्तर है ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः—वामदेव ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(२२४) कदु प्रचेतसे महे वचोदेवाय शस्यते ।
१र २र ३ १ २
तदिद्ध्यस्य वर्धनम् ॥२॥

भावार्थः–(महे) बड़े (प्रचेतसे) ज्ञानी (देवाय) इन्द्र अर्थात् राजा के लिये (वचः) पूर्वमन्त्रोक्त चितोनी का वचन (कत् उ) क्यों (शस्यते) कहा जाता है ? उत्तर-(हि) क्योंकि (तत्) वह वचन [सावधानी] (अस्य) इस राजा की (वर्धनम् इत्) वृद्धिकारक ही है ॥ २ ॥

अथ तृतीयस्याः—मेधातिथिप्रियमेधावृषी । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
(२२५) उक्थं च न शस्यमानं नागोरयिराचिकेत ।
१ २ ३ २ ३ १ २
न गायत्रं गीयमानम् ॥ ३ ॥

भावार्थः-(अयिः) ज्ञानी इन्द्र अर्थात् राजा (नागोः) स्पष्टवक्ता के (शस्यमानम्) कहे हुवे (उक्थम्) स्तोत्र को (च) और (गीयमानम् गायत्रम्) गाये हुवे गायत्र नाम साम को (न आचिकेत) न समझे सो (न) नहीं। किन्तु समझे ही ॥

व्याकरण के धातु आदि संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । २ । १४ में "शस्यमानमगोररिराचिकेत" पाठ है ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(२२६) इन्द्र उक्थेभिर्मन्दिष्ठो वाजानां च वाजपतिः ।

१ २ ३ २ ३ १ २

हरिवान्त्सुतानाᳬसखा ॥ ४ ॥

भावार्थः-(इन्द्रः) राजा (मन्दिष्ठः) अत्यन्त हृष्ट (च) और (वाजानाम्) बल अर्थात् सेनाओं का (वाजपतिः) सेनापति (हरिवान्) घोड़े आदि का रखने वाला और (सुतानाम्) पुत्रतुल्य प्रजाजनों का (सखा) मित्रतुल्य सहायक (उक्थेभिः) प्रशंसावचनों के साथ होवे ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः-मेधातिथिप्रियमेधावृषी । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ १र २र ३ १ २

(२२७) आयाह्युप नः सुतं वाजेभिर्मा हृणीयथाः ।

३ १ २ ३ १ २

महाँइव युव जानिः ॥ ५ ॥

भावार्थः- हे राजन् (युवजानिः) युवति स्त्री वाले आप (वाजेभिः) सेना बल के सहित वर्त्तमान (नः) हम को (उप, आयाहि) प्राप्त हूजिये हमारी पुकार सुनिये । किस को कौन जैसे ? (सुतम्) पुत्र को (महांइव) पिता आदि बड़े के समान । (मा हृणीयथाः) क्रोध न करिये ॥

निघण्टु २ । १२ अष्टाध्यायी ५ । ४ । १३४ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ्याः-कौत्सोदुर्मित्रऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २ ३ २

(२२८) कदा वसो स्तोत्रᳬ हर्यतआ अव श्मशारुधद्वाः ।

३ २ ३ २ ३ १ २

दीर्घᳬसुतं वाताप्याय ॥६॥

भावार्थः-(वसो) निवास कराने वाले । राजन् । (कदा) यदि कभी (वाः) वर्षा का जल (अरुधत्) रुक जावे अर्थात् अनावृष्टि हो जावे तो (वाजाय) अन्न के लिये (प्रनशा) नहर से (स्तोत्रम्) वेद के (हर्यते) चाहने वाले (दीर्घम्) बड़े (सुतम्) पुत्रतुल्य प्रजाजन को (आ, अव) सर्वतः, रक्षित करो ॥

निघण्टु १ । ६ ॥ निरुक्त ५ । १२ और ६ । १८ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० १० । १०५ । १ में "आव प्रमशा" पाठ है ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः - मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२ २२

(२२९) ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिवा सोममृतूंरनु ।

३ २ ३ १२ २२

तवेदं सख्यमस्तृतम् ॥७॥

भावार्थः-(इन्द्र) राजन् । आप (राधसः) संसिद्ध ज्ञानी (ब्राह्मणात्) ब्रह्मवेत्ता के द्वारा (ऋतून्, अनु) ऋतुओं के अनुसार (सोमम्) ओषधि विशेष को (पिब) पीजिये । (तव) आप की (इदम्) यह (सख्यम्) मित्रता (अस्तृतम्) अविच्छिन्न हो ॥ जो लोग "राधसः" पद से राधा का ग्रहण करते हैं वे निर्मूल भ्रान्ति में हैं ॥

ऋ० १ । १५ । ५ में "तवेद्धि" पाठ है ॥७॥

अथाऽष्टम्याः-मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(२३०) वयं घा ते अपि स्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वणः ।

१ २

त्वंनो जिन्व सोमपाः ॥८॥

भावार्थः-(गिर्वणः) वाणी से प्रशंसनीय । (इन्द्र) राजन् । आप (सोमपाः) सोम के पीने वा रक्षा करने वाले हैं । और (वयम्) हम प्रजाजन (ते) आप के (स्तोतारः) सत्कार करने वाले हैं । इस लिये (त्वम्, अपि) आप, भी (नः) हम को (जिन्व) प्रसन्न रखिये ॥

निघण्टु ३।१४ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८।३२।७ में भी॥८॥

अथ नवम्याः-विश्वामित्रो गाथिनोऽभीपाद उदलो वा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
(२३१) एन्द्र पृक्षु कासुचिन्नृम्णं तनूषु धेहि नः ।
१ २ ३ १ २
सत्राजिदुग्र पौंस्यम् ॥ ९ ॥

भावार्थः-(इन्द्र) राजन् ! वा परमेश्वर ! (कासुचित्) किन्हीं (पृक्षु) सेनासंग्रामों वा योगक्रियाओं में (नः) हमारे (तनूषु) देहों में (पौंस्यम्) पुरुषार्थयुक्त (नृम्णम्) बल वा योगबल को (आ, धेहि) आधान कीजिये क्योंकि (उग्र) हे उद्दीर्णबलवन् ! आप (सत्राजित्) सर्वदा बल से विजयी हैं॥

निघण्टु २ । १७ ॥ २ । ९ ॥ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ९ ॥

अथ दशम्याः-श्रुतकक्षऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १र १र ३ २ ३ १र २र ३ २ ३ २
(२३२) एवाह्यसि वीरयुरेवाशूरउत स्थिरः ।
३ २ ३ २ ३ १ २
एवाते राध्यं मनः ॥१०॥

भावार्थः-प्रकरण से हे इन्द्र ! राजन् ! आप (वीरयुः) वीरों को चाहने वाले (एव) निश्चय (असि) हैं । आप (शूरः) शूरवीर (एव) निश्चय हैं (उत) और आप (स्थिरः) दृढ़ (एव) भी हैं । अतः (ते) आप का (मनः) हृदय (राध्यम्) प्रशंसायोग्य है ॥

ऋ० ८ । ९२ । २८ में भी ॥ १० ॥

* यह द्वितीयाऽध्याय में १२ वीं दशति समाप्त हुई *

(अस्य द्वितीऽध्यायस्य तृतीयदशत्या सह द्वितीयप्रपाठक प्रथमार्धः, अष्टमदशत्या च द्वितीयप्रपाठकस्तदीयद्वितीयार्धश्च, समाप्तो विज्ञेयः । इदानीं नवमदशतिमारभ्य तृतीयप्रपाठकस्य प्रथमार्धं आरब्धो वर्त्तते इति च विज्ञेयं सुधीभिः ॥

कण्ववंशावतंस श्रीमान् स्वामी हजारीलाल के पुत्र, परीक्षितगढ़ (ज़िलामेरठ) निवासी, तुलसीराम स्वामी के निर्मित सामवेदभाष्य में यह द्वितीयाऽध्याय समाप्त हुआ ॥२॥

ओ३म्

अथ तृतीयाऽध्यायः

अभित्वेति बृहत्यो वै दश,तौ दश कीर्त्तिताः ।
आद्या अष्टान्तिमा चैन्द्र्यो नवमी मारुती मता ॥१॥

तत्र

प्रथमायाः-वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(२३३) अभि त्वा शूर नोनुमोदुग्धा इव धेनवः ।
१ २ ३ १र १र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्रतस्थुषः॥१॥

भावार्थः-(शूर) विक्रमी ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (अस्य) इस (जगतः) जङ्गम के (ईशानम्) प्रभु और (तस्थुषः) स्थावर के भी (ईशानम्) प्रभु (स्वर्दृशम्) सूर्य को भी प्रकाशित करने वाले (त्वा) आप को (अदुग्धा इव धेनवः) बिना दुही गौवों के समान अर्थात् जैसे बिना दुही गौवें सायं में दुग्ध भरा होने से गौहड़ी रहती हैं ऐसे ही भक्ति से नम्र हुवे हम (अभि नोनुमः) सर्वतः अत्यन्त नमस्कार करते हैं ॥

निरुक्त २ । १४ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ७ । ३२ । २२ में भी ॥१॥

अथ द्वितीयायाः-भरद्वाज ऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

१र २र ३ १र २र ३ १ २
(२३४) त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २र ३ १ २
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥२॥

भावार्थः-(इन्द्र) हे परमात्मन् ! (अर्वतः) अश्वादि के चढ़ने वाले वीर (नरः) पुरुष (वृत्रेषु) शत्रुओं से घेरे जाने पर (त्वाम्) आप का [सहारा लेते हैं] (काष्ठासु) सब दिशाओं में (सत्पतिम्) सज्जनों के रक्षक (त्वाम्) आप को [भजते हैं अतः] (कारवः) हम स्तोता भक्तजन भी (वाजस्य)

बल के (सातौ) दान निमित्त (त्वाम्, इत्, हि) आप का ही (हवामहे) पुकारते हैं ॥

जिस प्रकार सब दिशाओं में सज्जनों के रक्षक आप परमात्मन् को, शत्रुओं की भीड़ पड़ने पर, बल प्राप्त करने के लिये, वीर पुरुष पुकारते हैं; इसी प्रकार हे भगवन्! हम भक्तजन भी कामादि शत्रुगण की भीड़ में उन के परास्त करने को बल का दान आप से मांगते हैं ॥

निघण्टु ३ । १६ ॥ १ । १४ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ६ । ४६ । १ में "साता" यह पाठभेद है ॥ २ ॥

अथ तृतीयस्याः—वालखिल्या ऋषयः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(२३५) अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ १ २ ३ १ २
योजरितृभ्योमघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥३॥

भाषार्थः—(यः) जो (पुरूवसुः) विद्यादि बहुत धन वाला (मघवा) इन्द्र परमेश्वर (वः) तुम (जरितृभ्यः) स्तोताओं के लिये (सहस्रेणेव) अनेक प्रकार से (शिक्षति) देता है । उस (सुराधसम्) सुन्दर विद्यादि धन वाले (इन्द्रम्) परमात्मा को (यथा) जिस प्रकार (विदे) जानता हूं उस प्रकार (अभि, प्र, अर्च) सर्वतः, अत्यन्त पूजता हूं ॥

निघण्टु २ । १० ॥ ३ । १६ ॥ ३ । २० के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये । ऋ० ८ । ४९ । १ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः—नोधा ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
(२३६) तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
३ २ ३ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥४॥

भाषार्थः—हे उपासको ! (वः) तुम्हारे (ऋतीषहम्) कामादि शत्रुओं के तिरस्कार करने वाले (दस्मम्) उन का क्षय करने वाले (तम्) उस (इन्द्रम्) परमेश्वर को (गीर्भिः) वेदमन्त्रों से (अभि, नवामहे) हम सर्वथा स्तुत करते हैं—पुकारते हैं । दृष्टान्त—(न) जैसे (धेनवः) गौवें (स्वसरेषु) गोगृहों में (वत्सं)

वासहेतु (अन्धसः) अन्न से (मन्दानम्) मोदमान हुए पुष्ट (वत्सम्) बछड़े को (अभि) देख कर [हृदय की प्रीति से पुकारती हैं। तद्वत्]॥

जो लोग "अन्न से मोदमान हुए पुष्ट" पदों को परमात्मा का विशेषण करते हैं, वे भ्रान्त हैं। क्योंकि "अनश्नन्न०" ऋ० १।१६४।२० में परमात्मा को भोगरहित कहा है तथा अन्य अनेक वाक्यों में भी॥ उर्वादि १।१४५ निघण्टु ३।४ इत्यादि के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऋ० ८।८८।१। में भी॥४॥

अथ पञ्चम्याः-कलिःप्रगाथ ऋषिः। इन्द्रोदेवता। बृहती छन्दः॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(२३७) तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रꣳ सबाध ऊतये।

३ १ २ २ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ उ ३ २ ३ १ २

बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम्॥५॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! मैं (वः) तुम को (हुवे) पुकार कर कहता हूं कि (सबाधः) ऋत्विज् लोग (सुतसोमे) जिस में सोम खींचा जावे उस (अध्वरे) सोमयज्ञ में (ऊतये) यज्ञरक्षार्थ (बृहत्) बृहत् नामक साम को (तरोभिः) बलों से अर्थात् उच्चैः स्वर से (गायन्तः) गाते हुवे (विदद्वसुम्) धन को लाभ कराने वाले (इन्द्रम्) परमेश्वर की [स्तुति करें] दृष्टान्त-(न) जैसे (कारिणम्) हितकारी (भरम्) कुटुम्ब के पोषक पित्रादि को [पुत्रादि पुकारते हैं। तद्वत्]॥

निघण्टु २।९॥ ३।१८ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऋ० ८॥ ५१।१ में भी॥५॥

अथ षष्ठ्याः-वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्रोदेवता। बृहती छन्दः॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

(२३८) तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ १ २

आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम्॥६॥

भावार्थः-(युजा) सहवर्त्तिनी (पुरन्ध्या) बड़ी चितौनी के साथ (तरणिः) सूर्य्य (वाजम्) पूर्वमन्त्रोक्त सोम अन्न को (इत्) शीघ्र (सिषासति) सेवन करता है॥ मैं उपदेष्टा (वः) तुम याज्ञिकों को (पुरुहूतम्) बहुस्तुत (इन्द्रम्)

परमेश्वर के प्रति (गिरा) वाणी से (आ, नमे) नम्र कराता हूं नमस्कार कराता हूं । दृष्टान्त-(सुद्रुवम्) अच्छे ढुलने वाली (नेमिम्) पहिये की पुट्ठी को (तष्टेव) जैसे बढ़ई नम्र करता है, तद्वत् ॥

सायणादि के लेख संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ७।३२।२० में तो "सुद्र्वम्" पाठ है ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः-मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २३ १ २
(२३९) पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधे ३ स्माँ अवन्तु ते धियः॥७॥

भावार्थः-(इन्द्र) परमेश्वर ! आप (गोमतः) गवादि पशु वाले यज्ञ-कर्त्ता के (रसिनः) रसीले (सुतस्य) आप की भक्तियोग्य संपादित मन का (पिब) ग्रहण कीजिये और (नः) हमारे लिये (मत्स्व) प्रसन्न अनुकूल हूजिये । (आपिः) आप व्यापक हैं (नः) हमको अन्तर्यामितया (बोधि) ज्ञान दीजिये (सधमाद्ये) योगयज्ञ में (वृधे) उन्नति के लिये (ते) आप की (धियः) प्रज्ञा के प्रसाद (अस्मान्) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें ॥

हे परमेश्वर ! जो लोग गवादि पशु वाले हैं और घृतादि से कर्मयज्ञ करते हैं, जिन का मन रसिक है, ऐसी कृपा कीजिये कि उन का मन शुद्ध होके श्रद्धा-भक्ति पूर्वक आप का शरण ग्रहण करे । आप हम पर प्रसन्न हों । आप अन्तर्यामिरूप से हमारी बुद्धि को सुधारिये, ज्ञान दीजिये । आप का दिया बुद्धि का प्रसाद हमारी रक्षा करे ॥

ऋ० ८ । ३। १ में भी ॥ ७ ॥

अथाऽष्टम्याः-भर्गऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

१उ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
(२४०) त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।

१ २ २ १ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २
उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥ ८॥

भावार्थः-(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (चेरवे) ज्ञानी भक्तजन के लिये (वसुत्तये) विद्यादि धनदानार्थ (त्वम्) आप (हि) ही (एहि) प्राप्त

डूजिये और (मघवन्) हे अनन्त विद्यादि धन युक्त ! (गविष्टये) इन्द्रिय-वृत्तिनिरोध रूप यज्ञ के लिये (उद्वावृषस्व) सींचिये तर कीजिये [अश्वम्] प्राण को (इष्टये) योगयज्ञ के लिये [उत्] सींचिये [भगम्] योगैश्वर्य का (विदाः) लाभ कराइये ॥

उत् उपसर्ग का दो वार पाठ ही वावृषस्व क्रिया के दो वार होने का ज्ञापक है ॥ ऋ० ८ । ५० । ७ में भी ॥ ८ ॥

अथ नवम्याः—वसिष्ठ ऋषिः । मरुतो देवताः । बृहती छन्दः ॥

१र २र ३२ ३१र २र ३१ २

(२४१) नहि वश्चरमं चन वसिष्ठः परिमꣳसते ।

३ १ २उ २ ३१ २ ३१३ ३ १ २ १ २

अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबन्तु कामिनः ॥९॥

भावार्थः-(मरुतः) ऋत्विजो ! (वसिष्ठः) यजमान (वः) तुम में से (चरमं चन) अन्त के को भी (परि) छोड़ कर (नहि) नहीं (मꣳसते) सत्कार करना अर्थात् सभी को सत्कृत करता है । अतः (अस्माकम्) हमारे (सुते) सोम संपन्न होने पर (अद्य) आज (विश्वे) सब (कामिनः) चाहने वाले (सचा) एक साथ ही (पिबन्तु) पी लेवें ॥

अध्यात्मपक्षे-(मरुतः) प्राणो ! (वसिष्ठः) आत्मा (वः, चरमं, चन, नहि, परि, मꣳसते) तुम में से, अन्तिम को, भी, नहीं छोड़कर, सत्कार करता है (विश्वे, कामिनः) सब, चाहने वाले (अस्माकम्) हमारे (सुते) संपन्न मन में (अद्य) आज (सचा) एक साथ (पिबन्तु) तृप्त होवें ॥

योगैश्वर्य को प्राप्त हुवा आत्मा कहता है कि हे प्राणो ! आज हमारे कुछ कमी नहीं, जब कि हमने मन को जीत कर खेंच लिया, आज सब काम पूर्ण हैं, अब तुम जितनी इच्छा हो, उतना आनन्दामृत पान करो ॥

उणादि २ । ९० ॥ निरुक्त ५ । ५ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ७ । ५९ । ३ में "पिबत" पाठ है ॥ ९ ॥

अथ दशम्याः—प्रगाथः काण्व ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १

(२४२) मा चिदन्याद्वि शꣳसत सखायो मा रिषण्यत । इन्द्रमि-

२ ३ १ २ ३ १ २ ३१र २र३ १ २

त्स्तोता वृषणꣳ सचा सुते मुहुरुक्था च शꣳसत ॥ १० ॥

इति तृतीयाऽध्याये प्रथमा दशतिः ॥ १ ॥

* तृतीयप्रपाठकस्य प्रथमार्धश्च समाप्तः ॥ *

भावार्थः—(सखायः) हे मित्रो ! (अन्यत्) और किसी को (मा चित्) मत (विशंसत) स्तुत करो किन्तु (सुते) मन शुद्ध करने पर (वृषणम्) धर्मार्थ काम के पूरा करने वाले (इन्द्रम्, इत्) परमात्मा की, ही (सचा) सब मिल कर (स्तोत) स्तुत करो (च) और (उक्था) स्तोत्रों को (मुहुः) वारंवार (शंसत) पढ़ो । तथा (मा रिषण्यत) हिंसा मत करो ॥

अर्थात् मनुष्य मात्र को परमात्मा के स्थान में अन्य की स्तुति न करनी चाहिये किन्तु परमात्मा की ही करनी चाहिये और उसी के स्तोत्रों का पाठ करना चाहिये । तथा प्राणिमात्र की हिंसा न करनी चाहिये ॥ ऋ० ८ । १ । १ में भी ॥ १० ॥

यह तृतीयाऽध्याय में १ दशति समाप्त हुई

अथ तृतीय प्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥

तत्र प्रथमा दशतिः ॥

नकिष्टंकर्मणेत्यैन्द्र्यो बृहत्यो दशतौ दश ॥

तत्र प्रथमायाः—आङ्गिरसःपुरुहन्मा ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

१ ३ १र २र २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
(२४३) नकिष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम् । इन्द्रं

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
नयज्ञैर्विश्वगूर्त्तमृभ्वसमधृष्टंधृ ष्णुमोजसा ॥ १ ॥

भावार्थः-(यः) जो पुरुष (सदावृधम्) सर्वदा भक्तों की वृद्धि करने वाले (विश्वगूर्त्तम्) समस्त संसार के स्तुति योग्य (ऋभ्वसम्) महान् (अधृष्टम्) अधृष्य अर्थात् जिस के ऊपर किसी का अधिकार नहीं (न) और (ओजसा) अपने अनन्तबल से (धृष्णुम्) सब पर अधिकार रखने वाले (इन्द्रम्) परमेश्वर को (यज्ञैः) योगादि यज्ञों से (चकार) उपासित करता है (तम्) उस पुरुष को कोई कामादि शत्रु (कर्मणा) प्रहारादि

से (नकिः) नहीं (नशत्) व्यापता अथवा उसे कर्मबन्धन नहीं होता, निष्काम होने से ॥

निघण्टु २ । १८ ऋ० ८ । ७० । ३ में "धृष्णवोजसम्" पाठ है ॥१॥

अथ द्वितीयायाः–मेधातिथिमेध्यातिथि ऋषी । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २

(२४४) यऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः । सन्धाता

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

सन्धिं मघवा पुरूवसुर्निष्कर्त्ता विह्रुतं पुनः ॥२॥

भावार्थः–पूर्वोक्त इन्द्र का ही वर्णन करते हैं–(यः) जो (मघवा) इन्द्र अर्थात् परमेश्वर (पुरूवसुः) बहु धन हेतु (जत्रुभ्यः) ग्रीवादि जोड़ों से (आतृदः) रुधरोत्पत्ति से (पुरा) पहले ही (अभिश्रिषः) चिपकाने को वा जोड़ने के साधन रस्सी आदि के (ऋते चित्) विना ही (सन्धिम्) जोड़ को (सन्धाता) जोड़ देता है (पुनः) और (विह्रुतम्) शीघ्र ही जब चाहे तब (निष्कर्त्ता) विछोड़ा कर देता है ॥

परमात्मा के कैसे आश्चर्य काम हैं कि गर्भगत प्राणियों के ग्रीवादि अवयवों को चिपकाने के लिये जब तक रुधिर भी नहीं उत्पन्न होता है, तभी समस्त सन्धियों को विना रस्सी आदि साधनों के जोड़ देता और जब चाहे, तत्काल पुष्ट से पुष्ट बन्धनों को तोड़ विछोड़ देता है ॥ ऋ० ८।१।१२ में "इष्कर्त्ता विह्रुतम्" पाठ है ॥२॥

अथ तृतीयस्याः–पूर्वोक्ता ऋष्यादयः ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १२ १२ ३ १ २ ३ २ ३

(२४५) आ त्वा सहस्रमाशतं युक्ता रथे हिरण्यये । ब्रह्मयुजो

१२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ॥३॥

भावार्थः–(इन्द्र) सूर्य ! (हिरण्यये) तेजोमय (रथे) रथवत् रमणीय पिण्ड में (युक्ताः) जुड़े हुवे और (ब्रह्मयुजः) ब्रह्म के जोड़े हुवे (केशिनः) केश के तुल्य प्रकाश की धारों वाले (आ सहस्रम्) असंख्य (हरयः) घोड़े के समान किरणें (त्वा) तुझ को (आ शतम्) बहुविध (सोमपीतये) सोमपान के लिये (वहन्तु) प्राप्त करते हैं ॥

अर्थात् जब मनुष्य सोमादि ओषधियों से यज्ञ करते हैं तो सूर्य के तेजोमय गोले में व्याप्त की जोड़ी हुई उस की किरणें ओषधियों के हवन किये रस को खींचने के लिये सूर्य को प्राप्त करती हैं। सूर्य को रथी, गोले को रथ, और किरणों को घोड़ों की उपमा जानिये। तृतीयाध्याय के आरम्भ में (ब्रह्मवद०) सायणाचार्य ने भी इस ऋचा का सूर्य देवता कहा है। निघण्टु ३। १॥ २।१५॥ शतपथ और अष्टाध्यायी ६। ४। १३५ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८। १। २४ में भी ॥३॥

अथ चतुर्थ्याः—विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रोदेवता बृहती छन्दः॥

२ ३१ २३१२ ३२ ३१२ ३
(२४६) आ मन्द्रैरिन्द्रहरिभिर्याहि मयूररोमभिः। मा त्वा
२ ३ १२३२उ ३२उ ३१२३१ २
के चिन्नियेमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥४॥

भावार्थः—(इन्द्र) सूर्य ! (मयूररोमभिः) जैसे मयूर के पंखों में अनेक रंग हैं ऐसे (मन्द्रैः) आनन्ददायक (हरिभिः) किरणों से (आ, याहि) आता है (त्वा) तुझे (के चित्) कोई भी (मा) नहीं (नियेमुः) बांध सकते (इत) प्रत्युत तू ही (तान्) उन रोकने वाले अन्धकारादि कों को (अति इहि) उल्लङ्घन करके आता है। दृष्टान्त—(पाशिनः न) जैसे पाश-हस्त व्याधलोग पक्षि को निग्रह करते हैं और (धन्वेव) धनुषधारी धनुष से शत्रु का निग्रह करता है तद्वत् तू अन्धकारादि का निग्रह करता है॥

इस में सूर्य के दृष्टान्त से राजधर्म भी उपदिष्ट समझना चाहिये ॥ ऋ० ३।४५।१ में जो पाठान्तर है वह संस्कृतभाष्य में देखिये ॥४॥

अथ पञ्चम्याः—गोतम ऋषिः। इन्द्रोदेवता। बृहती छन्दः॥

३१र २र ३१ २ ३१ २
(२४७) त्वमङ्ग प्रशंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम्।
२उ ३ १ २ ३ २३१२ ३ १२
नत्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः॥५॥

भावार्थः—(अङ्ग) प्यारे पुरुष ! (त्वम्) तू (प्रशंसिषः) इस प्रकार प्रशंसा स्तुति कर कि (मघवन्) हे अनन्तधन ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (त्वत्) आप से (अन्यः) भिन्न कोई (मर्त्यम्) मनुष्य का (मर्डिता) सुखदायी

(न) नहीं (अस्ति) है। (शविष्ठ, हे अनन्त बलवान्! (ते) आप के लिये (वचः) स्तुति वचन (ब्रवीमि) उच्चारण करता हूं॥ ऋ० १।८४।१९ में भी॥५॥

अथ षष्ठ्याः-नृमेधपुरुमेधावृषी। इन्द्रो देवता। बृहती छन्दः॥

१ २　३ १ २　३ १र　२र ३ २ १

(२४८) त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः।

३ १ २　३ २उ　३ २ ३ १ २　३ १ २

त्वं वृत्राणि हꣳस्यप्रतीन्येक इत्पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः॥६॥

भावार्थः-(इन्द्र) हे परमेश्वर! (त्वम्) आप (यशाः) यशस्वी (ऋजीषी) समृद्ध (शवसस्पतिः) बल के पति (चर्षणीधृतिः) मनुष्यों के धारक (असि) हैं और (पुरु) बहुत से (अप्रतीनि) जिन का सामना करना कठिन है उन (वृत्राणि) रोकने वाले कामादि शत्रुओं को (अनुत्तः) अप्रेरित स्वयमेव (एक इत्) बिना किसी की सहायता के (त्वम्) आप (हꣳसि) नष्ट करते हैं॥ उणादि ४। २८ निघण्टु १। २॥ २। ३ के प्रमाण और ऋ० ८। ९७। ५ का पाठान्तर संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ६॥

अथ सप्तम्याः-मेध्यातिथिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहती छन्दः॥

२ ३ २ ३ १ २　३ १ २　३क २र ३ २ १　१ २　३ २

(२४९) इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे। इन्द्रꣳसमीके

३ १ २　३ २ ३ १ २　३ १ २

वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये॥ ७॥

भावार्थः-हम (देवतातये) यज्ञ के लिये (इन्द्रम् इत्) परमेश्वर को ही (हवामहे) पुकार करें। (अध्वरे) यज्ञ (प्रयति) आरम्भ होने पर (इन्द्रम्) परमेश्वर की पुकार करें। (समीके) यज्ञ समाप्ति वा युद्ध में भी (इन्द्रम्) परमात्मा की सहायता मांगें। (वनिनः) संविभाग करते हुए हम (धनस्य) धन के (सातये) दान मिलने के लिये (इन्द्रम्) परमेश्वर की सहायता मांगें॥

प्रत्येक शुभ कार्य के आरम्भ और समाप्ति में, युद्धादि विपत्ति के समयों में, व्यापारादि धन लाभ के अवसरों में सदा परमेश्वर की ही सहायता मांगनी चाहिये॥ निघण्टु २। १७॥ ३। १७ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऋग्वेद ८। ३। ५ में भी॥ ७॥

अथाऽष्टम्याः-ऋष्याद्यः पूर्ववत् ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १
(२५०) इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम । पावक-
२३ १ ३ ३ २ ३ १र २र
वर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥ ८ ॥

भावार्थः-(पुरूवसो) हे बहुधन ! परमेश्वर ! (याः) जो (मम) मेरी (गिरः) वाणियें (त्वा उ) आप के प्रति हों (इमाः) वे (वर्धन्तु) वृद्धि को प्राप्त हों और जो (पावकवर्णाः) अग्नि सम तेजस्वी (शुचयः) पवित्र (विपश्चितः) विद्वान् स्तोता (स्तोमैः) गीयमान स्तोत्रों से (अभि अनूषत) सब प्रकार स्तुति करते हैं वे भी वृद्धि को प्राप्त हों ॥

उपास्मै गायता नरः । इत्यादि ऋचाओं में ताण्ड्य महाब्राह्मणानुसार गाये जाने वाले [स्तोमों से यह श्रीसत्यव्रत लिखते हैं] तथा बहिष्पवमान आर्यस्तोत्र और माध्यन्दिनपवमान इत्यादि भी स्तोम शब्द से ग्रहण किये जाते हैं ॥ ऋ० ८ । ३ । ३ में भी ॥ ८ ॥

अथ नवम्याः-ऋष्याद्या उक्ताः ॥

२३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(२५१) उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते । सत्राजितो
३ १र २र ३२ ३ १ २
धनसा अक्षितो तयो वाजयन्तो रथाइव ॥ ९ ॥

भावार्थः-(त्ये) वे (स्तोमासः) स्तोत्र (मधुमत्तमाः) अति मधुर (गिरः) वाणी (उत् ईरते) उच्चभाव से चलती हैं । दृष्टान्त-जैसे (सत्राजितः) सदा-विजयी (धनसाः) धन के संविभाग कराने वाले (अक्षितोतयः) अक्षय रक्षा वाले (रथा इव) रथ (वाजयन्तः) बल वा वेग चाहते हैं तद्वत् (उ) पादपूरणार्थ है ॥

जिस प्रकार सङ्ग्राम में विजय और धन के प्राप्त कराने वाले वेगवान् रथ उमङ्ग से चलते हैं इसी प्रकार काम क्रोधादि शत्रुगण का विजय कराने और अमूल्य ईश्वर धन का लाभ कराने वाले मधुर भजन और स्तोत्र उच्च भाव से उच्चारित होते हैं ॥ अष्टाध्यायी ३ । २ । ६७ ॥ ६ । ४ । ४१ ॥ ६ । ४ । ५९ ॥ ६ । ४ । ६० ॥ ८ । २ । ४६ ॥ ३ । २ । १७० ॥ ७ । ४ । ३५ के प्रमाण संस्कृतभाष्य

में देखिये ॥ ऋग्वेद ८ । ३ । १५ में भी ॥ ९ ॥

अथ दशम्याः-मेधातिथिः काण्वऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ २ १ २ ३ २उ १र २र ३ १ २
(२५२) यथा गौरो अपाकृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् । आपित्वे नः
३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
प्रपित्वे तूयमागहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥ १० ॥

* इति द्वितीया दशतिः ॥२॥ *

भावार्थः-तब परमात्मा का स्तोत्र पढ़ता हुआ स्तोता यह भी कहे कि हे इन्द्र । इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीवात्मन् । (यथा) जिस प्रकार (तृष्यन्) प्यासा (गौरः) मृगादि जन्तु (अपा कृतम्) जल भरे (इरिणम्) जलाशय को (एति) प्राप्त होता है । इसी प्रकार तू भी (कण्वेषु) ईश्वरभक्तों में (नः) हमारी (आपित्वे) मित्रता (प्रपित्वे) प्राप्त होने पर (तूयम्) शीघ्र (अव, आगहि) आग और उन के (सचा) साथ (पिब) आनन्दामृत का पान ॥

सायणाचार्य और निघण्टु ३ । १५ अष्टाध्यायी ६ । १ । १३१ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ४ । ३ में भी ॥ १० ॥

* यह तृतीयाऽध्याय में दूसरी दशति समाप्त हुई ॥२॥

—:—*:×:÷:+:*—:—

शग्धीति दशतौ चापि बृहत्यो दश कीर्त्तिताः ।
आदितेयी तृतीयावशिष्टा ऐन्द्र्यो नव स्मृताः ॥१॥

अथ तृतीया दशतिस्तत्र प्रथमायाः-भर्ग ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

३ २उ१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(२५३) शग्ध्यूऽषु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः । भगं नहि
२र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥१॥

भावार्थः-(शूर) हे अनन्त पराक्रमी । (शचीपते) कर्मों और बुद्धियों के अध्यक्ष । कर्मफलदाता । (इन्द्र) परमेश्वर । (विश्वाभिः) समस्त (ऊतिभिः) रक्षाओं सहित (भगं, न) ऐश्वर्य के समान (यशसम्) कीर्त्ति (सु) भले प्रकार

(शर्ध) दीजिये, यह याचना है। (च) और (हि) निश्चय (वसुविदम्) विद्यादि धन के [कर्मानुसार] दाता (त्वा) आप को (अनु, चरामसि) अनुकूल चलें। यह भी कृपा कीजिये ॥

निघण्टु ३।१९॥ २।१॥ ३।९ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऋ० ८।५०।५ में भी ॥ १॥

अथ द्वितीयायाः—रेभः काश्व ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ २३ १ २क २र ३ १ २ ३ ५ ३ १
(२५४) या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ असुरेभ्यः। स्तोतारमि-
३ १ ३ २ २ १ २
न्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥२॥

भावार्थः—(मघवन्) हे धनवन्! (इन्द्र) परमेश्वर! वा राजन्! वा वृष्टिकारक! (स्वर्वान्) आनन्द वा प्रकाश युक्त तू (या) जिन (भुजः) अन्नादि भोगों को (असुरेभ्यः) मेघों से वा दुष्ट पुरुषों से (आभरः) लाता है उन से (इत्) ही (अस्य) इस तेरे (स्तोतारम्) आज्ञा पालने वाले वा यज्ञकर्त्ता को (वर्धय) बढ़ा (च) और (ये) जो लोग (त्वे) तेरे लिये (वृक्तबर्हिषः) यज्ञ का विस्तार करते हैं उन्हें भी बढ़ा ॥

निघण्टु १।१०॥ ऋ० ८।९७।१ में भी ॥ २॥

अथ तृतीयायाः—जमदग्निर्ऋषिः। आदित्या देवताः बृहती छन्दः ॥

२ ३ २ ३ २ ३ १ २क २र २ २ १ २ २
(२५५) प्रमित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो। वरूथ्ये३ वरुणे
२ ३ १ २ ३ १२ २र
छन्द्यं वचः स्तोत्रꣳ राजसु गायत ॥ ३ ॥

भावार्थः—(ऋतावसो) हे यज्ञधन! यजमान! (मित्राय) मित्रनाम वायुभेद के लिये (सचथ्यम्) सेवन योग्य (स्तोत्रम्) गुण कीर्तन रूप (छन्द्यम्) वैदिक (वचः) वचन को (प्र, गाय) गाओ और (अर्यम्णे) यम नामक वायु के लिये (प्र) गाओ तथा (वरूथ्ये) गृहहितकारी (वरुणे) वरुण के लिये गाओ। (राजसु) इस प्रकार मित्र अर्यमा और वरुण इन ३ राजों अर्थात् प्रकाशमानों के लिये कीर्तन करो ॥

अर्थात् हे यज्ञकर्त्ता! यदि तू पूर्व मन्त्रानुसार अन्नादि की समृद्धि को मांगता है तो मित्र अर्यमा वरुणादि वर्षा के सहायक वायुभेद रूप देवतों

के गुण कर्म स्वभाव को वेदमन्त्रों द्वारा जानकर तदनुकूल सेवन योग्य भाग करें। इस से अन्नादि की समृद्धि होगी। यह पूर्वमन्त्र की याचना का उत्तर जानो॥ मित्र अर्यमा वरुण पदों से निघण्टु ५।४ और निरुक्त अध्याय ११ के अनुसार अन्तरिक्षस्थानी वायुभेदों का ग्रहण जानिये॥ "प्र" इस उपसर्ग का दो वार पाठ ही "गायत" क्रिया के पुनर्वार अन्वय का सूचक है॥ निघण्टु ३।४ में वरूथ गृह का नाम है॥ ऋ० ८।१०१।५ में भी॥३॥

अथ चतुर्थ्याः—मेधातिथिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहती छन्दः॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(२५६) अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः। समीचीनास

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

ऋभवः समस्वरन्रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम्॥४॥

भावार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर! (ऋभवः) मेधावी (रुद्राः) स्तोता (समीचीनासः) भले (आयवः) मनुष्य (पूर्वपीतये) अपनी पूर्व तृप्ति के लिये (स्तोमेभिः) स्तोत्रों से (पूर्व्यम्) सनातन (त्वा) आप को (अभि गृणन्त) सर्वथा वर्णन करते और (समस्वरन्) गान करते हैं [इसी प्रकार हम भी अन्य मित्र वरुणादि से पूर्व आप का स्मरण कीर्तन और गान करते हैं] यह भाव है॥ निघण्टु २।३॥३।१५॥३।१६ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऋ० ८।३।७ में भी॥४॥

अथ पञ्चम्याः—नृमेधपुरुमेधावृषी। इन्द्रो देवता। बृहती छन्दः॥

३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १

(२५७) प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत। वृत्रं

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा॥५॥

भावार्थः—(मरुतः) हे स्तोताओ! (वः) तुम अपने (बृहते) महान् (इन्द्राय) ईश्वर के लिये (ब्रह्म) सामवेद के वचन (प्र, अर्चत) अर्पित करो। (वृत्रहा) पापनाशक (शतक्रतुः) बहुविध कर्म वाला वह (शतपर्वणा) बहुत धारों वाले (वज्रेण) वज्र से (वृत्रम्) पाप को (हनति) मारता है॥

जो लोग परमात्मा की स्तुति प्रार्थना उपासना में लगे रहते हैं, उन को सर्वव्यापक परमात्मा सर्वज्ञ पापियों के नाश के लिये अनन्तधार वाले

वज्र लिये प्रतीत होता है। अर्थात् वे छुपकर भी पाप नहीं करते। क्योंकि अन्य राजा आदि के एकदेशीय वज्र से तो कोई किसी प्रकार बच भी सकता है परन्तु परमात्मा की सृष्टि का प्रत्येक परमाणु भी उस के वज्र का काम दे सक्ता है और मनुष्य को नष्ट कर सकता हैं। इस लिये उस का वज्र अनन्त-धार है। निघण्टु ३।१८ निरुक्त ११।१३ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऋ० ८।८९।३ में भी॥ ५॥

अथ षष्ठ्याः-ऋष्याद्याः पूर्ववत्॥

३ १र २र १ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
(२५८) बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम्। येन ज्योतिरज-
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
नयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि॥ ६॥

भाषार्थः-(मरुतः) हे मितभाषी ऋत्विज् लोगो! तुम (इन्द्राय) परमेश्वर (देवाय) देव के लिये (बृहत्) बृहत्साम (गायत) गावो। (येन) जिस सामगान से (ऋतावृधः) यज्ञ के विस्तार करने वाले उपासक लोग (देवम्) दिव्य (वृत्रहन्तमम्) अत्यन्त पापनाशक (जागृवि) जागती (ज्योतिः) ज्योति को (अजनयन्) [निज हृदयों में] उत्पन्न करते हैं॥ ऋ० ८।८९।१ में भी॥ ६॥

अथ सप्तम्याः-वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहती छन्दः॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २
(२५९) इन्द्र क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा। शिक्षाणो
३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि॥ ७॥

भाषार्थः-इन्द्र अर्थात् परमेश्वर से पूर्व मन्त्रोक्त ज्योति का दान मांगते हैं-(इन्द्र) हे परमेश्वर! आप (नः) हमारे लिये (क्रतुम्) शुकर्म वा अपना [ब्रह्म] ज्ञान (आभर) दीजिये। इस में दृष्टान्त-(यथा) जैसे (पिता) पिता (पुत्रेभ्यः) पुत्रों के लिये धन और ज्ञान देता है तद्वत्। (नः) हम को (शिक्ष) शिक्षा दीजिये (पुरुहूत) हे बहुस्तुत! (यामनि) सब को प्राप्त करने योग्य (अस्मिन्) इस प्रकरणागत शुभ ब्रह्म में (जीवाः) हम जीववर्ग (ज्योतिः) आप की ज्योति को (अशीमहि) सेवित करें॥

क्रतु कर्म वा प्रज्ञा का नाम है। निघण्टु २।१। और ३।९ में देखिये जो एतद्देशीय वा परदेशीय विद्वान् कहते हैं कि "इन्द्रादि पदों से परमेश्वर का ग्रहण प्राचीन लोग नहीं करते थे और यह नई खेंचातानी है" उन्हें इस मन्त्र का सायणभाष्य देखना चाहिये क्योंकि इस में सायणाचार्य ने भी परमात्मा अर्थ किया है॥ ऋ० ७। ३२। २६ में भी॥ ७॥

अथाऽष्टम्याः-रेभऋषिः। इन्द्रोदेवता।

बृहती छन्दः॥

१ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ १ २
(२६०) मा न इन्द्र परावृणग्भवा नः सधमाद्ये। त्वं न
३ २र ३ २ ३ १ २ ३ १२
ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परावृणक्॥ ८॥

भावार्थः-(इन्द्र) हे परमेश्वर! (नः) हम को (मा परावृणक्) मत छोड़िये (नः) हमारे (सधमाद्ये) साथ हर्षदायक यज्ञ में (त्वम्) आप (नः) हमारे (ऊती) रक्षक (भव) हूजिये (त्वम् इत्) आप ही (नः) हमारे (आप्यम्) बन्धु हैं। अतः (इन्द्र) हे परमेश्वर! (नः) हम को (मा परावृणक्) मत त्यागिये॥

प्रश्न-परमात्मा सर्वगत है फिर किसी को कैसे त्याग सकता है?। उत्तर-जैसे जाति से त्याग देते हैं। अर्थात् उसे अपनी जाति का नहीं मानते ऐसे ही परमात्मा की कृपा वा अपनी भक्ति से पृथक् जानना ही परित्याग जानिये॥ "ऊती" यह "व्यत्यय से कर्त्ता में क्तिच् से निपात है" यह सायणाचार्य भी लिखते हैं॥ "हम को मत छोड़िये" इस वाक्य का दो वार पाठ इस लिये है कि जिस से अत्यन्त ईप्सा (इच्छा) समझी जावे। ऋ० ८। ९७। ७ में भी॥ ८॥

अथ नवम्याः-मेधातिथिऋषिः। इन्द्रोदेवता। बृहती छन्दः॥

३र २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ ३ १ २ ३ १ २
(२६१) वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः। पवित्रस्य
३ १ २ ३ १ २३ १ २
प्रस्रवणेषु वृत्रहन्परिस्तोतार आसते॥ ९॥

भावार्थः-(वृत्रहन्) दुर्गुणनाशक परमात्मन्! (सुतावन्तः) जिन्होंने सोम तैयार कर लिया वा मन शुद्ध कर लिया है (वृक्तबर्हिषः) जिन्होंने यज्ञ

विस्तीर्ण किया हुआ है ऐसे (स्तोतारः) स्तुतिकर्त्ता (वयम्) हम लोग (च) निश्चय (न) जैसे (पवित्रस्य) शुद्ध देश के (प्रस्रवणेषु) झरनों में (आपः) जल (परि आसते) सब ओर से शान्त स्थित होते हैं तद्वत् शान्तचित्त हो उपासना कर रहे हैं ॥

जिस प्रकार शुद्ध देश के झरनों में शुद्ध शान्त जल नम्रतापूर्वक नीचे को फैलते हैं तद्वत् हम भी सोम को सम्पन्न किये हुवे वा मन को शुद्ध किये हुवे, यज्ञ का विस्तार करते हुवे, स्तुतिपाठ करते हुवे, शान्तचित्त आप की उपासना करते हैं ॥ ऋ० ८ । ३३ । १ में भी ॥ ९ ॥

अथ दशम्याः—भरद्वाज ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १

(२६२) यदिन्द्र नाहुषीष्वा ओजो नृम्णं च कृष्टिषु । यद्वा पञ्च

२ ३ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २

क्षितीनां द्युम्नमाभर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥१०॥

भावार्थः-(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (नाहुषीषु) मानुषी (कृष्टिषु) प्रजाओं में (यत्) जो (ओजः) आत्मिक बल (च) और (नृम्णम्) शारीरक बल (आ) है (वा) अथवा (यत्) जो उभयविध बल (पञ्च) विस्तृत (क्षितीनाम्) योगभूमियों में है, वह (नृम्णम्) बल और (विश्वानि) सब (पौंस्या) पुरुषार्थ (आभर) दीजिये ॥

निघण्टु २ । ३ में नहुषः और कृष्टयः ये मनुष्य के नाम हैं । तथा २ । ९ में नृम्णम् यह बल का नाम है ॥ ऋ० ६ । ४६ । ७ में "नाहुषीष्वाँ" यह पाठ है ॥ १० ॥

* यह तृतीयाऽध्याय में तीसरी दशति समाप्त हुई ॥३॥ *

सत्यमित्थेति चेन्द्रस्य बृहत्यो दशतौ दश ॥ १ ॥

अथ चतुर्थी दशतिस्तत्र प्रथमायाः—मेधातिथिर्ऋषिः ।

इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ क २ १ ३ १

(२६३) सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽविता । वृषा ह्युग्र शृण्विषे

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

परावति वृषो अर्वावति श्रुतः ॥१॥

भावार्थः-(उग्र) हे तेजस्विन्निन्द्र ! परमेश्वर ! (इत्था) यह (सत्यम्) सत्य है कि आप (वृषा इत्) [धर्मार्थकाम मोक्षों को] वर्षाने वाले ही (असि) हैं । (वृषजूतिः) आपकी व्याप्ति उक्त पदार्थों को वर्षाती है । (नः अविता) आप हमारे रक्षक हैं । (हि) इसी हेतु (वृषा) वृषा नाम से (शृण्विषे) आप वेदों में सुने जाते हैं (परावति) दूर देश (च) और (अर्वावति)समीप देश में (वृषा) वर्षाने वाले (श्रुतः) आप विख्यात हैं ॥

भौतिक पक्ष में -इन्द्र वर्षा करने वाला होने से ठीक सब संगिति जानिये ॥ ऋ० ८।३३।१० में " सोभृतः " पाठ है ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः-रेभ ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २

(२६४) यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन् । अतस्त्वा

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

गीर्भिर्द्युगदिन्द्र केशिभिः सुतावाँआविवासति ॥२॥

भावार्थः-(शक्र) हे शक्तिमन् ! (वृत्रहन्) पापप्रणाशक ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (यत्) जो कि आप (परावती) दूर देश और (यत्) जो कि (अर्वावति) समीप देश में भी (असि) हैं (अतः) इस से (सुतावान्) सोम का अभिषव करने वाला यजमान (केशिभिः) जटाजूट वाले ऋत्विजों सहित (द्युगत्) शीघ्र (त्वा) आप की (गीर्भिः) वेदमन्त्रों से (आविवासति) स्तुति उपासना करता है ॥

भौतिक पक्ष में-(शक्र) शक्तिमन् ! (वृत्रहन्) मेघविदारक ! (इन्द्र) वृष्टिकर्त्ता ! (यत्) जो कि (परावति) दूर द्युलोक में और (यत्) जो कि (अर्वावति) समीप मेघमण्डल में (असि) है (अतः) इस लिये (सुतावान्) सोम का अभिषव करने वाला यजमान (केशिभिः) ऋत्विजों सहित (द्युगत्) शीघ्र (त्वा) तेरा (गीर्भिः) वेदमन्त्रों के साथ (आविवासति) हवन रूप परिचर्या करता है ॥

निघण्टु २ । १५ ॥ ३ । ५ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ८ । ९७ । ४ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः-वत्स ऋषिः इन्द्रोदेवता । पिपीलिकमध्या बृहती छन्दः ॥

३ १ २ ३ १र२र ३ १ २ ३ २ ३ १र २र

(२६५) अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम् ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

इन्द्रं नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा ॥ ३ ॥

भावार्थः—(अन्धसः) शारीरिक और आत्मिक भोजन के (मद्देषु) आनन्दों के निमित्त (वः) तुम अपने (वीरम्) पुरुषार्थ युक्त करने वाले (नाम) शत्रुओं को नम्र करने वाले (महा) महान् (विपेतसम्) विशेष ज्ञानयुक्त (शाकिनम्) शक्तिमान् (इन्द्रम्) परमेश्वर वा राजा को (यथा श्रुत्यं वचः) जैसे वेद का वचन है वैसे (गिरा) वाणी से (अभि गाय) सर्वतः गाओ ॥

निरुक्त ७ । १३ ॥ ५ । १ निघण्टु ३ । ३ अष्टाध्यायी ७ । १ । ६९ के प्रमाण और संकेत संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ४६ । १४ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः—भरद्वाज ऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३२ ३१२ ३ १२ ३१ २३
(२६६) इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथꣳ स्वस्तये । छर्दिर्यच्छ
१२ ३ १ २ ३१ २ ३ १२
मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥ ४ ॥

भावार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (त्रिधातु) वात, पित्त, कफ नामक ३ धातु वाले (छर्दिः) देह नामी घर को [बन्धन को] (यावय) पृथक् कीजिये (च) और (मह्यम्) मुझ भगवद्भक्त (च) तथा (एभ्यः) इन (मघवद्भ्यः) तुम्हारा पूजन करने वालों के लिये (त्रिवरूथम्) आध्यात्मिकादि तीनों दुःखों के रोकने वाला (दिद्युम्) प्रकाशमय (शरणम्) आश्रय (स्वस्तये) कल्याणार्थ (यच्छ) दीजिये ॥

निघण्टु ३ । ४ का प्रमाण और ऋ० ६ । ४६ । ९ का पाठान्तर संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः—नृमेधऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ २३ १र २र १ २
(२६७) श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत । वसूनि
३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिमः ॥ ५ ॥

भावार्थः—मित्रो ! (विश्वा) समस्त (जाता) जो उत्पन्न होचुके (च) और (जनिमानि) जो उत्पन्न होवेंगे (ओजसा) बल सहित वे सब (वसूनि)

धन [इन्द्रस्य] परमेश्वर के (इत्) ही हैं । (प्रति, भागम्) अपने भाग के अनुसार (न) जैसे [पिता के धन को पुत्र] (भक्षत) भोगो (दीधिमः) उन्हीं को हम धारण करते हैं । दृष्टान्त-(आपन्तइव सूर्यम्) जैसे सूर्य से उत्पन्न हुई किरणें सूर्य से ही प्रकाश लेती हैं ॥

सायणाचार्य ने और टिप्पणी में विवरणकार के मत से सामश्रमी जी ने "जाते" इस पद की व्याख्या की है । परन्तु मूल और सामगान दोनों में "जातो" पाठ देखा जाता है, जिस के "जाता, उ" ये दो पद होते हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि ऋग्वेद ८ । ९९ । ३ के "जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम" इस पाठ में "जाते" पाठ देख कर यह भ्रान्ति हुई है । और सायणभाष्य में उसी का निरुक्त भी उद्धृत किया है । परन्तु ऐसा करने पर यह भाष्य मूल से अनुकूल नहीं रहता ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ्याः-पुरुहन्मा ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

३ १ २ ३ १२ ३२ ३ १ २ १ २ ३ १२

(२६८) न कीमदेव आपतदिषं दीर्घायो मर्त्यः । एतग्वा चिद्य

२२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

एतशो युयोजत इन्द्रो हरी युयोजते ॥ ६ ॥

भावार्थः-(दीर्घायो) हे नित्य ! जीवात्मन् ! (अदेवः) बिना ईश्वर के मनुष्य (इषम्) शारीरक और आत्मिक भोजन (न कीम्) नहीं ही (आपतत्) पा सका । (चित्) क्योंकि (यः) जो (एतग्वा) घोड़े वाला है [वही] (एतशः) घोड़े को (युयोजते) जोतता है । और (इन्द्रः) सूर्य ही (हरी) किरणों को (युयोजते) संयुक्त करता है ॥

परमात्मा ही के समस्त पदार्थ हैं इस लिये वही सब को यथाभाग देता है वह न हो तो कोई मनुष्य सञ्चित कर्मों का फल न पासके । क्योंकि स्वतन्त्रता से कोई पुरुष किसी पदार्थ का स्वामी नहीं है । फिर स्वतन्त्रता से किसी पदार्थ का भोग किसी को कैसे मिल सकता है ? । रथ के स्वामी ही के घोड़े जुतते हैं, स्वामी के बिना स्वतन्त्र घोड़े नहीं जुत सकते, और न सूर्य के बिना स्वतन्त्र किसी पदार्थ में किरणें जुड़ सकती हैं । जैसे दरिद्र पुरुष अपने घोड़े ही नहीं रखता फिर जोते किसे । और जैसे बिना प्रकाश के घटादि पदार्थ प्रकाश की पूंजी ही नहीं रखते फिर चमकें कैसे ? ऐसे ही

यह जगत् किसी पदार्थ पर स्वत्व ही नहीं रखता तब भोग कहां से कर सके ? अतः परमात्मा ही भोग का प्रदाता है ॥

निघण्टु १।१४ ॥ १।१५ के प्रमाण और ऋ० ८।७१।७ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ६॥

अथ सप्तम्याः—नृमेधपुरुमेधावृषी । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३

(२६९) आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रꣳ समत्सु भूषत। उप ब्रह्माणि

१ २ ३ १ २

सवनानि वृत्रहन् परमज्या ऋचीषम ॥ ७ ॥

भावार्थः–(ऋचीषम) हे स्तुत्य ! (परमज्याः) उद्भट शत्रुओं का दमन करने वाले ! (वृत्रहन्) रुकावटों को मार भगाने वाले ! परमेश्वर ! (विश्वासु) समस्त (समत्सु) युद्धादि बाधाओं में (नः) हमारे (ब्रह्माणि) वेदोक्त स्तोत्र और (सवनानि) प्रातः सवनादि तीनों सवन (हव्यम्) पुकारने योग्य (इन्द्रम्) आप परमेश्वर को (आ उप भूषत) रक्षार्थ सुशोभित करो॥

अर्थात् हे जगदीश ! हमारी समस्त बाधाओं में सहायतार्थ हमारे स्तोत्र और यज्ञ हमें आप को प्राप्त करावें ॥

निघण्टु २।१७ निरुक्त ६।२३ के प्रमाण और ऋग्वेद ८।९०।१ का पाठान्तर संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ७ ॥

अथाष्टम्याः—वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

१२ २२ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १२ २२

(२७०) तवेदिन्द्राऽवमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम् । सत्रा विश्वस्य

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

परमस्य राजसि नकिष्ट्वा गोषु वृण्वते ॥८॥

भावार्थः–(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (अवमम्) नीचे का पृथिवी लोक (तव इत्) आप का ही (वसु) धन है । और (मध्यमम्) मध्यस्थ अन्तरिक्ष लोक को (त्वम्) आप ही (पुष्यसि) पालते हैं तथा (परमस्य) परले द्युलोक के भी आप ही (राजसि) राजा हैं । इस प्रकार (विश्वस्य) सारे जगत् के (सत्रा) एक साथ आप ही राजा हैं । (त्वा) आप को (गोषु) पृथिवी आदि लोकों में (नकिः) कोई नहीं (वृण्वते) रोक सकते [क्योंकि आप व्यापक हैं] ॥ ऋ० ७।३२।१६ में भी ॥ ८ ॥

अथ नवम्याः-मेधातिथिमेध्यातिथी ऋषी । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

१ २र३ १ २ ३ १ ३ १ ३ १ २ १ २
(२७१) क्वेयथ क्वेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः । अलर्षि युध्म
३ १ २ ३ १ २
खजकृत् पुरन्दर प्र गायत्रा अगासिषुः ॥९॥

भावार्थः-प्रश्न-(युध्म) हे सर्वंग ! (खजकृत्) हे आकाशज ब्रह्माण्डों के कर्त्ता ! (पुरन्दर) हे देहबन्धनों के छुड़ाने हारे ! इन्द्र ! परमेश्वर ! आप (क्व) कहां (इयथ) व्याप्त हैं (इत्) और (क्व) कहां (असि) हैं । उत्तर-(ते) आप का (मनः) ज्ञानस्वरूप (पुरुत्रा, चित्, हि) सर्वत्र ही है । (अलर्षि) आप व्याप रहे हैं । (गायत्राः) गाने वाले (प्र गासिषुः) [आप का] गान करते हैं ॥

निघण्टु २ । १४ ॥ ३ । १ ॥ उणादि १ । १४५ ॥ १ । २३ ॥ ४ । १९९ ॥ अष्टाध्यायी ३ । ४ । ६४ इत्यादि के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । १ । ७ में भी ॥ ९ ॥

अथ दशम्याः-कलिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ १ २
(२७२) वयमेनमिदा ह्योपीपेमेह वज्रिणम् । तस्मा उ
३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥१०॥

* इति चतुर्थी दशतिः *

भावार्थः-हे मित्रो ! (वयम्) हम ब्रह्मज्ञानी लोग (एनम्) इस (वज्रिणम्) दुष्टों पर दण्डधारी परमेश्वर को (इत्) ही (ह्यः) भूतकाल में (आ-अपीपेम) सर्वतोभाव से प्रसन्न करते रहे हैं । और (नूनम्) निश्चय (आप लोग भी] (अद्य) अब (श्रुते) विख्यात (सवने) यज्ञ में (सुतम्) स्तुति करने वाले का (भर) भरण कीजिये (उ) और (तस्मै) उस परमेश्वर के लिये (भूषत) [हृदय को रागद्वेषादि मल दूर करके] सुन्दर भूषित करो ॥

अर्थात् ज्ञानियों की यही परंपरा है कि सर्व काल में यज्ञादि उत्तम अवसरों पर विशेष कर अपने स्वामी परमात्मा की प्रीति के लिये अपने हृदय से पापादि कुसंस्कारों को दूर करके भूषित करते हैं ॥

निघण्टु ३ । १७ ॥ ३ । १६ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ५५ । ७ । में "मनना सुतम्" पाठ है ॥ १० ॥

यह तृतीयाऽध्याय में ४ चौथी दशति समाप्त हुई ॥४॥

योराजा चर्षणीत्यस्यां बृहत्यो दशसौ दश ।
वण्महाँ असि सूर्येति तुर्या सूर्यस्य कीर्त्तिता ॥ १ ॥
इन्द्राग्नीति नवम्याश्च इन्द्राग्नी देवते स्मृते ।
शेषा अष्टेन्द्रदैवत्यां एवं दश ऋचः स्मृताः ॥ २ ॥

अथ पञ्चमी दशतिः

तत्र प्रथमायाः-पुरुहन्मा ऋषिः । इन्द्रोदेवता बृहती छन्दः ॥

१र २र ३२उ ३ १ २ ३ १ २
(२७३) योराजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
१ २ ३१र २र ३ २३ १ २३१ ३२
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ॥१॥

भावार्थः-इस में श्लेषालङ्कार से राजा और परमेश्वर की प्रशंसा है । (यः) जो (चर्षणीनाम्) मनुष्यों का (राजा) राजा है । (रथेभिः) जो रथों वा रमणीय योगमार्गों से (याता) प्राप्त होता है । (अध्रिगुः) जो अपने स्थान में वा अपने स्वरूप में ही स्थिर अचल (वृत्रहा) दुष्ट दस्युओं का नाशक है (विश्वासां पृतनानाम् तरुता) जो सम्पूर्ण सेनाओं के पार करने वाला है (ज्येष्ठम्) उस बड़े [राजा वा परमेश्वर] की (गृणे) प्रशंसा करता हूं ॥

अष्टाध्यायी ७ । २ । ३४ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ऋ० ८ । ७० । १ में "ज्येष्ठम्" पाठ है ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः-भर्गऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २उ
(२७४) यत इन्द्र भयामहे ततोनो अभयं कृधि । मघवञ्छग्धि
३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १र २र
तव तं न ऊतये विद्विषो विमृधो जहि ॥ २ ॥

भावार्थः-(इन्द्र) हे राजन् ! वा परमेश्वर ! हम (यतः) जिस से (भयामहे) भय को प्राप्त हों (ततः) उस से (नः) हम को (अभयम्) निर्भय (कृधि) कीजिये (मघवन्) हे धनवन् ! वा यज्ञवन् ! (तव) आप के भक्त (नः) हम लोगों की (ऊतये) रक्षा के लिये (तम्) उस अभय को (शग्धि) आप समर्थ हैं, याचना को पूर्ण कीजिये । (द्विषः) शत्रुओं को (वि, जहि) नष्ट कीजिये और (मृधः) संग्रामों को (वि) जीतिये ॥

ऋग्वेद ८ । ५० । १३ में " ऊतिभिः " पाठ है ॥ २॥

अथ तृतीयायाः-इरिमिठ ऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २

(२७५) वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणाꣳ सत्रꣳ सोम्यानाम् द्रप्सः

३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

पुरां भेत्ता शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनाꣳसखा ॥ ३ ॥

भावार्थः-(वास्तोष्पते) हे गृहों के पालक ! राजन् ! वा परमेश्वर आप (सोम्यानाम्) सौम्य स्वभाव प्रजाजनों के (ध्रुवा) अचल (स्थूणा) गृहस्तम्भ के तुल्य आधार हैं (अꣳसत्रम्) कवच के तुल्य रक्षक हैं (द्रप्सः) शीघ्र गति वाले वा ज्ञानी हैं (शश्वतीनाम्) बहुत (पुराम्) शत्रुदुर्गों वा देहबन्धनों के (भेत्ता) नाशक हैं (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् और (मुनीनाम्) मुनियों के (सखा) मित्र हैं ॥ निघण्टु ३ । १ और ऋग्वेद ८ । १७ । १४ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः-जमदग्निर्ऋषिः । सूर्योदेवता । बृहती छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १

(२७६) बण्महां असि सूर्य बडादित्य महां असि । महस्ते सतो

२ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

महिमा पनिष्टम मह्ना देव महां असि ॥ ४ ॥

भावार्थः-सूर्य के दृष्टान्त से राजा की प्रशंसा है कि-(सूर्य) कामों में प्रेरणा करने वाले ! (बट्) ठीक (महान्) तू बड़ा (असि) है । (आदित्य) रसों के खींचने वाले ! (बट्) सत्य तू (महाँ असि) महान् है (ते) तुझ (सतः) उत्तम की (महिमा) बड़ाई (महः) बड़ी है । (पनिष्टम) प्रशंसा

के योग्य ! (देव) दिव्यगुण ! (मह्ना) बड़प्पन से (महाँ असि) तू महान् है ॥

अर्थात् जैसे सूर्य और परमेश्वर प्रजा को चेताते हैं, रसों का आकर्षणादि करते हैं, प्रशंसनीय, दिव्यगुणों से युक्त हैं, और परमेश्वर सर्व की अपेक्षा से तथा सूर्य अन्य लोकों की अपेक्षा से बड़ा है। वैसे ही राजा भी व्यापारादि में प्रजा का प्रवर्त्तक, कर ग्रहण करने वाला, प्रशंसनीय, दिव्यगुणयुक्त और साधारण मनुष्यों की अपेक्षा महान् होवे॥ ऋ० ८।१०१।११ में "महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ असि" यह पाठ है ॥ ४॥

अथ पञ्चम्याः-मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

३ २ ३ १ २ ३ २३ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३
(२७७) अश्वी रथी सुरूपइद्गोमाँ यदिन्द्र ते सखा। श्वात्रभाजा
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
वयसा सचते सदा चन्द्रैर्याति सभामुप ॥ ५॥

भावार्थः-(इन्द्र) हे परमेश्वर! वा राजन्! (यत्) जब [मनुष्य] (ते) आप के (सखा) अनुकूल होता है (इत्) तभी (अश्वी) अश्वों वाला (रथी) रथों वाला (गोमान्) गौवों वाला और (सुरूपः) सुन्दर स्वरूप वाला होता है। तथा (श्वात्रभाजा) धन सहित (वयसा) अन्न से (सचते) संगति करता है। और (सदा) सर्वदा (चन्द्रैः) आह्लादकारक सहचरों के साथ (सभाम्) सभा को (उप-याति) प्राप्त होता है ॥

न्यायकारी राजा और परमेश्वर के कृपाभाजन पुरुष ही रथ, गौ, धन, धान्य से सुखी और सभा के रत्न बनते हैं ॥

सूर्य्यपक्ष में-(इन्द्र) हे राजन्! (ते) आप का (सखा) समानख्याति सूर्य (यत्) जिस कारण (अश्वी) शीघ्र गमन की हेतु उष्णता वाला (रथी) रमणीय स्वरूप वाला (सुरूपः) भले प्रकार रूप का संचारक है (इत्) इस कारण (श्वात्रभाजा) धनभागी (वयसा) धान्य से (सचते) सङ्गति करता और (सदा) सर्वदा (चन्द्रैः) अनेक चन्द्रमाओं के सहित (सभाम्) गगनमण्डल रूप सभा में (उप-याति) प्राप्त रहता है ॥

इस से चन्द्रमाओं का दो से अधिक होना भी पाया जाता है। निघंटु २।७॥ २।१० निरुक्त ११।५ के प्रमाण और ऋ० ८।४।९ का पाठ भेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ५॥

अथ षष्ठ्याः–पुरुहन्माऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

१र २र ३ २ ३ १र २र ३ २ १ २
(२७८) यद्द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः । न त्वा

३ २ ३ २ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वज्रिन्त्सहस्रꣳ सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥ ६ ॥

भावार्थः–(इन्द्र) हे परमेश्वर । (यत्) यदि (द्यावः) द्युलोक (शतम्) सैकड़ों (स्युः) हों । [तौ भी] (ते) आप को (न) नहीं (अनु) माप (अष्ट) व्याप सकते (उत) और (भूमीः) पृथिवीलोक (शतम्) सैकड़ों हों, तब भी नहीं व्याप सकते (वज्रिन्) हे दुष्टों को दण्डदाता । (सहस्रम्) असंख्यात (सूर्याः) सूर्य लोक भी (त्वा) आप को [नहीं व्याप सकते] (रोदसी) द्यावा पृथिवी [आप को नहीं व्याप सकते] (जातम्) उत्पन्न जगत् मात्र (न) आप को नहीं व्याप सकता ॥ क्योंकि आप अनन्त और सब से बड़े हैं । "पृथिवी से बड़ा, अन्तरिक्ष से बड़ा, द्युलोक से बड़ा और इन सब लोकों से भी बड़ा है" ऐसा कहा सुनते हैं ॥

निघण्टु १ । १ ॥ २ । १८ ॥ ३ । ३० के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ८ । ७० । ५ में भी ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः–देवातिथिर्ऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ २उ ३ २क २र ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १र
(२७९) यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः । सिमा पुरू

२र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ ७ ॥

भावार्थः–(इन्द्र) हे परमेश्वर । (यत्) जब (नृभिः) मनुष्यों से (प्राक्) पूर्व (अपाक्) पश्चिम (उदक्) उत्तर (वा) और (न्यक्) नीचे की दिशाओं में (हूयसे) तुम पुकारे जाते हो तब (सिमा) सर्वत्र एक साथ ही (तुर्वशे) सब के समीप (असि) होते हो । (प्रशर्ध) हे सब से अधिक तेजस्विन् । (पुरु) बहुशः (नृषूतः) मनुष्यों के पुकारे हुवे आप (आनवे) मनुष्यमात्र में (असि) हैं ॥

अष्टाध्यायी ५ । ३ । २७ ॥ ५ । ३ । ३० ॥ ६ । २ । ५३ ॥ ८ । २ । ४ निघं० १ । ३ ॥ २ । १६ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ४ । १ में भी ॥ ७ ॥

अथाऽष्टम्याः-वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

१र २र ३१र २र ३१र २र
(२८०) कस्तमिन्द्र त्वा वसवामर्त्यो दधर्षति । श्रद्धा हि ते
३ १ २ ३ २ ३ १र २र
मघवन्पार्ये दिवि वाजी वाजꣳ सिषासति ॥८॥

भावार्थः—(वसो) वासहेतो ! (मघवन्) यज्ञ वाले ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (तम्) उस सर्वव्यापक (त्वा) आप को (कः) कौन (मर्त्यः) मनुष्य (आ-दधर्षति) धर्षणा कर सकता है ? कोई नहीं । किन्तु-(वाजी) योगबल वा सोमरूप अंश वाला (ते) आप का यजमान (पार्ये) सोम की पारी के (दिवि) दिन (श्रद्धा) श्रद्धापूर्वक (हि) निश्चय (वाजम्) सोम को (सिषासति) विभागपूर्वक [यज्ञ में] देना चाहता है ॥

ऋ० ७ । ३२ । १४ में जो पाठभेद है वह संस्कृतभाष्य में देखिये ॥८॥

अथ नवम्याः-भारद्वाज ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र
(२८१) इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः । हित्वा शिरो
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
जिह्वया रारपच्चरत्त्रिंꣳशत्पदा न्यक्रमीत् ॥ ९ ॥

भावार्थः—पूर्वोक्त सोम का विभाग कौन करता है । इस का उत्तर कहते हैं-(इयम्) यह बिजुली (अपात्) पांव के विना भी (पद्वतीभ्यः) पांव वाली प्रजाओं से (पूर्वा) प्रथम (आ-अगात्) आजाती है (चरत्) और चलती है । तथा (शिरः) मुखस्थान को (हित्वा) त्याग कर भी (जिह्वया) वाणी से (रारपत्) अत्यन्त बोलती है (त्रिंꣳशत्) दिन रात ३० मुहूर्तों में (पदा) पद (न्यक्रमीत्) रखती है । (इन्द्राग्नी) सूर्य और अग्नि भी ऐसा करते हैं ॥

सूर्य अग्नि और बिजुली के आश्चर्य प्रभाव से सोम का विभाग हो जाता है ।९॥

अथ दशम्याः-बालखिल्या ऋषयः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

२ ३ १ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३
(२८२) इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः । आ शन्तम
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
शन्तमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः ॥ १० ॥

* इति पञ्चमी दशतिः ॥५॥ *

भावार्थः-(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (नेदीयः) हे अतिसमीप ! व्यापक ! आप (मितमेधाभिः) परिमित बुद्धियों सहित और (ऊतिभिः) रक्षाओं सहित (आ-इहि, इत्) हमें प्राप्त ही हूजिये (शग्म) हे सुखद ! (शन्तमाभिः) अतिसुखदायिका (अभिष्टिभिः) प्राप्तियों से (आ) प्राप्त हूजिये (स्वापे) हे अपने स्वरूप के प्राप्त कराने वाले ! (स्वापिभिः) अपने पदार्थों की प्राप्तियों से (आ) प्राप्त हूजिये ॥

अष्टाध्यायी ५ । ३ । ६३ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ५३ । ५ में भी ॥ १० ॥

* यह तृतीयाऽध्याय में पांचवीं दशति समाप्त हुई ॥५॥ *

इत ऊतीव इत्याद्या बृहत्यो दशती दश ।
शचीभिरिति पञ्चम्या अश्विनौ देवते मते ॥ १ ॥
यदेति वारुणी षष्ठी शिष्टा ऐन्द्र्यः प्रकीर्त्तिताः ।

अथ षष्ठी दशतिस्तत्र प्रथमायाः-नृमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३
(२८३) इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् । आशुं जेतारं

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
हेतारं रथीतममतूर्त्तं तुग्रियावृधम् ॥ १ ॥

भावार्थः-हे मनुष्यो ! तुम (वः) अपनी (ऊती) रक्षा के लिये (अजरम्) अकाय होने से बुढ़ापे से रहित (प्रहेतारम्) अन्तर्यामितया सब के प्रेरक (अप्रहितम्) कूटस्थ होने से अचल (आशुम्) व्यापक (जेतारम्) सर्वोत्कृष्ट (हेतारम्) सर्वग (रथीतमम्) अति रमणीय पदार्थों वाले (अतूर्त्तम्) निराकार होने से अहिंसनीय अमर (तुग्रियावृधम्) जल के वर्षाने वाले [उपलक्षण से आंधी आदि के भी प्रवर्त्तक, प्रकारणागत इन्द्र परमेश्वर को] (इत) प्राप्त होओ ॥

निघण्टु १ । १२ निरुक्त ९ । ११ इत्यादि के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ९९ । ७ में "तुग्र्यावृधम्" ही पाठ है ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः-वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

१२ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १र २र ३ १ २
(२८४) मोषु त्वा वाघतश्चनारे अस्मन्निरीरमन् । आरात्ताद्वा
३ १२ ३ १ २ ३२ ३ १र २र
सधमादं न आगहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥ २ ॥

भाषार्थः-प्रकरण से हे परमेश्वर ! (वाघतः) विद्वान् ऋत्विज् लोग (चन) भी (अस्मत्) हम से (आरे) दूर देश में (त्वा) आप को (मा, उ, सु, नि-रीरमन्) न स्तुत करें किन्तु समीप ही बैठे हुए स्तुत करें और आप (वा) निश्चय (आरात्तात्) सर्वग होने से समीप ही (नः) हमारे (सधमादम्) यज्ञ को (आगहि) प्राप्त हों (वा) अथवा (इह) इस हमारे अन्तःकरण में (सन्) वर्त्तमान आप (उप-श्रुधि) प्रार्थना का श्रवण करें॥

निघण्टु ३ । १५ ॥ ३ । १८ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ७ । ३२ । १ में "आराच्चित्" पाठ है ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः-वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

३ १२ ३ २३ २ ३ १ २ ३ १२ १२ ३ १र
(२८५) सुनोत सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे। पचता पक्तीर-
२र ३ २उ ३ १र २र ३ १र २र
वसे कृणुध्वमित् पृणन्नित्पृणते मयः ॥ ३ ॥

भाषार्थः-रक्षा और सुख के लिये प्रार्थना किया हुआ परमेश्वर, यह जान कर कि मनुष्यों का समस्त सुख और रक्षा, शुद्ध वायु जल वृष्टि और ओषधि आदि पर निर्भर है। उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुम (सोमपव्ने) सोम पीने वाले (वज्रिणे) कड़क रूप वज्र के धर्त्ता (इन्द्राय) अन्तरिक्षस्थान देवविशेष के लिये (सोमम्) सोमादि ओषधियों का (सुनोत) अभिषव करो-संपादन करो । (अवसे) रक्षा के निमित्त (पक्तीः) पकाने योग्य पुरोडाशादि (पचत) पकाओ । (इत्) ऐसे सब काम (कृणुध्वम्) करो (इत्) ही (पृणत्) देने वाला (मयः) सुख (पृणते) देता है ॥

निघण्टु ३ । २० ॥ ३ । ६ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ७ । ३२ । ८ में "सुनोता" ऐसा दीर्घान्त पाठ है ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः-भरद्वाजऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३१ १२
(२८६) यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तं हूमहे वयम् । सहस्र-
३ १ २ ३ १ २ ३ २
मन्यो तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ॥ ४ ॥

भावार्थः-मनुष्य पूर्व मन्त्रोपदेश के उत्तर में निवेदन करते हैं कि-(सहस्रमन्यो) हे अनन्त ज्ञान! (तुविनृम्ण) हे बहुबल! (सत्पते) हे सत्पुरुषों के रक्षक! जो आप (सत्राहा) एक साथ समस्त का नाश करने में समर्थ हैं और (विचर्षणिः) अच्छे बुरे को देखने वाले हैं, सो आप (समत्सु) कामादि शत्रुओं के सङ्ग्रामों में (नः) हमारी (वृधे) वृद्धि और विजय के लिये (भव) हूजिये। आप की आज्ञानुसार (तम्) उस अन्तरिक्ष स्थान (इन्द्रम्) इन्द्र का (वयम्) हम (हूमहे) हवनादि करते हैं॥

निघण्टु ३। ११॥ ३। १॥३। १॥२। ९॥ २। १७ निरुक्त ९। २९ के प्रमाण संस्कृत-भाष्य में देखिये॥ ऋ० ६। ४६। ३ में "सहस्रमुष्क" यह पाठ भेद है॥ ४॥

अथ पञ्चम्याः- परुच्छेप ऋषिः। अश्विनौ देवते। बृहती छन्दः॥

१ २ ३ २ ३ १ २ १ २
(२८७) शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दिशस्यतम्। मा वां
३ १ २र ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ २
रातिरुपदसत् कदाचनास्मद्रातिः कदाचन ॥ ५ ॥

भावार्थः-फिर मनुष्य लोग सूर्य्य और चन्द्रमा को सम्बोधन करके कहते हैं कि-अश्विनौ! तुम (शचीवसू) बुद्धि और धन (नः) हमारे लिये (दिवा नक्तम्) रात्रि दिन (दिशस्यतम्) दो। (शचीभिः) कर्मों सहित (वाम्) तुम्हारा (रातिः) दान (कदा चन) कभी (मा, उप-दसत्) उपक्षीण न होवे और (अस्मत् रातिः) हमारा हव्य दान भी (कदा चन) कभी उपक्षीण न हो॥

यहां सूर्य्य चन्द्रमा के दृष्टान्त से उपदेशक और उपदेश्य का धर्म भी उपदेश किया जानो॥ सूर्य चन्द्र भी अपने प्रकाश से बुद्ध्यादि बढ़ाते हैं॥

निघण्टु २। १॥ ३। ९ अष्टाध्यायी ३। १। ५५ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ऋ० १। १३९। ५ में " दशस्यतम् " पाठ है॥ ५॥

अथ षष्ठ्याः-वामदेव ऋषिः। वरुणो देवता। बृहती छन्दः॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १र २र ३
(२८८)यदा कदा च मीढुषेस्तोता जरेत मर्त्यः। आदिद्वन्देत
१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
वरुणं विपा गिरा धर्त्तारं विव्रतानाम् ॥ ६॥

भावार्थः—परमात्मा की स्तुति के साथ वन्दना भी आवश्यक है। इस का विधिवाक्य कहते हैं कि-(स्तोता) स्तुति करने वाला (मर्त्यः) मनुष्य (मिढुषे) धर्मार्थ काम मोक्ष के वर्षक परमेश्वर के लिये (यदाकदा च) जब कभी (जरेत) स्तुति करे (आत् इत्) तब ही (विव्रतानाम्) विविध कर्मों के (धर्त्तारम्) धर्त्ता (वरुणम्) वरण करने योग्य परमात्मा को (गिरा) जो बोलती है उस (विपा) वाणी से (वन्देत) वन्दना भी करे। अर्थात् वन्दनारहित स्तुति न करे किन्तु वन्दना और स्तुति दोनों करे॥

निघण्टु ३। १४॥ १। ११॥ २। १ इत्यादि के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ६॥

अथ सप्तम्याः-मेध्यातिथिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहती छन्दः॥

३ १र २ १ ३ २ ३ १ २ १र २र ३
(२८९) पाहिगा अन्धसोमदइन्द्राय मेध्यातिथे। यः संमिश्लो
२३ १ २ ३ २ ३ १ २३ १ २ ३ १ २
हर्योर्यो हिरण्यय इन्द्रोवज्री हिरण्ययः ॥७॥

भावार्थः-(मेध्यातिथे) हे परमेश्वर से संगति योग्य। निरन्तर देशान्तर को जाने वाले। जीवात्मन्! तू (इन्द्राय) परमेश्वरप्राप्ति के लिये (अन्धसः) उत्तम २ भोजनादि के (मदे) मद में (गाः) इन्द्रियों की [विषयों से] (पाहि) रक्षा कर [क्योंकि] (यः) जो (इन्द्रः) परमेश्वर (हिरण्ययः) ज्योतिर्मय है और जो (हर्योः) हरणशील आत्मा और मन में (संमिश्लः) मिल रहा है व्यापक है और जो (वज्री) दुष्ट विषयलोलुपों को दण्ड धारण किये है (हिरण्ययः)ज्योतिःस्वरूप है। वह अजितेन्द्रियों को नहीं मिल सकता। यह भाव है॥

हिरण्यय पद के दो वार पाठ से परमात्मा की ज्योति की अतिशयता और मदान्धों को नहीं पासक्ता, यह सूचित किया है निघण्टु॥ १। ४॥ २। ७ इत्यदि प्रमाण और ऋ० ८। ३३। ४ का पाठान्तर संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ७॥

अथाष्टम्याः—भर्ग ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

३ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३ २ ३ १र ३र ३ १ २

(२९०) उभयꣳ शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः । सत्राच्या

३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २

मघवान्त्सोमपीतये धिया शविष्ठ आगमत् ॥८॥

भावार्थः—(इन्द्रः) परमेश्वर (नः) हमारे (उभयम्) स्तुति और वन्दना दोनों प्रकार के वचनों को (अर्वाक्) समक्ष उच्चार्यमाण (शृणवत्) सुने (च) और (शविष्ठः) अतिबल (मघवान्) यश वाला (सोमपीतये) हृदय के सौम्य भाव को ग्रहण करने के लिये (सत्राच्या) सत्यानुगामिनी (धिया) बुद्धि सहित (आ-गमत्) प्राप्त होवे ॥

निघण्टु ३ । १० ॥ २ । ९ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये । सायणाचार्य ने (च नः) ये दो पद नहीं व्याख्यात किये दीखते ॥ ऋ० ८ । ५० । १ में तो "मघवा" पाठ है ॥ ८ ॥

अथ नवम्याः- मेधातिथिमेध्यातिथी ऋषी । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३

(२९१) महे च न त्वाद्रिवः परा शुल्काय दीयसे । न सहस्राय

१र २र ३ २ ३ १ २

नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥९॥

भावार्थः—(अद्रिवः) हे मेघों के धारक ! (वज्रिवः) दुष्टों के ताडन कर्त्ता ! (शतामघ) बहुत धन वाले ! इन्द्र ! परमेश्वर ! (त्वा) आप [हम से] (महे) बड़े (शुल्काय) मूल्य के लिये (च) भी (न) नहीं (परा दीयसे) त्यागे जाते हैं । (न सहस्राय) न सहस्र के लिये (न अयुताय) न १० सहस्र के लिये (न शताय) और न इस से भी बहुत के लिये ॥

अर्थात् मनुष्यों को चाहिये कि सहस्रों के धन के लिये भी कभी परमेश्वर को न हारें । किन्तु सहस्रादि अनन्त धन जावो सो जावो परन्तु परमेश्वर की आज्ञा के विपरीत कुछ न करें ॥

निघण्टु १ । १० ॥ ३ । १ ॥ २ । १० इत्यादि के प्रमाण और ऋ० ८ १।५ का अन्तर संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ९

अथ दशम्याः- ऋष्यादयः पूर्ववत् ॥

१ २ ३ १ ३ २उ ३ १ २ ३ १

(२९२) वस्याँ इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः । माता

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे ॥ १० ॥

* इति षष्ठी दशतिः ॥ ६ ॥ *

इति तृतीयः प्रपाठकः ॥ ३ ॥

भावार्थः-(वसो) हे वासहेतु ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (अभुञ्जतः) न पालने वाले (मे) मेरे (पितुः) पिता (उत) और (भ्रातुः) भ्राता से अधिक आप (वस्यान्) बसाने वाले (असि) हैं (च) और (मे) मेरी (माता) जननी (समा) सब काल में समान प्रीति रखती है । (वसुत्वनाय) निवास और (राधसे) धन के लिये (छदयथः) [माता और आप मेरा] पोषण करते हैं ॥

अर्थात् जब मनुष्य माता की सेवा पालन शुश्रूषा नहीं करता तब भी माता उस पर समान ही स्नेह रखती है । तथा परमेश्वर भी सब काल में हम का पोषण करता है । अन्य पिता भ्राता आदि इतने नहीं । इस में माता शारीरक और परमात्मा आत्मिक पुष्टि विशेषतः करते हैं ॥

निघण्टु ३ । १४ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । १ । ६ में भी ॥ १० ॥

*यह तृतीयाऽध्याय में छठी ६ दशति और तीसरा ३ प्रपाठक समाप्त हुवा ॥ *

अथ

चतुर्थप्रपाठके प्रथमाऽर्धः ॥

इम इन्द्राय इत्याद्या बृहत्यो दशती दश ॥
त्वष्टेति बहुदैवत्या शिष्टा ऐन्द्र्यो नव स्मृताः ॥१॥

अथ सप्तमी दशतिस्तत्र प्रथमायाः-वसिष्ठऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ १र १र
(२९३) इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः। ता आमदाय
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
वज्रहस्त पीतयेहरिभ्यां याह्योक आ ॥ १ ॥

भावार्थः-(वज्रहस्त) हे वैद्युततेजोधर। (इमे) ये (दध्याशिरः) दधिमिश्रित (सोमासः) सोमादि ओषधियां (इन्द्राय) तुझ इन्द्र के लिये (सुन्विरे) सुसंपन्न की हैं। (मदाय) हर्ष के लिये (तान्) उन सोमों के (आ, पीतये) ग्रहण करने को (हरिभ्याम्) तिरछी सीधी दोनों गतियों से (ओकः) यज्ञस्थल को (आ-याहि) आ॥

अर्थात् जब मनुष्य यज्ञ के लिये दधिमिश्रित सोम आदि ओषधि संपन्न करके यज्ञ आरम्भ करते हैं तो इन्द्र जो अन्तरिक्ष में जल वर्षाने वाला एक अचेतन देवता है, और अन्य उस के उपलक्षण से ग्रहण किये हुवे वायु आदि देवगण अपना२ भाग ग्रहण कर लेते हैं। उन का वृद्धि और आच्छे-पन को प्राप्त होना ही हर्ष है। अपने२ प्राप्य रस को चूमना वा खेंचना ही पीना है॥ ऋ० ३।४२।४ में भी॥ १॥

अथ द्वितीयायाः- वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहती छन्दः॥

३ १र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १र
(२९४) इम इन्द्र मदाय ते सोमाश्चिकित्र उक्थिनः। मधोः पपान
२र ३ १ ३ ३ १ २ ३ १
उप नो गिरः शृणु रास्व स्तोत्राय गिर्वणः ॥ २ ॥

भावार्थः-(गिर्वणः) हे वाणी से संभजनीय। (इन्द्र) परमेश्वर। (मधोः) मधुरभाषी (उक्थिनः) स्तुतिकर्त्ता के (इमे) ये (सोमाः) सोमादिक (मदाय) [पूर्व मन्त्रोक्त इन्द्र और उस के उपलक्षण से ग्रहण किये अन्य देवतों के] हर्षार्थ (चिकित्रे) रोग दूर करते हैं। (ते) आप के (स्तोत्राय) स्तोत्र के लिये (नः) हमारी (गिरः) वाणियों को (उप-शृणु) स्वीकृत कीजिये (पपानः) रक्षा करते हुवे आप (रास्व) [अभीष्ट पदार्थ] दीजिये॥ निघण्टु ३। २० इत्यादि के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः- मेधातिथिमेध्यातिथी ऋषी। एके विश्वामित्र इत्याहुः। इन्द्रो देवता। बृहती छन्दः॥

२ ३ ३१ २३१ २ ३१ २३११ १२३२
(२९५) आ त्वा३द्य सबर्दुघाᳬहुवे गायत्रवेपसम्। इन्द्रं धेनुं
३२३२ ३१२३१ २ ३१२
सुदुघामन्यामिषमुरुधारामरंकृतम् ॥ ३ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार से इन्द्र अन्तरिक्षस्थान देव और परमेश्वर का वर्णन धेनु के तुल्य करते हैं मैं (अद्य) अब (त्वा) तुझ (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य वाले (अरंकृतम्) कामना पूर्ण कर्त्ता को (सबर्दुघाम्) पय आदि को दुहने वाली (गायत्रवेपसम्) प्रशंसित गति वाली वा उत्तम चेष्टा वाली (सुदुघाम्) सुगम रूप से दुहने योग्य (अन्याम्) और ही [विलक्षण] (इषम्) चाहने योग्य (उरुधाराम्) बहुत धार वाली (धेनुम्) गौ के समान (आ-हुवे) वर्णित करता हूं ॥

जिस प्रकार गौ सर्वोपकारिका हैं, इसी प्रकार इन्द्र भी वर्षा आदि द्वारा सर्वोपकारक है। और परमेश्वर तो अत्यन्त उपकारक है ॥

निघण्टु २। ९ इत्यादि का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८। १। १० में "आ त्व १ द्य" इतना अन्तर है ॥

यह अन्धपरम्परा की बात भी द्रष्टव्य है कि कलकत्ते के सायणभाष्ययुक्त पुस्तक में "अद्य" के स्थान में "अघ" और "सुदुघाम्" के स्थान में "सुदुखाम्" छप गया है। तो ठीक ज्यों का त्यों ही अशुद्ध पं० ज्वालाप्रसाद भार्गव जी ने भी छाप धरा है। भाष्य में अद्य और सुदुघाम् की ही व्याख्या है। क्योंकि सायणभाष्य में भी वैसा ही है ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः-नोधा ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहती छन्दः ॥

१ २ ३२ ३१२३ १२ ३१२ १२ २२
(२९६) न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीडवः। यच्छिक्षसि
३१२ २२३ २३२ ३१२ २२
स्तुवते मावते वसु नकिष्टदा मिनाति ते ॥ ४ ॥

भावार्थः-(इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त! (बृहन्तः) बड़े (वीडवः) बलिष्ठ दृढ़ (अद्रयः) पर्वत भी (त्वा) आप को (न) नहीं (वरन्ते) रोक सकते। (स्तुवते) स्तुति करने वाले (मावते) मुझ सदृश के लिये (यत्) जो (वसु) धन वा धान्य (शिक्षसि) देते हो (ते) आप के (तत्) उस को (नकिः) कोई भी नहीं (आमिनाति) रोक सकता ॥

निघण्टु २।९ ॥ अष्टाध्यायी ७।३।८९ वार्त्तिक ५।१।६१ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८।८८।३ में "यद्विद्भसि" पाठ है ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः—मेधातिथिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र

(२९७) क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे। अयं यः पुरो

३ १र २र ३ २ ३ १ २

विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥ ५ ॥

भावार्थः-(सुते) सोमरस सम्पन्न होने पर (सचा) वायु आदि देवों के साथ (पिबन्तम्) रस लेते हुवे (ईम्) इस इन्द्र को (कः) कौन (वेद) देखसक्ता है, कोई नहीं। (कत) कितनी (वयः) आयु (दधे) धारण करता है। यह भी कौन जानता है, कोई नहीं। (यः) जो कि (अयम्) यह (अन्धसः) सोमादि के रस से (मन्दानः) तृप्त हुवा (शिप्री) वेग वाला (ओजसा) बल से (पुरः) मेघों के दुर्गों [क़िलों] को (विभिनत्ति) तोड़ता है। इन्द्र जो एक प्रकार का विद्युत्तत्व है वह वायु आदि सहित अदृश्य रूप से सोमादि ओषधियों के रस को पीता और उस से पुष्ट हुवा बल पूर्वक मेघ वर्षाता है और बड़ा वेगवान् है ॥

निरुक्त ६।१७ इत्यादि के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ८।३३।७ में भी ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ्याः—वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

(२९८) यदिन्द्र शासो अव्रतं च्यावया सदसस्परि। अस्माक-

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

मंशुं मघवन् पुरुस्पृहं वसव्ये अधि बर्हय ॥ ६ ॥

भावार्थः-पूर्वमन्त्र में कहे यज्ञ की निर्विघ्न समाप्ति के लिये परमेश्वर से प्रार्थना है कि (इन्द्र) हे परमेश्वर ! आप (अव्रतम्) कर्म अर्थात् यज्ञ के विरोधी को (शासः) शासित करते हैं। अतः (अस्माकम्) हम याज्ञिकों के (सदसः) यज्ञगृह के (परि) चारों ओर से (च्यावय) विरोधियों को दूर कीजिये। तथा (मघवन्) हे यज्ञ वाले ! (पुरुस्पृहम्) बहुधा चाहे हुवे (अंशुम्) सोमरस को (वसव्ये) वसने योग्य यज्ञस्थान में (आ-अधि बर्हय) सब ओर से अधिक बढ़ाइये ॥

अर्थात् यज्ञ में विघ्नकारकों को दूर कीजिये और सोमादि यज्ञसामग्री की वृद्धि कीजिये ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः-वामदेव ऋषिः । बहवो लिङ्गोक्ता देवाः । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र

(२९९) त्वष्टा नो दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः । पुत्रैर्भ्रा-

२र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

तृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रामणं वचः ॥ ७ ॥

भावार्थः-(त्वष्टा) अग्नि, (दैव्यं वचः) वेदमन्त्र, (पर्जन्यः) मेघ, (ब्रह्मणस्पतिः) सूर्य, (अदितिः) द्युलोक [ये सब दिव्य पदार्थ हे इन्द्र! परमात्मन् आप की कृपा से] (नः) हमारे (पुत्रैः) पुत्रों और (भ्रातृभिः) भ्राताओं सहित (नु) शीघ्र (नः) हमारे (पातु) प्रत्येक रक्षा करे (नः) हमारा (त्रामणम्) रक्षक (वचः) वचन (दुष्टरम्) दुस्तर सफल होवे ॥

अर्थात परमेश्वर ऐसी कृपा करे कि अग्नि, वेद, सूर्य आदि पदार्थों द्वारा हमारी रक्षा हो, हमारे पुत्रादि की रक्षा हो, हमारे वचन सफल हों ॥

निरुक्त ८ । १३-१४ ॥ १० । १२-१३ ऋग्वेद २ । २४ । ४ और १ । ८९ । १० के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ७ ॥

अथाऽष्टम्याः-वालखिल्या ऋषयः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३

(३००) कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे । उपोपेन्नु मघ

२ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

वन्भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥ ८ ॥

भावार्थः-(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (मघवन्) हे परमधनवन् ! आप (कदा चन) कभी (स्तरीः) हिंसक (न असि) नहीं हैं । किन्तु (दाशुषे) विद्यादि दान करने वाले के लिये (उप उप इत् नु) समीप समीप ही शीघ्र (सश्चसि) [कर्म फल] पहुंचाते हैं । (देवस्य) प्रकाशयुक्त (ते) आप का (दानम्) कर्मानुसारी दान (भूयः इत्) पुनर्जन्म में भी (नु) निश्चय (पृच्यते) संबद्ध होता है ॥

अर्थात् परमेश्वर कभी किसी के किसी कर्म को निष्फल नहीं करता, न किसी निरपराध को दण्ड देता है । किन्तु इस जन्म और पुनर्जन्म में प्रत्येक प्राणिवर्ग उस की व्यवस्था से कर्मानुसारी फल का सम्बन्धी (भागी) बनता है ॥

उणादि ३ । ५८ निघण्टु २ । १४ इत्यादि के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद के वालखिल्य परिशिष्ट ३ । ७ यजुर्वेद ३ । ३५ तथा ८ । २ में भी ॥ ८ ॥

अथ नवम्याः–मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहतीछन्दः ॥

१ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३
(३०१) युङ्क्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः । अर्वा-
१ २ ३ १ ३ ३ २ ३ २ ३ १ २
चीनो मघवन्त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरागहि ॥ ९ ॥

भावार्थः–(मघवन्) परमधनवन् ! (उग्र) बलिष्ठ ! (वृत्रहन्तम) अत्यन्त पापनाशक ! (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (हि) कृपया अवश्य (हरी) हरणशील जीवात्मा और मन को (परावतः) अज्ञानवश जो आप से दूर हैं उन्हें (युङ्क्ष्व) अपने में युक्त कीजिये (अर्वाचीनः) पहिले न जाने हुवे आप (सोमपीतये) सौम्यभाव के ग्रहण के लिये (ऋष्वेभिः) महान् गुणों से (आ–गहि) प्राप्त हूजिये ॥

जो लोग परमात्मा को नहीं जानते वे उस से दूर के समान हैं । और उन्हें जब परमात्मा का ज्ञान प्राप्त होता है तो उन के लिये वह (अर्वाचीन) नवीन सा होता है ॥ ऋ० ८ । ३ । १७ में भी ॥ ९ ॥

अथ दशम्याः नृमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

२ ३ १२ २२ ३ १ २ १ २ ३
(३०२) त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन्वज्रिन्भूर्णयः । स इन्द्र
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३२ २
स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमागहि ॥ १० ॥

* इति सप्तमी दशतिः ॥ ७ ॥ *

भावार्थः–(वज्रिन्) हे दुष्टदमन ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (स्तोमवाहसः) स्तोत्र वहने वाले (भूर्णयः) भक्तिरूप हवि का धारण किये हुवे (नरः) मनुष्य (ह्यः) भूतकाल में और (इदा) वर्त्तमान काल में (त्वा) आप को (अपीप्यन्) प्रसन्न करते थे और करते हैं (सः) वह आप (इह स्वसरम्) इस दिन (उप-श्रुधि) सुनिये और (आ–गहि) हमें प्राप्त हूजिये ॥

निघण्टु १ । ९ का प्रमाण तथा ऋ० ८ । ९९ । १ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १० ॥

यह तृतीयाध्याय में सातवीं ७ दशति समाप्त हुई

प्रतीति दशतावाद्योपस्या चाऽथ ततः परम्।
द्वितीयातश्चतुर्थ्यन्तमश्विनौ देवते मते ॥१॥
अवशिष्टाः षडैन्द्र्योबृ-हतीछन्दस्सुकीर्त्तिताः ॥

अथाऽष्टमी दशतिस्तत्र प्रथमायाः-वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ १ २ ३ १
(३०३) प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३च्छन्ती दुहिता दिवः। अपो मही
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वृणुते चक्षुपा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥१॥

भाषार्थः-प्रकरण से हे इन्द्र! परमेश्वर! (आयती) आती हुई (ऊ३-च्छन्ती) अन्धकारों को हटाने वाली (दिवः) द्युलोक वा सूर्य की (दुहिता पुत्री के तुल्य बुद्धि वा उषा (चक्षुपा) ज्ञान वा दर्शन से (तमः) अज्ञान वा अन्धकार को (अप-उ-वृणुते) निवृत्त करती है। (सूनरी) मनुष्यों को सुमार्ग में लेजाने वाली (मही) बड़ी [बुद्धि वा उषा] (ज्योतिः) प्रकाश को (कृणोति) करती है (उ) निश्चय (प्रति-अदर्शि) [वह प्रतिदिन आपकी कृपासे] प्राप्त होती है ॥

सायणाचार्य और उन की देखा देखी ज्वालाप्रसाद जी ने मूलपाठ "ऊ३-च्छन्ती" होने पर भी ऋग्वेदस्थ पाठ की भ्रान्ति से "व्युच्छन्ती" की व्याख्या की है। उच्छी विवासे धातु से यह बना है ॥ प्रतिदिन जब प्रातःकाल लोग सोकर उठते हैं तो बुद्धि तथा सूर्य्य से उत्पन्न हुई उषा (अरुणोदय की वेला= प्रातःकाल) दिखाई देती है, वह अज्ञान=अन्धकार को मिटाती और प्रकाश को फैलाती है ॥ यद्यपि दिव् शब्द सूर्य का पर्य्याय नहीं है, तथापि दिव् के वाचक स्वः इत्यादि छः पद (निघं० १।४) निरुक्त २।१३ के अनुसार द्युलोक और सूर्य दोनों के साधारण नाम हैं। इसलिये वास्तव में सूर्य को द्युस्थान-देवता होने से दिव् के पर्य्यायवाचक शब्दों से और दिव् शब्द से भी सूर्य का ग्रहण अनुचित नहीं है। तथा च निरुक्त ७।५ में सूर्य को द्युस्थानदेवता कहा है। इस पर सत्यव्रत सामश्रमी जी भी टिप्पणी में स्वीकार करते हैं कि "सूर्य का दूसरा नाम प्रजापति भी है। बस सूर्य जो प्रतिदिन उषःकाल

के पीछे २ दौड़ता रहता है इसी से प्रजापति को कन्या के साथ बलात्कार का दोष लगाया गया " ॥ निघण्टु १ । ८ में सूनरी उषा का नाम है ॥ ऋ० ७ । ८१ । १ का पाठभेदादि संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः—वसिष्ठ ऋषिः । अश्विनौ देवते । बृहती छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १

(३०४) इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना । अयं

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र

वामह्वेऽवसे शचीवसू विशं विशꣳहि गच्छथः ॥२॥

भावार्थः—पूर्वमन्त्र में उषा का वर्णन करके अब सूर्य चन्द्रमा का वर्णन किया जाता है । (उस्रौ) जगत् को बसाने वालो ! (अश्विनौ) सूर्य और चन्द्रमाओ ! (दिविष्टयः) प्रकाश चाहती हुई (इमाः) ये प्रजायें (वाम् उ) तुम को ही (हवन्ते) प्राप्त करना चाहती हैं इस कारण (अयम्) यह मैं भी (वाम्) तुम को (अवसे) रक्षार्थ (अह्वे) प्राप्त करना चाहता हूं । (शचीवसू) बुद्धि और धन देने वालो ! (हि) क्योंकि तुम (विशं विशम्) प्रत्येक प्रजा को (गच्छथः) प्राप्त होते हो ॥

पृथिवी आदि ८ वसुओं के अन्तर्गत होने से सूर्य और चन्द्रमा भी वसु—बसाने वाले हैं, प्रजा को ज्योति और रस से व्यापते हैं इस लिये निरुक्तानुसार अश्विनौ कहाते हैं । प्रकाश द्वारा प्रजा की बुद्धि और धन की वृद्धि करने से निघण्टु के अनुसार शचीवसू कहाते हैं । ऐसे सूर्य और चन्द्र को प्रकाशार्थिनी प्रजायें नित्य चाहती हैं । इस कारण प्रत्येक मनुष्य को प्राप्त होते हुवे सूर्य चन्द्रमाओं से उपकार लेना चाहिये ॥ उणादि २ । १३ निरुक्त १२ । १ निघण्टु ३ । ९ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ७ । ७४ । १ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः—अश्विनौ वैवस्वतावृषी । अश्विनौ देवते । बृहती छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ १२३ १ २ ३ १ २ ३ १र

(३०५) कुष्ठः को वामश्विना तपानो देवा मर्त्यः । घ्नता वामश्नया

२र ३ २ ३ १ ३ २ ३ १ २

क्षपमाणोꣳशुनेत्थमु आद्वन्यथा ॥ ३ ॥

भावार्थः-(अश्विना) अश्विनौ ! सूर्य और चन्द्रमाओ ! (देवा) देवो ! प्रकाश को ! (कुष्ठः) पृथिवी पर स्थित (कः) कौन (मर्त्यः) मनुष्य (वाम्) तुम को (तपानः) प्रकाशित करने वाला है ? कोई नहीं । किन्तु तुम ही सब से प्रकाशक हो । (वाम्) तुम दोनों के लिये (अश्नया) मेघों में (घ्नता) जाते हुये (अंशुना) सोमादि ओषधिरस से (क्षयमाणः) क्षीण हुवा यजमान (यथा) जैसे कि (आद्रन्) कोई भोगी समृद्ध पुरुष होता है (इत्थम् उ) ऐसे ही होता है ॥

अर्थात् सूर्य और चन्द्रमा को यद्यपि कौन है पृथिवी पर जो प्रकाश पहुंचा सके, किन्तु सूर्य चन्द्र ही सब को प्रकाशित करते हैं, तथापि मनुष्य को सूर्य चन्द्र के लिये मेघमण्डल में होकर जाते हुवे सोमादि ओषधियों के रस द्वारा आप्यायित करना चाहिये । जिस से सब के धन धान्यादि की वृद्धि हो ॥

निघण्टु १ । १० अष्टाध्यायी ७ । १ । ३९ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः-प्रस्कण्व ऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

३ २ ३ ३ २   ३ २उ   ३ १ २   १ २
(३०६) अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोमो दिविष्टिषु । तमश्विना
३ १ २   ३ १२   २२   ३   १ २
पिबतं तिरोअह्न्यं धत्तꣳरत्नानि दाशुषे ॥ ४ ॥

भावार्थः-(अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा ! (वाम्) तुम्हारे लिये (दिविष्टिषु) यज्ञों में (अयम्) यह (मधुमत्तमः) अतिमधुर (सोमः) ओषधि विशेष का रस (सुतः) खींचा है (तम्) उस (तिरोअह्न्यम्) एक दिन बीते [रस] को (पिबतम्) ग्रहण करो और (दाशुषे) हवि देने वाले यजमान के लिये (रत्नानि) रमणीय पदार्थ (धत्तम्) धारण करो ॥

अर्थात् जो मनुष्य ओषधियों का उत्तम मधुर एक दिन पुराना रस खींच कर सूर्य चन्द्रमा वा उन के दृष्टान्त से बताये हुवे सभापति और सेनापति का यजन करते हैं उन को धनधान्यादि उत्तम रत्न प्राप्त होते हैं ॥ अध्याय ३ के आरम्भ में सायणाचार्य ने इस मन्त्र का इन्द्रदेवता अशुद्ध लिखा था, परन्तु यहां व्याख्या करते हुवे भाष्य में अश्विनौ देवते व्याख्यात किये हैं जो कि ठीक भी हैं ॥ ऋग्वेद १ । ४७ । १ में "सुतः सोमऋतावृधा" इतना अन्तर है ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः—मेधातिथिमेध्यातिथीऋषी । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २
(३०७) आ त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं ज्या । भूर्णिं

३ १र २र ३ १र २र ३ १ १
मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत् ॥५॥

भावार्थः—प्रकरण में हे इन्द्र ! परमेश्वर ! (सवनेषु) यज्ञ के भवनों में (सोमस्य) सोमादि ओषधियों के (गल्दया) गालन के साथ तथा (ज्या) जयशील स्तुति के साथ (सदा) सर्वदा (त्वा) आप से (आ-याचन्) सब प्रकार प्रार्थना करता हुआ (अहम्) मैं यज्ञकर्त्ता दीक्षित [मृगम्] मृगादि किसी प्राणी पर (न चुक्रुधम्) क्रोध न करूँ। (भूर्णिम्) पोषण करने वाले (ईशानम्) स्वामी से (कः) कौन (न) नहीं (याचिषत्) मांगे। अर्थात् सब ही स्वामी से याचना करते हैं ॥

अर्थात् यज्ञ में दीक्षित यजमान को किसी प्राणी पर क्रोध न करना चाहिये। तथा परमात्मा की सर्वदा प्रार्थना करनी चाहिये ॥

ऋग्वेद ८।१।२० के पूर्वार्ध का पाठभेद और निरुक्त ६।२४ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥५॥

अथ षष्ठ्याः—देवातिथिर्ऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ १ २
(३०८) अध्वर्यो द्रावया त्वꣳ सोममिन्द्रः पिपासति । उपो-

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ॥६॥

भावार्थः—अब यजमान अध्वर्यु से कहता है कि—(अध्वर्यो) यज्ञ में आहुत्यादि का ठीक करने वाला ऋत्विज् अध्वर्यु कहता है। हे अध्वर्यो! (त्वम्) तू (सोमम्) सोमरस को (द्रावय) गीला कर (इन्द्रः) सूर्य (पिपासति) पीना चहता है। (च) तथा (वृषणा) वर्षाने वाली (हरी) तिरछी सीधी दो प्रकार की किरणों को (उप-युयुजे) उपयोग में लाता है (च) और (आ-जगाम) प्राप्त होता है [किरण द्वारा] ॥

वृत्रहा का अर्थ मेघहन्ता ही विवरणकार के मत से सत्यव्रतसामश्रमी जी ने भी टिप्पणी में किया है ॥ ऋ० ८।४।११ में "उपनूनम्" ऐसा पाठ है ॥६॥

अथ सप्तम्याः-वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २

(३०९) अभीषतस्तदाभरेन्द्र ज्यायः कनीयसः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पुरूवसुर्हि मघवन्बभूविथ भरे भरे च हव्यः ॥७॥

भावार्थः-(मघवन्) हे परमधन ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (ज्यायः) हे अत्यन्त बड़े ! (कनीयसः) अत्यन्त छोटे (अभीषतः) सब ओर से चाहने वाले जीव के (तत्) उस इष्ट को (आभर) सिद्ध करो (हि) क्योंकि आप (पुरूवसुः) बहुत धन वाले (बभूविथ) हैं (च) और (भरे, भरे) प्रति-विपत् काल में (हव्यः) पुकारने योग्य हैं ॥

निघण्टु २ । १७ अष्टाध्यायी ८ । १ । ७२ ॥ ३ । १ । ८५ के प्रमाण और ऋ० ७ । ३२ । २४ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ७ ॥

अथाऽष्टम्याः-ऋष्याद्याः पूर्ववत् ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३१र २र ३ २ ३

(३१०) यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय । स्तोतार-

१ २ ३ १ २ ३ १ २

मिद्दधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम् ॥८॥

भावार्थः-(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यत्) जिस कारण (त्वम्) आप (यावतः) जितना वस्तुमात्र है उसके [स्वामी हैं इस कारण आपकी कृपा से] (अहम्) मैं (एतावत्) इतने धन का (ईशीय) स्वामी होऊं जितने से (स्तोतारम्) धर्मात्मा का (दधिषे इत्) धारण पोषण करूं ही और (रदावसो) हे धनप्रद ! (पापत्वाय) पाप होने के लिये (न) नहीं (रंसिषम्) दूं ॥

ऋ० ७ । ३२ । १८ में तो " दधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय " ऐसा पाठ है ॥ ८ ॥

अथ नवम्याः-नृमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १

(३११) त्वमिन्द्र प्रतूर्त्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः । अशस्तिहा

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥ ९ ॥

भाषार्थः-(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (प्रतूर्तिषु) कामादिशत्रुसंग्रामों में (विश्वाः) सब (स्पृधः) शत्रुसेनाओं को (त्वम्) आप (अभि-असि) तिरस्कृत करने वाले हैं। (त्वम्) आप ही (जनिता) उत्पादक और (वृत्रतूः) पापनाशक तथा (अशस्तिहा) अकीर्ति के नाशयिता (असि) हैं। अतः (तरुष्यतः) हिंसकों का (तूर्व) नाश कीजिये ॥

निघण्टु २ । १७ निरुक्त ५ । २ इत्यादि के प्रमाण और ऋ० ८ । ९९ । ५ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ९ ॥

अथ दशम्याः-नोधाऋषिः । इन्द्रोदेवता । बृहती छन्दः ॥

१र २र ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २ १ २ ३

(३१२)प्रयो रिरिक्ष ओजसा दिवःसदोभ्यस्परि।न त्वा विव्याच

१ २ ३ १ २३ २ ३ १ २

रज इन्द्र पार्थिवमति विश्वं ववक्षिथ ॥ १० ॥

* इत्यष्टमी दशतिः ॥ ८ ॥ *

इति बार्हतमैन्द्रम् ॥

भावार्थः-(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यः) जो आप (ओजसा) बल से (दिवः) द्युलोक के (सदोभ्यः) स्थान (परि) पर्यन्तों से (प्र-रिरिक्षे) अत्यन्त अधिक हैं (त्वा) उन आप को (पार्थिवम्) पृथिवी का (रजः) रज (न) नहीं (विव्याच) व्यापता । अर्थात् द्युलोक और पृथिवी लोक को उल्लङ्घन करके आप वर्त्तमान हैं। इस लिये हम को (विश्वम्) संसार के (अति) पार करके। (ववक्षिथ) लंघाने की इच्छा कीजिये। मुक्ति दीजिये ॥

अष्टाध्यायी २ । ४ । ७६ इत्यादि के प्रमाण और ऋ० ८।८८ । ५ का पाठ संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ १० ॥

* यह तृतीयाध्याय में आठवीं ८ दशति समाप्त हुई *

और

इन्द्रदेवता के बृहती छन्दों का प्रकरण भी

समाप्त हुआ ॥

असावीतीन्द्रदैवत्या त्रिष्टुभो दशती दश ॥ १ ॥

अथ नवमी दशतिस्तत्र

प्रथमायाः-वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १२ २र ३ २ क २र ३ १ २ ३ १ २
(३१३)असावि देवं गोऋजीकमन्धो न्यस्मिन्निन्द्रो जनुषेमुवोच
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधा नः स्तोममन्धसो मदेषु ॥

भावार्थः-(गोऋजीकम्) गोदुग्धादि मिला हुवा (अन्धः) अन्नमात्र (असावि) हम ने उत्पन्न किया है (अस्मिन्) इस अन्न में (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (जनुषा) जन्म से (ईम्) "यह" ऐसा (नि-उवोच) निरन्तर रुचिपूर्वक कहता है । (हर्यश्व) हे दिव्य विद्युत् आदि अश्वों वाले! (यज्ञैः) सुकर्मों से (त्वा) तुझ (देवम्) राजा को (बोधामसि) हम बोध कराते हैं और आप भी (अन्धसः) अन्नमात्र के (मदेषु) आनन्दों के निमित्त (नः) हमारे (स्तोमम्) यथार्थ प्रशंसावचन को (बोध) सुनकर स्वीकार कीजिये ॥

प्रजा को चाहिये कि उत्तम २ धान्यादि पदार्थ उत्पन्न करके राजा के अर्पण करे, राजा जन्म से ही ऐसे पदार्थों की अभिरुचि रखता है । और दिव्ययानों वाला राजा सुकर्मियों की रक्षा करता है । जिस से उत्तमधान्यादि द्वारा जगत् को हर्ष लाभ हो ॥ ऋ० ७ । २१ । १ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः-वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ २र ३ १ २
(३१४)योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्रयाहि ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
असो यथा नोविता वृधश्चिद्दो वसूनि ममदश्च सोमैः ॥२॥

भावार्थः-(इन्द्र) हे राजन् ! (सदने) आपके विराजने के निमित्त (ते) आप का (योनिः) राजसिंहासन (अकारि) हमने बनाया है । (पुरुहूत) हे बहुतों से पुकारे हुवे ! (तम्) उस सिंहासन पर (नृभिः) मन्त्रियों सहित (आप्र-याहि) विराजिये (यथा) जिस से कि (नः) हमारे (अविता) रक्षक (चित्) और (वृधः) वर्धक (असः) हूजिये । (वसूनि) विद्या और

रत्नादि धन (ददः) दीजिये (च) और (सोमैः) सोमादि ओषधियों के रसों से (ममदः) हृष्ट हूजिये ॥

ऋ० ७ । २४ । ९ में "वृधे च" पाठ है ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः-गातुर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ १ ३ १ २ ३ १ २

(३१५) अदर्दरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान्बद्बधानाँ अरम्णाः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १उ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २

महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः सृजद्धारा अव यद्दानवान्हन् ॥३॥

भावार्थः-(इन्द्र) सूर्य ! (त्वम्) तू (यत्) जब (उत्सम्) गीले मेघ को (अदर्दः) विदीर्ण करता है (खानि) मेघों में शून्याकाशों को (वि-असृजः) रच देता है (अर्णवान्) जल वाले समुद्रों को (बद्बधानान्) स्थिर जल वाले (अरम्णाः) बनाता है (यत्) और जब (दानवान्) जलदायक (वः) उन मेघों को (हन्) नष्ट करता है और उन से (धाराः) जलप्रवाहों को (अव सृजत्) वर्षाता है । तब (महान्तम्) बड़े (पर्वतम्) पर्वत से को (वि) विनष्ट करता है ॥

इस में भी सूर्य के दृष्टान्त से राजकार्यों का उपदेश है कि-जिस प्रकार सूर्य मेघ को विदीर्ण करता है, ऐसे ही राजा शत्रुदलरूप जलाशयों को । जैसे सूर्य मेघ का नाश करके आकाश को ख़ाली कर देता है, ऐसे ही राजा शत्रु दल को नष्ट करके आकाश (मैदान) करदे । जैसे सूर्य मेघ के जलों से नदियां बहा कर स्थिर जल वाले समुद्र को भरता है, ऐसे राजा शत्रुओं के धनों से स्थिर निधि (कोष) भरे । जैसे सूर्य मेघों से जलधारा बहता है, ऐसे राजा शत्रुशिरों से रक्तधारा । और जैसे सूर्य इस सब से पर्वताकार मेघमण्डल का नाश करता है, इसी प्रकार राजा भी शत्रु के पर्वताकार दुर्गों (क़िलों) को तोड़े ॥

निघण्टु १।१३ और निरुक्त १०।९ तथा ऋ० ५।३२।१ का पाठभेदादि संस्कृत-भाष्य में देखिये ॥३॥

अथ चतुर्थ्याः-पृथीवैन्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३

(३१६) सुषवाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा सनिष्यन्तश्चित्तुविनृम्ण

१ २ १ २ ३ १ २२ ३ २उ ३ १ २
वाजम् । आ नो भर सुवितं यस्य कोना तना त्मना
३ १ २
सह्यामा त्वोताः ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे राजन्! (सुष्वाणासः) सोमादि को उत्पन्न करते हुवे (चित्) और (वाजम्) धान्यादि का (सनिष्यन्तः) न्यायपूर्वक विभाग करते हुवे हम (त्वा) आप की (स्तुमसि) स्तुति करते हैं। (तुविनृम्णा) हे बहुबल! वा बहुधन! (त्वोताः) आप से रक्षा किये हुवे हम (यस्य) जिस धनादि की (कोना) कामना करें उस (सुवितम्) प्राप्त करने योग्य धनादि को (नः) हमारे लिये (आभर) प्राप्त कराइये। (तना) विस्तृत धनों को (त्मना) आपने ही द्वारा हम (सह्याम) आप की कृपा से पावें॥

खेती, वाड़ी, धन, धान्यादि सब पदार्थों की रक्षापूर्वक उत्पत्ति और न्यायपूर्वक विभाग, राजा ही के होते हुवे होता है। अन्यथा परस्पर भक्ष्य भक्षक बन कर नष्ट हो जावें। इस लिये मनुष्यों को न्यायकारी राजा की इच्छा करनी चाहिये॥

अष्टाध्यायी ६। ४। १४१ सायणाचार्य। निघण्टु २। १० और ऋग्वेद १०। १४८। १ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ४॥

अथ पञ्चम्याः—सप्तगुर्ऋषिः। इन्द्रोदेवता। त्रिष्टुप्छन्दः॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १
(३१७) जगृह्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसूपते वसू-
२ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
नाम्। विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनामस्मभ्यं
२ ३ १२ २ ३ १ २
चित्रं वृषणं रयिं दाः॥ ५॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे राजन्! (वसूनाम्) धनों के (वसुपते) धनपते! (वसूयवः) धन चाहने वाले हम (ते) आप के (दक्षिणम्) दाहिने वा चतुर (हस्तम्) हाथ को (जगृह्म) पकड़ते हैं और (त्वाम्) आप को (गोनाम्) पृथिव्यादिकों का (गोपतिम्) स्वामी (विद्मः) जानते हैं। (शूर) हे वीर! (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (चित्रम्) अनेक प्रकार का (वृषणम्) कामना-पूरक (रयिम्) धन (दाः) दीजिये॥

यहां हाथ पकड़ने का तात्पर्य सहारा लेना है ॥ ऋग्वेद १० । ४७ । १ में "गृभ्णा" पाठ है ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ्याः–वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ १२ ३ १ २ ३ १र २ २र ३ १ २ ३ २ ३ २
(३१८) इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २३ १र ३र ३ १ २ ३ १ २
शूरो नृषाता श्रवसश्चकाम आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥६॥

भावार्थः-(यत्) जब (नरः) मनुष्य (नेमधिता) संग्राम में (इन्द्रम्) राजा का (हवन्ते) आश्रय करते हैं तब (ताः) उन प्रसिद्ध (पार्य्याः) पार लगाने वाले (धियः) कामों को (युनजते) ठीक २ करते हैं । वह इन्द्र (शूरः) वीर (नृषाता) मनुष्यों को यथास्थान विभागपूर्वक खड़ा करने वाला है । वैसे हे राजन् ! (त्वम्) तू (नः) हम को (श्रवसः) यश के (चकामे) चाहने वाले (गोमति) गवादिपशुयुक्त व्रजे) खरक निमित्त (आ भज) सत्कारपूर्वक रख ॥

साधारण योद्धा लोग संग्रामों में राजा के आश्रय रहते हैं । उसी की आज्ञानुसार युद्धकौशल दिखाते हैं । वह उन का नायक और यथास्थान-विभागपूर्वक खड़ा करने वाला है । उस को यश की इच्छा करते हुए उचित है कि गवादिपशुयुक्त प्रजावर्ग के सुखार्थ अपने वीर योद्धों को सत्कार-पूर्वक रक्खे ॥

निघण्टु २ । १७ ॥ २ । १ अष्टाध्यायी ३ । १ । ८९ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ७ । २७ । १ में "चकाने" ऐसा पाठ है ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः–गौरिवीत ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(३१९) वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाध-

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ २ ३ २
माना । अप ध्वान्त मूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्यस्मा-

३ १ २ ३ २
न्निधयेव बद्धान् ॥ ७ ॥

भावार्थः-(वयः) पक्षितुल्य (सुपर्णाः) सूर्यकिरण (इन्द्रम्) सूर्य्य को (उप-सेदुः) जैसे आश्रय करती हैं । वैसे ही (प्रियमेधाः) यज्ञादि कर्म जिन्हें

प्यारा है वे (ऋषयः) ऋषि लोग इन्द्र अर्थात् राजा को (नाधमानाः) याचना करते हैं कि (ध्वान्तम्) अन्धकार अन्याय को (अप ऊर्णुहि) दूर कीजिये (चक्षुः पूर्धि) न्याय प्रकाश कीजिये (निधयेव) जैसे पाश समूह से (बद्धान्) बन्ध हुवे (अस्मान्) हम को (मुमुग्धि) छुड़ाइये ॥

ईश्वर पक्ष में -(वयः) गतिशील वाले (सुपर्णाः) जीवात्मा पक्षी (प्रियमेधाः) जिन्हें यज्ञ प्यारा है वे (ऋषयः) ऋषि (इन्द्रम्) परमेश्वर को (नाधमानाः) प्रार्थना करते हुवे (उप-सेदुः) आश्रित होते हैं कि–(ध्वान्तम्) अज्ञानान्धकार को (अप–ऊर्णुहि) दूर कीजिये और (चक्षुः पूर्धि) ज्ञान का प्रकाश कीजिये (निधयेव) जैसे फांसियों के समूह से (बद्धान्) बन्धों को तद्वत् मोहबद्ध (अस्मान्) हम को (मुमुग्धि) मुक्त कीजिये ॥

निरुक्त ४ । २ ॥ ४ । ३ निघण्टु ३ । १३ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद १० । ७३ । ११ में भी ॥ ७ ॥

अथाऽष्टम्याः-वेनो भार्गव ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३२३ ३ १२ ३२ ३ १२ ३२ ३ १ २
(३२०) नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तꣳ हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
त्वा । हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं

२ ३ २
भुरण्युम् ॥ ८ ॥

भावार्थः–इन्द्र । हे राजन् । (यत्) जिस प्रकार से (नाके) द्युलोक में (पतन्तम्) प्रकाश गिराते हुवे (सुपर्णम्) शोभन पतन वाले (हिरण्यपक्षम्) ज्योतिर्मय जिस के पंख हैं उस (वरुणस्य) वृष्टिकारक वायु के (दूतम्) लाने वाले (यमस्य) विद्युत्संबन्धी शक्ति के (योनौ) स्थान में वर्त्तमान (शकुनम्) पक्षी के तुल्य आकाश में ठहर सकने वाले (भुरण्युम्) शीघ्रगामी सूर्य को (हृदा) हृदय से (वेनन्तः) चाहते हुवे लोग (अभ्यचक्षत) सब ओर से देखते हैं (त्वा) आप को भी ऐसे ही देखते हैं ॥

निघण्टु १ । ४ ॥ २ । ६ ॥ २ । १५ ॥ निरुक्त २ । १३ ॥ १० ३ ॥ १० । २० ॥ ९ । २ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० १० । १२३ । ६ में भी ॥ ८ ॥

अथ नवम्याः बृहस्पतिर्नकुलो वा ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
(३२१) ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन
२ क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ ३
आवः । सबुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च
२ ३ १ २ ३ १ २
योनिमसतश्च विवः ॥ ॥ ९ ॥

भाषार्थः-हे इन्द्र ! राजन् ! (वेनः) परमेश्वर ने (पुरस्तात्) सृष्टि के आरम्भ में (प्रथमम्) प्रथम (जज्ञानम्) उत्पन्न हुवे (ब्रह्म) बड़े सूर्यमण्डल को (वि-आवः) विस्तृत किया है (सः) उसी मेधावी ने (बुध्न्याः) बुध्न अन्तरिक्ष वा मूल में उत्पन्न हुईं (अस्य) इस सूर्यमण्डल की (उपमाः) समीप आवने योग्य (विष्ठाः) अपनी २ विशेषता से स्थित (सीमतः) सीमा=छोर से (सुरुचः) अच्छी चमकीली अन्यभूमियों को विवृत किया । इस प्रकार (सतः) वर्त्तमान (च) और (असतः) भविष्यत् (च) और भूतों के (योनिम्) गर्भ सूर्यमण्डल को (विवः) विवृत किया है ॥

अर्थात् जैसे सृष्टि में सूर्यमण्डल अपने समीपस्थ गोलों का धारण तीन काल में करता है इसी प्रकार राजा ॥

निघंटु ३ । १५ निरुक्त ९ । ३८ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ अथर्ववेद ५ । ४ । १ में भी ॥ ९ ॥

अथ दशम्याः सुहोत्र ऋषिः । इन्द्रोदेवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(३२२) अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचांᳩस्यस्मै
१ २
स्थविराय तक्षुः ॥ १० ॥

* इति नवमी दशतिः ॥ ९ ॥

भाषार्थः-(अस्मै) इस प्रत्यक्ष (महे, वीराय) बड़े वीर (तवसे) बलवान् (तुराय) फुरतीले (विरप्शिने) अत्यन्त बड़े (वज्रिणे) शस्त्रास्त्र

धारी (रथविराय) वृद्ध अनुभवी (अस्मै) इस राजा के लिये (अपूर्व्या) जिन से पूर्व कोई न हों उन (पुरुतमानि) बहुत (शन्तमानि) सुखकारी (वचांसि) वचनों को (तक्षुः) कहें ॥

निघण्टु २ । ९ ॥ ३ । ३ इत्यादि के प्रमाण और ऋ० ६ । ३२ । १ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ १० ॥

* यह तृतीयाऽध्याय में नवमी ९ दशति समाप्त हुई *

——=*:०:*=——

अव द्रप्सेति चेन्द्रस्य त्रिष्टुभोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः ॥
षष्ठी विराट् त्रिपादुक्ता इत्थं नव ऋचः स्मृताः ॥१॥

अथ दशमी दशति-

तत्र प्रथमायाः-द्युतान ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ २ ३ २ ३ १ २
(३२३) अव द्रप्सो अꣳशुमतीमतिष्ठदीयानः कृष्णो दशभिः
३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सहस्रैः । आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नीहितिं
३ १ २ ३ २
नृमणा अध द्राः ॥ १ ॥

भावार्थः-यदि (कृष्णः) तामसी (द्रप्सः) सामने से भागा शत्रु (अंशुमतीम्) नदी आदि के शरण में (अव अतिष्ठत्) ठहरे तो (दशभिःसहस्रैः) बहुत बलों सहित और (शच्या) बुद्धि वा पुरुषार्थ से (ईयानः) प्राप्त (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् न्यायी राजा (तम्) उस मुख्य शत्रु को (धमन्तम्) श्वास लेते-जीवते को (आवत्) बचावे (अध) और (नृमणाः) मनुष्यमात्र में मन से प्रेम रखने वाला (स्नीहितिम्) दुष्ट हिंसक सेना को (अप, द्राः) भगावे वा नष्ट करे ॥

न्यायकारी राजा को चाहिये कि मनुष्य मात्र में मन रक्खे और जो तमोगुणी शत्रु हों उन्हें नदी समुद्रादि के पार भाग जाने पर भी बहुत से सेना बल और बुद्धि बल से जीवों को निग्रह कर के रक्खे और उन के साथी सामान्य दुष्ट मनुष्यों को दूर वा नष्ट करे ॥

अष्टाध्यायी ६ । ३ । १०९ निघण्टु २ । १ ॥ २ । १९ ॥ ३ । ९ के प्रमाण

और ऋ० ८ । ९६ । १३ के पाठभेद को संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः ऋष्याद्याः पूर्ववत् ॥

१ १ २   ३ २ ३ १   २ ३   १ २ ३ १ २ ३ १ २
(३२४) वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये
२र   ३ १ २   ३ १ २ ३   २ ३ २उ   ३
सखायः । मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वाः
१ २
पृतना जयासि ॥ २ ॥

भावार्थः-(इन्द्र) हे राजन् ! (ये) जो (विश्वे) सब (देवाः) सज्जन (सखायः) मित्र वीरपुरुष (वृत्रस्य) आवरोधक शत्रु के (श्वसथात्) प्राण वा बल से (ईषमाणाः) मरते हुये (त्वा) आप को (अजहुः) प्राण छूटने से त्याग दें उन (मरुद्भिः) आप के लिये मरने वालों के साथ (ते) आप की (सख्यम्) मित्रता [मलूक] (अस्तु) होनी चाहिये (अथ) इस से (विश्वाः) सब (पृतनाः) संग्रामों को (जयासि) जीतिये ॥

जो शूर वीर राजा के मित्र संग्राम में मारे जावें उन के और उन के कुटुम्बियों के साथ राजा को मित्रता निबाहनी चाहिये । ऐसा करने वाले राजा का विजय होता है ॥

निघण्टु २ । ३ ॥ २ । १७ इत्यादि के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ऋ० ८ । ९६ । ७ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः-बृहदुक्थ ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २ ३ १र   २र   ३ १र   २र ३   १ २   ३ २ २
(३२५) विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार
३ १ २   ३ १ २   ३ २उ   ३ २ ३ १र   २र
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥ ३ ॥

भावार्थः-और फिर मित्रों को मरवा कर विजय से क्या लाभ है? इस के उत्तर में कहते हैं कि-हे राजन् ! (दद्राणम्) शीघ्रगामी (बहूनाम्) बहुत तारों के बीच में (युवानम्) जवान नवीन वा अधिक तेजो धारी (सन्तम्) वर्त्तमान चन्द्रमा को (पलितः) बूढा सूर्य (जगार) निगल जाता है उस के ऊपर के प्रकाश को अपने में संहार कर लेता है इसी

प्रकार (समने) संग्राम में (यः) जो (ह्यः) कल (ममार) मरा है (सः) वह (अद्य) आज (समान) भले प्रकार जीता है। (देवस्य) परमेश्वर के (काव्यम्) चातुर्य को (महत्वा) गहरे भाव से (पश्य) देख॥

अर्थात धर्मानुसार युद्ध में मरे हुवों का शोक नहीं करना। परमेश्वर की लीला को देखो कि बड़ाबूढ़ा सूर्य, जवान (छोटे) शीघ्रगामी चन्द्रमा के प्रकाश को निगल जाता है, अगले दिन फिर उस की कला पूरी हो जाती हैं। इसी प्रकार जो शूरवीर आज मृत्यु को प्राप्त हुवे हैं वे कल जन्मान्तर धारण करके अपने किये धर्म का उत्तम फल भोगेंगे। इन का शोक न करना चाहिये॥

निरुक्त परिशिष्ट २१।२८ में इस का यह अर्थ लिखा है कि—"विधमन शील और दमनशील चन्द्रमा को बूढा सूर्य्य निगलता है। वह कल मरा आज फिर उग आता है। यह अधिदैवत हुवा, अब अध्यात्म सुनिये—विधमनशील और दमनशील युवा महत्तत्व को बूढा आत्मा निगल जाता है। यह रात्रि में मर जाता और अगले दिन फिर जाग उठता है। यह आध्यात्मिक अर्थ है"

इस निरुक्त के परिशिष्ट की शैली स्पष्ट नवीन प्रतीत होती है॥

निघं० २।१७॥३। १५ इत्यादि के प्रमाणसंस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऋ० १०।५५।५ में भी॥३॥

अथ चतुर्थ्याः—द्युतान ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३

(३२८) त्व ँ ह त्यत्सप्तभ्यो जायमानो शत्रुभ्योऽअभवः

१ २ ३१२ २२ ३ १२ २२ ३

शत्रुरिन्द्रः। गूढे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभु-

२ ३ १२ ३ १२

मद्भ्यो भुवनेभ्योरणंधाः॥ ४॥

भावार्थः—(इन्द्र) हे राजन्! (त्वम्) तू (ह) निश्चय (त्यत्) इस कारण (जायमानः) प्रसिद्ध हुआ (सप्तभ्यः) एक दिशा में अपने रहने से शेष ७ दिशाओं के ७ (अशत्रुभ्यः) तेरा नाश न करने वाले विद्वेषियों के लिये (शत्रुः) उन का नाशक (अभवः) होवे (गूढे) छिपे

(द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी के स्थानों को (आन्वविन्दः) प्राप्त होवे और (विभुमद्भ्यः) ऐश्वर्यशाली (भुवनेभ्यः) देशों के लिये [उन की रक्षा और पालनार्थ] (रणम्) संग्राम को (धाः) धारण करे ॥

ऋ० ८। ९६। १३ में भी ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः-वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

(३२७) मेडिं न त्वा वज्रिणं भृष्टिमन्तं पुरुधस्मानं वृषभं

३ १ २ ३ २र ३ १ २ ३ १र २र ३ १

स्थिरप्स्नुम् । करोष्यर्यस्तरुषीर्दुवस्युरिन्द्र द्युक्षं

२ ३ १ २

वृत्रहणं गृणीषे ॥ ५ ॥

भावार्थः-(इन्द्र) हे राजन् ! आप (अर्यः) स्वामी (तरुषीः) हिंसक शत्रुसेनाओं को (करोषि) [नष्ट] करते हैं अतः (वज्रिणम्) वज्रधारी (भृष्टिमन्तम्) शत्रुओं के भूनने की तोपों वाले (पुरुधस्मानम्) बहुत धुवां धार नाश करने वाले (वृषभम्) कामना के पूरक (स्थिरप्स्नुम्) स्थिर रूप (द्युक्षम्) न्यायप्रकाश में स्थित (वृत्रहणम्) शत्रुहन्ता (त्वा) आप को (दुवस्युः) शुश्रूषा करना चाहने वाला मैं (मेडिं न) वेदवाणी के समान (गृणीषे) प्रशंसित करता हूं ॥

निघण्टु १। ११ ॥ ३। १ ॥ ५। २ ॥ ३ । ५ ॥ अष्टाध्यायी ३। १। १०३ इत्यादि के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ्याः-वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिपदा विराट् छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(३२८) प्र वो महे महे वृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।

१ २ ३ १र २र ३ २

विशः पूर्वीः प्रचर चर्षणिप्राः ॥ ६ ॥

भावार्थः-हे मनुष्यो ! (वः) तुम्हारे (महे वृधे) बड़े वर्धन (महे) सत्कारयोग्य (प्रचेतसे) बुद्धिमान् राजा के लिये तुम (प्र भरध्वम्) कर भरो और (सुमतिम्) अनुकूलता (प्र कृणुध्वम्) करो । हे राजन् ! (चर्षणिप्राः) मनुष्यों के पालक तुम (पूर्वीः) सनातनी (विशः) प्रजाओं को (प्रचर)

अनुकूल रक्खो ॥ ऋ० ७।३१।१० में "महि वृधे" और "प्रचरा" ऐसा पाठ है ॥६॥

अथ सप्तम्याः विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ ३ १ २ ३

(३२९) शुन ँ हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३

वाजसातौ । शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृ-

१ २ ३ २ ३ १ २

त्राणि संजितं धनानि ॥७॥

भावार्थः— हम प्रजायें (शुनम्) सुखदायी (मघवानम्) धनवान् (नृतमम्) मनुष्यों में उत्तम (अस्मिन्, भरे, वाजसातौ, शृण्वन्तम्) इस जयलक्ष्मी भरने के, संग्राम में, सुनने वाले (उग्रम्) शत्रुनाशक (समत्सु वृत्राणि घ्नन्तम्) संग्रामों में शत्रुसेनाओं को मारने वाले (धनानि संजितम्) धनों के जीतने वाले (इन्द्रम्) राजा को (ऊतये) रक्षा के लिये (हुवेम) आह्वान करती हैं ॥

निघण्टु ३। ६ ॥ २। १७ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ३। ३०। में २२ "धनानाम्" पाठ है ॥७॥

अथाष्टम्याः—वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(३३०) उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं ँ समर्ये महया वसिष्ठ ।

१ २ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३

आ यो विश्वानि श्रवसा ततानोपश्रोता म ईवतो

१ २

वचा ँ सि ॥ ८ ॥

भावार्थः—(वसिष्ठ) हे अति श्रेष्ठ मनुष्य ! तू (मे) मुझ (ईवतः) व्यापक परमेश्वर के (ब्रह्माणि) वेदोक्त (श्रवस्या) धन, धान्यादि के लिये हितकारी (वचांसि) वचनों को (आ-उप-श्रोता) श्रद्धा से सुन (उ) तथा (यः) जो (श्रवसा) धन धान्यादि से (विश्वानि) सब जगतों को (ततान) विस्तृत करता है उस (इन्द्रम्) राजा को (समर्ये) संग्राम निमित्त (उत् ऐरत) उच्चप्रभावशाली कर (महय) और सत्कृत कर ॥

निघण्टु २।७॥२।९॥२।१७॥ २। १८ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ७।२३।१ में "शवसा" यह पाठ है ॥८॥

अथ नवम्याः-गौरिवीतिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः॥

३ १र २र ३ १र २र ३ १र २र ३ १र २र

(३३१) चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तमुतो तदस्मै मध्विच्चच्छद्यात्।

३ १र २र ३ २र ३ २ ३ १र २र ३ १ २

पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्वदधा ओषधीषु॥९॥

इति दशमी दशतिः ॥ १० ॥

भावार्थः (यत्) जो (अस्य) इस राजा का (चक्रम्) आज्ञा रूपी चक्र (अप्सु) नदी आदि जलाशयों पर (निषत्तम्) स्थित हो (उतो) तो (तत्) वह चक्र (अस्मै) इस राजा के लिये (मधु इत्) जल को भी (चच्छद्यात्) सब ओर छाय दे किन्तु-(पृथिव्याम्) पृथिवी पर (अतिषितम्) छोड़ा हुआ (यत्) जो (ऊधः) बहने वाला जल [नहर आदि द्वारा] (गोषु) गवादि पशुओं और (ओषधीषु) गेहूं आदि ओषधियों में (पयः) रस का (आ-अदधाः) आधान करे ॥

यदि राजा का राज्य जलाशयों पर हो तो नहर आदि निकाल कर, पशु और कृषि की बड़ी उन्नति हो ॥

निघण्टु १।१२ उणादि ४।१९९ सायणाचार्यादि के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० १०।७३।९ में भी ॥ ९ ॥

* यह तृतीयाध्याय में दशवीं दशति समाप्त हुई ॥१०॥ *

———:०*०:———

त्यमूषु तार्क्ष्यदैवत्या अष्टम्या इन्द्रपर्वतौ।

सप्तम्याश्च तथेन्द्रस्य त्रिष्टुभोऽष्टौ दशस्मृताः ॥१॥

अथैकादशी दशतिस्तत्र

प्रथमायाः-अरिष्टनेमिस्तार्क्ष्यपुत्र ऋषिः। तार्क्ष्यो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः॥

३ १२ ३ १२ ३१२ ३१२ २ ३२३
(३३२) त्यमूषु वाजिनं देवजूतꣳ सहोवानं तरुतारꣳ
१२ १२ ३१ २३२ ३२३
रथानाम् । अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुꣳस्वस्तये
१ २३ १ २-
तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥ १ ॥

भावार्थः-(त्यम् उ) उस ही (वाजिनम्) धान्यादि के दाता (देवजूतम्) देवतों से प्रसन्न (सहोवानम्) महाबली (रथानां तरुतारम्) रमणीय लोक लोकान्तरों के अधर तिराने वाले (अरिष्टनेमिम्) अकुण्ठित वज्रधारी (पृतनाजम्) शत्रु सेनाओं के जेता (आशुम्) व्यापक (तार्क्ष्यम्) परमेश्वर सर्वव्यापक को (स्वस्तये) कल्याणार्थ (इह) इस जगत् में वर्तमान हम (सु आ हुवेम) भले प्रकार पुकारते हैं ॥

श्लेषालङ्कार से इस में राजविषय भी उपदिष्ट जानो ॥

अष्टाध्यायी ६।१।३४॥३।१।८६॥३।१।८५॥७।२।३४॥२।४।५६ वा० ॥ निरुक्त ८।११॥१०।२७-२८॥ निघण्टु २।२७ इत्यादि के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ऋ० १०।१७८।१ में "सहावानम्" इतना पाठ में भेद है ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः-भरद्वाज ऋषिः । इन्द्रोदेवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३२ ३ १ २ ३ २ ३२ ३ १२ ३२३ २३ १ २
(३३३)त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳहवे हवे सुहवꣳशूरमिन्द्रम् ।
३२३ ३ २ ३१र २र ३ २ ३२३ १ २ ३ १ २
हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रमिदꣳहविर्मघवा वेत्विन्द्रः॥२॥

भावार्थः-(त्रातारम्, इन्द्रम्) पालक परमेश्वर (अवितारम्, इन्द्रम्) रक्षक परमेश्वर (हवे, हवे, सुहवम्) जब २ पुकारें तब २ सुगमता से पुकारने योग्य (शूरम् इन्द्रम्) वीर परमेश्वर (शक्रम्) शक्तिमान् (पुरुहूतम्) वेदों में सब से अधिक पुकारे जाने वाले (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् को (हुवे) पुकारता हूं। (मघवा) अनन्तधन (इन्द्रः) परमेश्वर (इदम्) इस (हविः) पुकार को (नु) शीघ्र (वेतु) ज्ञात करे ॥

इस में भी श्लेषालङ्कार से राजा की प्रशंसा का उपदेश जानो ॥ ऋ० ६ । ४७ । ११ में जो पाठ में अन्तर है वह संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीयस्याः- वसुक्रो विमदो वा ऋषिः । इन्द्रोदेवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

(३३४) यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणꣳहरीणाꣳरथ्यां३ विव्र-

१र २र३ १ २ ३ १ २ ३ १र२र ३ १

तानाम् । प्रश्मश्रुभिर्दोधुवदूर्ध्वथा भुवद्वि सेनाभिर्भ-

२ ३ १र २र

यमानो वि राधसा ॥ ३ ॥

भावार्थः-हम (वज्रदक्षिणम्) चतुर वज्र वाले (हरीणाम् विव्रतानाम् रथ्याम्) हरने वाले विविध कर्मों के मार्गोपदेशक (इन्द्रम्) परमेश्वर वा राजा का (यजामहे) पूजन वा सत्कार करते हैं आगे इस का फल कहते हैं-जिस से (राधसा) धन से (वि) विमुक्त और (सेनाभिः) सेनाओं से (वि) वियुक्त (भयमानः) भयभीत हुवा [शत्रु] (ऊर्ध्वथाः) इधर उधर भागा (भुवत) होवे और (श्मश्रुभि) मूंछ और रोमाओं से (प्र दोधुवत्) अत्यन्त कम्पमान होवे ॥

निघण्टु २ । १ ॥ २ । १० के प्रमाण और ऋग्वेद १० । २३ । १ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः-वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

(३३५) सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभꣳ सुवज्रम् ।

३ २ ३ १र २र ३२३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

हन्ता यो वृत्रꣳसनितोत वाजं दाता मघानि मघवा

३ १ २

सुराधाः ॥ ४ ॥

भावार्थः-(यः) जो (मघवा) धनवाला (सुराधाः) सुन्दर धनवाला (वृत्रम्) हमारे विघ्नकारक शत्रु को (हन्ता) मारेगा (उत) और (वाजम्) धन वा बल का (सनिता) विभाग करेगा (मघानि) धनों को (दाता) देगा उस (सत्राहणम्) सत्य से असत्य के नाशक (दाधृषिम्) अति प्रगल्भ

(तुग्रम्) प्रेरक (महान्) बड़े (अपारम्) अपार विद्या और गम्भीराशय वाले (वृषभम्) कामनाओं के पूरक (सुवज्रम्) न्यायानुसारी दण्ड के धर्त्ता (इन्द्रम्) परमेश्वर वा राजा को [पूजित वा सत्कृत करते हैं] यह पूर्व मन्त्र से अनुवृत्ति जानिये ॥

निघण्टु ३ । १० और सायणाचार्य के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ४ । १७ । ८ में भी ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः ऋष्याद्याः पूर्ववत् ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
(३३६) यो नो वनुष्यन्नभिदाति मर्त्त उगणा वा मन्यमानस्तु-
१ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
रो वा । क्षिधी युधा शवसा वा तमिन्द्राभी ष्याम
३ १ २
वृषमणस्त्वोताः ॥ ५ ॥

भावार्थः-(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (वा) राजन् ! (यः) जो कोई (मन्यमानः) मानी घमण्डी (वा) अथवा (तुरः) हिंसक (मर्त्तः) मनुष्य (नः) हम को (वा) अथवा (उगणाः) श्रेष्ठ प्रजाओं को (वनुष्यन्) हनन करता हुवा (अभिदाति) मारने आता है (तम्) उस को (क्षिधि) नष्ट कीजिये और (त्वोताः) आप से रक्षा किये हुवे (वृषमणः) बलवान् हम लोग उस को (शवसा) बल से (वा) वा (युधा) युद्ध से (अभि ष्याम) दबावें ॥

निरुक्त ५ । २ अष्टाध्यायी ६ । ४ । १०३ ॥ ६ । ३ । १३५—१३६ इत्यादि प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ्याः—अपि ऋष्याद्याः पूर्ववत् ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(३३७) यं वृत्रेषु क्षितयः स्पर्धमाना यं युक्तेषु तुरयन्तो हवन्ते ।
१र २र ३ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २ ३
यं शूरसातौ यमपामुपज्मन्यं विप्रासो वाजयन्ते
स इन्द्रः ॥ ६ ॥

भावार्थः-(यम्) जिस को (वृत्रेषु) रोकने वाले दस्युओं के आ पड़ने पर (स्पर्धमानाः क्षितयः) क्रुद्ध हुवे वीर मनुष्य (हवन्ते) पुकारते हैं (सः) वह शूर

पुनय (इन्द्राः) इन्द्र कहाता है (यम्) और जिस को (युक्तेषु) शत्रुओं के सन्नद्ध होने पर (तुरयन्तः) मारते हुवे योद्धा लोग चाहते हैं, वह सेनापति भी इन्द्र कहाता है। (यम्) और जिस को (शूरसाती) शूरवीरों के विभाग वाले संग्राम में पुकारते हैं वह भी इन्द्र पद का वाच्य है। (यम्) और जिस को (अपाम्) वृष्टिजलों के (उपज्मन्) सामीप्य समय में हवन्ते=हवन करते हैं वह सूर्य वा मध्यस्थान देव भी इन्द्र पद का वाच्य है। (यम्) और जिस को (विप्रासः) ज्ञानी लोग (वाजयन्ते) स्तुत करते हैं वह परमेश्वर भी मुख्य करके इन्द्र कहाता है ॥

निघण्टु २ । ३ ॥ २ । १७ ॥ ३ । १४ अष्टाध्यायी ७ । १ । ३९ ॥ ७ । १ । ५७ इत्यादि प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः-विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रापर्वतौ देवते । त्रिष्टुप्छन्दः॥

१ २ ३ १र २र ३ २उ ३ १ २

(३३८) इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आवहतᳫं

३ १ २ ३ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २

सुवीराः । वीतᳫं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां

३ १र २र३ १ २

गीर्भिरिडया मदन्ता ॥ ७ ॥

भावार्थः-(देवा) दिव्यस्वभाव (इन्द्रापर्वता) बिजुली और मेघो ! तुम २ (बृहता) बड़े (रथेन) रमणीय मार्ग से (सुवीराः) सुन्दर वीरों वाली (वामीः) उत्तम (इषः) अन्नसामग्रियों को (आवहतम्) प्राप्त कराओ (अध्वरेषु) यज्ञों में (हव्यानि) हवन के द्रव्यों को (वीतम्) प्राप्त होओ वा खाओ (गीर्भिः) वेदमन्त्रों के साथ (इडया) हवन किये अन्न से (मदन्ता) हृष्ट हुवे तुम २ (वर्धेथाम्) बढ़ो॥

बिजली और मेघ जल को वर्षाते हैं। उस से अन्नादि उत्पन्न होते हैं। इसलिये मनुष्यों को यज्ञ करने चाहियें। जिन में वेदमन्त्रों के साथ सुगन्ध मिष्ट पुष्ट रोगनाशकादि द्रव्य हवन किये जाते हैं और उन से बिजुली और मेघ का आप्यायन और वृद्धि होती है। जड़ पदार्थों के सम्बोधन विषय में हम पूर्व निरुक्त के प्रमाण से बता चुके हैं कि यह प्रत्यक्षकृत ऋचाओं की शैली है॥ इन्द्र पर्वत पदों से यहां उपमा से राजा और सेनाध्यक्ष का वर्णन भी उपदिष्ट जानिये ॥ ऋग्वेद ३ । ५३ । १ में भी यही पाठ है ॥

पं० ज्वालाप्रसाद भार्गव का भाष्यकर्त्तृत्व देखिये कि कलकत्ते की छपी सायणभाष्य तथा गानयुक्त पुस्तक में जो मूल में "मदन्ता" के स्थान में "मदन्ताम्" पाठ छप गया, उस पर इन्हों ने भी गतानुगतिकता से वही ज्यों का त्यों अशुद्ध छाप दिया और तिस पर दृश्य यह है कि अर्थ आप "मदन्ता" का ही करते हैं क्योंकि सायणभाष्य में ठीक छपा है। अपने मूल शुद्ध करने में न गान को देखा, न टिप्पणी को, न सायणभाष्य को। और इसी प्रकार उस पुस्तक के भाष्य में "आवहन्तम्" के स्थान में "आवहन्तम्" छप गया सो आप ने भी ज्यों का त्यों मूलविरुद्ध टीका में लिख दिया और उस के समानाधिकरण समस्तपदों को इसी के समान अशुद्ध सायणभाष्य से उद्धृत किया है। इसी प्रकार के पाण्डित्य के बल से आप नरनारायणादि अवतार साधक भाष्य करने का साहस कर बैठे। यह प्रशंसनीय परिश्रम है॥ ॥७॥

अथाऽष्टम्याः—रेणुर्ऋषिः। इन्द्रापर्वती देवते। त्रिष्टुप्छन्दः॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३

(३३९) इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रैरयत्सगरस्य

१ २ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३

बुध्नात्। यो अक्षेणेव चक्रियौ शचीभिर्विष्वक्-

१ २ ३ २ ३ २

तस्तम्भ पृथिवीमुत द्याम्॥ ८॥

भावार्थः—(इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (अनिशितसर्गाः) अकृत्रिम अनादि (गिरः) वेदमन्त्रोक्त स्तुति वाणियें [हों] (यः) जो (सगरस्य) अन्तरिक्ष के (बुध्नात्) मूल प्रदेश से (अपः) वर्षा के जलों को (प्रैरयत्) प्रेरित करता है और जो (चक्रियौ) रथ के दो पहियों को (अक्षेणेव) धुरे से जैसे घुमाते हैं वैसे पूर्व मन्त्रोक्त बिजली और मेघों को प्रेरित करता है। और जो (पृथिवीम्) भूमि (उत) और (द्याम्) द्युलोक को (विष्वक्) सब ओर से (तस्तम्भ) थांभे है॥

निघण्टु १।३॥ ३।९ उणादि ३।५ के प्रमाण और ऋ० १०।८९।४ में जो पाठभेद है वह संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ८॥

अथ नवम्याः—वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १

(३४०) आ त्वा सखायः सख्या ववृत्युस्तिरः पुरूचिदर्णवं

२ ३ १२ ३२ ३ १ २ ३ २ ३ १२ ३२

जगम्याः। पितुर्नपातमादधीत वेधा अस्मिन्क्षये

३ १२ ३२

प्रतरा दीध्यानः ॥ ९ ॥

भावार्थः-प्रकरण से हे इन्द्र ! परमेश्वर ! (सखायः) अनुकूल रहने वाले भक्त लोग (त्वा) आप के साथ (सख्या) मित्र के (चित्) तुल्य (आ-ववृत्युः) वर्तें । आप (अर्णवम्) अन्तरिक्ष समुद्र को (पुरु) अत्यन्त करके (तिरः) अदृश्य भाव से (जगम्याः) व्याप रहे हैं । हे भगवन् ! (वेधाः) विधाता आप (पितुः) पिता के (नपातम्) सन्तान को (आद-धीत) आधान करें । (अस्मिन् क्षये) इस निवासस्थान जगत् में (प्रतरा) अत्यन्त भाव से (दीध्यानः) प्रकाशमान हैं ॥

अर्थात् हे परमात्मन् ! आप समस्त आकाश में और उस को उल्लङ्घन करके भी अदृश्य होकर व्याप रहे हैं । ऐसी कृपा हो कि आप के उपासक सब मनुष्य हों, आप के अनुकूल मित्र के समान वर्तें । आप हर एक पिता को सन्तानवृद्धि दीजिये । आप ही इस जगत् में अत्यन्त प्रकाशमान हैं ॥

अष्टाध्यायी ७।१।३९ निघण्टु ३।२ के प्रमाण और ऋग्वेद १०।१०।१ का पाठ संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ९ ॥

अथ दशम्याः-गौतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३

(३४१) को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२

भामिनोदुर्हृणायून्। आसन्नेषामप्सुवाहो मयोभू

२२ ३ २ ३ २ ३ १ २

न्य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात् ॥ १० ॥

इत्येकादशी दशतिः ॥ ११ ॥

इति चतुर्थप्रपाठके प्रथमार्धः ॥

—:०※०:—

भावार्थः-(ऋतस्य) मेघस्थ जल के (धुरि) रथ के जुवे में (शिमीवतः) पुरुषार्थी (भष्मुवाहः) जल को भले प्रकार वहने वाले (मयोभून्) सुखकारी (दुर्हणायून्) कठिन है से चलना जिन का ऐसे (गाः) बैल वा घोड़ों को (अद्य) अब (कः) कौन (युङ्क्ते) जोड़ता है? कोई नहीं, किन्तु पूर्वोक्त इन्द्र ही जोड़ता है। इस लिये (यः) जो यजमान (एषाम् आसन्) इन के मुख में (एषाम् भृत्याम्) इन की पोषणसामग्री को (ऋणधत्) भरे वा समृद्ध करे (सः) वह (जीवात्) चिरञ्जीव हो ॥

अर्थात् देखिये परमात्मा का आश्चर्य कर्म कि कौन है ? जिस ने निराधार आकाश में बादलों के रथ में चमकीले, तीव्र, जल के भले प्रकार ले चलने वाले बैल वा घोड़े जोड़े हैं ? किसी ने नहीं, किन्तु यह उसी परमात्मा का काम है। इस लिये जो इन दैवी घोड़ों के मुख में भोजन पहुंचाता है अर्थात् यज्ञ करता है वह चिरञ्जीव रहो ॥

निघण्टु १। १२ ॥ २। १ ॥ ३। ५ ॥ ३। ६ अष्टाध्यायी ६। १। ६३ ॥ ७। १। ३९ के प्रमाण और ऋ० १। ५४। १६ का पाठ संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ १० ॥

यह तृतीयाध्याय में ११ वीं दशति समाप्त हुई ॥११॥

यह ऐन्द्र पर्व के त्रिष्टुप्छन्दों का प्रकरण पूर्ण हुवा ॥

——=:०*०:=——

गायन्ति त्वेति चेन्द्रस्याऽनुष्टुभोदशतौ दश ॥१॥

अथ द्वादशी दशतिस्तत्र—

प्रथमायाः—मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रोदेवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २

(३४२) गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।

३ १ २ ३ २३ १ २

ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वꣳशमिव येमिरे ॥१॥

भावार्थः-(शतक्रतो) हे बहुकर्मन् ! वा बहुबुद्धे ! परमेश्वर ! इन्द्र ! (गायत्रिणः) गान में कुशल (त्वा) आप का (गायन्ति) गान करते हैं। (अर्किणः) पूजा में चतुर (अर्चन्ति) आप को पूजते हैं (ब्रह्माणः) यज्ञ के

अच्छा लोग (त्वा) आप को (वंशमिव) बांस वा कुश के समान (उद्-येमिरे) ऊंचा करते वा प्रशंसित करते हैं ॥

निरुक्त ५ । ४ ॥ ५ । ५ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० १ । १० । १ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः-जेता माधुच्छन्दस ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

२३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(३४३) इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।
३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
रथीतमꣳरथीनां वाजानाꣳसत्पतिं पतिम् ॥२॥

भावार्थः-(विश्वाः) सब (गिरः) वैदिकी वा हमारी वाणियें (समुद्र-व्यचसम्) आकाशव्यापी ईश्वर वा समुद्र में नौकादि से व्यापने वाले राजा (रथीनाम् रथीतमम्) रथ वालों में अत्यन्त उत्तम रमणीय सूर्यादि लोकरूपी रथों वाले ईश्वर वा महारथी राजा (वाजानां पतिम्) बलों के रक्षक (सत्पतिम्) प्रकृति आदि नित्य पदार्थों के स्वामी ईश्वर वा सज्जनों के रक्षक राजा (इन्द्रम्) परमेश्वर वा राजा को (अवीवृधन्) गुणों से बड़ा होने से वर्णित करें ॥

अष्टाध्यायी ८ । २ । १७ वा० ॥ ६ । ३ । १३७ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० १ । ११ । १ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः-गौतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १३ १ २ ३ १ २
(३४४) इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
३ १ २ ३क १र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ॥ ३ ॥

भावार्थः-(इन्द्र) हे राजन् ! वा परमेश्वर ! (इमम्) इस (सुतम्) सिद्ध हुवे (ज्येष्ठम्) बड़े उत्तम (अमर्त्यम्) दिव्य (मदम्) आनन्द को (पिब) ग्रहण वा स्वीकार कीजिये । (शुक्रस्य) शुभ्र शुद्ध पवित्र के (सादने) घर वा हृदयवेश्म में (ऋतस्य) सत्य की (धाराः) धारें (त्वा) आपको (अभ्यक्षरन्) प्राप्त होवें ॥ ऋ० १ । ८४ । ४ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः-अत्रिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ २उ ३ १ २
(३४५) यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः ।
३ १ २ ३ १ २
राधस्तन्नो विदद्वस उभया हस्त्याभर ॥ ४ ॥

भावार्थः-(अद्रिवः) हे दुष्टों पर दण्डधारक ! (विदद्वसो) हे धन वाले ! (चित्र) हे आश्चर्य गुण कर्म स्वभाव वाले ! (इन्द्र) राजन् ! वा परमेश्वर !(यत्) जो (राधः) धन (मे) मेरे समीप (न अस्ति) नहीं है, (त्वादातम्) आप के दिये (तत्) उस धन को (नः) हमारे लिये (उभया हस्त्या) दोनों हाथों से (आभर) दीजिये ॥

निरुक्त ४ । ४ अष्टाध्यायी ८ । ३ । १ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ५ । ३९ । १ में "मेहनास्ति" पाठ है ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः-तिरश्ची आङ्गिरस ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

३ १२ २२ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
(३४६) श्रुधी हवं तिरश्चया इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ॥५॥

भावार्थ-:(इन्द्र) हे परमेश्वर ! वा राजन् ! (महान् असि) आप बड़े हैं अतः (यः) जो पुरुष (त्वा) आप को (सपर्यति) पूजता अर्थात् आप की आज्ञानुसार चलता है उस (सुवीर्यस्य) शुद्धवीर्य ब्रह्मचर्यादि वाले (गोमतः) गो आदि पशु और पृथिवी आदि के स्वामी की (हवम्) पुकार (तिरश्चया) अन्तर्धान हुवे से (श्रुधि) सुनिये और (रायः) विद्यादि धन (पूर्धि) दीजिये ॥

जैसे परमेश्वर अदृश्य रूप से सब की सुनता और कर्मानुकूल धनादि पदार्थ देता है, इसी प्रकार राजा को चाहिये कि छिप कर सब की पुकार सुने, और क्षेत्रपतियों के धन धान्यादि की वृद्धि होने देवे ॥

निरुक्त ४ । ३ का प्रमाण संस्कृतभाष्य देखिये ॥ ऋ० ८।९५।४ में भी ॥५॥

अथ षष्ठ्याः-गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(३४७) असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवागहि ।
१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियꣳरजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥

भावार्थः-(शविष्ठ) हे अतिबलवन् ! (धृष्णो) पापों वा पापियों को दबाने वाले ! (इन्द्र) परमेश्वर ! वा राजन् ! (आ-गहि) रक्षार्थ हमें प्राप्त हूजिये (ते) आप की प्रसन्नता के लिये (सोमः) शान्तभाव (अभाति) हमने उत्पन्न किया है । (इन्द्रियम्) हमारा मन आदि (त्वा) आप में (आ पृणक्तु) लगे (न)जैसे (सूर्य्यः) सूर्य (रश्मिभिः) किरणों से (रजः) पृथिवी आदि के रज को लगता है तद्वत् ॥ ऋ० १ । ८४ । १ में भी ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः-काण्वोगौपायिनिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

(३४८) एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।

३ १ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥७॥

भावार्थः-(दिवावसो) हे सुख में वास कराने वाले ! (इन्द्र) राजन् ! हम को (हरिभिः) आज्ञा पहुंचाने वाले राजपुरुषों द्वारा (दिवम्) सुख (यय) पहुंचाइये और (अमुष्य) इस मुख्य इन्द्र (कण्वस्य) मेधावी (दिवः शासतः) सुख के राजा परमेश्वर की (सुष्टुतिम्) अच्छी प्रशंसा को (उप-आ-याहि) प्राप्त हूजिये ॥ ऋ० ८ । ३४ । १ में भी ॥ ७ ॥

अथाऽष्टम्याः-तिरश्ची ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

(३४९) आ त्वा गिरो रथीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वणः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २

अभि त्वा समनूषत गावो वत्सं न धेनवः ॥८॥

भावार्थः-पूर्व मन्त्र की अनुवृत्ति से हे राजन् ! उक्तप्रकार प्रजा को सुख देने का फल यह है कि-(सुतेषु) पुत्रतुल्य प्रजाजनों में (गिरः) उन की प्रशंसायुक्त वाणी (त्वा) आप को (रथीरिव) जैसे रथी शीघ्र चलता है वैसे (-आ-अस्थुः) सब ओर से आकर उपस्थित होती हैं (गिर्वणः) हे वाणी से सेवनीय ! (त्वा) आप की (अभि) ओर देख कर (समनूषत) सब भले प्रकार प्रशंसा करते हैं । दृष्टान्त-(न) जैसे (धेनवः) दुधार (गावः) गौवें (वत्सम्) बछड़े को देखकर प्रीति से रंभाती हैं तद्वत् ॥

ऋ० ८ । ९५ । १ में "समनूषतेन्द्र वत्सं न मातरः" इतना अन्तर है ॥ ८ ॥

अथ नवम्याः—ऋष्यादिकं पूर्ववत् ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(३५०) एतो न्विन्द्रꣳस्तवाम शुद्धꣳशुद्धेन साम्ना ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वाꣳसꣳशुद्धैराशीर्वान्ममत्तु ॥९॥

भावार्थः—प्रजाजन तथ आपस में कहते हैं कि-(एत उ) मित्रो ! आओ ! आओ ! और (शुद्धेन साम्ना) पवित्र सामगान के साथ और (शुद्धैः उक्थैः) पवित्र स्तोत्रों से (वावृध्वांसम्) अति महान् (शुद्धम्) पवित्र (इन्द्रम्) परमेश्वर वा राजा को (स्तवाम) स्तुत करें । (शुद्धैः) पवित्र स्तोत्रों से (आशीर्वान्) आशीर्वादयुक्त वह (नु) शीघ्र (ममत्तु) [हम पर] प्रसन्न होवे ॥

ऋ० ८ । ९५ । ७ में "शुद्ध आशीर्वान्" पाठ है ॥ ९ ॥

अथ दशम्याः-शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(३५१) यो रयिं वो रयिन्तमो योद्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥१०॥

भावार्थः-(स्वधापते) हे अन्नपते । अन्नदातः । (इन्द्र) परमेश्वर ! (यः) जो (वः) आप का (सोमः) शान्तस्वभाव (सुतः) पुत्रतुल्य प्रजाजन (रयिम्) धन से (रयिन्तमः) अति धनवान् और (यः) जो (द्युम्नैः) यशों से (द्युम्नवत्तमः) अतियशस्वी (अस्ति) है (सः) वह (ते) आप के लिये (मदः) प्रसन्नताकारक हो ॥

ऋ० ६ । ४४ । १ में "रयिमः" ऐसा अनुस्वाररहित पाठ है ॥ १० ॥

*** यह तृतीयाध्याय में बारहवीं दशति समाप्त हुई ॥१२॥ ***

तथा

कण्ववंशावतंस श्रीमान् पं० स्वामी हज़ारीलाल के पुत्र,
परीक्षितगढ़ (ज़िला मेरठ) निवासी
तुलसीरामस्वामिकृत सामवेदभाष्य में तीसरा अध्याय
समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

ओ३म्

अथ चतुर्थोऽध्यायः

अनुष्टुभः प्रतीत्यस्यां दशतास्वष्ट कीर्तिताः ।
यदीति पञ्चमी तासु मारुती सप्तमी तु या ॥१॥
दधिक्राव्णः स्मृताः शिष्टाः षडैन्द्र्योऽथ ऋषयः स्मृताः ।

अथ प्रथमा दशतिः—

तत्र प्रथमायाः भरद्वाज ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(३५२) प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।
३ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चाद्दघ्वने नरः ॥१॥

भावार्थः—(नरः) हे मनुष्यो ! (अस्मै) इस इन्द्र अर्थात् योगादि विद्या रूप ऐश्वर्यवान् (विदुषे) ज्ञानवान् (पिपीषते) पान भोजनादि की इच्छा वाले (अरङ्गमाय) तृप्ति पर्यन्त जाने वाले (जग्मये) विज्ञान में अधिक (अपश्चाद्दघ्वने) पीछे न हटने वाले अग्रगामी के लिये (विश्वानि) सब आवश्यक वस्तुएं (भर) समर्पित करो क्योंकि (प्रति) वह भी तुम्हारा प्रत्युपकार करता है ॥ अर्थात् गृहस्थों को इस मन्त्र में कहे लक्षणयुक्त पुरुषों का सर्वथा आदर सत्कार करना चाहिये ॥ निघं० २ । १४ में दघ्यति गतिकर्मा है ॥ ऋ० ६ । ४२ । १ में " भरे " पाठ है ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः—वामदेवः शाकपूतो वा ऋषिः ।
इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
(३५३) आ नो वयो वयःशयं महान्तं गह्वरेष्ठाम् ।
३ १ २ ३ २ ३ २३ ३ १ २
महान्तं पूर्विनेष्ठामुग्रं वचो अपावधीः ॥ २ ॥

भावार्थः-हे पूर्वमन्त्रोक्त ! योगविद्यादि ऐश्वर्ययुक्त ! इन्द्र ! (नः) हमारी (वयः) आयु तथा (महान्तम्) बड़े (गह्वरेष्ठाम्) अन्तःकरण में स्थित (वयःशयम्) आयु में निवास करने वाले आत्मा और (महान्तम्) बड़े (पूर्विनेष्ठाम्) क्रमागत बुद्धितत्त्व को (आ) आदेश कीजिये । हमारे (दुर्वचः) दुर्वचन वचन को (अपावधीः) दूर कीजिये ॥

अर्थात विद्वानों के सदुपदेश से मनुष्यों के आत्मा और मन को उत्तम आदेश मिलता है और दुर्वचनादि दुर्गुण दूर होते हैं ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः-प्रियमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

(३५४) आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्त्तयामसि ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्रꣳशविष्ठ सत्पतिम् ॥ ३ ॥

भावार्थः-(शविष्ठ) हे शारीरिकबलयुक्त ! (तुविकूर्मिम्) बहुत कर्म वाले (ऋतीषहम्) दुष्टों को दबाने वाले (सत्पतिम्) सत्पुरुषों के पालक (इन्द्रम्) योगविद्यादि ऐश्वर्ययुक्त (त्वा) आप को (ऊतये) अपनी रक्षा और (सुम्नाय) सुख के लिये (आ) सर्वतः (वर्त्तयामसि) हम भ्रमण कराते हैं दृष्टान्त-(यथा) जैसे (रथम्) रथ को रक्षा और सुख के लिये भ्रमण कराते हैं तद्वत् ॥

निघण्टु २ । ६ ॥ ३ । १ ॥ ऋ० ८ । ६८ । १ में तो "इन्द्र शविष्ठ सत्पते" पाठ है ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः-प्रगाथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र

(३५५) स पूर्व्यो महोनां वेनः क्रतुभिरानजे ।

३ २ ३र २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

यस्य द्वारा मनुः पिता देवेषु धिय आनजे ॥४॥

भावार्थः-हे विद्वन्निन्द्र ! (सः) वह आप (वेनः) मेधावी (क्रतुभिः) कर्मों से (महोनाम् पूर्व्यः) पूज्यों में अग्रणी (आनजे) पहिचाने जाते हैं । (यस्य) जिन आप के (द्वारा) द्वारा (मनुः) मननशील मनुष्य (धियः) बुद्धियों को (आनजे) उत्पन्न करता और (देवेषु) विद्वानों में (पिता) पितृतुल्य पूज्य हो जाता है ॥

निघण्टु ३ । ३ ॥ ३ । १५ ॥ २ । १ ॥ ३ । ९, निरुक्त ६ । ३३ ॥ ४ । २१ इत्यादि प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ५२ । १ में "महानाम्" और "मनुहितता" यह पाठ में अन्तर है ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः-श्यावाश्वआत्रेय ऋषिः । मरुतो देवताः । अनुष्टुप्छन्दः ॥

३ १२ ३१ ३ १ २ ३ २३ २

(३५६) यदी वहन्त्याशवो भ्राजमाना रथेष्वा ।

१ २ ३ १२ ३ २३ १ २

पिबन्तो मदिरं मधु तत्र श्रवाᳪंसि कृण्वते ॥५॥

भाषार्थः-(यदि) जहां (रथेषु) रथादि विविध यानों में (आ भ्राजमानाः) विराजमान और (मदिरम्) हर्षकारक (मधु) मधुरादि रसयुक्त सोम को (पिबन्तः) पीने वाले (आशवः) शीघ्रगामी मरुत् अर्थात् मुख्य विद्वान् इन्द्र के सहचरवर्ग (वहन्ति) पहुंचते हैं (तत्र) वहीं (श्रवांसि) अन्न धन या यशों को (कृण्वते) करते हैं ॥

अष्टाध्यायी ६ । ३ । १३६ निघण्टु २ । ७ ॥ २ । १० के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ्याः-शंयुर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १२ ३ १२ ३२ ३ १ २

(३५७) त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् ।

१ २ ३ २३ २३ १ २ ३ १२

इन्द्रं विश्वासाहं नरᳪं शचिष्ठं विश्ववेदसम् ॥६॥

भाषार्थः-(त्यम्) उस (अप्रहणम्) अहिंसक (शवसः पतिम्) बली (विश्वासाहम्) सब पर प्रभाव रखने वाले (नरम्) नेता (शचिष्ठम्) अत्यन्त बुद्धिमान् (विश्ववेदसम्) सब धन वाले (इन्द्रम्) योगविद्यादि ऐश्वर्ययुक्त पुरुष को (उ) और (वः) तुम उस के सहचरों को (गृणीषे) स्तुत करता हूं ॥ ऋ० ६ । ४४ । ४ में "मंहिष्ठं विश्वचर्षणिम्" इतना चतुर्थपाद में भेद है ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः-वामदेव ऋषिः । दधिक्रावा देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ २ ३ १२ ३२ ३ १२

(३५८) दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।

३ २ ३ १ २ ३ २३ १ २

सुरभि नो मुखा करत् प्र न आयूᳪंषि तारिषत् ॥७॥

भावार्थः-हे योगविद्यादि ऐश्वर्यवालो ! महात्मन् ! आप के उपदेश से मैं (जिष्णोः) जयशील (अश्वस्य) शीघ्रगामी (वाजिनः) बलवान् (दधिक्राव्णः) दधिक्रावा नाम अग्नि को [परिचर्यो] (अकारिषम्) करूं, जिस से वह (नः) हमारे (मुखा) मुखादि अङ्गों को (सुरभि) सुगन्धयुक्त (करत्) करे और (नः) हमारी (आयूंषि) आयुओं को (प्रतारिषत्) बढ़ावे॥

निघण्टु १।१४ में दधिक्रावा नाम अश्व का है और यथार्थ में दधिक्रावा नामक अग्नि देवतों का अश्व है और स्वयं भी देवता है। निरुक्त २।२७ के अनुसार दधिक्रावा का अर्थ यह है कि जो धारण करे हुवे ले चले। सो अग्नि देवतों के हव्य पदार्थों को भी लेकर चलता है और वायु आदि कितने ही देवतों को भी लेकर आकाश में चलता है। इस पर सायणाचार्य भी कहते हैं कि ("अग्नि देवतों के लिये लिया जाता है और उन के अश्व का काम देता है" इत्यादि शतपथ (अध्वर्यु) ब्राह्मण की सङ्गति लगानी चाहिये) ॥ ऋ०४।३९।६ में भी ॥ ७ ॥

अथाऽष्टम्याः-जेता माधुच्छन्दस ऋषिः। इन्द्रोदेवता। अनुष्टुप्छन्दः॥

३ २   ३ १२ . २२ . ३ १२२

(३५९) पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत।

२ ३   १ २ ३   १ २ ३   २ ३   १ २   ३ २

इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्त्ता वज्री पुरुष्टुतः॥ ८॥

* इति चतुर्थाध्याये प्रथमा दशतिः ॥ १ ॥ *

भावार्थः-पूर्वोक्त दधिक्रावा के यत्न से (पुरां भिन्दुः) मेघनगरों का भेदन करने वाला (युवा) पुष्टाङ्ग (कविः) गर्जने वाला (अमितौजाः) अपरिमित बलयुक्त (विश्वस्य कर्मणः धर्त्ता) वशाधीन होने से सब कार्यों का धारक (वज्री) वज्रवाला (पुरुष्टुतः) वेदों में अधिकता से वर्णित (इन्द्रः) विद्युत (अजायत) प्रकट होता है ॥ ऋ० १।११।४ में भी ॥ ८॥

* यह चतुर्थाऽध्याय में प्रथम दशति समाप्त हुई *

प्रैत्र आनुष्टुभः प्रोक्ता दशतौ दश तत्र च।

त्वयाश्विदित्युपरस्येयं सप्तमी, नवमी अमी ॥ १ ॥

इति सा वैश्वदेव्यस्ति ऋचंसामेति चान्तिमा।

ऋक्सामयोः स्तुतिस्तत्र शेषा ऐन्द्रयोऽथ सप्त याः॥ २॥

अथ द्वितीया दशतिस्तत्र-

प्रथमायाः-प्रियमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(३६०) प्र प्र वस्त्रिष्टुभमिषं वन्दद्वीरायेन्दवे ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २३ १ २
धिया वो मेधसातये पुरन्ध्याविवासति ॥ १ ॥

भावार्थः हे यजमानो ! और ऋत्विजो ! तुम (वन्दद्वीराय) वीरवन्दित (इन्दवे) वर्षा से पृथिवी के भिगोने वाले इन्द्र के लिये (त्रिष्टुभम्) ३स्तोभों वाले साम का (प्र) गान करो और (इषम्) सोमादि अन्न की आहुति (प्र) दो । वह (धिया) कर्म से (वः) तुम को तथा (पुरन्ध्या) आकाश और पृथिवी को (मेधसातये) यज्ञ बांटने के लिये (आ-विवासति) सब ओर से सेवित करता है ॥

सामों में स्तोभादि सुने जाते हैं : उन के बनाने को ही विकार, विश्लेष विकर्षण, विराम, अभ्यास, लोप, आगम और स्तोभादि किये जाते हैं । साम विधान ब्राह्मण (१ । १ । ४) में कहा है कि "इस साम की ऋचा ही हड्डियां हैं, स्वर मांस हैं और स्तोभ रोम हैं" और वह स्तोभ ३ प्रकार का है-पद-स्तोभ, वाक्यस्तोभ और अक्षरस्तोभ । जिस में पदस्तोभ १५प्रकार के "हाउ" कार आदि तन्त्रब्राह्मण (३ । १३) में कहे हैं । वाक्यस्तोभ आशस्ति, स्तुति, संख्यान, प्रलय, परिदेवन, प्रैष, अन्वेषण, सृष्टि और आख्यान; ये ९ हैं । और वर्णस्तोभ तो गानग्रन्थ में सर्वत्र ही हैं । तथा च इसी ऋचा में-

३ १ २ ३ २ २ २ २
(मेधसातये) इस के वामदेव्यगान में (मेधसा १ ता ३ याइ) इत्यादि देखिये ॥

निघण्टु ३ । ७ ॥ २ । १३ ॥ ३ । १० ॥ २ । १ ॥ ३ । ५ निरुक्त ८ । ४। इत्यादि के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ६९ । १ में "नदद्वीराय" पाठ है ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः-वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

३ १ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(३६१) कश्यपस्य स्वर्विदो यावाहुः सयुजाविति ।
२ ३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ १ २
ययोर्विश्वमपि व्रतं यज्ञं धीरा निचाय्य ॥ २ ॥

भाषार्थः-(स्वर्विदः) स्वर्लोक के जानने वाले (धीराः) ज्ञानवान् योगी (यज्ञम्) योगयज्ञ को (निधाय) निश्चित करके (इति आहुः) यह कहते हैं कि (कश्यपस्य) इन्द्र के (यौ) जो दो (मधुनी) साथ जुड़े हुवे धारणाऽऽकर्षण गुण हैं (ययोः) जिन दोनों में (विश्वम्) सब (अपि) ही (व्रतम्) [निघं० २ । १] कर्म है [उन्हें तुम जानो] ॥

योगियों से इस बात का निश्चय किया जाता है कि बिजुली में दो गुण हैं जिन से सब जगत् के काम सिद्ध होते हैं ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः-प्रियमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(३६२) अर्चत प्रार्चता नरः प्रियमेधासो अर्चत ।
१ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३क २र
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरमिद्धृष्ण्वर्चत ॥ ३ ॥

भाषार्थः-परमात्मा उपदेश करता है कि (नरः) हे नेता मनुष्यो ! (प्रियमेधासः) हे यज्ञ से प्यार करने वालो ! (पुरम्) यजन करने वालों का इष्ट पूर्ण करने वाले (उत) और (धृष्णु) सब को दबा सकने और स्वयं न दबने वाले इन्द्र का (अर्चत प्रार्चत) यजन करो, यजन करो, बहुत यजन करो, (पुत्रकाः) हे पुत्रो ! (अर्चन्तु) यजन करो (इत्) अवश्य (अर्चत) यजन करो ॥

बहुत बार यजन करो, कहना उस की अत्यन्त आवश्यक विधि का द्योतक है । इन्द्र शब्द से परमात्मा और सूर्य वा विद्युत् का ग्रहण है ॥ ऋ० ८ । ६९ । ८ में जो पाठभेद है वह संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः-मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

३ १र २र ३ २ ३ १र ३ १ २
(३६३) उक्थमिन्द्राय शꣳस्यं वर्धनं पुरुनिःषिधे ।
३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
शक्रो यथा सुतेषु नो रारणत्सख्येषु च ॥ ४ ॥

भाषार्थः-हे मित्रो ! (यथा) जिस प्रकार पिता (सुतेषु) पुत्रों में (च) और मित्र (सख्येषु) मित्रों में [उपदेश करता है इसी प्रकार] (शक्रः) सर्वशक्तिमान् ईश्वर (पुरुनिःषिधे) अत्यन्त निरन्तर व्याप्ति वाले (इन्द्राय) अपने लिये व विद्युत् के लिये (शंस्यम्) कहने योग्य (वर्ध-

गम्) वृद्धि कारक (वचनम्) पूर्व मन्त्रादि में कहे वचन का (गः) हमें (तारणत) उपदेश करता है ॥ ऋ० १ । १० । ६ में भी ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः विश्वमेध ऋषिः । इन्द्रोदेवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

१ १ २ ३ २३१ ३ १२

(३६४) विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः ।

१२ ३ २३१ २३१२

एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे रथानाम् ॥ ५ ॥

भावार्थः- हे मनुष्यो ! मैं परमेश्वर (विश्वानरस्य अनानतस्य शवसः पतिम्) सब के नेता, अनम्र, बल के, पति [इन्द्र] का (यः चर्षणीनाम्) तुम मनुष्यों के (रथानाम्) रथादि यानों की (ऊती) रक्षा के लिये (च) और (एवैः) गतियों सहित (हुवे) उपदेश करता हूं ॥ निघण्टु २ । १४ का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । ६८ । ४ में भी ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ्याः-भरद्वाज ऋषिः । इन्द्रोदेवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

३ १२ ३१ २र ३१र २र ३ १२

(३६५) सखा यस्ते दिवो नरो धिया मर्त्तस्य शमतः ।

३ १र २र३ ३ २ ३२उ ३ १ २

ऊती स बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ॥६॥

भावार्थः हे मनुष्य ! (शमतः ते) शान्तियुक्त तेरा (यः) जो (सखा) सखा मित्र अनुकूलवर्त्ती (दिवः) आकाश के पदार्थों का (नरः) नेता इन्द्र है (सः) वह (धिया) कर्म से (बृहतो दिवः ऊती) बड़े आकाश के वस्तुमात्र की रक्षा से (द्विषः) द्वेष करने वालों को (तरति) उल्लङ्घित करता है । दृष्टान्त-(न) जैसे (अंहः) पाप को लांघते हैं तद्वत ॥

ऋ० ६ । २ । ४ का पाठभेदादि संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः-अत्रिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

(३६६) विभोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।

१ २ ३ १ २

अथा नो विश्वचर्षणे द्युम्नꣳ सुदत्र मꣳहय ॥७॥

भावार्थः—(सुदत्र हे शुभदान ! (अद्भुतक्रतो) अद्भुत कर्म वाले ! (विश्वचर्षणे) सब के देखने वा प्रकाश करने वाले ! (इन्द्र) परमेश्वर ! वा विद्युत् ! (ते) तेरा (विभ्वोः राधसः) बहुत धन का (विभ्वी रातिः) बड़ा दान है (अध) इस लिये (नः) हम को (द्युम्नम्) धन (मंहय) दे ॥

निघण्टु २ । १० ॥ ३ । २० ॥ ३ । ११ के प्रमाण और ऋ० ५ । ३८ । १ का पाठ संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ७ ॥

अथाऽष्टम्याः—प्रस्कण्व ऋषिः । उषा देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र

(३६७) वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपाच्चतुष्पादर्जुनि ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥ ८ ॥

भावार्थः—(अर्जुनि) शुभ्र वर्ण वाली ! (उषः) प्रातःकाल की बेला ! (ते) तेरे (ऋतून् अनु) आगमनों को देख कर (द्विपात्) मनुष्यादि और (चतुष्पात्) गौ आदि तथा (पतत्रिणः वयश्चित्) पंखों वाले पक्षी भी (दिवः अन्तेभ्यः) अनेक दिशाओं से (परि) सब ओर (प्रारन्) अत्यन्त गमन करते हैं ॥

अर्थात् रात्रि में अन्धकार के सताये प्राणी उषःकाल के आगमन से फिर चेष्टा करने लगते हैं । बिजुली के वाचक इन्द्र के वर्णन में उषा का वर्णन अनुचित नहीं है । तथा उषा के वर्णन से इसे भी उपदिष्ट जानिये ॥ ८ ॥

अथ नवम्याः—आप्त्यस्त्रित ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । अनुष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

(३६८) अमी ये देवाः स्थन मध्य आरोचने दिवः ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ ३

कद्व ऋतं कदमृतं का प्रत्ना व आहुतिः ॥ ९ ॥

भावार्थः—(अमी) ये (ये) जो (दिवः मध्ये आरोचने) आकाशगत प्रकाश में (देवाः) लोक (स्थन) हैं (वः) इन के मध्य में (कद् ऋतम्) क्या वेदवचन है ? (कद् अमृतम्) क्या यज्ञ की सामग्री है ? (वः) इन के मध्य में (का प्रत्ना आहुतिः) क्या सनातनी यज्ञक्रिया है ?

इस मन्त्र में यह प्रश्न है कि आकाशस्थ लोकलोकान्तरों में भी क्या वेद और यज्ञ का प्रचार है ? इस का उत्तर अगले मन्त्र में दिया है ॥

अष्टाध्यायी ३ । १ । ८५ का प्रमाण और ऋग्वेद १ । १०५ । ५ का पाठ भेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥

कोई लोग यह शङ्का करते हैं कि ऋग्वेद के मन्त्र सामवेद में देखे जाते हैं, इस से ऋग्वेद ही प्राचीन प्रतीत होता है और सामवेद नवीन। परन्तु यह ठीक नहीं है क्योंकि ऋग्वेद के १० । ८५ । ११ (ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ०) इत्यादि स्थलों में सामवेद का नाम उपस्थित है ॥ ९ ॥

अथ दशम्याः-वामदेव ऋषिः । ऋक्साम देवते । अनुष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

(३६९) ऋचꣳसाम यजामहे याभ्यां कर्माणि कृण्वते ।

१ २र ३ २ ३ १ २

वि ते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु वक्षतः ॥ १० ॥

इति द्वितीया दशतिः ॥ २ ॥

भावार्थः-(याभ्याम्) जिन २ से (कर्माणि) अग्निहोत्रादि (कृण्वते) करते हैं उन (ऋचम्) वेदमन्त्र और (साम) गान को (यजामहे) सत्कृत करते हैं । (ते) वे मन्त्र और गान (सदसि) यज्ञमण्डप में (वि राजतः) विराजते हैं और (देवेषु यज्ञं वक्षतः) वायु आदि देवतों में यज्ञ को पहुंचाते हैं॥ अर्थात् इन सब लोकों में वेदमन्त्र गान और यज्ञ होते हैं ॥ १० ॥

यह अनुष्टुप्छन्दों का (इन्द्रविषयक) प्रकरण समाप्त हुआ ॥

और यह चतुर्थोऽध्याय में दूसरी दशति भी पूर्ण हुई ॥२॥

अथ जागतमैन्द्रम्

विश्वा इत्यादिदशतौ जगत्योदश कीर्तिताः ।
दशमी च महापङ्क्तिर्नवमीं घृतवत्यृचम् ॥
रोदस्योः स्तुतये प्राहुः शिष्टा ऐन्द्र्यो मता दश ।

श्लोकार्थः-

"विश्वाः पृतना" इत्यादि (तीसरी) दशति में प्रथम ९ ऋचा और ११वीं का जगती छन्द है । बीच की १० वीं का महापङ्क्ति तथा ९ वीं (घृतवती०) के द्यावापृथिवी देवते और शेष सब का इन्द्र है ॥

अथ तृतीया दशतिस्तत्र-

प्रथमायाः-रेभ ऋषिः । इन्द्रोदेवता । जगती छन्दः ॥

२ ३ १२ ३१२३१२३१ २ ३१ २ ३१२
(३७०) विश्वाःपृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च
३१२ २ ३ १२३२३ १२३१ २र २११
राजसे। क्रत्वे वरेस्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं
३ १ २
तरस्विनम् ॥ १ ॥

भावार्थः-(नरः) मनुष्य लोग (सजूः) साथ मिल कर (विश्वाः पृतनाः अभिभूतरम्) सब शत्रुओं के तिरस्कृत करने वाले (वरे स्थेमनि) श्रेष्ठ अत्यन्त स्थिर सिंहासनारूढ़ (आमुरीम्) शत्रुगणमारक (उग्रम्) तेजस्वी (ओजिष्ठम्) अत्यन्त प्रतापी (तरसम्) बली (तरस्विनम्) वेगवान् (इन्द्रम्) राजा को (जजनुः) बनावें (उत) और उस को (राजसे) राज्य करने के लिये (च) और (क्रत्वे) यज्ञ करने के लिये (ततक्षुः) शस्त्रास्त्रादि सज्जित करें ॥

निघण्टु २। ९॥ २। १७ अष्टाध्यायी ३। ४। ९॥ ६। ४। १५१॥ ३। ४। ११७ के प्रमाण और ऋ० ८। ९७। १० का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये॥१॥

अथ द्वितीयायाः-सुवेदः शैलूषिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। जगती छन्दः॥

१ २ ३१ २ ३ २उ ३२३ ३ १२३२३१२
(३७१) श्रत्ते दधामि प्रथमाय मन्यवेऽहन्यद्दस्युं नर्यं विवेरपः।
३२उ ३ १२३ १२३२३ १ २ ३ १ २
उभे यत्त्वा रोदसी धावतामनु भ्यसात्ते शुष्मात्पृ-
३१ २
थिवी चिदद्रिवः॥ २ ॥

भावार्थः-(अद्रिवः) हे विद्युत्तुल्य तेजस्विन्! राजन्! (ते) आप के (प्रथमाय) मुख्य और विस्तृत (मन्यवे) तेज के लिये (श्रत् दधामि) श्रद्धा=आदर करता हूं। (यत्) जिस प्रताप से (नर्यम्) नरसम्बन्धी(दस्युम्) कर्मों के विघ्नकारक दुष्ट जन को (अहन्) मारते हो और (अपः) कर्मों को (विवेः) विस्तृत करते हो। (ते) आप के (शुष्मात्) बल से (पृथिवी) पृथ्वी (भ्यसात्) डरे (चित्) और (उभे) दोनों (रोदसी) द्युलोक पृथिवी लोक (त्वा) आप के (अनु धावताम्) अनुकूल चलें, अर्थात वृष्ट्यादि से द्युलोक और धान्यादि से पृथिवी आप के विमुख न हों। श्लेषालङ्कार में ईश्वर विषय में भी समझिये॥

निघण्टु १ । १० ॥ २ । १ ॥ १८॥ अष्टाध्यायी ३ । ४ । ८४ ॥ ३ । ४।८७ के प्रमाण और ऋ० १०।१४।१ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः–वामदेव ऋषिः । इन्द्रोदेवता । जगती छन्दः ॥

३ २ ३ २ ३ १ १ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २र ३
(३७२) समेत विश्वा ओजसा पतिं दिवो य एक इद्भूरतिथि-
१ २ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३
र्जनानाम् । स पूर्व्यो नूतनमाजिगीषन्तं वर्त्तनीरनुवावृत
२ ३ २
एक इत् ॥ ३ ॥

भावार्थः–(विश्वाः) हे सब प्रजावर्ग ! तुम (ओजसा) आत्मिक बल से (दिवः पतिम्) परमात्मा को (समेत) भले प्रकार शरण गहो (यः) जो (एकइत) एक ही (जनानाम्) प्राणियों वा मनुष्यों का (अतिथिः) सेवनीय (भूः) है और (सः) वही (पूर्व्यः) सनातन (आजिगीषन्तम् नूतनम्) विजय चाहने वाले नवीन धार्मिक राजा को (एकइत्) एक ही (वर्त्तनीः) मार्गों पर (अनुवावृते) चलाता अर्थात् विजय कराता है ॥

निघण्टु २ । १४ उणादि २ । १०६ अष्टाध्यायी ६ । १ । ७ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः–सव्य आङ्गिरस ऋषिः । इन्द्रोदेवता । जगती छन्दः ॥

३ १ २ ३ २ ३१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(३७३) इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुतये त्वारभ्य चरामसि
२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
प्रभूवसो । नहिं त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत्क्षोणीरिव
२ ३ १ २ ३ १ २
प्रति तद्धर्य नो वचः ॥ ४ ॥

भावार्थः–(प्रभूवसो) हे सर्वाधिकधनयुक्त ! (पुरुष्टुत) इसी से बहुस्तुत ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (ये इमे) ये जो प्रत्यक्ष मनुष्य हैं और (ते) वे जो परोक्ष हैं और (वयम्) हम सब (ते) आप ही के हैं और (त्वा)आपका (आरभ्य) अवलम्बन करके (चरामसि) वर्त्तते हैं (गिर्वणः)हे स्तुतियोग्य ! (त्वदन्यः) आपके अतिरिक्त कोई (गिरः) वेदवाणियों को (नहि) नहीं (सघत्) व्याप सका (तत्) इसलिये (नः) हमारा (वचः) स्तोत्र (प्रति हर्य) स्वीकार

कीजिये। दृष्टान्त-(क्षोणीरिव) जैसे पृथिवी अपने में उत्पन्न हुवे प्राणिमात्र को स्वीकार करती है ॥

निघण्टु १।१॥२।१४ इत्यादि के प्रमाण और ऋग्वेद १।५७।४ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये॥४॥

अथ पञ्चम्याः-विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रोदेवता। जगती छन्दः॥

३ १२ ३१२ ३ २ २ ३ १२ ३२
(३७४) चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्या३मिन्द्रं गिरो बृहती-
३क२र ३ १ २ ३१ २३ १३१२३
रभ्यनूषत। वावृधानं पुरुहूतꣳसुवृक्तिभिरमर्त्यं
१२ ३१ २
जरमाणं दिवे दिवे॥५॥

भावार्थः-(बृहतीः) बड़ी (गिरः) हमारी वाणी (चर्षणीधृतम्) मनुष्यों के धारक (मघवानम्)धन वा यश वाले (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय (वावृधानम्) बल धन आदि में बड़े (पुरुहूतम्) बहुत पुकारे हुवे (अमर्त्यम्) अमर (सुवृक्तिभिः दिवे दिवे जरमाणम्) सुन्दर वेदवाणियों से प्रतिदिन स्तुत किये जाने वाले (इन्द्रम्) परमेश्वर को (अभ्यनूषत) सर्वथा स्तुत करें॥

निघण्टु ३।८।१।९॥३।१४ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऋ० ३।५१।१ में भी॥५॥

अथ षष्ठ्याः-कृष्णआङ्गिरस ऋषिः। इन्द्रोदेवता। जगती छन्दः॥

१ २ ३ १३ ३१२ ३१२ ३२ ३ १ २ ३१
(३७५)अच्छा व इन्द्रं मतयः स्वर्युवः सध्रीचीर्विश्वा उशती-
२ १२ ३ १२३ २३ २३ २३१३२
रनूषत। परिष्वजन्त जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं
३१२ ३१२
मघवानमूतये॥६॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! (वः) तुम्हारी (स्वर्युवः) परमानन्द चाहने वाली (सध्रीचीः) सीधी सच्ची (उशतीः) कामना करती हुईं (विश्वाः मतयः) सारी बुद्धियें (अच्छ) अच्छे प्रकार (इन्द्रम्) परमेश्वर को (अनूषत) स्तुत करें। दृष्टान्त-(न) जैसे (शुन्ध्युम्) शुद्ध (मघवानम्) धनवान् (मर्यम्) मनुष्य को (ऊतये) धनधान्य द्वारा अपनी रक्षा के लिये स्तुत करते हैं तद्वत्। दूसरा दृष्टान्त-(यथा) जैसे (जनयः) स्त्रियें (पतिम्) पति को (परिष्वजन्त) आलिङ्गन करती हैं तद्वत्॥

मनुष्यों का जितना प्रेम स्त्री पुरुष के परस्परभाव में है, अथवा जितनी कामना और दीनता प्रार्थना धनादि पदार्थों के लिये करते हैं, यदि इतना प्रेम और इतनी नम्रता परमेश्वर के प्रति धारण करें तो अवश्य परमानन्द की प्राप्ति और संसार से रक्षा हो ॥

अष्टाध्यायी ३ । २ । १७७ का प्रमाण और ऋ० १० । ४३ । १ में जो पाठ-भेद है वह संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः—सव्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । जगती छन्दः ॥

१ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(३७६) अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो

३ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
अर्णवम् । यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषं भुजे

२र ३ १ २र
मꣳहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥ ७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! (त्यम्) उस (मेषम्) कामपूरक (पुरुहूतम्) बहुतों से पुकारे हुवे (ऋग्मियम्) ऋचाओं से जानने योग्य (वस्वः अर्णवम्) धन के समुद्र (इन्द्रम्) परमात्मा को (गीर्भिः) वाणियों से (मदत) प्रसन्न करो (यस्य) जिस की (द्यावः न) किरणों सी (मानुषम्) मनुष्य मात्र में (अभि) व्याप कर (विचरन्ति) सर्वत्र वर्तमान हैं । (भुजे) परमानन्द भोगने के लिये उस (मंहिष्ठम्) अत्यन्त पूजनीय (विप्रम्) मेधावी को (अभि अर्चत) सर्वतः पूजित करो ॥ ऋ० १ । ५१ । १ में "मानुषा" पाठ है ॥ ७ ॥

अथाष्टम्याः—ऋष्यादिकं पूर्ववत् ॥

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १
(३७७) त्यꣳ सु मेषं महया स्वर्विदꣳ शतं यस्य सुभ्वः साक-

२र २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३
मीरते । अत्यं न वाजꣳ हवनस्यदꣳ रथमेन्द्रं ववृत्या-

१ २ ३ १ २
मवसे सुवृक्तिभिः ॥ ८ ॥

भावार्थः—(यस्य) जिस की (शतम्) असंख्य (सुभ्वः) सुन्दर भूमियें (सुवृक्तिभिः) सुन्दर ऋचाओं के साथ (साकम्) एक साथ ही (ईरते)

घूमती हैं (त्यम्) उस (मेषम्) कामना के पूरक (स्वर्विदम्) आनन्द के दाता (इन्द्रम्) परमेश्वर को (अवसे) रक्षार्थ (सु मंहय) भले प्रकार पूज, कि मैं उसे (आवदृत्याम्) सब ओर वर्त्तमान करूं। दृष्टान्त-(न) जैसे (अत्यम्) अग्निमय आदि घोड़ों वाले (वाजम्) बलयुक्त (हवनस्यदम्) मार्ग पर चलने वाले (रथम्) विमानादि को सब ओर वर्त्तते हैं तद्वत्॥

परमेश्वर की असंख्य भूमि (लोक) आपस में नहीं टकराती हुई एक साथ घूम रही हैं और ये भूमियें (लोक लोकान्तर) परमात्मा में इस प्रकार वर्त्तमान हैं जिस प्रकार रथ में बैठे लोग अपने २ अभीष्ट स्थान को पहुंचते हैं, कोई किसी से टक्कर नहीं मारता। निरुक्त ७। ४ में भी लिखा है कि "परमात्मा ही इन पृथिवी सूर्यादि का रथ और अश्व है" वही सब का उपास्य देव है॥ ऋ० १। ५२। १ में भी॥ ८॥

अथ नवम्याः—भरद्वाज ऋषिः। रोदसी देवते। जगती छन्दः॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(३७८) घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे
३ १ २ २ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
सुपेशसा। द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते
३ २ ३ १ २
अजरे भूरिरेतसा॥ ९॥

भावार्थः—हे परमेश्वर! (वरुणस्य) वरणीय आप के (धर्मणा) धारण से (घृतवती) उदक वाली (भुवनानाम्) लोक लोकान्तरों को (अभिश्रिया) आश्रय करने योग्य (उर्वी) बड़ी (पृथ्वी) विस्तार वाली (मधुदुघे) जल को पूरित करने वाली (सुपेशसा) सुन्दर रूप वाली (अजरे) न जीर्ण हुई (भूरिरेतसा) बहुत बीज वाली (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी (विष्कभिते) ठहरी हैं॥

अष्टाध्यायी ७। १। ३९ निघण्टु १। १२॥ ३। १॥ ३। ७ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ऋ० ६। ७०। १ में भी॥ ९॥

अथ दशम्याः—मेधातिथिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। महापङ्क्तिश्छन्दः॥

(षडऽष्टाऽष्टाक्षराःपादा द्वौ चार्द्धर्चावऽधीमहे)

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(३७९) उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव । महान्तं त्वा
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
महीनाᳬ सम्राजं चर्षणीनाम् । देवी जनित्र्यजीज-
३ १ २र
नद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ १० ॥

भाषार्थः-(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यत्) जो कि आप (उषाइव) उषा के समान (उभे रोदसी) दोनों द्युलोक और पृथिवी लोकों को (आ पप्राथ) सर्वतः अपनी ज्योति से पूरित कर रहे हैं, इस लिये (देवी) दिव्य (जनित्री) जगज्जननी आप की ज्योति (महीनाम्) बड़ों के (महान्तम्) बड़े और (चर्षणीनाम् सम्राजम्) मनुष्यादि के राजा (त्वा) आप को (अजीजनत्) प्रकट करती है । (भद्रा) शोभना (जनित्री) जगत् की जननी आप की ज्योति आप को (अजीजनत्) प्रकट करती है ॥ दो बार कहना अतिशय अर्थ में है ॥

अष्टाध्यायी ३ । ४ । ६ ॥ ६ । ४ । ५३ ॥ ३ । २ । १३५ ॥ ४।१।५ इत्यादि प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १० । १३४ । १ में भी ॥ १० ॥

अथैकादश्याः-कुत्स ऋषिः । इन्द्रोदेवता । जगती छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(३८०) प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरह-
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
न्नृजिश्वना । अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं
३ १ २
सख्याय हुवेमहि ॥ ११ ॥

इति तृतीया दशतिः ॥३॥

भाषार्थः-परमेश्वर का उपदेश है कि हे मनुष्यो ! (मन्दिने) प्रशंसनीय इन्द्र विद्युत् के लिये (पितुमत्) हव्ययुक्त (वचः) वचन को (प्र अर्चत) सुसंस्कृत करो (यः) जो कि (कृष्णगर्भाः) काले मेघ के गर्भरूप जल को (ऋजिश्वना) अपनी सरल वृद्धि से (निरहन्) गिराता है । किस प्रकार वचन कहें ? कि (वृषणम्) वृष्टिकारक (वज्रदक्षिणम्) उत्तम वज्रयुक्त

(मरुत्वन्तम्) वायुगणसहित इन्द्र को (सख्याय) अनुकूलता के लिये (अव-स्यवः) अपनी धनधान्यादि से रक्षा चाहने वाले हम (हुवेमहि) हवन करते हैं, इस प्रकार ॥

निरुक्त ४। २४ विवरणकार और सत्यव्रत सामश्रमी॥ निघण्टु २ ७ इत्यादि के प्रमाण और ऋ० १। १०१।१ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥११॥

यह इन्द्रविषयक जगती छन्दों का प्रकरण और

* चतुर्थाऽध्याय में तीसरी दशति पूर्ण हुई ॥ ३ ॥ *

—:*:—

इन्द्रेतीन्द्रस्य दशतावुष्णिहो दश कीर्त्तिताः ॥

अथ चतुर्थी दशतिस्तत्र-

प्रथमायाः—नारद ऋषिः । इन्द्रोदेवता । उष्णिक्छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ उ २ क

(३८१) इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम् ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

विदे वृधस्य दक्षस्य महाँहि षः ॥ १ ॥

भावार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (सोमेषु) सोमादि ओषधियां (सुतेषु) तैयार होने पर (उक्थ्यम्) स्तोत्रयुक्त (क्रतुम्) यज्ञ को (पुनीषे) आप पवित्र करते हैं। (सः हि) वही यज्ञ (वृधस्य) बड़े (दक्षस्य) बल के (विदे) लाभ के लिये (महान्) बड़ा है ॥

निघण्टु २ । ९ का प्रमाण और ऋ० ८। १३। १ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनावृषी । इन्द्रोदेवता । उष्णिक्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २

(३८२) तमु अभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र

इन्द्रं गीर्भिस्तविषमाविवासत ॥ २ ॥

भावार्थः—हे उद्गाताओ ! (पुरुहूतम्) बहुत पुकारे हुवे (पुरुष्टुतम्) बहुत स्तुत किये हुवे (तविषम्) महान् (तम् उ) उस ही (इन्द्रम्) पर-

मेश्वर को (अभि प्र गायत) मुख्य करके स्तुत करो और (गीर्भिः) वाणियों से (आविवासत) सेवित करो ॥

निघण्टु३ । ३ ॥ ३ । ५ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । १५ । १ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः-ऋष्याद्याः पूर्ववत् ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

(३८३) तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम् ।

३ १ २ ३ १ २

उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ ३ ॥

भावार्थः-(अद्रिवः) हे मेघों और पर्वतों के स्वामी । (तम्)उस (ते) आप के (वृषणम्) कामनापूरक (पृक्षु सासहिम्) कामादि शत्रुओं के दबाने वाले (उ) और (लोककृत्नुम्) लोकों के कर्त्ता (हरिश्रियम्) व्यापक हैं शोभायें जिस की ऐसे (मदम्) आनन्दस्वरूप को (गृणीमसि) हम प्रशंसित करते हैं ॥

निघण्टु २ । १७ ॥ १ । १० अष्टाध्यायी ७ । २ । ८० ॥ ७ । १ । ४६ के प्रमाण और ऋ० ८ । १५ । ४ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः-पर्वत ऋषिः । इन्द्रोदेवता । उष्णिक्छन्दः ॥

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

(३८४) यत्सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥ ४ ॥

भावार्थः-(इन्द्र) हे परमेश्वर । (विष्णवि) सर्वव्यापक आप में (यत्सोमम्) जो अमृत है (घ) निश्चय (आप्त्ये) आप्त योगियों में हुवे (त्रिते) इडा पिङ्गला सुषुम्णा के समुदाय में जो अमृत है (यद्वा) अथवा (मरुत्सु) प्राणों में जो अमृत हैं (यद्वा) अथवा अन्यत्र जहां जहां अमृत है वहां वहां (इन्दुभिः) अमृतों से, आप ही (सम् मन्दसे) भले प्रकार आनन्दित करते हैं ॥ अर्थात् जहां २ मनुष्य प्राणादि में अमृत पाता है वहां २ सब आप ही का आनन्द है ॥ ऋ० ८ । १२ । १६ में भी ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः-विश्वमना वैयश्व ऋषिः । इन्द्रोदेवता । उष्णिक्छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(३८५) एदु मधोर्मदिन्तरꣳसिञ्चाध्वर्यो अन्धसः ।

३ २उ ३ १ २र ३ १ २

एवा हि वीरः स्तवते सदावृधः ॥ ५ ॥

भावार्थः—(अध्वर्यो) हे यज्ञ के नेता ! (मधोः अन्धसः) मधुररसयुक्त हव्यान्न के (मदिन्तरम्) अति हर्ष वा पुष्टिकारक रस को (आ सिञ्च) होम कर (एवा हि) ऐसा करने से (सदावृधः) सदा बढ़ने वाला (वीरः) गतिशील विद्युत् (स्तवते) अर्चित होता अर्थात् उस का यजन होता है ॥ (उ, इत्) ये दो पद निरुक्त १ । ९ के अनुसार मिताक्षर ऋचाओं में पादपूरणार्थ हैं ॥

"मधोः" में नपुंसकलिङ्ग का व्यत्यय से पुंल्लिङ्गवद्रूप होगया ॥ मदिन्तर में नकार का लोप आर्ष मानकर न हुवा और चारों पुस्तकों में नकारसहित ही पाठ देखा जाता है । वीरः यह विसर्गसहित पाठ यद्यपि सामवेद के मूल पुस्तकों में नहीं देखा जाता परन्तु ऋग्वेद ८ । २४ । १६ में " मध्वः " तथा " सिञ्च वाध्वर्यो " और " वीरः " ये पाठ देखे जाते हैं और सामवेदस्थ सायणभाष्य में भी " वीरः " पाठ की व्याख्या है, अतः हम भी " वीरः " पाठ ही निश्चित समझते हैं ॥ स्तवते में विकरण का व्यत्यय है ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ्याः—ऋष्यादयः पूर्ववत् ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

(३८६) एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।

१ २र ३ २

प्र राधाꣳसि चोदयते महित्वना ॥ ६ ॥

भावार्थः—हे ऋत्विजो ! (इन्द्राय) विद्युत् के लिये (इन्दुम्) सोम रस का (आ सिञ्चत) आसेचन=हवन करो वह (सोम्यम्) सोम सम्बन्धी (मधु) रस को (पिबाति) पीता=शोषता है और (महित्वना) अपनी वृद्धि से (राधांसि) धनधान्यादि को (प्रचोदयते) वृद्ध्यर्थ प्रेरणा करता है ॥ निघण्टु २ । १० का प्रमाण और ऋ० ८ । २४ । १३ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः—ऋष्यादिकमुक्तवत्

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(३८७) एतो न्विन्द्रꣳ स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् ।
३ १ २र ३ २उ ३ २
कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥ ७ ॥

भावार्थः-(सखायः) हे मित्रो ! (एत उ) आइये २ (यः) जो कि (एक इत्) एक ही (विश्वाः कृष्टीः) सब मनुष्यों को (अभ्यस्ति) तिरस्कृत करने में समर्थ है उस (स्तोम्यम्) स्तुतियोग्य (नरम्) सब के नायक (इन्द्रम्) इन्द्र पद के मुख्य वाच्य परमेश्वर को (नु) शीघ्र (स्तवाम) स्तुत करें॥

मनुष्यों को यज्ञारम्भ में परमात्मा की स्तुति करनी चाहिये । क्योंकि वही इन्द्रादि पदों का मुख्य वाच्य है ॥ ऋ० ८ । २४ । १९ में भी ॥ ७ ॥

अथाऽष्टम्याः-नृमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । उष्णिक्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ ३ २
(३८८) इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ ८ ॥

भावार्थः-(ब्रह्मकृते) वेद के कर्त्ता (विपश्चिते) ज्ञानदाता (विप्राय) मेधावी सर्वज्ञ (बृहते) महान् (पनस्यवे) पूजनीय (इन्द्राय) इन्द्र पद के मुख्य वाच्य परमेश्वर के लिये (बृहत्) बृहत् नामक वा बड़ा (साम गायत) सामगान करो ॥

निघण्टु ३ । १५ ॥ ३ । १४ के प्रमाण और ऋ० ८ । ९८ । १ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ८ ॥

अथ नवम्याः-गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । उष्णिक्छन्दः ॥

२उ ३ २ ३ १ २ ३ २ १ १ २ ३ १ २
(३८९) य एक इद्विदयते वसु मर्त्ताय दाशुषे ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ ९ ॥

भावार्थः-(यः) जो (ईशानः) सर्वेश्वर (अप्रतिष्कुतः) जिस के प्रति कोई शब्द नहीं कर सकता ऐसा (इन्द्रः) परमेश्वर (एकः इत्) एक ही (दाशुषे) दानी (मर्त्ताय) पुरुष के लिये (अङ्ग) शीघ्र (वसु) दानानुसारि धनादि (वि दयते) विशेष करके देता है ॥

निरुक्त ५। १३ अष्टाध्यायी ६। १। १२ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऋ० १। ८४। ७ में भी॥ ९॥

अथ दशम्याः—विश्वमना ऋषिः। इन्द्रो देवता। उष्णिक्छन्दः॥

१२ ३ १ २ ३ १ २२ ३ १ २
(३९०) सखाय आशिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे।
३२ ३ २ ३ १२ ३ १२
स्तुष ऊ षु वो नृतमाय धृष्णवे॥ १०॥

इति चतुर्थी दशतिः॥ ४॥

इति चतुर्थः प्रपाठकः॥ ४॥

भावार्थः—(सखायः) हे मित्रो! (वः) तुम्हारे (नृतमाय) अत्यन्त नेता (धृष्णवे) सब को धर्षित कर सके और धर्षित न हो सके ऐसे (वज्रिणे) पापियों के दण्डप्रदाता (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (ब्रह्म) वेदोक्त (स्तुषे) स्तोत्रपाठ करो (उ) और हम भी (सु आ शिषामहे) भले प्रकार प्रार्थना करते हैं॥

अष्टाध्यायी ३। १। ८५॥ ६। ३। १३६॥ ८। ३। १०७ इत्यादि प्रमाण और ऋ० ८। २४। १ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये॥ १०॥

* यह चतुर्थाध्याय में चतुर्थी दशति समाप्त हुई॥ ४॥

गृणे तदिति पञ्चम्यां दशतावष्ट कीर्तिताः।
आदित्यः पञ्चमीषष्ठ्योः शिष्टा ऐन्द्रय ऋचश्च षट्॥
अष्टमी च विराडुक्ता पूर्वाः सप्तोष्णिहस्तथा।

श्लोकार्थः—

गृणे इत्यादि ५ वीं दशति में सब ८ ऋचा हैं। जिन में ६। ७ वीं का आदित्य देवता है, शेष का इन्द्र। और आठवीं का विराट् छन्द है, शेष ७ का उष्णिक्॥

* अथ पञ्चमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः *

तथा

चतुर्थोऽध्याये पञ्चमी दशतिस्तत्र—

प्रथमायाः—प्रगाथ ऋषिः । इन्द्रोदेवता । उष्णिक्छन्दः ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(३९१) गृणे तदिन्द्र ते शव उपमां देवतातये ।

१ २र ३ १ २र
यद्धंसि वृत्रमोजसा शचीपते ॥ १ ॥

भावार्थः—(शचीपते) कर्मों के पति ! परमेश्वर ! वा कर्म के प्रधान साधनभूत ! विद्युत् ! (ते) तेरे (तत्) उस (शवः) बल को (देवतातये) योगयज्ञ वा कर्मयज्ञ के लिये (उपमाम्) उत्कृष्टतापूर्वक (गृणे) वर्णित करता हूं (यत्) जिस (ओजसा) बल से (वृत्रम्) पाप वा मेघ को (हंसि) हनन करते हो ॥

निघण्टु ३ । १७ ॥ २ । १ ॥ १ । १० अष्टाध्यायी ४ । ४ । १४२ के प्रमाण और ऋ० ८ । ६२ । ७ का पाठभेदादि संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः—भरद्वाज ऋषिः । इन्द्रोदेवता । उष्णिक्छन्दः ॥

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(३९२) यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयन् ।

३ १ २र ३ १ २र
अयंस सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ २ ॥

भावार्थः—(इन्द्र) मेघवर्षक ! विद्युत् ! (यस्य) जिस सोम के (मदे) हर्ष में (त्यत् शम्बरम्) उस मेघ को (दिवोदासाय) पृथिवी से निकलने वाले ऊष्मा के लिये (रन्धयन्) गिराता हुवा होता है (सः अयं सोमः) वह यह सोम (ते) तेरे लिये (सुतः) खींचा है (पिब) [इस हवन किये हुवे को] पी ॥

जब मनुष्य सोमादि ओषधियों को होम करते हैं तब इन्द्र नामक मेघ वर्षाने वाली बिजुली को मद (हर्ष) होता है और वह दिवोदास के लिये मेघ को वर्षाता है । द्युलोक का दास एक प्रकार का ऊष्मा है जो सदा भी पृथिवी से निकलता रहता है और मेघ वर्षने पर विशेष करके । वह घास पात अन्न आदि का उत्पादक है । वही दिवोदास है । यह हम पूर्व व्याख्यान कर चुके हैं । बिजुली का भले प्रकार अपना काम करना ही हर्ष जानिये । त्यत् शब्द तत् शब्द का पर्याय है । पुल्लिङ्ग का नपुंसकलिङ्ग व्यत्यय है ॥

निघण्टु १ । १० में शम्बर नाम मेघ और १ । १२ में जल और २ । ९ में

बल का नाम है ॥ ऋग्वेद ६ । ४३ । १ में "रन्धयः" पाठ है ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः—नृमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । उष्णिक्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २
(३९३) एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(इन्द्र) विद्युत् ! (नः प्रिय) हमारे प्यारे ! (सत्राजित्) सब मेघों को जीतने वाले ! (अगोह्य) प्रकाशमय होने से न छिपने योग्य ! (गिरिः न) मेघ के समान (विश्वतः पृथुः) सब ओर फैला हुआ (दिवः) अन्तरिक्ष का (पतिः) पालक तू (आ गधि) सब ओर व्यापता है ॥

जडसंबोधन वेद की शैली है, यह बहुत वार व्याख्यात कर चुके हैं । गिरि मेघ का नाम है । निघण्टु १ । १० ऋ० ८ । ९८ । ४ में "प्रियः सत्राजिदगोह्यः" पाठ है ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः—पर्वत ऋषिः । इन्द्रो देवता । उष्णिक्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(३९४) य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति ।
२ ३ २ ३ २ २ ३ १ २
येनाहꣳसि न्याऽत्रिणं तमीमहे ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(शविष्ठ) हे बलिष्ठ ! (इन्द्र) विद्युत् ! (यः मदः) जो तेरा हर्ष (चेतति) तीव्र होता है और (येन) जिस से (सोमपातमः) सोम का अत्यन्त पीने वाला तू (अत्रिणम्) मेघ को (आ—नि—हंसि) गिराता है (तम्) उस हर्ष को, हम (ईमहे) चाहते हैं ॥

निघण्टु ३ । १९ ॥ २ । ९ अष्टाध्यायी ५ । २ । १२२ ॥ ५ । ३ । ५५ ॥ ५ । ३ । ६५ ॥ ६ । ४ । १५५ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ८ । १२ । १ में भी ॥४॥

अथ पञ्चम्याः—इरिम्बिठ ऋषिः । आदित्या देवताः । उष्णिक्छन्दः ॥

३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(३९५) तुचे तुनाय तत्सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे ।
१ २ ३ १ २
आदित्यासः सुमहसः कृणोतन ॥ ५ ॥

भावार्थः—हे परमेश्वर ! (सुमहसः) सुप्रकाशित (आदित्यासः) अदिति=द्यौ के पुत्र सूर्यादि लोक (नः) हमारे (तुचे) पुत्र और (तनाय) पौत्रादि के लिये (जीवसे) जीवनार्थ (तत्) उस (द्राघीयः) अतिदीर्घ (आयुः) आयु को (कृणोतन) करें ॥

अर्थात् आप की कृपा से सूर्यादि लोकों के प्रकाशादि फल हमारे सन्तानों की आयु के वर्धक हों ॥

निघण्टु २ । २ ऋग्वेद १ । ८९ । १० इत्यादि के प्रमाण और ऋ० ८ । १८ । १८ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ५ ॥

अथ षष्ठयाः—विश्वमना ऋषिः । आदित्योदेवता । उष्णिक्छन्दः ॥

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
(३९६) वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २
अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥ ६ ॥

भावार्थः—(वज्रहस्त) हे वज्रतुल्य तीव्र किरण वाले सूर्य्य ! (शुन्ध्युः) शोधने वाला तू (अहरहः) प्रतिदिन (निर्ऋतीनाम्) अन्धकारों के (परिवृजम्) वर्जन को (वेत्थ हि) अवश्य जानता है । (परिपदामिव) जैसे कि प्रातःकाल चारों ओर जाने वाले पक्षियों को अपने २ घोसलों के वर्जने=छोड़ने को ॥

जिस प्रकार सूर्योदय होते ही पक्षिगण अपने घोंसले छोड़ भाग जाते हैं, इसी प्रकार अन्धकार का दूर करना सूर्य भले प्रकार जानता है । अर्थात् अन्य कोई सूर्य्य के समान अन्धकार का वर्जने वाला नहीं है । जो काम जिस से अच्छा बनता है उसी को उस का जानने वाला कहा जाता है, चाहे जड़ हो, चाहे चेतन । निर्ऋति शब्द मृत्यु देवता राक्षस का पर्य्याय है । वह तामसी अन्धकार कोटि में है । प्रकाश देवकोटि में है । जैसे अमृत मृत्यु को वर्जता है, वैसे ही प्रकाश अन्धकार को ॥ ऋ० ८ । २४ । २४ में भी ॥६॥

अथ सप्तम्याः—इरिमिठ ऋषिः । आदित्योदेवता । उष्णिक्छन्दः ॥

१ २र ३ २३ २ ३ १ २ ३ २
(३९७) अप मीवामपस्त्रिधमपसेधत दुर्मतिम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २
आदित्यासो युयोतना नो अꣳहसः ॥ ७ ॥

भापार्थः-(आदित्यासः) सूर्यकिरणें (अमीवाम्) रोग को (अपसेधत) वर्जती हैं (स्त्रिधम्) बाधक दस्यु चौरादि को (अप) वर्जती हैं (दुर्मतिम्) कामादि विकार से दुष्ट बुद्धि को (अप) वर्जित करती हैं (नः) हम को (अंहसः) पाप से (युयोतन) पृथक् करती हैं ॥

अवश्य सूर्य की किरणों से कई रोग दूर होते हैं, चौरादि का भय निवृत्त होता है, रात्रि में स्वाभाविक रीति पर कामादि के विकार उत्पन्न होते हैं उन को भी सूर्य की किरणें हटाती हैं। इस लिये किसी अंश में दुर्मति और पाप से बचाना भी संभव है ॥ ऋ० ८। १८। १० में भी ॥ ७॥

अथाऽष्टम्याः-वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्रो देवता। विराट् छन्दः ॥

२ ३ १ २ १ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(३९८) पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वाऽयं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सोतुर्बाहुभ्याꣳसुयतो नार्वा ॥ ८ ॥

* इति चतुर्थाध्याये पञ्चमी दशतिः ॥ ५ ॥ *

भाषार्थः-(हर्यश्व) हे हरणशील किरणों वाले ! (इन्द्र) विद्युत ! वा सूर्य ! (सोतुः बाहुभ्याम्) सोमाऽभिषव करने वाले की बाहुओं से (अयम् अद्रिः) यह पाषाण [ग्रावा] (सोमम् सुषाव) सोम को अभिषुत करता है। (न) जैसे (सुयतः अर्वा) सुशिक्षित घोड़ा [सारथि के हाथों से प्रेरणा किया हुवा अभीष्ट स्थान को पहुंचाता है तद्वत्]। उस सोम को (पिब) ग्रहण कर। वह सोम (त्वा) तुझे (मन्दतु) हृष्ट करे ॥

मनुष्यों को योग्य है कि उत्तमोत्तम ग्रावों से सोमरस अभिषुत करके सूर्य के लिये होमें। इस से सूर्य को हर्ष-अनुकूलप्रवृत्ति होती है। और जिस प्रकार सुशिक्षित घोड़ा सारथि के हाथों से अभीष्ट मार्ग में प्रवृत्त रहता है, इसी प्रकार भले प्रकार के ग्रावा भी अभीष्ट उत्तम रस अभिषुत करते हैं। पत्थर के उन साधनों को ग्रावा कहते हैं जिन से सोम अभिषुत होता है। ऋ० ७। २२। १ में भी ॥ ८॥

* यह चतुर्थाध्याय में पांचवीं दशति पूर्ण हुई ॥ ५ ॥ *

अभ्रातृव्येति दशतौ ककुभो दश संख्यया।
तृतीया मरुतां षष्ठी चेन्द्रस्याऽष्ट प्रकीर्त्तिताः ॥१॥

अथ षष्ठी दशतिस्तत्र—

प्रथमायाः—सौभरिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। ककुप्छन्दः॥

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
(३९९) अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि॥
३१ २३ १२
युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥

भावार्थः—(इन्द्र) हे राजन्! (त्वम्) तू (सनात्) सदा से (जनुषा) जन्म से (अभ्रातृव्यः) शत्रुरहित (अना) सैनिकादि नररहित और (अनापिः) सुहृद् वा ज्ञातिरहित है (इत्) तथापि (युधा) युद्धादि राजकार्यों के साथ (आपित्वम्) सौहार्द को (इच्छसे) चाहता है॥

अष्टाध्यायी ४।१।१४५॥ ५।४।१५८ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥ ऋ० ८।२१।१३ में भी॥ १॥

अथ द्वितीयायाः—सौभरिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। ककुप्छन्दः॥

१ २३१२ ३१ २र ३ २ ३ १ २
(४००) यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु वः स्तुषे।
१२ ३ १२ ३१२
सखाय इन्द्रमूतये ॥ २ ॥

भावार्थः (सखायः) हे मित्रो! (यः) जो राजा (नः) हमारे लिये (पुरा) प्रथम (इदम् इदम्) देखने योग्य इस (वस्यः) धनादि, उत्तम पदार्थ को (प्र आनिनाय) लाकर देता है (तम् उ) उस ही विजयी(इन्द्रम्) राजा की (वः) तुम्हारी (ऊतये) रक्षा के लिये (स्तुषे) प्रशंसा करता हूं॥

वसीयः के स्थान में वस्यः यह आर्ष ईकार का लोप है॥ ऋ० ८।२१। ९। में भी॥ २॥

अथ तृतीयायाः सौभरिर्ऋषिः। मरुतो देवताः। ककुप्छन्दः॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(४०१) आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थात समन्यवः।
३१ २
दृढा चिद्यमयिष्णवः ॥ ३ ॥

भाषार्थः-(प्रस्थावानः) हे युद्धार्थ प्रस्थान करने वालो ! मरुतो ! युद्धयज्ञ के ऋत्विजो ! (मा आगन्त) उलटे मत आओ (मा अपस्थात) युद्धविमुख मत होओ किन्तु (यमयिष्णवः) शत्रुओं को वश में लाने वाले तुम (समन्यवः) क्रोधसहित (दृढा) दृढ (चित्) भी शत्रुसैन्यों को (रिखयत) मारो॥

विवरणकारानुकूल सामश्रमी सत्यव्रत जी, अष्टाध्यायी ७। ४। ३६ निरुक्त १। ४ के प्रमाण और ऋग्वेद ८। २०। १ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये॥३॥

अथ चतुर्थ्याः-सौभरिर्ऋषिः। इन्द्रोदेवता। ककुप्छन्दः॥

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(४०२) आयाह्ययमिन्दवेऽश्वपते गोपत उर्वरापते।
१ २
सोमꣳ सोमपते पिब ॥ ४ ॥

भाषार्थः-(अश्वपते) हे घोड़ों के स्वामिन् ! (गोपते) गौवों के स्वामिन् ! (उर्वरापते) धान्ययुक्त पृथिवी के स्वामिन् ! (सोमपते) सोमादि ओषधि वर्ग के रक्षक और स्वामिन् ! (सोमं पिब) सोमरस पीजिये और (इन्दवे) आप प्रकाशमान के लिये (अयम्) यह मैं (आयाहि) प्राप्त होता हूं॥

जब कि राजा विजय करता है तब सोमादि की भेंट लिये शत्रुगण उपस्थित होते हैं कि घोड़े, गौ, पृथिवी आदि सब के आप स्वामी हैं, भेंट ग्रहण कीजिये॥ ऋ० ८। २१। ३ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ४॥

अथ पञ्चम्या-ऋष्याद्या उक्ताः॥

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
(४०३) त्वया ह स्विद्युजा वयं प्रति श्वसन्तं वृषभ
३ १ २र ३ १ २
ब्रुवीमहि। सꣳस्थे जनस्य गोमतः॥ ५॥

भाषार्थः-(वृषभ) हे कामों के पूरा करने वाले ! राजन् ! (वयम्) हम सेनापत्यादि लोग (त्वया ह स्वित्) आप ही की (युजा) सहायता से (गोमतः जनस्य संस्थे) जीवते वीर के मरने पर (प्रति) उस के स्थान में दूसरे (श्वसन्तम्) जीवते हुवे को (ब्रुवीमहि) युद्धार्थ बुलाते हैं॥ ऋ० ८। २१। ११ में भी॥ ५॥

अथ षष्ठ्याः-सौभरिर्ऋषिः । मरुतो देवताः । ककुप्छन्दः ॥

१ २ ३क २र ३ २ ३ १ २

(४०४) गावश्चिद्घा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २

रिहते ककुभो मिथः ॥ ६ ॥

भावार्थः-(मरुतः) युद्धयज्ञ के ऋत्विज् वीर पुरुष (समन्यवः) समान तेज वाले (सजात्येन मिथः सबन्धवः) समान जाति होने से आपस में भाई भाई (ककुभः) दिशाओं को (रिहते) चाटते=व्यापते हैं । दृष्टान्त-(चित् घ गावः) जिस प्रकार सूर्य की किरणें समान तेज वाली और एक सूर्य से जन्मने के कारण सबन्धु होकर दिशाओं को व्यापती हैं तद्वत् ॥

निघण्टु १ । ५ में " गावः " किरण का नाम है ॥ ऋ० ८ । २० । २१ में भी ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः-नृमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । ककुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(४०५) त्वं न इन्द्राऽऽभर ओजो नृम्णꣳशतक्रतो विचर्षणे ।

२ ३ १ २ ३ १ २

आ वीरं पृतनासहम् ॥ ७ ॥

भावार्थः-(शतक्रतो) हे बहुकर्मन् ! (विचर्षणे) बहुत चरादि द्वारा प्रजा का भेद देखने वाले ! (इन्द्र) राजन् ! (त्वम्) आप (नः) हमारे लिये (ओजः) बल और (नृम्णम्) धन (आभर) भरती कीजिये । तथा (पृतनासहम्) संग्राम के सहने वाले (वीरम्) वीर पुरुष (आ) भरती कीजिये ॥

राजा को योग्य है कि सेनाध्यक्ष के लिये धन, बल और वीर पुरुष भरती रक्खे ॥ ऋ० ८ । ९८ । १० में भी ॥ ७ ॥

अथाऽष्टम्याः- ऋष्याद्या उक्ताः ॥

२ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(४०६) अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

उदेव ग्मन्त उद्भिः ॥ ८ ॥

भावार्थः–(गिर्वणः) हे वाणी से सेवनीय ! (इन्द्र) राजन् ! (त्वा) आप से (ईमहे) हम याचना करते हैं (अध हि) तब ही (कामः) अभीष्ट कामना को (उप ससृग्महे) समीप स्पर्श करते हैं । दृष्टान्त–(इव) जैसे (उदा यन्तः) जल के साथ चलने वाले (उदभिः) जलों से स्पर्श करते हैं॥ अर्थात् जो जल के समीप जाते हैं वे जलों को जैसे प्राप्त होते वा जो जल में घुसते हैं वे जैसे सब ओर से तर हो जाते हैं, इसी प्रकार जब हम सर्वैश्वर्य सम्पन्न के समीप जाकर याचना करते हैं तौ कामना तत्काल पूरी होती है॥

निघण्टु ३ । १९ ॥ अष्टाध्यायी ७ । १ । ३९ ॥ ४ । ३ । ११७ के प्रमाण और ऋ० ८ । ९८ । ७ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ८ ॥

अथ नवम्याः–सौभरिर्ऋषिः । इन्द्रोदेवता । ककुप्छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(४०७) सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे
३ १ २ ३ १ २र
विवक्षणे । अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥ ९ ॥

भावार्थः–(इन्द्र) हे राजन् ! (गोश्रीते) पृथिवी पर पके (मधौ) मधुर रस वाले (मदिरे) हर्षकारक (विवक्षणे) प्राण पहुंचाने वाले धान्यादि पर (यथा) जैसे (वयः) पक्षिगण आते हैं। इसी प्रकार सुखेच्छु हम लोग (ते) आप को (सीदन्तः) प्राप्त होते हुवे (त्वाम्) आप को (अभि नोनुमः) अभिमुखता से अत्यन्त प्रणाम करते हैं ॥

ईश्वर के विषय में भी इसी प्रकार लगाना चाहिये ॥ ऋ० ८ । २१ । ५ में भी ॥ ९ ॥

अथ दशम्याः–ऋष्यादिकमुक्तम् ॥

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
(४०८) वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः ।
१ २ ३ १ २
वज्रिञ्चित्रꣳहवामहे ॥ १० ॥

* इति चतुर्थाऽध्याये षष्ठी दशतिः ॥ ६ ॥ *

भावार्थः–(वज्रिन्) हे दण्डधर ! (अपूर्व्य) अभिनव ! युवक ! राजन् ! (अवस्यवः) अपनी रक्षा चाहते हुवे (वयम्) हम लोग (चित्रम्) विविध

कर्म वाले (त्वाम्) आप को (भरन्तः) कर देने आदि से भरते हुवे (उ) आप को ही (हवामहे) पुकारते हैं। (न) जैसे (कच्चित्) किसी (स्थूरम्) धान्यादि धरने के कोठी कुठले को भरते हैं कि आवश्यकता के समय इस से प्राणरक्षा करें ॥

उणादि ५ । ४ का प्रमाण और ऋ० ८ । २१ । १ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ १० ॥

यह उष्णिग्गह् ककुभ् छन्दों का प्रकरण
और

* चतुर्थोऽध्याय में छठी दशति पूर्ण हुई ॥ ६ ॥ *

स्वादोरित्यादिदशतो पङ्क्तयो दश कीर्त्तिताः ॥
चन्द्रेति नवमी तत्र वैश्वदेवी मता तथा ॥ १ ॥
प्रतीति दशमो अश्वि-नोरष्टेन्द्रस्य कीर्त्तिताः ॥

अथ सप्तमी दशतिःतत्र-

प्रथमायाः–गोतम ऋषिः । इन्द्रोदेवता । पङ्क्तिश्छन्दः ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र १ २र
(४०९) स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः । या इन्द्रेण
३ १ २ ३ २ ३ १२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१॥

भावार्थः–(गौर्यः) किरणें (याः) जो (इन्द्रेण सयावरीः) सूर्य के साथ रहने वाली हैं (वस्वीः) जो वसाने वाली हैं वे (स्वादोः) स्वादु (विषूवतः) व्याप्ति वाले (मधोः) मधुर सोमादिरस का (पिबन्ति) पान करती हैं (वृष्णा) वर्षाने वाली बिजुली के सहित (मदन्ति) हृष्ट प्रतीत होती हैं (स्वराज्यम्) सूर्य के (अनु) साथ (शोभथाः) शोभित होती हैं। (इत्था) इसी प्रकार राजा के साथ रानियें भी प्रजा से करादि ग्रहण, शोभा, रक्षा और निवास करावें ॥

ऋ० १ । ८४ । १० में तो " शोभसे " पाठ है ॥ १ ॥

अथ द्वितीयस्याः–ऋष्यादय उक्ताः ॥

३ २उ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३
(४१०) इत्था हि सोमइन्मदो ब्रह्म चकार वर्धनम्। शविष्ठवज्रि-
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
न्नोजसा पृथिव्या निःशशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥२॥

भावार्थः-(शविष्ठ) हे बलिष्ठ ! (वज्रिन्) दण्डधर ! राजन् ! जिस प्रकार (मदः) हर्षकारक (सोमः) सोमादि ओषधिरस (ब्रह्म) बड़ा (वर्धनम्) बढ़ाव (चकार) करता है (इत्था हि इत्) इस ही प्रकार आप भी (ओजसा) बल से (अहिम्) आ कर मारने वाले दस्युवर्ग को (पृथिव्याः) अपने राज्य की भूमि से (निःशशाः) दूर भगाइये (अनु) और तत्पश्चात् (स्वराज्यम्) अपने राज्य को (अर्चन्) सह वृद्ध करते हुवे वर्त्तिये ॥

ऋग्वेद् १ । ८० । १ में "मदे ब्रह्मा" यह अन्तर है ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः—ऋषि ऋष्यादिकमुक्तवत् ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र २उ ३
(४११) इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः । तमिन्म-
२ ३ २ ३ १ २र २ १ २र ३ १ २
हत्स्वाजिपूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥३॥

भावार्थः-(वृत्रहा) उपद्रवियों का मारक (इन्द्रः) राजा वा सेनापति (मदाय) हर्ष और (शवसे) बल के लिये (नृभिः) वीर पुरुषों से (वावृधे) बढ़ता है (तम् इत्) उस ही (ऊतिम्) रक्षक को (महत्सु आजिषु) बड़े संग्रामों और (अर्भे) छोटे उपद्रवों में (हवामहे) हम पुकारते हैं (सः) वह (वाजेषु) छोटे बड़े सब उपद्रवों में (नः) हमारी (प्राऽविषत्) रक्षा करे ॥

ऋग्वेद १ । ८१ । १ में "तेमर्भे" यह पाठ भेद है ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः—ऋष्यादय उक्ताः ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र २ ३ २ ३ १ २
(४१२) इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन्वीर्यम् । यद्ध त्यं मायिनं
३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
मृगं तव त्यन्माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ४ ॥

भावार्थः-(अद्रिवः) हे मेघ वा पर्वततुल्य दुर्गों [क़िलों] वाले । (वज्रिन्) शस्त्राऽस्त्रवाले ! (इन्द्र) राजन् ! (तव) आप का (त्यत्) वह (अनुत्तम्)

अप्रेरित=स्वाभाविक (वीर्यम्) पुरुषार्थ बल (तुभ्यम् इत्) आप के लिये ही है [आप के सदृश अन्य नहीं] (यत्) जिस बल से (ह) हि (त्यम्) उस (मृगम्) मृगवत् धूर्त्त (मायिनम्) छली शत्रु को (मायया) बुद्धि चातुर्य से (अवधीः) आप मारते हैं (अर्चन्नु स्व०) यह पाद ४१० मन्त्र में व्याख्यात हो चुका है ॥

निरुक्त १ । २० का प्रमाण और ऋ० १ । ८० । ७ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः—ऋष्यादयः उक्ताः ॥

२ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २उ
(४१३) प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यᳬसते । इन्द्र नृम्णᳬ
३ २ १ २ ३१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
हि ते शवो हनो वृत्रंजया अपोऽर्चन्ननुस्वराज्यम् ॥५॥

भावार्थः—(इन्द्र) हे राजन् ! (प्रेहि) उच्च भाव से प्राप्त हूजिये (अभीहि) शत्रुओं का सामना कीजिये और (धृष्णुहि) तिरस्कार कीजिये । (ते) आप का (वज्रः) वज्र (न नियंसते) शत्रुओं से प्रतीघात नहीं पाता । (ते) आप का (शवः हि) बल ही (नृम्णम्) धन है क्योंकि राजबल से ही धन की वृद्धि और रक्षा होती है ((वृत्रं हनः) शत्रु का हनन कीजिये और (अपः जयाः) कर्मों का विजय कीजिये । "अर्चन्नु स्वराज्यम्" की पूर्ववत् व्याख्या जानो ॥

ऋ० १ । ८० । ३ में "नियंसते" पाठ है ॥ ५ ॥

अथ षष्ठयाः—ऋष्यादय उक्तवत् ॥

२३१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २३
(४१४) यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम् । युक्ष्वा मद-
२ ३ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
च्युता हरी कᳬहनः कं वसौ दधो ऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥६॥

भावार्थः—(इन्द्र) हे राजन् ! (यत) जब (आजयः) संग्राम (उदीरते) उठते हैं तो (धृष्णवे) जो शत्रु को धर्षण करे उस के लिये (धनम्) धन (धीयते) धारण किया जाता है । आप (मदच्युता) शत्रुओं का मद चुवाने वाले (हरी) घोड़े (युक्ष्व) जोड़िये और (कम्) किसी [शत्रु] को (हनः)

वध कीजिये (कम्) किसी [मित्र] को (वसौ दधः) धन में धारण कीजिये (अस्मान् वसौ दधः) हम को धन में धारण कीजिये ॥

ऋ० १ । ८१ । ३ में–" धना " यह पाठ है ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः–ऋष्यादयोप्युक्तवत् ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३
(४१५) अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत । अस्तोषत
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३क २र ३ १ २
स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजान्विन्द्र ते हरी॥७॥

भावार्थः–(इन्द्र) हे राजन् ! (ते) आप अपने (हरी) घोड़ों को (नु) शीघ्र (योज) जोड़िये [विजयार्थ] जिस से (प्रियाः) प्रीति युक्त (स्वभानवः) अपने आप प्रकाश करने वाले (विप्राः) मेधावी विद्वान् लोग (अक्षन्) भोगों को प्राप्त हों (अमीमदन्त) हृष्ट हों (नविष्ठया मती अस्तोषत) अत्यन्त नूतन बुद्धि के सहित वर्त्तमान हुए आप की प्रशंसा करें (अव) विरुद्ध शत्रुगण को (अधूषत) दूर करें ॥

ऋ० १ । ८२ । २ में भी ॥ ७ ॥

अथाष्टम्याः–ऋष्यादयउक्ताः ॥

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(४१६) उपोषु शृणुही गिरो मघवन्माऽतथा इव । कदा नः
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३क २र ३ १ २
सूनृतावतः कर इदर्थयासइद्योजान्विन्द्र ते हरी ॥८॥

भावार्थः–(मघवन्) हे धनैश्वर्यवन् ! राजन् ! (गिरः) हमारी प्रार्थनायें (उप उ) शीघ्र ही (सु शृणुहि) भले प्रकार श्रवण कीजिये तथा (कदा) कभी (अतथाइव) प्रतिकूल से (मा) मत हूजिये और (नः) हम को (सूनृतावतः) सत्यप्रिय वाणी वाले (इत्) ही (करः) कीजिये । (इत्) यही (अर्थयासे) प्रार्थना किये जाते हो । (योजान्विन्द्र ते हरी) इस की व्याख्या पूर्व मन्त्र के तुल्य है ॥

ऋ० १ । ८२ । १ में–कदा=यदा । इदर्थ०=आदर्थ० । इतना अन्तर है ॥८॥

अथ नवम्याः–त्रितऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । पङ्क्तिश्छन्दः ॥

३ १ ३ २ १ २र ३ १ २ ३ २ १ २
(४१७) चन्द्रमा अप्स्वाऽन्तरा सुपर्णो धावते दिवि । न वो
१ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी॥९॥

भावार्थः—परमात्मा का उपदेश है कि (रोदसी) हे द्यावा पृथिवी में स्थित जनो ! (सुपर्णः) सुन्दर गति वाला (चन्द्रमाः) चन्द्र लोक (अप्सु) अन्तरिक्ष में होने वाले जलों के (अन्तः) मध्य (दिवि) सूर्य के प्रकाश में (आधावते) दौड़ता है तथा (हिरण्यनेमयः विद्युतः) तेजोमय छोर वाली बिजुलियें (वः) तुम्हारे (पदम्) विषय को (न विन्दन्ति) नहीं प्राप्त होती हैं (अस्य) इस का सूक्ष्म भेद (मे (मुझ से (वित्तम्) जानो ॥

परमात्मा का उपदेश है कि जिस प्रकार सूर्य पृथिवी विद्युदादि पदार्थों में गूढ घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसी प्रकार राजप्रजा जनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है ॥

ऋग्वेद १ । १०५ । १ में भी ॥ ९ ॥

अथ दशम्याः—अवस्युर्ऋषिः । अश्विनौ देवते । पङ्क्तिश्छन्दः ॥

१ २ ३ १२ ३ १ ३ १ २ ३ १ २
(४१८) प्रति प्रियतमꣳ रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
स्तोता वामश्विनावृषिः स्तोमेभिर्भूषति
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रति माध्वी मम श्रुतꣳहवम् ॥ १० ॥

* इति चतुर्थाऽध्याये सप्तमी दशतिः ॥ ७ ॥ *

भावार्थः—(माध्वी) मधुरस्वभाव (अश्विनौ) हे पृथिवी और द्युलोक के निवासियो ! (स्तोता ऋषिः) प्रशंसा करने वाला वेदमन्त्र (वाम्) तुम्हारे (वृषणम्) कामपूरक (वसुवाहनम्) धनप्रापक (प्रियतमम्) अतिप्रिय (रथम्) रमणीय मार्ग को (प्रतिभूषति) समर्थ करता है (मम) मेरे (हवम्) इस उपदेश को (श्रुतम्) श्रवण करो ॥ ऋ० ५ । ७५ । १ में भी ॥१०॥

आ त इत्यादिदशताावृचोऽष्टौ संप्रकीर्त्तिताः ।
उपरिष्टाद्बृहत्यन्त्या पङ्क्तयः सप्त चादिमाः ॥ १ ॥

आद्ये द्वे सप्तमी चैवाग्नेय्यस्तिस्र उदीरिताः।
तृतीयोषोदेवताका सौमी तुर्या प्रकीर्त्तिता ॥ २ ॥
अष्टमी वैश्वदेवी चाऽवशिष्टा इन्द्रदैवताः।
अथाऽष्टमी दशतिस्तत्र-

प्रथमायाः-वसुश्रुतऋषिः। अग्निर्देवता। पङ्क्तिश्छन्दः॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २
(४१९) आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
२३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषꣳ
३ २ ३ १ २
स्तोतृभ्य आभर ॥ १ ॥

भाषार्थः-(देव) दिव्यगुणयुक्त ! (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! परमेश्वर ! वा भौतिकाग्ने ! (द्युमन्तम्) प्रकाशयुक्त (अजरम्) जरारहित (ते) आप को (आ इधीमहि) हम आत्मा में वा यज्ञकुण्डादि में प्रकाशित करें (यत् ह) जो कि प्रसिद्ध (स्या) वह (ते) आप की (पनीयसी) प्रशंसायोग्य (समिद्) दीप्ति (द्यवि) आकाश में (दीदयति) प्रकाश करती है (स्तोतृभ्यः) उपासकों वा याज्ञिकों के लिये (इषम्) आनन्द वा अन्नादि (आभर) प्राप्त कराइये ॥ ऋ० ५ । ६ । ४ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः-विमद ऋषिः। अग्निर्देवता। पङ्क्तिश्छन्दः॥

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १
(४२०) अग्निं न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे। शीरं पावक
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
शोचिषं विवो मदे यज्ञेषु स्तीर्णबर्हिषं विवक्षसे ॥ २ ॥

भाषार्थः-हे परमेश्वर ! (विवक्षसे) आप महान् हैं, अतः (न) जैसे (शीरम्) व्यापने वाले (पावकशोचिषम्) शोधक प्रकाश वाले (स्तीर्णबर्हिषम्) जिस के लिये यज्ञ विस्तीर्ण किया जाय उस (अग्निम्) अग्नि को (यज्ञेषु) अग्निहोत्रादि यज्ञों में (विवः) कर्मकाण्डी लोग विशेष प्रकार से वरण करते हैं वैसे ही (मदे) आनन्दनिमित्त (त्वा) आप का

(स्वयुक्तिभिः) अपनी की हुई स्तुतियों से हम ध्यानकाङ्क्षी लोग (वृणीमहे) वरण करते हैं ॥

निरुक्त ४ । १४ निघण्टु ३ । ३ के प्रमाण और ऋ० १० । २१ । १ में जो पाठभेद है वह संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ सायणभाष्य में(विवोमदे) का (विमदे) करके व्याख्यान अनुचित और (वः) की व्याख्या ही नहीं है ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः-सत्यश्रवा ऋषिः । उषादेवता । पङ्क्तिश्छन्दः ॥

३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(४२१) महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
१ २ ३ १ २ १ १ २ ३ १
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये
२र ३ १ २
सुजाते अश्वसूनृते ॥ ३ ॥

भावार्थः-(सत्यश्रवसि) जिस में ठीक २ श्रवण होता है वैसी । (सुजाते) जिसका जन्म शोभायुक्त हैं ऐसी । (अश्वसूनृते) जिस में प्रिय शब्द व्याप जाता हैं इस प्रकार की । (वाय्ये) विस्तार वाली । (उषः) प्रभात वेला । (यथाचित) जिस प्रकार (नः) हम को (अबोधयः) पूर्व जगाती रही है उसी प्रकार (अद्य) अब भी (दिवित्मती) प्रकाश वाली तू (महे राये) महाधन धान्यादि के लिये (नः) हम को (बोधय) जगा ॥

इसमें उषा की प्रशंसा के साथ परमात्मा का यह उपदेश है कि जो लोग उषः काल-प्रभात बेला में जागते हैं वे उद्यमी कर्मण्य और धन धान्याद्यैश्वर्यशाली होते हैं । और जो स्त्री उषा के समान गुण कर्म स्वभाव वाली होती है उस के घर में लक्ष्मी निवास करती है । जिस प्रकार उषः काल में जगने से यथार्थ श्रवणादि व्यवहार होता है और उषः काल का जन्म सब को अच्छा लगता है, सब पक्षिगणादि प्यारे शब्द बोलते हैं और उषा सब ओर फैलकर शोभा बढ़ाती है और सबको प्रकाशित करती है, इसी प्रकार स्त्रियों को भी सद्गुणाढ्य होना चाहिये ॥ ऋ० ५।७९।१ में भी ॥३॥

अथ चतुर्थ्याः-विमद ऋषिः । सोमोदेवता । पङ्क्तिश्छन्दः ॥

३ २ १ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
(४२२) भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३
अधा ते सख्ये अन्धसो विवामदे रणा गावो
१ २र ३ १ २
न यवसे विवक्षसे ॥ ४ ॥

भाषार्थः—सोम ! शान्तस्वरूप ! परमेश्वर ! वा चन्द्र ! वा सोमाख्य ओषधे ! (नः) हमारे (मनः) मन को (भद्रम्) सुखदायी (दक्षम्) चतुर (उत) और (क्रतुम्) शुभ कर्म को (वातय) प्राप्त कराव (अथ) और (ते) तेरी (सख्ये) अनुकूलवर्त्तिता में (अन्धसः मदे) भोज्यादि के हर्ष में हम (विवः) तेरा स्वीकार करते हैं। (न) जैसे (रणाः) प्रीतियुक्त (गावः) गौवें (यवसे) घास आदि में (विवक्षसे) हर्ष को पाती हैं तद्वत् ॥

चन्द्रमा के प्रकाश और सोम ओषधि से मन प्रफुल्लित होता है इत्यादि तो प्रसिद्ध ही है ॥ इस में भी (विवोमदे) का व्याख्यान पूर्व (२ य) मन्त्र के समान सायणाचार्य ने ठीक नहीं किया इस पर (वः) की व्याख्या का तो सत्यव्रत सामश्रमी जी ने भी सायणभाष्य में प्रश्न करके ही छोड़ दिया है ॥

ऋ० १० । २० । १ में केवल "भद्रं नो अपि वातय मनः" इतना पाठ मिलता है ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः—गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
(४२३) कृत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आवावृते शवः ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र २
श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवान्दधे
१ २ ३ १ २ ३ २
हस्तयोर्वज्रमायसम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—हे इन्द्र ! सभासेनाध्यक्ष ! राजन् ! (कृत्वा) कर्म से (महान्) बड़े आप (अनुष्वधम्) अन्नादि [रसद] सहित (शवः) सेनाबल को (आ वावृते) व्यूहादि की रीति से रच कर घुमाते हैं। (भीमः) शत्रुओं को भयंकर (ऋष्वः) महान् (शिप्री) सुन्दर ठोड़ी और नासिका वाले वीराकृतियुक्त (हरिवान्) अश्वयुक्त आप (श्रियः उपाकयोः हस्तयोः) लक्ष्मी के समीपवर्त्ती दोनों हाथों में (आयसम् वज्रम्) लोहमय शस्त्र को (निदधे) नितराम् धारण करते हैं ॥

निघण्टु २ । ७ ॥ ३ । ३ ॥ १ । १५ निरुक्त ६ । १७ इत्यादि के प्रमाण और ऋ० १ । ८१ । ४ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ्याः—गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः ॥

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(४२४) स घा तं वृषणꣳ रथमधितिष्ठाति गोविदम् ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
यः पात्रꣳ हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति

२ ३क २र ३ १ २
योजान्विन्द्र ते हरी ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(इन्द्र) हे राजन् ! (सः घ) वही (तम्) उस (गोविदम्) पृथिवी के राज्य के प्रापक (वृषणम्) कामपूरक (रथम्) रथ में (अधितिष्ठाति) बैठे (यः) जो (पात्रम्) अधिकारी (हारियोजनम्) घोड़ों का जोड़ना (पूर्णम्) पूर्ण (चिकेतति) जानता है [अज्ञानी रथी न होवे] (इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् ! (ते) आप अपने (हरी) घोड़ों को (नु) शीघ्र (योज) जोड़िये ॥ ऋ० १ । ८२ । ४ में भी ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः—वसुश्रुत ऋषिः । अग्निर्देवता । पङ्क्तिश्छन्दः ॥

२ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
(४२५) अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।

२ ३ १ २ ३ २उ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्तमर्वन्त आशवो नित्यासो वाजिनइषꣳ

३ २ ३ १ २
स्तोतृभ्य आभर ॥ ७ ॥

भाषार्थः—हे राजन् ! (यः) जो (वसुः) ८ वसुओं में एक है (तम् अग्निम्) उस अग्नि को (मन्ये) मैं मानता प्रशंसित करता हूं, (यम्) जिस (अस्तम्) अस्त्र में प्रयुक्त को (धेनवः) गौवें (यन्ति) प्राप्त होती हैं और जिस (अस्तम्) अस्त्रप्रयुक्त को (अर्वन्तः) चालाक (आशवः) शीघ्रगामी (वाजिनः) घोड़े प्राप्त होते हैं जिस (अस्तम्) अस्त्र से फेंके हुवे को (नित्यासः) चिरस्थायी रत्नादि पदार्थ प्राप्त होते हैं। इसलिये हे राजन् ! (स्तोतृभ्यः) अग्न्यादि पदार्थों के गुण वर्णन करने वालों के लिये (इषम्) अन्नादिवृत्ति

(आभर) पूर्ण कीजिये ॥ ऋ० ५ । ६ । १ में भी ॥ ७ ॥

अथाष्टम्याः—अंहोमुग्वामदेव्य ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। उपरिष्टाद् बृहती छन्दः॥

२उ ३ १२ ३१ २र ३ १ २
(४२६) न तमंहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम् ।
३१ २१ १२३२ ३१ २र३१२३ २१ १२
सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयति वरुणो अति द्विषः ८

* इति चतुर्थाध्यायेऽष्टमी दशतिः ॥ ८ ॥ *

इति पाङ्क्तम् ॥

भाषार्थः—(सजोषसः) हे प्रीतियुक्त ! (देवासः) सब विद्वानो ! (यम्) जिस प्रजाजन को (अर्यमा) न्यायकारी (मित्रः) सर्वहितकारी (वरुणः) श्रेष्ठगुणाढ्य राजा, (द्विषः) शत्रुओं को (अति) उल्लङ्घित करके (नयति) ले चलता–शासित करता है (तम्) उस जन को (अंहः) पाप (न अष्ट) नहीं व्यापता और (न) न (दुरितम्) पापजनित दुःख व्यापता है ॥ भले प्रकार राजशासन में सब जन पाप और तज्जनित दुःख भोग से बचते हैं ॥ ऋ० १० । १२६ । १ में (नयन्ति) पाठ है ॥ ८ ॥

* यह चतुर्थोऽध्याय में आठवीं दशति पूर्ण हुई ॥ ८ ॥ *

यह इन्द्रविषयक पङ्क्ति छन्दों का प्रकरण पूरा हुवा ॥

परि प्रधन्वप्रभृतौ दशर्चौ दशतौ मताः ।
एतासां तु ऋषिच्छन्दोदेवताश्च पृथक् पृथक् ॥
वक्ष्यन्ते तत्र तत्रैव व्याख्यायां हि परिस्फुटम् ।

अथ नवमी दशतिस्तत्र—

प्रथमायाः—ऋणत्रसद्दस्यू सहितावृषी । पवमानो देवता । द्विपदा पङ्क्तिश्छन्दः॥

२३ २३१ २ ३ २३१ ३१ २र
(४२७) परि प्रधन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय॥१॥

भाषार्थः—(सोम) हे शान्तस्वरूप ! परमेश्वर ! (स्वादुः) अकथनीयरस आप (मित्राय) मित्र (पूष्णे) पुष्टिकर्त्ता और (भगाय) ऐश्वर्यशाली पुरुष के लिये (परि प्र धन्व) आनन्द वर्षाओ ॥ ऋ० ९ । १०९ । १ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः-ऋषिदेवते उक्ते । पिपीलिकामध्या त्रिपदाऽनुष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १२ ३१ २ २१२

(४२८) पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।

३२ ३ १२ ३ १ २

द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ॥ २ ॥

भावार्थः-सोम की पूर्वमन्त्र से अनुवृत्ति है । हे शान्तस्वरूप ! परमात्मन् ! (नः) हमारे (वाजसातये) बललाभ के लिये (सक्षणिः) सहनशील (ऋणयाः) ऋणों को दूर करनेवाले आप (उ) अवश्य (सु परि प्र धन्व) उत्तम आनन्द सब ओर से वर्षाइये और (द्विषः) द्वेष करने वाले (वृत्राणि) रुकावट-विघ्न डालनेवाले कामादि शत्रुओं को (तरध्यै) मारने को (परि ईरसे) सब ओर से आप प्राप्त हैं ॥ ऋ० ९ । ११० । १ में ईयसे पाठ है ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः-ऋषिदेवते उक्ते । द्विपदा पङ्क्तिश्छन्दः ॥

१२ ३१ २ ३२३ २ ३२ ३ २ ३ १ २र

(४२९) पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभिधाम ३

भावार्थः-(सोम) हे शान्तस्वरूप ! परमात्मन् ! (महान्) बड़े (समुद्रः) जिस आप में सब प्राणी आनन्द कर रहे हैं ऐसे (देवानाम्) देवतों के (पिता) पिता आप (विश्वा) सब (धाम) धामों को (अभि पवस्व) सर्वतः पवित्र कीजिये ॥ ऋ० ९ । १०९ । ४ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः-ऋष्यादय उक्ताः ॥

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र

(४३०) पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय॥४॥

भावार्थः-(सोम) हे परमात्मन् ! (निक्तः) शुद्धस्वरूप (अश्वो न) बिजुली के समान (वाजी) बलिष्ठ आप (महे दक्षाय धनाय) बड़े बल और धन के लिये (पवस्व) हमारे व्यवहारों को शुद्ध कीजिये ॥

ऋ० ९ । १०९ । १० में "महे" के स्थान में 'क्रत्वे' पाठ है ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः-ऋष्यादय उक्ताः ॥

१ २ ३ २३१ २ ३ २३१ २ ३ १ २र

(४३१) इन्दुः पविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्भगाय ॥५॥

भावार्थः-(चारुः) कल्याणस्वरूप (इन्दुः) परमैश्वर्यवान् (कविः)

मेधावी परमेश्वर (अपसाम्) कर्मों के (उपस्थे) उपस्थान में (मदाय) आनन्द और (भगाय) धनादि ऐश्वर्य के लिये (पविष्ट) हम को पवित्र करे ॥

निघण्टु ३ । १५ । २ ॥ १० । २ । १ निरुक्त ३ । १९ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । १०९ । १३ में भी ॥ ५ ॥

अथ षष्ठयाः-ऋषिदेवते उक्ते । पिपीलिकामध्या त्रिपदाऽनुष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(४३२) अनु हि त्वा सुतꣳ सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥ ६ ॥

भावार्थः-(सोमः) हे ओषधे ! वा परमात्मन् ! (महे) महान् (समर्य-राज्ये) जहां सब मनुष्य समान हों, ऐसे राज्य में (सुतम्) उत्पन्न किये वा हृदय में साक्षात् किये (त्वा) तुझ को (हि) ही (अनुमदामसि) पीछे लग के हर्ष वा आनन्द प्राप्त करें । (पवमान) हे पवित्रकारक ! तू (वाजान्) बलों को (अभि प्र गाहसे) सर्वतः विलोडित करता है ॥ ऋ० ९।११०।२ में भी ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः-वसिष्ठ ऋषिः । मरुतो देवताः । द्विपदा पङ्क्तिश्छन्दः ॥

१ ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

(४३३) क ईं व्यक्ता नरः सनीडा रुद्रस्य मर्या अथा स्वश्वाः ॥ ७ ॥

भावार्थः-(अथ) अब (ईम्) ऐसे अर्थात् पूर्वमन्त्रोक्त आनन्दभागी (रुद्रस्य स्वश्वाः) प्राण के सुन्दर ले चलने वाले (नरः) नीतियुक्त (व्यक्ताः) स्निग्धचित्त (सनीडाः) साथ मिलकर रहने वाले (मर्याः) मनुष्य (के) कौन हैं ? उत्तर-सामर्थ्य से मरुत् अर्थात् क्रियायज्ञ वा योगयज्ञ के ऋत्विज् हैं ॥

ऋ० ७ । ५६ । १ में (सनीळाः) और (अधा) पाठ है ॥ ७ ॥

अथाऽष्टम्याः-वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिपदा पदपङ्क्तिश्छन्दः ॥

२ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २

(४३४) अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रꣳ हृदिस्पृशम् ।

३ १ २ ३ १ २

ऋध्यामा त ओहैः ॥ ८ ॥

भावार्थः-(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप ! परमात्मन् ! वा भौतिकाग्ने ! (ते) आप के (ओहैः) प्राप्त कराने वाले (स्तोमैः) गुणकीर्त्तनों से (अश्वं न) अश्व के समान और (क्रतुं न) बुद्धि के समान (हृदिस्पृशम् तम् भद्रम्) हृदय के प्यारे उस सुख को (अद्य) आज यज्ञ के दिन (ऋध्याम) हम बढ़ावें ॥

ऋ० ४ । १० । १ में भी ॥ ८ ॥

अथ नवम्याः—वामदेव ऋषिः । वाजिनोदेवताः । पुर उष्णिक्छन्दः ॥

३ १ २३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(४३५)आविर्मर्या आवाजं वाजिनो अग्मन्देवस्य सवितुः

३ २ ३ १ २
सवम् । स्वर्गा ऽ अर्वन्तो जयत ॥ ९ ॥

भावार्थः—(आविः) प्रकाशमान (वाजिनः) द्युस्थान भौतिक देवतों में ३० वें देवता निघं० ५ । ६ (सवितुः देवस्य) प्रेरक देव के (सवम्) यज्ञ को (आ वाजम्) बल पुष्टि पर्यन्त (अग्मन्) प्राप्त हों और (मर्याः) हे मनुष्यो ! तुम (स्वर्गम्) सुख विशेष को (अर्वन्तः) प्राप्त हुवे (जयत) उच्चता से वर्तो ॥

अर्थात्—यज्ञानुष्ठान से सुख विशेष और जय होता है ॥ ९ ॥

अथ दशम्याः—ऐश्वराधिष्णया ऋषयः । पवमानोदेवता । द्विपदा पङ्क्तिश्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
(४३६) पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो महाँ अवीनामनु पूर्व्यः ॥१०॥

* इति चतुर्थाध्याये नवमी दशतिः ॥ ९ ॥ *

* इति पञ्चमप्रपाठकस्य प्रथमार्धः ॥ *

भावार्थः—(सोम) ओषधे ! (द्युम्नी) अन्नवान् अर्थात् पुष्टिमान् (सुधारः) सुन्दर धार वाला (महान्) उत्तम (अवीनां पूर्व्यः) रक्षक पदार्थों में मुख्य (अनु) क्रम से (पवस्व) शुद्धि कर ॥

अर्थात् सोम ऐसा खींचना चाहिये जिस से स्वच्छ उत्तम धारायुक्त हो । ऐसा करने से, यह क्रम से पुष्टि, रक्षा और शुद्धि करता है ॥

निरुक्त ५ । ५ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ९ । १०९ । ७ में भी ॥ १० ॥

* यह चतुर्थाध्याय में नवीं दशति पूर्ण हुई ॥ ९ ॥ *

विश्वेति दशतौ चापि द्विपदाः पङ्क्तयोदश ॥
उषस्या सप्तमी वैश्व-देवी पष्ठी ततः पराः ॥१॥
अष्टेन्द्रस्य ऋचः प्रोक्ता इत्थं ज्ञेया विभागशः ॥२॥

अथ दशमी दशतिस्तत्र-

प्रथमायाः-ऋषिर्नोधलभ्यते पुस्तकेषु । इन्द्रोदेवता । द्विपदा पङ्क्तिश्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(४३७) विश्वतोदावन्विश्वतो न आभर यं त्वा शविष्ठमीमहे॥१॥

भावार्थः-(विश्वतोदावन्) हे सब ओर से दाता ! (नः) हम को (विश्वतः) सब ओर से (आभर) पोषित करो (यम्) जिस (त्वा) आप (शविष्ठम्) बलिष्ठ को (ईमहे) हम याचना करते हैं ॥ निघण्टु ३।१९।१ ॥१॥

अथ द्वितीयायाः-ऋष्यादिकमुक्तवत् ॥

१ २ ३ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
(४३८) एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥ २ ॥

भावार्थः-(एषः) यह (ब्रह्मा) भक्तों का बढ़ाने वाला (यः) जो (ऋत्वियः) प्रत्येक ऋतुओं में हितकारी (इन्द्रः नाम श्रुतः) इन्द्र नाम से विख्यात है, (गृणे) उसे स्तुत करता हूं ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः-त्रसद्दस्युर्ऋषिः । छन्दोदेवते उक्ते ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(४३९) ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥३॥

भावार्थः-(अहये हन्तवे) सर्पतुल्य मारक पाप को मारने के लिये (उ) निश्चय करके (ब्रह्माणः) चतुर्वेदवेत्ता लोग (अर्कैः) मन्त्रों से (इन्द्रम्) परमेश्वर को (महयन्तः) पूजते हुवे (अवर्धयन्) " प्रसन्न करते हैं " यही सायणाचार्य का अर्थ है ॥

निश्चय परमेश्वर की स्तुति उपासनाओं से मनुष्य पापों से बचते और परमात्मा को प्रसन्न करते हैं ॥

निरुक्त ५ । ५ निघण्टु ३ । १५ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ५ । ३१ । ४ में उत्तरार्ध ऐसा ही है ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः-ऋषिर्नोपलभ्यते । छन्दोदेवते उक्ते ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(४४०) अनवस्ते रथमश्वाय तक्षुस्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ४

भावार्थः-(अनवः) मनुष्य लोग (अश्वाय) शीघ्र मोक्षप्राप्त्यर्थ (ते) आप को (रथम्) रथ (तक्षुः) बनाते हैं। (पुरुहूत) हे बहुतों से पुकारे हुवे ! परमात्मन् ! (त्वष्टा) विद्या से प्रदीप्त पुरुष आप को (द्युमन्तम् वज्रम्) प्रकाशमान शस्त्र [बनाता है] ॥

ईश्वर के भक्त लोग शीघ्र मोक्षपद को प्राप्त होने के लिये परमेश्वर को ही अपना रथ बनाते और उसी को सर्वपापशत्रुसंहारार्थ शस्त्रभाव से कल्पना करते हैं ॥

ऋ० ५। ३१। ४ में पूर्वार्ध यही है, केवल (तक्षुः=तक्षन्) है ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः ऋष्यादय उक्तवत् ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(४४१) शं पदं मघं रयीषिणे न काममव्रतो हिनोति न स्पृशद्रयिम् ५

भावार्थः-प्रकरण से-हे इन्द्र ! धनवन् ! परमात्मन् ! (अव्रतः) यज्ञादि सुकृत न करने वाला कृपण पुरुष (रयिम्) धन को (न स्पृशत्) छूने भी नहीं पाता तथा (कामम्) अभीष्ट पदार्थों को (न हिनोति) नहीं प्राप्त होता परन्तु (रयीषिणे) यज्ञादि उत्तम कर्मों में धन देने वाले के लिये (शम् पदम्) कल्याण स्थान और (मघम्) धन होता है ॥

जो लोग यज्ञादि उत्तम कार्यों में धनादि व्यय करते हैं वे धन धान्यादि सकल इष्ट पदार्थों को प्राप्त होते हैं और इस के विरुद्ध लोग दरिद्र होते हैं ॥

निघण्टु २। १० इत्यादि प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ्याः-विश्वेदेवा देवताः । ऋषिश्छन्दश्चोक्तवत् ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(४४२) सदा गावः शुचयो विश्वधायसः सदा देवा अरेपसः ६

भावार्थः-हे परमेश्वर ! (विश्वधायसः) जो विश्व का अन्नादि दान से धारण पोषण करते हैं (अरेपसः) पापाचरण नहीं करते (देवाः) दानादि गुणयुक्त पुरुष हैं वे (सदा शुचयः) सदा पवित्र रहते हैं। जिस प्रकार (गावः सदा) सदा गौ शुद्ध रहती हैं ॥

निघण्टु १। ४ ॥ १। ११ ॥ १। १ के अनुसार गौ शब्द से सूर्यकिरणें वा

पृथिवियें वा वेदवाणी वा पृथिवी के चलते बहते जल भी समझने चाहियें ॥६॥

अथ सप्तम्याः—सव्यात ऋषिः । उषा देवता । द्विपदा पङ्क्तिश्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र

(४४३) आयाहि वनसा सह गावः सचन्त वर्त्तनिं यदूधभिः ७

भावार्थः-हे परमेश्वर ! (यत्) जब कि [उषः देवता=प्रातर्वेला] (आयाहि) आवे [तभी] (गावः) गोरूप हमारी वाणियें (ऊधभिः) दुग्ध भरे स्तनों सहित (वर्त्तनिम्) मार्ग को (सचन्त) सङ्गत हों ॥

प्रतिदिन प्रातःकाल उषा की वेला में वेदवाणियों को हम प्राप्त हों, कृपया ऐसा प्रसाद कीजिये ॥

शतपथ ब्राह्मण १४ । ६ । १२ । १ में वाणी को गोरूप से इस प्रकार वर्णन किया है कि—"वाणीरूप धेनु की उपासना करे । उस के ४ थन हैं । १—स्वाहाकार । २-वषट्कार । ३—हन्तकार और ४—स्वधाकार । उस के दो थन स्वाहाकार और वषट्कार को देवता पीते हैं । तथा हन्तकार को मनुष्य और स्वधाकार को पितर । उस का बैल प्राण है और बछड़ा मन ॥ ऋ० १० । १७२ । १ में भी ॥ ७ ॥

अथाष्टम्याः—ऋषिर्नोपलभ्यते । इन्द्रो देवता । द्विपदा पङ्क्तिश्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

(४४४) उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र ८

भावार्थः-(इन्द्र) हे परमात्मन् ! हम लोग (मधुमति) आत्मिक आनन्द-युक्त (प्रक्षे) क्षेत्र में (उपक्षियन्तः) रहते हुवे (रयिम्) विद्यादि धन को (पुष्येम) पुष्ट करें और (ते) आप का (धीमहे) ध्यान करें ॥

बृहदारण्यकोपनिषद् ४ । ५ । १५-१६ में आत्मा को मधु कहा है । "यही वह आत्मा है जो सब भूतों का अधिपति है" यहां से आरम्भ करके "यही वह मधु है" यहां तक । परन्तु यह आत्मा का माधुर्य रस आत्मज्ञानी ही प्राप्त करते हैं, अन्य मन्दभाग्य नहीं ॥ ८ ॥

अथ नवम्याः—ऋष्यादय उक्तवत् ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २र

(४४५) अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आस्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः ९

भावार्थः-(स्वर्काः) शोभन मन्त्रों वाले (मरुतः) स्तोत्रयज्ञ के ऋत्विज्

लोग (अर्कम्) पूजनीय ईश्वर को (अर्चन्ति) पूजते हैं और (सः) वह (युवा) महाबली (श्रुतः) वेदों में विख्यात (इन्द्रः) परमेश्वर (आस्तोभति) स्तुत किया जाता है ॥

निरुक्त ५।४ और इन्द्र शब्द से परमेश्वरार्थ ग्रहण में मीमांसाभाष्यस्थ शबर स्वामी की सम्मति जो सत्यव्रत सामश्रमी जी ने टिप्पणी में दी है वह संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ९ ॥

अथ दशम्याः—आष्यादय उक्तवद्बोध्याः ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
(४४६) प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं

२ ३ २ ३ १ २
गायत यं जुजोषते ॥ १० ॥

इति चतुर्थाध्याये दशमी दशतिः ॥ १० ॥

भावार्थः—(वृत्रहन्तमाय) रोकने वाले काम क्रोधादि शत्रुवों के अत्यन्त विनाशक (विप्राय) मेधावी (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (गाथम्) स्तोत्र को (प्र गायत) प्रकर्ष से पढ़ो (वः) तुम्हारे (यम्) जिस स्तोत्र को, वह परमेश्वर (जुजोषते) प्रीति करता है ॥

सायणाचार्य के भाष्य में (विप्राय) के स्थान में (विप्राः) की व्याख्या अन्यथा है और (वः) की व्याख्या ही नहीं दीखती ॥ १० ॥

यह चतुर्थाध्याय में दशवीं दशति समाप्त हुई ॥ १० ॥

तत्र तत्रैव वक्ष्यन्तेऽचेतीत्यृष्यादयः क्रमात् ॥

अथैकादशी दशतिस्तत्र—

प्रथमायाः—ऋषिर्नोपलभ्यते । अग्निर्देवता । द्विपदा छन्दः ॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
(४४७) अचेत्यग्निश्चिकितिर्हव्यवाड् न सुमद्रथः ॥ १ ॥

भावार्थः—(सुमद्रथः) जिस का शोभावान् रथ=रमणीय तेजःस्वरूप है (हव्यवाड्) जो हवन किये द्रव्यों को स्थानान्तरों में पहुंचाता है, उस अग्नि के (न) समान (चिकितिः अग्निः) एक चेतन अग्नि [परमात्मा]

(अचेति) उपासकों से ज्ञात किया जाता है जो ज्योतिस्स्वरूप है और प्राणिमात्र के कर्मरूप हव्य का पहुंचाने वाला है ॥

ऋग्वेद के वालखिल्य परिशिष्ट में भी यह पाठ आता है ॥१॥

अथ द्वितीयायाः—बन्धुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । द्विपदा छन्दः ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र

(४४८) अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः॥२॥

भावार्थः—(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप ! (अन्तमः) अन्तर्यामी होने से अत्यन्त समीपस्थ (उत) और (वरूथ्यः) वरणीय भजनीय (त्वम्) आप (नः) हमारे (त्राता) रक्षक और (शिवः) सुखदायक (भुवः) हूजिये ॥

ऋ० ५ । २४ । १ में भी ऐसा ही पूर्वार्ध है ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः—ऋष्यादय उक्ताः ॥

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २

(४४९) भगो न चित्रो अग्निर्महोनां दधाति रत्नम् ॥ ३ ॥

भावार्थः—(महोनाम्) बड़ों में (भगः न) सूर्य सा तेजस्वी (अग्निः) परमात्मा (चित्रः) अद्भुतस्वरूप (रत्नम्) विद्या दि धन को [१.कार्थे] (द ाति) धारण करता=देता है ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः—इन्द्रो देवता । आर्षिच्छन्दसी उक्ते ॥

१ २ ३ १ ३ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २

(४५०) विश्वस्य प्रस्तोभ पुरो वासन् यदि वेह नूनम् ॥४॥

भावार्थः—(प्रस्तोभ) जिस की सर्वोत्तम स्तुति हैं ऐसे हे इन्द्र ! परमात्मन् ! तू (यदि) यदि (विश्वस्य पुरः वासन्) सब की नगरी बसाता है (वा) तो (इह) यहां हमारी (नूनम्) अवश्य बसाव ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः—संवर्त्त ऋषिः । उषा देवता । द्विपदा छन्दः ॥

३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(४५१) उषा अप स्वसुष्टमः संवर्त्तयति वर्त्तनिꣳसुजाततः ॥५॥

भावार्थः—हे परमेश्वर ! जिस प्रकार (उषाः) प्रभातवेला (स्वसुः) अपनी बहन रात्रि के (तमः) अन्धियारे को (सुजातता) अपने शोभन जन्म से (वर्त्तनिम्) लौटने के मार्ग को (संवर्त्तयति) लौटाती है । इसी प्रकार आप हमारे हृदय के अन्धकार को दूर करें ॥ ऋ० १० । १७२ । ४ में भी ॥५॥

अथ षष्ठ्याः—भौवन आप्त्य ऋषिः । इन्द्रोदेवता । द्विपदा छन्दः ॥

३ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

(४५२) इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥६॥

भावार्थः—हे परमेश्वर! (इन्द्रः) जीवात्मा (च) और (विश्वे च देवाः) समस्त इन्द्रियां (नु) तथा (इमा भुवना) ये भुवन (कम्) सुख को (सीषधेम) साधें ॥

ऋ० १० । १५७ । १ में (सीषधाम) पाठ है ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः—कवष ऐलुष ऋषिः । इन्द्रोदेवता । द्विपदा गायत्री छन्दः ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

(४५३) विस्रुतयो यथा पथा इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः ॥ ७ ॥

भावार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यथा) जिस प्रकार (पथा) प्रवाह मार्ग से (विस्रुतयः) नदियां प्राप्त होती हैं इसी प्रकार (त्वत्) आप से (रातयः) विद्यादि दान (यन्तु) प्राप्त हों ॥ ७ ॥

अथाऽष्टम्याः—भरद्वाज ऋषिः । इन्द्रोदेवता । द्विपदा पङ्क्तिश्छन्दः ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(४५४) अया वाजं देवहितꣳसनेम मदेम शतहिमाःसुवीराः ॥८॥

भावार्थः—(अया) इस प्रार्थना से हम (देवहितम्) ईश्वरदत्त (वाजम्) बल को (सनेम) संभाग पूर्वक लेवें और (सुवीराः) सुन्दर पुत्रादि युक्त हम (शतहिमाः) १०० वर्ष पर्यन्त (मदेम) हर्ष को प्राप्त हों ॥

ऋ० ६ । १७ । १५ में भी ॥ ८ ॥

अथ नवम्याः—आत्रेय ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । द्विपदा पङ्क्तिश्छन्दः ॥

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(४५५) ऊर्जा मित्रो वरुणः पिन्वतेडाः पीवरीमिषं कृणुही न इन्द्र ९

भावार्थः—(इन्द्र) हे परमेश्वर! आप तथा (मित्रः) सूर्य और (वरुणः) वृष्टिजल, ये सब (ऊर्जा) रस से [श० ५ । १ । २ । ८] (इडाः) अन्नों को (पिन्वत) पुष्ट करो तथा (नः) हमारे लिये (पीवरीम् इषम्) पुष्ट अन्न को (कृणुहि) करो=उत्पन्न करो ॥ ९ ॥

अथ दशम्याः—वसिष्ठऋषिः । इन्द्रोदेवता । एकपदा गायत्री छन्दः ॥

२ ३ १ २

(४५६) इन्द्रो विश्वस्य राजति ॥ १० ॥

* इति चतुर्थाध्याये एकादशी दशतिः ॥ ११ ॥ *

भावार्थः—पूर्व मन्त्र से अन्वय है। जिस कारण (इन्द्रः) परमेश्वर (विश्वस्य) सूर्यादि सब का (राजति) राजा है। इस लिये सूर्य और वर्षा के जल आदि को प्रेरित करके हमारे लिये रसीले पुष्ट धान्यादि उत्पन्न करे॥ यजुर्वेद ३६। ८ में भी॥ १०॥

* यह चतुर्थाध्याय में ११ वीं दशति समाप्त हुई *

यह द्विपदा छन्दों वाला इन्द्र का प्रकरण हुवा॥

त्रिकद्रुकेत्यादिदशतौ दशर्क्षत्राऽष्टिरादिमा॥
जगत्ययं सहस्रेत्यऽथैन्द्रया ह्युपनस्तथा॥ १॥
अग्निं होतारमित्येषा अस्तु श्रौषडयारुचा॥
चलस्रोऽत्यष्टयोऽभित्यं तवत्यं नर्यमित्यृचौ॥ २॥
इमे द्वे अतिशक्वर्यावऽष्टी इत्येक ऊचिरे॥
प्रवोमहेऽतिजगती तमिन्द्रमिति तादृशी॥ ३॥
सौरी ह्ययं सहस्रेति पात्रमानी तत्रया रुचा॥
अस्तु श्रौषड् वैश्वदेवी मारुती तु प्रवोमहे॥ ४॥
अभित्यमिति सावित्री स्यादाग्नेय्यग्निमित्यसौ॥
ऐन्द्रयोऽत्रशिष्टा इत्येवं छन्दोदैवतनिर्णयः॥ ५॥

भावार्थः—"त्रिकद्रुकेषु" इत्यादि [१२ वीं] दशति में दश ऋचा हैं। इन में प्रथम ऋचा का अष्टि छन्द है। दूसरी "अयंसहस्र०" का जगती छन्द है। "एन्द्रयाह्युपनः" इस तीसरी, (१) "अग्निं होतारम्०" इस नवीं, "अस्तु-श्रौषट्" इस पांचवीं, और "अयारुचा०" इस सातवीं, इन ४ का अत्यष्टि छन्द है॥ "अभित्यम्०" इस आठवीं और "तवत्यन्नर्यम्०" इस दशवीं, (२) इन दो का अति शक्वरी छन्द है और कोई लोग इन दोनों का अष्टि छन्द मानते हैं॥ "प्रवोमहे०" इस छठी और "तमिन्द्रम्०" इस चौथी का अतिजगती छन्द है॥ (३) अयं सहस्र० इस दूसरी का सूर्य देवता है।

अयारुचा० इस सातवीं का पवमान। अस्तुश्रौषट्० इस पांचवीं के विश्वेदेवाः। प्रवोमहि० इस छठी के मरुत्। (४) अभित्यम्० इस आठवीं का सविता। अग्निम्० इस नवीं का अग्नि देवता है। शेष (१।३।४।१०) का इन्द्र देवता है। यह छन्द और देवता का निर्णय हुवा। (५)॥

अथ द्वादशी दशतिस्तत्र प्रथमायाः—गृत्समद ऋषिः॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २र
(४५७) त्रिकद्रुकेषु महिषोयवाशिरं तुविशुष्मस्तृम्पत्सोममपि-
३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ १ ३ २ ३ २ ३ १ २
बद्विष्णुना सुतं यथावशम्। स ईं ममाद महि कर्म कर्त्तवे
३ २ ३ १ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
महामुरुꣳ सैनꣳ सश्चद्देवो देवꣳ सत्यइन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥१॥

भावार्थः—(महिषः) बड़ा और (तुविशुष्मः) बहुत बल अर्थात् आकर्षण वाला सूर्य (तृम्पत्) तृप्त होता है [किस से? सो कहते हैं-] (त्रिकद्रुकेषु) ज्योति गौ आयु इन नामों वाले "गवामयन" नामक यज्ञ जो ताण्ड्यमहाब्राह्मण चतुर्थ प्रपाठक खण्ड एक में प्रसिद्ध है, उस के अभिप्लविक नाम ३ दिनों में (सुतम्) सम्पादित (यवाशिरम्) यव धान्य के सत्तु मिले हुए (सोमम्) सोमरस को (विष्णुना) व्यापक वायु के सहित (अपिबत्) पीता है, (सः) वह सोम (ईम्) इस सूर्य को (ममाद) तृप्त करता है (सः) और वह (सत्यः) सच्चा (देवः) दिव्य (इन्दुः) सोम (एनम्) इस (सत्यं देवम्) सच्चे देव (महाम्) महान् (उरुम्) किरणों से फैले हुवे (इन्द्रम्) सूर्य को (सश्चत्) पहुंचाता है॥

निघण्टु ३।३॥३।१॥२।९॥२।१४ अष्टाध्यायी ६।१।३६ के प्रमाण और ऋ० २।२२।१ का पाठभेद संस्कृतभाष्य में देखिये॥१॥

अथ द्वितीयायाः—गौराङ्गिरस ऋषिः॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
(४५८) अयꣳ सहस्रमानवो दृशः कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्म।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयदरेपसः सचेतसः स्वसरे
३ १ २ ३ २
मन्युमन्तश्चिता गोः॥२॥

भावार्थः-(अयम्) यह (सहस्रमानवः) बहुत प्रकाश वाला (दृशः) दिखाने वाला (कवीनां मतिः) बुद्धिवालों की बुद्धिरूप [क्योंकि सूर्य के प्रकाश विना बुद्धिमानों की बुद्धि अन्धकार से दबी रहती है] (विधर्म ज्योतिः) विशेष धारक ज्योति रूप (ब्रध्नः) सूर्य (समीचीः उषसः) सीधी चलने वाली प्रभातकारक किरणों को (समैरयत्) प्रेरित करता है तब-(स्वसरे) दिन में (अरेपसः) तमोरूपी पाप से रहित (सचेतसः) चित्त सहित (सन्युमन्तः) प्रकाश वाले [पृथिवी चन्द्रादि लोक] (गोः) सूर्य से (चिताः) उपचित होते हैं ॥

अर्थात् सूर्य बहुत प्रकाश वाला, दिखाने वाला और इसी से बुद्धिमानों की बुद्धि का जगाने वाला और धारक है। वह जब अपनी किरणों के समूह से जहां २ पृथिवी चन्द्र या अन्य लोक में प्रभात काल करने वाली किरणें भेजता है वहां २ तब २ दिन होता है। इस प्रकार सूर्य से लोकान्तरों में प्रकाश संचित वा उपचित होता है ॥

निघण्टु ३।६ ॥ १।९ निरुक्त २। ६ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥२॥

अथ तृतीयायाः=परुच्छेप ऋषिः ॥

१२ ३१२ ३२३ १ २र ३१२ ३
(४५९) एन्द्र याह्युप नः परावतो नायमच्छा विदथानीव

१ २ ३२ ३ १ २३ १ २ १ २ ३ १२
सत्पतिरस्ता राजेव सत्पतिः । हवामहे त्वा प्रयस्वन्तः

३२उ ३ २ ३ २ ३ २३ १२ ३१ २ ३ १ २
सुतेष्वा पुत्रासो न पितरं वाजसातये मंहिष्ठं वाजसातये ३

भावार्थः-(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (नः) हम को (परावतः न) जो तुझ से दूर से हो गये हैं (उप आ याहि) प्राप्त हूजिये। दृष्टान्त-(अयम्) यह (सत्पतिः) सत्=पृथिवी आदि का आकर्षण से रक्षक सूर्य (अच्छ) अभिव्याप्त होने को (विदथानीव) जिस प्रकार यज्ञों को प्राप्त है [पूर्व-मन्त्रानुसार] तद्वत्। दूसरा दृष्टान्तः-(सत्पतिः) सज्जनों का पालक (राजेव) राजा जैसे (अस्ता) न्यायासन गृह को प्राप्त होता है, तद्वत्। (सुतेषु) सोम सम्पन्न होने पर (प्रयस्वन्तः) सोमरस रूप जल लिये हुवे हम (वाजसातये) बललाभार्थ (मंहिष्ठम्) पूजनीयतम (त्वाम्) आप को (आ हवामहे) पुकारते हैं। पुकारने में दृष्टान्त-(न) जैसे (पुत्रासः) बच्चे

(वाजसातये) बल वा अन्न के लाभार्थ (पितरम्) बाप को पुकारते हैं तद्वत् ॥

निघण्टु ३ । २ ॥ ३ । १७ ॥ ३ । ४ ॥ १ । १२ निरुक्त ५ । २८ अष्टाध्यायी ६ । २ । १८ ॥ ७ । १ । ३९ के प्रमाण और ऋग्वेद १ । १३० । १ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः—रेभा ऋषिः ॥

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
(४६०) तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रꣳ सत्रा दधानमप्रति-
३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र ३ १ २
ष्कुतꣳ श्रवाꣳसि भूरि । मꣳहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
ववर्त्त राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥ ४ ॥

भावार्थः—(मघवानम्) अत्यन्त धनवान् (उग्रम्) न दबने वाले (अप्रतिष्कुतम्) जिस के सन्मुख कोई बल न चला सके उस (सत्रा भूरि श्रवांसि) सब बहुत यशों को (दधानम्) धारण किये हुवे (तम्) पूर्व मन्त्र में वर्णित (इन्द्रम्) परमेश्वर को (जोहवीमि) वारंवार पुकारता हूं । (मंहिष्ठः) अति दाता (वज्री) दण्डनायक (यज्ञियः) पूजनीय वह परमेश्वर (आ) सब ओर (ववर्त्त) वर्त्तमान है (च) और (नः) हमारी (गीर्भिः) स्तुतियों से (राये) विद्यादि धनार्थ (विश्वा सुपथा) सब अच्छे मार्ग (कृणोतु) बनावे ॥

निघण्टु ३ । १० अष्टाध्यायी ६ । १ । ३२॥६ । १ । ६३ ॥ ३ । १ । ८५ के प्रमाण और ऋ० ८ । ९७ । १३ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः—परुच्छेप ऋषिः ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
(४६१) अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु
२र ३ १ २ ३ १ २
त्यच्छर्धो दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
यद्ध क्राणा विवस्वते नाभा संदाय नव्यसे ।
२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २र ३ २ ३ १ २
अध प्र नूनमुपयन्ति धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ५

भावार्थः-हे इन्द्र! परमेश्वर! (धिया) प्रणयनादि कर्म से, वा बुद्धि से (पुरः) सामने की व्यवधानरहित उत्तरवेदी में वा साक्षात् (अग्निम्) आहवनीय नाम अग्नि, वा परमेश्वर को (आ दधे) मैं आधान करता, वा धारण करता हूं। (त्यत्) उस अग्न्याधानसम्बन्धी (दिव्यम्) उत्तम (शर्धः) बल को (वृणीमहे) हम वरते हैं [अपने अभिप्राय से बहुवचन है] (नु) शीघ्र (नाभा) वेदी की नाभि वा अपने नाभिचक्र में (नव्यसे विवस्वते) नये उदय हुए सूर्य, वा प्राण के लिये (संदाय) हव्य देकर, वा शुद्धि करके (यत्) जब (ह) प्रसिद्ध (कारणा) काम करने वाले (इन्द्रवायू) बिजुली और वायु, वा मन और प्राण को (वृणीमहे) वरण करते हैं, तब (अध) इस के पश्चात् (धीतयः धीतयः) हमारी सब अङ्गुलियें, वा हमारे सब कर्म (देवान्) वायु आदि, वा प्राणादि देवतों को (अच्छ न) अभिव्याप्त होने के समान (नूनम्) अवश्य (उप प्र यन्ति) प्राप्त होते हैं। सो यह (श्रौषट्) श्रवण (अस्तु) हो॥

ऋत्विज् लोगों की शाला से पश्चिम की ओर "प्राचीनवंश" नामक यज्ञवेदी की दक्षिण दिशा में धनुषाकार एक कुण्ड होता है, उस में का अग्नि "दक्षिणाग्नि" कहाता है। उत्तर में कुण्ड नहीं होता। पश्चिम में गोलाकार कुण्ड होता है, उस में का अग्नि "गार्हपत्य" कहाता है। पूर्वदिशा में चौखूंटा कुण्ड होता है, उस में का अग्नि "आहवनीय" कहाता है। और पूर्वदिशा में ही पूर्वोक्त कुण्ड से आगे एक अन्य कुण्ड भी होता है उसे "उत्तरवेदी" वा "परली वेदी" कहते हैं। उस के मध्य की भूमि "नाभि" कहाती है। उस में अध्वर्यु और प्रतिहार के कर्म होते हैं। किन्तु होता का होम सम्बन्ध वा अग्निसंबन्ध उस से कुछ नहीं होता। इस प्रकार "पुरः" शब्द से पूर्वदिशा की पहली अव्यवहित चौखूंटी वेदी का ग्रहण है। निघण्टु २। १॥ २।९॥ २।५ निरुक्त ३। ८ शतपथ १२।९।१।१३ के प्रमाण और ऋ० १। १३९। १५ पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ५॥

अथ षष्ठ्याः- एवया मरुदृषिः॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १

(४६२) प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा

२ ३ १ २ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

एवयामरुत्। प्रशर्धाय प्रयज्यवे सुखादये तवसे

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे॥ ६॥

भावार्थः—परमात्मा आशीर्वाद देते हैं कि—(एवयामरुत्) हे ज्ञानप्रापक वेदों के जानने वाले मनुष्य ! (महे । बड़ाई के लिये, (मरुत्वते विष्णवे) ऋत्विजों वाले यज्ञ के लिये, (प्र) उत्तम (शर्धाय) बल के लिये, (प्रयज्यवे) जिस से यज्ञ करते हैं उस के लिये, (सुखादये) सुखपूर्वक भोग के लिये (तवसे) फुर्ती के लिये, (भन्ददिष्टये) कल्याण सुख संगत के लिये, (धुनिव्रताय) चलने फिरने के काम के लिये, (शवसे) और मानस बल के लिये, (गिरिजाः) तुम्हारी प्रार्थनावाणियों में उपजी (मतयः) बुद्धियें (वः) तुम्हें (प्र यन्तु) उच्च भाव से प्राप्त हों ॥ ऋ० ५ । ८७ । १ में भी ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः आनानतः पारुच्छेपिर्ऋषिः ॥

३ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २
(४६३) अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांꣳसि तरति
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
सयुग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः । धारा पृष्ठस्य रोचते
३ १ २ ३ १ २र २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
पुनानो अरुषो हरिः । विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्वभिः
३ १ २ ३ १ २
सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥ ७ ॥

भावार्थः—फिर परमात्मा का उपदेश है कि—हे मनुष्य ! (अया) इस (हरिण्या) रस खींचने वाली (रुचा) चमक से (न) जैसे (सूरः) सूर्य (सयुग्व भः) साथ जुड़ी किरणों से (विश्वा) सब (द्वेषांसि) विरोधी अन्धकारों को (तरति) नष्ट करता है, ऐसे ही (पुनानः) पवित्रात्मा पुरुष सब "द्वेषांसि" द्वेषादि दुर्गुणों को (सयुग्वभिः) साथ जड़े प्रज्ञानों से नष्ट करता है । (यत्) और जैसे (अरुषः) रूपवान् (हरिः) सूर्य और (पृष्ठस्य धारा) सूर्य के धरातल की ज्योतिरूप धारा (रोचते) चमकती है और (विश्वा रूपा) सब रूप वाली वस्तुओं को (सप्तास्येभिः ऋक्वभिः) सात रङ्ग रूप मुखवाले तेजों से (परियासि) व्यापता है, ऐसे ही (पुनानः) पवित्रात्मा पुरुष भी (ऋक्वभिः) प्रशंसाओं की सर्वतोविख्याति से व्याप जाता है ॥

निघण्टु ३ । ७ का प्रमाण और ऋ० ८ । १११ । १ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ७ ॥

अथाष्टम्याः—नकुलऋषिः

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १
(४६४) अभि त्यं देवꣳ सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्य-
२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १
सवꣳरत्नधामभिप्रियं मतिम्। ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा
२र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः॥८॥

भावार्थः—मनुष्य परमात्मा के प्रति निवेदन करता है कि हे पितः! (त्यम्) उन आप (देवम्) सुखदायक (ओण्योः सवितारम्) द्यु और पृथिवी के उत्पादक (कविक्रतुम्) सर्वज्ञ बुद्धि वाले (सत्यसवम्) सच्चे ऐश्वर्य वा वृष्टि वाले (रत्नधाम्) रमणीय मकान वा हीरे आदि वा लोकों के धारक (अभि प्रियम्) सब ओर से प्यारे (मतिम्) विद्वानों के माननीय (कविम्) वेदविद्या के उपदेष्टा को (अभि अर्चामि) सर्वतः पूजता हूं। (यस्य) जिस आप की (ऊर्ध्वा भा) उच्च दीप्ति से (अमतिः) जड़ प्रकृति (सवीमनि) उत्पत्ति समय पर (अदिद्युतत्) प्रकाशित हो जाती है। (हिरण्यपाणिः) वह तेजःस्वरूप (सुक्रतुः) सुकर्मा आप (कृपा) अपने सामर्थ्य से (स्वः) सूर्य और तदुपलक्षित अन्य लोकों को (अमिमीत) रचते हैं॥

निघण्टु ३। ३० ॥ निरुक्त १२। १३ ॥ ६। ७॥ १०। ३१ ॥ ५। ४॥ शतपथ ४। ३। ४। २१ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ यजुः ४। २५ और अथर्व ११। ४। २ में भी ॥ ८ ॥

अथ नवम्याः—परुच्छेप ऋषिः ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १
(४६५) अग्निꣳ होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुꣳ
२र ३ २ २३ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २
सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम्। य ऊर्ध्वया
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा। घृतस्य विभ्राष्टिमनु
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ ९ ॥

भावार्थः—पूर्वमन्त्र में ज्ञानकाण्ड की प्रतिज्ञा की, अब कर्मकाण्ड की प्रतिज्ञा करता है कि-हे इन्द्र ! परमेश्वर ! मैं (अग्निम्) अग्नि को (होतारम्) होमसाधक (वसोः दास्वन्तम्) धन का दाता [अपने विषय के विज्ञान वालों को] (सहसः सूनुम्) [बल करके अरणियों में से अग्नि उत्पन्न होता है इस कारण] बल के पुत्र (जातवेदसम्) जिस के प्रकाश से ज्ञान प्रकट होता है ऐसा (मन्ये) मानता हूं । दृष्टान्त-(न) जैसे (जातवेदसं विप्रम्) विद्या जिससे उत्पन्न है उस विद्वान् को ॥ (यः) जो (देवः) प्रकाशमान (स्वध्वरः) यज्ञ का सुधारने वाला अग्नि (देवाच्या) वायु आदि देवतों को जाने वाली (कृपा) सामर्थ्य से (आजुह्वानस्य) हवन किये जाते हुवे (सर्पिषः) ताये हुवे (शुक्रशोचिषः) श्वेतवर्ण (घृतस्य) घी की (विभ्राष्टिम् अनु) चमक के साथ (ऊर्ध्वया) ऊपर जाता है ॥

सायण के भाष्य में " वह्नि " पद की व्याख्या है परन्तु यह पद मूल में नहीं है । हां, ऋग्वेद १ । १२१ । १ में " वसो " की जगह " वसुम " और विभ्राष्टिमनुवष्टि शोचिषा जुह्वानस्य" पाठ है । उसी की भ्रान्ति से यह सायण भाष्य की भूल का अनुमान होता है । निघण्टु ३ । २० ॥ २ । ९ ॥ निरुक्त ७ । १९ ॥ ६ । ८ ॥ ६ । १७ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ९ ॥

अथ दशम्याः—गृत्समद ऋषिः ॥

१३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(४६६) तव त्यन्नर्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं
३२ २ ३२३ १२३ १९ ३ १२ ३२३२
कृतम् यो देवस्य शवसा प्रारिणा असु रिणन्नपः ।
२३ १२ ३१२३१२ ३१ २र ३१ २३१ २र
भुवो विश्वमभ्यदेवमोजसा विदेदूर्जं शतक्रतुर्विदे दिषम्॥१०॥

*** इति चतुर्थोऽध्याये द्वादशी दशतिः ॥ १२ ॥ ***

भावार्थः—अब ईश्वरभक्त ईश्वरीय बल की महिमा कहता है–(नृतः) हे सूर्यादि को नचाने वाले ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (तव) आप का (त्यत्) वह (नर्यम्) मनुष्यहितकारी (दिवि प्रथमम्) आकाश में विस्तृत (पूर्व्यम्) सनातन (कृतम्) किया हुआ (प्रवाच्यम्) प्रशंसनीय (अपः) कर्म है कि–

(यः) जो कोई ईश्वरोपासक (देवस्य शवसा) आप के बल से (असु रिणन्) जीवता हुवा (अपः) कर्मों का (आरिणाः) प्रारम्भ करे तो वह (शतक्रतुः) बहुकर्मा (विश्वम् अदेवम्) सब देवविरोधिमात्र का (ओजसा) पुरुषार्थ से (अभि भुवः) तिरस्कार करे और (ऊर्जम्) पराक्रम को (विदेत्) पावे तथा (इषम्) अन्नादि सब सामग्री को (विदेत्) पावे ॥

इस में सायणाचार्य ने सामवेद के पाठ (भुवः) का व्याख्यान न करके ऋग्वेद २।२२।४ के पाठ (भुवत्) की व्याख्या की है ॥ ऋ० में-यः=यत् । असु=असुम् । विदेत्=विदात् ये भी पाठान्तर हैं ॥ १० ॥

* यह चतुर्थाऽध्याय में बारहवीं दशति समाप्त हुई ॥ १२ ॥ *

तथा

कण्ववंशाऽवतंस श्रीमान् पं० स्वामी हज़ारीलाल के पुत्र,

परीक्षितगढ़ (ज़िला मेरठ) निवासी,

तुलसीराम स्वामिकृत सामवेद छन्दआर्चिक भाष्य में यह

चतुर्थ अध्याय समाप्त हुवा ॥ ४ ॥

समाप्तं चैन्द्रं पर्व काण्डं वा ॥ २ ॥

ओ३म्

अथ पञ्चमाऽध्यायः

आग्नेय और ऐन्द्र नाम के दो पर्व वा काण्ड पूर्ण होकर अब पञ्चमाध्याय के साथ पावमान वा सौम्य पर्व का आरम्भ है। इसलिये प्रथम पवमान वा सोम शब्द के अर्थ का विचार करना चाहिये। पवमान सोम इन्द्र अग्नि आदि पदों का यद्यपि मुख्य और पूर्ण अर्थ तो परमेश्वर ही है क्योंकि असीम भाव से उन २ पदों के अर्थ की संभावना परमात्मा में ही है, यह बात हम कई बार प्रथम निवेदित कर चुके हैं परन्तु तो भी आधिदैविक अर्थ का विचार शेष है सो किया जाता है। निघण्टु के चतुर्थ पञ्चम अध्यायों में जो पद नाम हैं उन में पवमान पद नहीं देखा जाता, परन्तु "सोम" निघण्टु अध्याय ५ खण्ड ५ में दूसरा पद है। और श्रीमान् यास्क मुनि ने सोम और पवमान को एकार्थ भी बतलाया है। इन सब के जानने के लिये हम निरुक्त का पाठ* उद्धृत करते हैं:—

"सोम एक ओषधि है और यह सोम शब्द सुनोति धातु से बना है जो कि यह ओषधि भी निचोड़ी वा अर्क खींची जाती है। निघण्टु के अनुसार इस का बड़ा व्याख्यान है"। जो आश्चर्य सा है। प्रधानता से पवमानदेवता वाली ऋचाओं में [नमूना] निदर्शनार्थ उदाहरण देंगे ॥ २ ॥

ऋ० ९। १। १—स्वादिष्ठया मदिष्ठया० सामवेदेऽपि छ० अ० ५। द० १। मं० २ ॥

यह सोम विषयक ऋचा निगद में व्याख्यात हो चुकी है। अब यह दूसरी ऋचा है जो इस सोम की वा चन्द्रमा की है ॥ ३ ॥

सोमं मन्यते पपिवान् ऋ० १०। ८५। ३

"सोमं०—पधिम्" इतने भाग से यह वर्णन किया है कि असोम को सोम समझ अभिषुत कर लिया हो ॥ "सोमं०—विदुः" इस भाग में यह कहा है कि जो ठीक सोम है उसे पूर्ण विद्वान् जानते हैं और यज्ञ न करने वाला उसे नहीं खाता। यह यज्ञविषयक अर्थ हुवा। अब देवताविषयक अर्थ करते

---

* पाठ संस्कृत भाष्य में है यहां अर्थ मात्र है ॥

हैं-"सोमं०-पधिम्" इतने ऋग्भाग में असोम को सोम समझने की भूल कही है। "सोमं० विदुः" में चन्द्रमा को सोम कहा है, उसे कोई नहीं खाता, जो अदेव है। अब एक और ऋचा है जो चन्द्रमा की वा इस सोम की है ॥ ४ ॥

यत्त्वा देव प्रपिबन्ति० ऋ० १० । ८५ । ५

इस ऋचा के पूर्वार्ध में नाराशंसों का अभिप्राय है वा महीने के शुक्ल कृष्ण दो पक्षों का। उत्तरार्ध में वायु को सोम का रक्षक कहा है साहचर्य से वा रस हरने से। संवत्सरों की आकृति मास है। इस से सोम को या तो रूप विशेषों से ओषधि समझना चाहिये वा चन्द्रमा" ॥ निरुक्त ११ । २ ५ ॥

इस प्रकार सोम शब्द से निरुक्तकार ने आश्चर्यगुणयुक्त सोमौषधि का ग्रहण किया है। और "पवमान देवतावाली ऋचाओं में निदर्शनार्थ उदाहरण देंगे" इस से आचार्य ने सोम और पवमान को एकार्थ ठहराया है और चन्द्रमा का नाम भी सोम बतलाया है। तथा सोम पद से महीने का अर्थ भी लिया है। और वेद के अर्थ में यौगिकार्थ की प्रधानता के कारण जिस २ मन्त्र में आये सोम वा पवमान शब्दों का जो २ अर्थ ठीक घटेगा वह २ किया जायगा। शतपथ ब्राह्मण में भी सोम शब्द के कई एक अर्थ पाये जाते हैं जैसा कि श० १२ । ६ । १ । १ में यज्ञ का नाम सोम है और उस के अङ्ग ये देवता अर्थात् आहुतियें हैं ॥ और श० ११ । ५ । ६ । ६ में साम ही सोमाहुति हैं देवतों की ॥ तथा श० ३ । ३ । १ । ४५ में प्राण का नाम सोम है। और श० ५ । १ । ५ । २८ में ज्योति को सोम कहा है ॥

अथ पञ्चमाध्याये प्रथमा दशतिस्तत्र—

प्रथमायाः-अमहीयुर्ऋषिः। सोमोदेवता। गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
(४६७) उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्याददे ।
३ २उ ३ २ ३ १ २
उग्रं शर्म महि श्रवः ॥ १ ॥

भावार्थः-अगले मन्त्र में स्पष्ट सोम पद के ग्रहण को देख कर प्रकरण से हे सोम! (ते) तेरे (अन्धसः) अन्न-भोजन से (जातम्) उत्पन्न (उग्रम्) प्रभावशाली (शर्म) सुख को और (महि) बड़े (श्रवः) यश को (दिवि)

स्वर्ग=सुखस्थान में (सत्) विद्यमान को (भूमिः) भूमिस्थ पुरुष (आददे) ग्रहण करता है ॥

भाव यह है कि-पृथिवी के वे मनुष्य जो सोमरस का भोग लगाते हैं, वे उस से उत्पन्न हुवे बड़े सुख और यश को प्राप्त होते हैं। सोमरस दुग्ध के समान श्वेत रङ्ग वाली लताओं से निकलता है। यह बात ऋग्वेद ९। १०७। ९ में (सोमो दुग्धा०) लिखी है॥ ऋ० ९। ६१। १० में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः-मधुच्छन्दा ऋषिः। सोमोदेवता। गायत्री छन्दः॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(४६८) स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया।

१ २ ३ १ २ ३ १
इन्द्राय पातवे सुतः ॥ २ ॥

भाषार्थः-(सोम) सोम! (इन्द्राय) विद्युत वा राजा के लिये (पातवे) चूसने वा पीने के लिये (सुतः) संपन्न किया हुवा (स्वादिष्ठया) स्वादिष्ठ और (मदिष्ठया) अति हर्षकारक (धारया) धारा से (पवस्व) प्राप्त हो॥

अर्थात् मनुष्यों को इन्द्रयागार्थ वा राजार्थ ऐसा सोम खींचना चाहिये जो अतिहर्षकारक और स्वादिष्ठ धार वाला हो ॥ ऋ० ९।१।१ में भी ॥२॥

अथ तृतीयायाः-भृगुर्वारुणिर्ऋषिः। सोमोदेवता। गायत्री छन्दः॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(४६९) वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः।

२ ३ १ २ ३ १ २
विश्वा दधान ओजसा ॥ ३ ॥

भाषार्थः-(ओजसा) बल सहित (विश्वा) सब गुणों को (दधानः) धारण किये हुवे (च) और (मत्सरः) हर्षकारक (वृषा) वीर्यवृद्धिकारक सोम! (इन्द्राय) इन्द्र के लिये (धारया) धार से (पवस्व) प्राप्त हो॥

ऋ० ९। ६५। १० में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः-अमहीयुर्ऋषिः। सोमोदेवता। गायत्री छन्दः॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(४७०) यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा।

३ १ २ ३ २
देवावीरघशꣳसहा ॥ ४ ॥

भाषार्थः—हे सोम ! (यः) जो (ते) तेरा (वरेण्यः) स्वीकार करने योग्य (देवावीः) देवों का रक्षक और (अघशंसहा) असुरों का नाशक (मदः) हर्षकर प्रभाव है (तेन) उस (अन्धसा) आदरयोग्य अन्न से (पवस्व) प्राप्त हो॥

सोमरस में ऐसा मद=हर्ष है कि जिस से सज्जनों की रक्षा और दुर्जनों का तिरस्कार होता है, इस से वह सब को स्वीकार करना चाहिये ॥

ऋ० ९ । ६१ । १९ में भी ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः—त्रित ऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

३ २उ ३ १२ ३ १ २ ३१२
(४७१) तिस्रोवाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः ।
१ २ ३ १२
हरिरेति कनिक्रदत् ॥ ५ ॥

भावार्थः—सोम के यज्ञ का वर्णन करता है—(तिस्रः) ऋग्, यजुः और साम तीन लक्षणयुक्त (वाचः) वाणियों को (उदीरते) ऋत्विज् लोग उचारते हैं और (धेनवः गावः) दुधार गौवें (मिमन्ति) [दुहने को] पुकारती हैं तथा (हरिः) सोम (कनिक्रदत्) अग्नि में गिरते हुवे निरन्तर जलमय होने से चिटचिटा शब्द करता हुवा (एति) जाता है ॥

अर्थात् सोमरस की धार चिटचिटाती अग्नि में पड़ती है, ऋत्विज् लोग तीनों प्रकार की ऋचाओं का पाठ करते हैं और प्रातः गोदोहनकाल होता है, यह भी सूचित किया है ॥

अष्टाध्यायी ७ । ४ । ६५ धातुपाठादि के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥

ऋ० ९ । ३३ । ४ में भी ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ्याः—कश्यप ऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २३ १२ ३ १२
(४७२) इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः ।
३ २ ३ १ २ ३ १२
अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(इन्दो) सोम ! (मधुमत्तमः) अतिमाधुर्ययुक्त (मरुत्वते इन्द्राय) वायु युक्त मेघस्थ विद्युत् को (पवस्व) प्राप्त हो (अर्कस्य) यज्ञ की (योनिम्) वेदि को (आसदम्) समीप करके बैठता हूं ॥

अर्थात् वेदि के समीप बैठकर अति मधुर रसयुक्त सोम की आहुतियें दी जाती हैं ॥ निघन्टु २ । १४ में "पवते" यह गत्यर्थक धातु का प्रयोग है ॥ ऋ० ९ । ६४ । ८२ में भी ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः–जमदग्निर्ऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २
(४७३) असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः ।
३ २उ ३ २ १
श्येनो न योनिमासदत् ॥ ७ ॥

भावार्थः–(मदाय) हर्ष=वृद्धि के लिये (अंशुः) सोम (असावि) खींचा जाता है (गिरिष्ठाः) पर्वत पर उत्पन्न होता, वा मेघमण्डल में स्थित हुवा (अप्सु) अन्तरिक्षजल में (दक्षः) बलिष्ठ होता और बढ़ता है । यह सोम (श्येनो न) बिजुली के समान (योनिम्) अपने कारण को (आसदत्) प्राप्त हो जाता है ॥

सोम शीतप्रधान देशों वा पर्वतों में उत्पन्न होता है, विद्युत् के बल विशिष्ट होने से विद्युत् उस का कारण कहा जाता है । वह हवन किया हुवा अपने कारण विद्युत् और मेघ द्वारा पुनः पर्वतादि जन्मभूमियों को पहुंच जाता है ॥

निघण्टु १ । १४ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९।६२। ४ में भी॥७॥

अथाऽष्टम्याः–दृढच्युत आगस्त्य ऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(४७४) पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥ ८ ॥

भावार्थः–(हरे) सोम ! (दक्षसाधनः) बलसाधक (मदः) हर्षकारक (मरुद्भ्यः) ऋत्विजों के लिये (वायवे) वायु तथा (देवेभ्यः) अन्य व्यावहारिक देवतों के लिये (पवस्व) प्राप्त हो ॥

निघण्टु २ । ९ में "दक्ष" बल का नाम है ॥ ऋ० ९ । २५ । १ में भी॥८॥

अथ नवम्याः–काश्यपोऽसित ऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(४७५) परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् ।
१ २ ३ १ २
मदेषु सर्वधा असि ॥ ९ ॥

भाषार्थः-(गिरिष्ठाः सोमः) पहाड़ी सोम (स्वानः) खींचा हुवा (पवित्रे) शुद्ध पात्र द्रोणकलशादि में (परि अक्षरत्) निचोड़ा जाता है वह (मदेषु) हर्षार्थ (सर्वधाः) सब का धारण करने वाला वा सबों से धारने योग्य (असि) है ॥ऋ० ९।१८।१ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये॥९॥

अथ दशम्याः—ऋष्यादय उक्तवत् ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २२ ३क २२ ३ २
(४७६) परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः ।
३ १ २ ३ १ २
स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥ १० ॥

* इति पञ्चमाऽध्याये प्रथमा दशतिः ॥ १ ॥ *

भाषार्थः-(कविक्रतुः) तीव्रबुद्धि (कविः) मेधावी (नप्त्योः हितः) आकाश पृथिवी का हितकारी पुरुष (स्वानैः) सोम खींचने वाले अपने साथी अध्वर्युओं सहित (दिवः) सुखस्थान की (प्रिया वयांसि) प्यारी आयुओं को (परि याति) सब ओर से प्राप्त होता है ॥

निघण्टु ३ । ३० का प्रमाण और ऋ० ९ । ९ । १ का अन्तर संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ १० ॥

* यह पञ्चमाध्याय में प्रथम दशति समाप्त हुई ॥ १ ॥ *

पवमानस्य गायत्र्यः प्रेत्यस्यां दशतौ दश ॥ १ ॥

अथ द्वितीया दशतिस्तत्र-

प्रथमायाः—श्यावाश्व ऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(४७७) प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् ।
३ २ ३ १ २
सुता विदथे अक्रमुः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(मदच्युतः) मद चूने वाले [पके] (सुताः) खींचे हुवे (सोमासः) सोम (नः मघोनाम्) हम हवि वालों के (विदथे) यज्ञ में (श्रवसे) अन्न वा यश के लिये (प्र अक्रमुः) जाते हैं ॥

निघण्टु ३ । १७ और सायणाचार्य के प्रमाण तथा ऋ० ९ । ३२ । १ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः–त्रित ऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(४७८) प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः ।
१ २ ३ १ २
वनानि महिषाइव ॥ २ ॥

भाषार्थः–(विपश्चितः सोमासः) बुद्धिवर्धक सोम (अपः ऊर्मयः) जल की लहरें (इव) सी (महिषाः) महान् (वनानि) जलों के प्रति (प्र नयन्त) जाते हैं ॥

निघण्टु १ । २ ॥ ३ । ३ इत्यादि प्रमाण और ऋ० ९ । ३३ । १ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः–अमहीयुर्ऋषिः । सोमोदेवता गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(४७९) पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने ।
२ ३ २ ३ १ २
विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ३ ॥

भाषार्थः–(इन्दो) हे सोम ! वा परमेश्वर ! (वृषा) वीर्यवर्धक, वा कामना पूर्ण करने वाला (सुतः) खींचा हुवा, वा हृदय कमल में साक्षात् किया हुवा तू (पवस्व) प्राप्त हो और (जने) मनुष्यवर्ग में (नः) हम को (यशसः) यशस्वी (कृधि) कर तथा (विश्वा) सब (द्विषः) शत्रुओं, वा काम क्रोधादिकों को (अप जहि) नष्ट कर ॥

भौतिकपक्ष में भाव यह है कि–सोम का सेवन करने वाले मनुष्यों में यश वाले, पराक्रमी और शत्रुओं का नाश करने वाले होने सम्भव हैं ॥

ऋग्वेद ९ । ६१ । २८ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः–भृगुर्ऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(४८०) वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे ।
१ २ ३ १ २
पवमान स्वर्दृशम् ॥ ४ ॥

भावार्थः—(पवमान) हे पवित्र कारक ! सोम ! वा परमेश्वर ! (भानुना द्युमन्तम्) प्रकाश से दीप्तमान् (स्वर्दृशम्) सुख दिखाने वाले (त्वा) तुझ को (हवामहे) हम हवन करते, वा पुकारते हैं (हि) निश्चय तू (वृषा) वीर्यवर्धक, वा कामनापूरक (असि) है ॥

भौतिकपक्ष में भाव यह है कि—सोम शुद्धिकारक, प्रकाश वाला, सुखदायक और वीर्यवर्धक है ॥ ऋ० ९ । ६५ । ४ में (पवमान स्वाध्यः) पाठ है ॥४॥

अथ पञ्चम्याः—कश्यप ऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
(४८१) इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मतिः ।
३ १ २र ३ १ २
सृजदश्वं रथीरिव ॥ ५ ॥

भावार्थः—(मतिः) मन का बढ़ाने वाला (चेतनः) बुद्धि का जगाने वाला (कवीनां प्रियः) इसी से बुद्धिमानों का प्यारा (इन्दुः) सोम (प्रविष्ट) प्राप्त हो (रथीरिव) जैसे रथी (अश्वम्) रथ के घोड़े को (सृजेत्) छोड़े ॥

ऋग्वेद ९ । ६४ । १० में (मती) पाठ है ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ्याः—ऋष्यादयः पूर्ववत् ॥

१ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
(४८२) असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया ।
३ १ २ ३ १ २र
शुक्रासो वीरयाऽऽशवः ॥ ६ ॥

भावार्थः—(गव्या) गौवों की इच्छा से (अश्वया) अश्वों के अभिलाष से (वीरया) और वीर पुरुषों की आकाङ्क्षा से (वाजिनः शुक्रासः आशवः सोमासः) बलिष्ठ वीर्यवर्धक वेग वाले सोम (प्र असृक्षत) [अग्नि में] छोड़े जाते हैं ॥

अर्थात् जो लोग वेदानुकूल सोमयागादि करते हैं उन की गौ, अश्व, वीर पुरुष आदि सब पदार्थों के लिये इच्छा को परमात्मा पूर्ण करता है ॥

ऋ० ९ । ६४ । ४ में भी ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः-निध्रुविः काश्यप ऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१२ ३१ २३१ २र ३ १२
(४८३) पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः ।
३१ २र३ १२
वायुमारोह धर्मणा ॥ ७ ॥

भावार्थः-सोम ! (देवः) दिव्यगुणयुक्त तू (आयुषक्) जिस से साथ मिल जावे इस प्रकार (वायुम्) वायु को (धर्मणा) स्वभाव से (आरोह) चढ़ और (ते मदः) तेरा हर्षकारक प्रभाव (इन्द्रम्) सूर्य वा मेघस्थ विद्युत् को (गच्छतु) जावे, इस लिये (पवस्व) प्राप्त हो ॥

जो सोम हवन किया जाता है उस का सारांश वा प्रभाव वायु में चढ़ कर सूर्य और मेघस्थ विद्युत् को प्राप्त होता है। इस से पूर्वमन्त्रोक्त फल होते हैं, यह तात्पर्य है ॥ ऋ० ९ । ६३ । २२ में (देवायुषक्) पाठ है ॥ ७ ॥

अथाऽष्टम्याः-अमहीयुर्ऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१२ ३२ ३१ २र३२
(४८४) पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् ।
१२ ३२ ३२
ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥ ८ ॥

भावार्थः-(पवमानः) सोम [हवन किया हुवा] (दिवः) आकाश से (तन्यतुम्) विस्तीर्ण (बृहत्) बड़ी (वैश्वानरम्) बिजुली की (ज्योतिः) ज्योति को (चित्रं न) विचित्र सी (अजीजनत्) उत्पन्न करता है ॥

अथवा-(पवमानः) पवित्र पुरुष (दिवश्चित्रं न) प्रकाश के विचित्र से (तन्यतुम्) विस्तीर्ण (वैश्वानरम् ज्योतिः) ईश्वरीय तेज को (अजीजनत्) आत्मा में प्रकट करता है ॥

उणादि ४ । २ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९।६१।१६ में भी ॥८॥

अथ नवम्याः-काश्यपोऽसित ऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(४८५) परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा ।
१ २ ३ १ २
मधो अर्षन्ति धारया ॥ ९ ॥

भाषार्थः—(स्वानासः) अभिषुत किये हुवे (इन्दवः) सोम (बर्हणा, गिरा) महती वेदवाणी के साथ (मधो धारया) मधुर धार से (मदाय) [वायु विद्युत् आदि देवों के] मदार्थ (परि अर्षन्ति) सब ओर जाते हैं ॥

ऋग्वेद ९।१०।४ में जो पाठान्तर है वह संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ९ ॥

अथ दशम्याः—ऋष्यादयः पूर्ववत् ॥

१ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २
(४८६) परि प्रासिष्यदत्कविः सिन्धोरूर्मावधिश्रितः ।
३ १ २र ३ १ २
कारुं बिभ्रत्पुरुस्पृहम् ॥ १० ॥

इति पञ्चमः प्रपाठकः ॥५॥

इति पञ्चमाध्याये द्वितीया दशतिः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(कविः) बुद्धिमान् यजमान (पुरुस्पृहम्) बहुतों से चाहे हुवे (कारुम्) स्तोता ऋत्विज् को (बिभ्रत्) धारण किये हुवे (सिन्धोः ऊर्मौ अधिश्रितः) मन की लहर पर ठहरा हुवा (परि प्रासिष्यदत्) सोम को अग्नि में होम करता है ॥

अर्थात् यजमान और ऋत्विज् सब को मिल कर यज्ञ में सोम होम करना चाहिये ॥

शतपथ ७।५।२।५२ निघण्टु ३।१६ के प्रमाण और ऋ० ९।१४।१ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १० ॥

यह पञ्चमाध्याय में दूसरी दशति पूर्ण हुई ॥ २ ॥

यह पांचवां प्रपाठक पूर्ण हुवा ॥ ५ ॥

उपोषु जातमित्यस्यां दशतौ दश कीर्त्तिताः ।
गायत्र्यः सोमदैवत्या विज्ञातव्या मनीषिभिः ॥ १ ॥

अथ तृतीया दशतिरत्र—

प्रथमायाः—अमहीयुर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

(४८७) उपोषु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् ।

१ २ ३ १ २

इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ १ ॥

भावार्थः—(देवाः) वायु बिजुली आदि देवता, (परिष्कृतम्) स्वच्छ किये हुवे (भङ्गम्) पत्थरों से छेते हुवे (अप्तुरम्) मेघस्थ जलों में जाने वाले (सुजातम्) उत्तम उत्पन्न हुवे (इन्दुम्) सोम को (गोभिः) अपनी अपनी किरणों से (उप उ अयासिषुः) समीप प्राप्त होते ही हैं ॥ ऋ० ९।६१।१३ में भी ॥१॥

अथ द्वितीयायाः—अमहीयुराङ्गिरस ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

(४८८) पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥ २ ॥

भावार्थः—(विचर्षणिः) जो विविध प्रकार का देखा जाता है वह (पुनानः) सोम (विश्वाः मृधः) समस्त शत्रुसेनाओं को (अभि, अक्रमीत्) अभिभूत करता है इस लिये उस (विप्रम्) वुद्धितत्त्व को जगाने वाले सोम को (धीतिभिः) अङ्गुलियों से (शुम्भन्ति) संस्कृत करते हैं ॥

निघण्टु ३ । ११ ॥ २ । १७ ॥ ३ । १५ ॥ २ । ५ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । ४० । १ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः—असितः काश्यपो जगदग्निर्वा ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र

(४८९) आविशन्कलशꣳसुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रियः ।

२ ३ १ २

इन्दुरिन्द्राय धीयते ॥ ३ ॥

भावार्थः—(सुतः) सम्पन्न किया हुआ (इन्दुः) सोम (विश्वाः श्रियः) सब सम्पदाओं को (अभि, अर्षन्) सर्वतः फैलाता हुवा (कलशम् आवि-

शन्) द्रोणकलश नामक कलशे में प्रविष्ट होता हुवा (इन्द्राय) यजमान राजा के लिये (धीयते) 'दशापवित्र' पर रक्खा जाता है ॥

ईश्वरपक्ष में-(सुतः) शमादिसंपन्न (इन्दुः) योगैश्वर्य वाला पुरुष (विश्वाः श्रियः अभ्यर्षन्) सब योगसम्पत्तियों को सब ओर फैलाता हुआ (कलशम्) प्रजापति में (आविशन्) अपने को प्रविष्ट जानता हुआ (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (धीयते) उपस्थित होता है ॥

शतपथ ४ । ३ । १ । ६ में प्रजापति को द्रोणकलश कहा है ॥ ऋ० ९ । ६२ १९ में जो पाठभेद है वह संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः-प्रभूवसुर्ऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र १ २

(४९०) असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः ।

१ २ ३ १ २

कार्ष्मन् वाजी न्यक्रमीत् ॥ ४ ॥

भावार्थः-(यथा) जिस प्रकार (रथ्यः) रथ में युक्त (वाजी) घोड़ा (कार्ष्मन्) इधर उधर आकर्षण वाले संग्राम में (चम्वोः) दो सेनाओं में (न्यक्रमीत्) नितराम् चलता है, इसी प्रकार (सुतः) संपन्न किया हुवा सोम (पवित्रे) दशापवित्र पर (असर्जि) छोड़ा जाता है ॥ ऋ० ९ । ३६ । १ में भी ॥४॥

अथ पञ्चम्याः-मेध्यातिथिर्ऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

३उ १ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २

(४९१) प्र यद्गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः ।

१ २ ३ २उ ३ १ २

घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥ ५ ॥

भावार्थः-(न) जैसे (भूर्णयः) त्वरायुक्त (त्वेषाः) प्रकाशयुक्त (अयासः) गमनशील (गावः) किरणें (कृष्णां त्वचम्) अंधियारी ढकने वाली रात्रि को (अप घ्नन्तः) दूर करते हुवे (प्र, अक्रमुः) उत्कृष्टता से चलते हैं, वैसे ही (यत्) जो सोम भी प्रकाशादि के करने वाले होते हैं ॥

निघण्टु २ । १४ ॥ १५ धातुपाठ भ्वा० आ० ॥ तु० प० आदि के प्रमाण तथा ऋ० ९ । ४१ । १ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ्याः-निध्रुविर्ऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३१ २ ३२
(४९२) अप घ्नन् पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः ।
३१ २र ३ १२
नुदस्वादेवयुं जनम् ॥ ६ ॥

भावार्थः-(सोम) हे परमेश्वर ! वा ओषधे ! (मत्सरः) हर्षदायक और (क्रतुवित्) बुद्धिलाभकारक तू (मृधः) शत्रुओं को (घ्नन्) विनष्ट हुवा करता (पवसे) प्राप्त होता है । सो तू (अदेवयुं जनम्) देवतों का यजन न चाहने वाले पुरुष को (अप नुदस्व) दूर भगाव ॥

सेवन किया हुवा परमेश्वर और सोमौषधि, सर्वशत्रुओं की निवृत्ति, बुद्धि की वृद्धि, हर्ष का दान और दस्युओं का नाश करता है । यह अभिप्राय है ॥

ऋ० ९ । ६३ । २४ में भी ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः-ऋष्याद्यपूर्वोक्तवत् ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २३ १ २
(४९३) अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः ।
३ १ २र ३२
हिन्वानो मानुषीरपः ॥ ७ ॥

भावार्थः-सोम=परमेश्वर ! वा ओषधे ! (मानुषीः अपः) मनुष्यों के कर्मों को (हिन्वानः) प्रेरित करता हुवा तू (यया धारया) जिस तेजोरूप धार वा बहती धार से (सूर्यम्) सूर्य लोक को (अरोचयः) प्रकाशित वा आप्यायित करता है (अया) उसी धार से (पवस्व) प्राप्त हो ॥

परमेश्वर वा सोम मनुष्यों को कर्म करने का सामर्थ्य देता है और सूर्य लोक को अपने तेज वा धार से प्रकाशित वा आप्यायित करता है ॥

ऋ० ९ । ६३ । ७ में भी ॥ ७ ॥

अथाऽष्टम्याः-अमहीयुर्ऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(४९४) स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे ।
३ १ २ ३ २ ३ २
वव्रिवांसं महीरपः ॥ ८ ॥

भावार्थः-सोम ! ओषधे (यः) जो तू (महीः अपः वव्रिवांसम्) भारी जलों को रोके हुवे (वृत्राय) मेघ को (हन्तुम्) हनन करने के लिये (इन्द्रम्) विद्युत् वा सूर्य को (आविथ) तृप्त करता है(सः)वह तू (पवस्व) अग्नि में हुत हो ॥

ईश्वरपक्ष में-सोम ! परमेश्वर ! (यः) जो आप (महीः अपः वव्रिवांसम् वृत्रम्) भारी शुभकर्मों को रोकते हुवे पाप को (हन्तुम्) विनष्ट करने के लिये (इन्द्रम् आविथ) जीवात्मा को तृप्त करते हैं (सः पवस्व) वह आप हमें प्राप्त हों ॥ ऋ० ९ । ६१ । २२ में भी ॥ ८ ॥

अथ नवम्याः-ऋष्यादय उक्तवत् ॥

३ १ २ १ २र ३ १ २ ३ २३ २

(४९५) अया वीती परिस्रव यस्त इन्दो मदेष्वा ।

३ १ २ ३ १ २र

अवाहन्नवतीर्नव ॥ ९ ॥

भावार्थः-(इन्दो) सोम ! (अया वीती) उस व्याप्ति से (परिस्रव) अग्नि में टपक कि (यः) जिस से आप्यायित जो सूर्य (ते मदेषु) तेरे उत्पादित हर्षों के होने पर (नव नवतीः) ८१० मेघों को (आ) सब ओर से (अवाऽहन्) - हनन करता है ॥

अथवा (इन्दो) परमेश्वर ! (अया वीती परिस्रव) उस व्याप्ति से अमृत वर्षाओ कि (यः) जिस से आप्यायित जीवात्मा (ते मदेषु) आपकी की हुई अमृतवृष्टि से उत्पन्न आनन्दों के होने पर (नव नवतीः) ८१० पापों को (आ) सब ओर से (अवाऽहन्) हनन करता है ॥

(नव नवतीः) का व्याख्यान विस्तारपूर्वक अध्याय २ दशति ७ ऋचा ५ (१७९) में कर आये हैं वहां देख लीजिये ॥ ऋ० ९ । ६१ । १ में भी ॥ ९ ॥

अथ दशम्याः-उचथ्य ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

(४९६) परि द्युक्षꣳ सनद्रयिं भरद्वाजं नो अन्धसा ।

३ १ २ ३ २ ३ २

स्वानो अर्ष पवित्र आ ॥ १० ॥

* इति पञ्चमाध्याये तृतीया दशतिः ॥ ३ ॥

भावार्थः-(स्वानः) सोम वा परमेश्वर (नः) हमारे लिये (द्युक्षं सन

द्रविं वाजम्) प्रकाशमान धनदायक बल को (अन्धसा) अन्न सहित (परि भरत्) सब ओर से प्राप्त करावे और (पवित्रे) दशापवित्र पर, वा पवित्र हृदय में (आअर्ष) सर्वतः प्राप्त हो ॥

सोमयाग वा ईश्वर की कृपा से मनुष्य धन धान्य बलादि को प्राप्त होते हैं। व्याकरण का प्रमाण और ऋ० ९ । ५२ । १ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १० ॥

* यह पञ्चमाध्याय में तीसरी दशति समाप्त हुई ॥ ३ ॥ *

—=:0*0:=—

अथोति दशतौ सौम्यो गायत्र्यो हि चतुर्दश ॥ १ ॥

अथ चतुर्थी दशतिस्तत्र—

प्रथमाया—मेध्यातिथिर्ऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
(४९७) अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः ।

१ २र
सꣳ सूर्येण दिद्युते ॥ १ ॥

भावार्थः—(वृषा) वृष्टिकारक वा वीर्यवर्धक (हरिः) हरा वा हरण शील (मित्रः न महान्) मित्र के समान सत्काराऽर्ह (दर्शतः) देखने योग्य सोम (सूर्येण सम्) सूर्य के साथ (दिद्युते) प्रकाश करता (अचिक्रदत्) और अग्नि में डाला हुवा चिटचिटा शब्द करता है क्योंकि जलयुक्त होता है ॥ ऋ० ९ । २ । ६ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः—भृगुर्ऋषिः । सोमोदेवता । गायत्रीछन्दः ॥

२ ३ १२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(४९८) आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे ।

२ ३ २ २ ३ १ २
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ २ ॥

भावार्थः—सोम ! वा परमेश्वर ! (ते) तेरे उस (मयोभुवम्) सुखकारक (आपान्तम्) सर्वतोरक्षा करते हुवे (पुरुस्पृहम्) बहुतों से कामना किये हुवे (दक्षम्) बल रूपी (वन्हिम्) अग्नि को जो प्रकाशक और प्रापक है (अद्य) आज यज्ञ दिन में (आ वृणीमहे) सब ओर से हम वरण करते हैं ॥

ऋ० ९। ६५। २८ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः–उचथ्य ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
(४९९) अध्वर्यो अद्रिभिः सुतꣳ सोमं पवित्र आनय ।

३ १ २ ३ १ २
पुनाहीन्द्राय पातवे ॥ ३ ॥

भावार्थः–(अध्वर्यो) हे अध्वर्यु ! (अद्रिभिः सुतं सोमम्) शिलवट्टों से छेतकर स्वरस निकाले हुवे सोम को (पवित्रे आनय) दशापवित्र पर ला और (इन्द्राय पातवे पुनाहि) इन्द्र अर्थात् सूर्य वा विद्युत् वा यजमान राजा के लिये पीने को स्वच्छ कर॥ ऋ० ९। ५१। १ में जो पाठभेद है वह संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः–अवत्सार ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
(५००) तरत्स मन्दी धावति धारासुतस्यान्धसः ।

२ ३ २ ३ १ २
तरत्स मन्दी धावति ॥ ४ ॥

भावार्थः–(धारासुतस्य) धार बांध कर निचोड़े हुवे सोमरूप (अन्धसः) अन्न के [उपभोग से] (सः) वह इन्द्र अर्थात् विद्युत् वा राजा (मन्दी) हृष्ट पुष्ट (तरत्) तीव्रतायुक्त (धावति) गमन वा प्राप्ति करता है (तरत्स मन्दी धावति) यह दूसरी वार वीप्सा अर्थात् अत्यन्त अभिलाष प्रकट करने को कहा गया है ॥ ऋ० ९। ५८। १ में भी ॥

निरुक्त के परिशिष्ट १३। ६ में इस ऋचा का व्याख्यान इस प्रकार मिलता है कि "वह आनन्दयुक्त जो स्तुति करता है, सब पाप से तरता और उत्तम गति को प्राप्त होता है। धार से निचोड़े, मन्त्र से पवित्र किये, वाणी से स्तुत किये [सोम] का" ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः–निध्रुविर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(५०१) आ पवस्व सहस्रिणꣳ रयिꣳ सोम सुवीर्यम् ।

३ १ २र
अस्मे श्रवाꣳसि धारय ॥ ५ ॥

भावार्थः-(सोम) ओषधे ! वा परमेश्वर ! (अस्मे) हमारे लिये (सहस्रिणम्) बहुत संख्या वाले (सुवीर्यम्) शोभन वीर्ययुक्त (रयिम्) धन का (आपवस्व) लाभ करा और (श्रवांसि) यशों का (धारय) धारण करा। अर्थात् सोमयज्ञ और ईश्वर की कृपा से मनुष्यों को धन वीर्य और यश प्राप्त होते हैं॥

अष्टाध्यायी के "सुपां०" ७।१।३९ इस सूत्र से यहां चतुर्थी विभक्ति को शे आदेश होकर (अस्मे) रूप हुवा और यही रूप सातों विभक्तियों में इसी सूत्र से होता है जैसा कि प्रथमार्थ में, द्वितीयार्थ में, तृतीयार्थ में और इसी मन्त्र में चतुर्थ्यर्थ में, पञ्चम्यर्थ में, ऋ० ३।३०।१९ में षष्ठ्यर्थ में और सप्तम्यर्थ में ऊपर संस्कृत भाष्य में है॥ ऋ० ९।६३।१ में भी॥ ५॥

अथ षष्ठ्याः-ऋष्यादिकमुक्तवत्॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

(५०२) अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः।

३ १ २ ३ १ २

रुचे जनन्त सूर्यम्॥६॥

भावार्थः-सोम के उपभोग और यजन से (प्रत्नासः आयवः) बूढ़े पुरुष (नवीयः पदम्) नवयौवन को (अनु अक्रमुः) क्रमशः प्राप्त होते हैं, इस कारण (रुचे) प्रकाश के लिये (सूर्यम्) सूर्यवत् तेज करने वाले [सोम] को (जनन्त) लोग उत्पन्न करते हैं॥ ऋ० ९।२३।२ में भी॥६॥

अथ सप्तम्याः-भृगुर्ऋषिः। सोमोदेवता। गायत्री छन्दः॥

१ २ ३ १ १ ३ १ २र ३ १ २

(५०३) अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत्।

३ १ २ ३ २ ३ २

सीदन्योनौ वनेष्वा॥७॥

भावार्थः-(द्युमत्तमः) दीप्तियुक्त, (योनौ, वनेषु, आसीदन्) अपने स्थान, जलों में, स्थित (द्रोणानि, अभी, रोरुवत्) द्रोण कलशों की, ओर, शब्द करता हुआ (सोम) सोमरस (अर्ष) आता है॥

जब दशापवित्र में से निकलता और द्रोण कलश में धार बंध कर सोम रस पड़ता है, तो धध धध शब्द करता हुवा सोमसेवियों को आनन्द देता है॥

यद्वा (सोम) हे परमेश्वर! (द्युमत्तमः) अनन्त प्रकाश वाले आप (योनौ अनेषु) गृहरूप हृदयकमलों में (आ सीदन्) विराजमान हुवे (द्रोणानि) उपासनारूपी यज्ञ के द्रोणकलश जो हमारे हृदय हैं (अभि) उन की ओर (रोरुवत्) वेदशब्दों का उपदेश करते हुवे (अर्ष) प्राप्त हूजिये॥

निघण्टु ३।४ में योनि=गृह का नाम है॥७॥

अथाऽष्टम्याः—कश्यप ऋषिः। सोमोदेवता। गायत्री छन्दः॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(५०४) वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः।
१ ३ १ २
वृषा धर्माणि दध्रिषे॥ ८॥

भावार्थः–(देव) दिव्यगुणयुक्त! (सोम) परमेश्वर! वा सोमौषधे! (वृषा असि) तू अमृत वर्षाने वाला, वा मेघ वर्षाने वाला है (वृषा) वीर्यदाता (वृषा) वीर्यवान् (द्युमान्) प्रकाश वाला (वृषव्रतः) श्रेष्ठ कर्म वाला, वा यज्ञ वाला तू (धर्माणि दध्रिषे) धर्मयुक्तकर्मों, वा यज्ञों का धारण करता है॥

सब यज्ञ वा अन्य उत्तम कर्म, परमेश्वर के अनुग्रह और सोमादि ओषधियों के प्रयोग से सिद्ध होते हैं, तथा सब प्रकार का बल और वीर्य प्राप्त होता है॥ ऋ० ९।६४।१ में (दधिषे) पाठ है॥ ८॥

अथ नवम्याः—ऋष्यादयः पूर्ववत्॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(५०५) इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः।
१ २ ३ १ २र
इन्दो रुचाभि गा इहि॥ ९॥

भावार्थः-(इन्दो) सोम! वा परमेश्वर! (मनीषिभिः) यज्ञ के अध्वर्युओं, वा उपासकों से (मृज्यमानः) शोधा जाता हुवा, वा ढूंढा जाता हुआ तू (इषे) गेहूं आदि अन्न के लिये, वा आत्मा की तृप्तिकारक ध्यानानन्दरस के लिये (धारया पवस्व) धार से प्राप्त हो, वा धारणा से प्राप्त हो और (रुचा) चमक से, वा ज्ञान के प्रकाश से (गाः) स्तुतिकर्ताओं को (अभि, इहि) सर्वतः प्राप्त हो॥

निघण्टु २।७॥ ३।१५॥ ३।१६ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये। ऋ० ९।६४।१३ में भी॥ ९॥

अथ दशम्याः—असित ऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(५०६) मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः ।
२ ३ १ २ ३ २
अव्या वारेभिरस्मयुः ॥ १० ॥

भावार्थः—(सोम) हे अमृतस्वरूप ! परमेश्वर ! वा ओषधे ! (वृषा) अमृतवर्षी, वा जलवर्षी (देवयुः) देवों=विद्वानों को चाहने वाला, वा वायु आदि देवों को चाहने वाला (अस्मयुः) और हम को चाहने वाला तू (वारेभिः) अपने वरणीय उत्तम गुणों से (अव्याः) हमारी रक्षा कर और (मन्द्रया धारया) गम्भीर अमृतधारा से वा जलधारा से (पवस्व) वृष्टि कर ॥

ऋग्वेद ९ । ६ । १ में (अव्यो वारेष्वस्मयु) पाठ है ॥ १० ॥

अथैकादश्याः—कविर्भार्गवो, भारद्वाजो वा ऋषिः ।
सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३क २र
(५०७) अया सोम सुकृत्यया महान्त्सन्नभ्यवर्धथाः ।
३ १ २र
मन्दान इद्वृषायसे ॥ ११ ॥

भावार्थः—(सोम) अमृतस्वरूप परमेश्वर ! वा ओषधे ! (मन्दानः) आनन्द (सन्) हुवा (महान्) सत्कारयोग्य तू (इत्) ही (वृषायसे) मेघ के सा काम करता है । क्योंकि (अया सुकृत्यया) इस उत्तम धारा से (अभ्यवर्धथाः) अमृतवर्षा वा वर्षा करके बढ़ाता है ॥ ऋ० ९ । ४७ । १ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ११ ॥

अथ द्वादश्याः—जमदग्निर्ऋषिः । सोमोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
(५०८) अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति ।
३ १ २र ३ २
हिन्वान आप्यं बृहत् ॥ १२ ॥

भावार्थः—(अयम्) यह सोम अमृतस्वरूप परमात्मा, वा ओषधिविशेष (विचर्षणिः) प्रकाशक (हितः) हितकारी (पवमानः) और शुद्धिकारक

है। (सः) वह (बृहत्) बड़े (श्रवम्) कर्मफल, वा जलोद्भव धान्य को (हिन्वानः) प्रेरित करता हुवा (चेतति) बुद्धि को बढ़ाता है ॥

विचर्षणि=प्रकाशक। निघण्टु ३। ११ ॥ ऋ० ९। ६२। १० में भी ॥ १२॥

अथ त्रयोदश्याः–अयास्य आङ्गिरसो वा ऋषिः।
सोमोदेवता। गायत्री छन्दः ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २र
(५०९) प्र न इन्दो महे तुन ऊर्मिं न बिभ्रदर्षसि।
३ २ ३ २ ३ १ २
अभि देवाँ अयास्यः ॥ १३ ॥

भावार्थः–(इन्दो) अमृतस्वरूप परमेश्वर ! वा ओषधे ! (देवान्) विद्वान् उपासकों, वा याज्ञिकों को (अभि, अयास्यः) तू सर्वतः प्राप्त होता है और (न) हमारे (महे) बड़े (तुने) ज्ञान धन, वा धान्यादि धन के लिये (ऊर्मिं न) तरङ्ग वा लहर सी (बिभ्रत्) धारण कराता हुवा (प्र, अर्षसि) उच्चभाव से प्राप्त होता है ॥

जिस प्रकार सोमरस से उत्पन्न हुवा हर्ष मनुष्यों के हृदयों में तरङ्ग सी उठाता है, इसी प्रकार परमात्मा की प्राप्ति से उत्पन्न हुवा आनन्द भी उपासकों के हृदय में लहर सी उठाता है और मग्न कर देता है। इस को वे लोग ही जानते हैं, जिन्हें अनुभव है ॥

निघण्टु २। १० का प्रमाण और ऋग्वेद ९। ४४। १ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १३॥

अथ चतुर्दश्याः–अमहीयुर्ऋषिः। सोमोदेवता। गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
(५१०) अपघ्नन् पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः।
२ ३ १ २ ३ २
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १४ ॥

इति पञ्चमाध्याये चतुर्थी दशतिः ॥ ४ ॥

भावार्थः–हे मनुष्यो ! (सोमः) सेवन किया हुवा परमेश्वर, वा सोम (अराव्णः अपघ्नन्) अदाता अयाज्ञिक यज्ञविरोधी पापियों को दूर करता हुवा तथा (मृधः अप) शत्रुओं को दूर करता हुवा (इन्द्रस्य निष्कृतम्)

परमात्मा के पवित्रपद मोक्ष को, वा इन्द्रपदवी को (गच्छन्) प्राप्त कराता हुआ (पवते) प्राप्त होता है ॥ ऋ० ९ । ६१ । २५ में भी ॥ १४ ॥

॥ यह पञ्चमाऽध्याय में चौथी दशति समाप्त हुई ॥ ४ ॥

पुनान इति पञ्चम्यां दशतौ द्वादश स्मृताः ।
पवमानस्य दैवत्यं बृहती छन्द एव च ॥ १ ॥
भरद्वाजः काश्यपोऽत्रिर्जमदग्निश्च गोतमः ।
विश्वामित्रो वसिष्ठश्च सप्तासामृषयोमताः ॥ २ ॥

श्लोकार्थः-" पुनानः " इत्यादि ५ वीं दशति की १२ ऋचों का पवमान देवता, बृहती छन्द और भरद्वाज, काश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गोतम, विश्वामित्र और वसिष्ठ, ये सप्त ऋषि हैं ॥ १ । २ ॥

अथ पञ्चमी दशतिस्तत्र प्रथमा-

३ १ २ ३ १ २ १ २र १ २ ३ १
(५११) पुनानः सोम धारयाऽपो वसानो अर्षसि। आ रत्नधा
२र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ॥ १ ॥

भावार्थः-(सोम) हे अमृतस्वरूप परमेश्वर ! आप (धारया) अमृत की धारा से (पुनानः) पवित्र करते हुवे (अपः) कर्मों और जीवात्माओं को (वसानः) व्यापक होकर आच्छादित किये हुवे (अर्षसि) हमें प्राप्त होते हैं । और (रत्नधाः) रमणीय पदार्थों के धारण करने कराने वाले (हिरण्ययः) ज्योतिःस्वरूप (उत्सः) कूप के समान गम्भीर अमृत के कूप रूप (देवः) आप (ऋतस्य) सत्य वेद के (योनिम्) कारण अपने निज स्वरूप में (आ सीदसि) सब ओर व्याप कर स्थित हैं ॥

सोम के पक्ष में-(सोम) ओषधे ! (धारया पुनानः) अपनी धार से शुद्ध करता हुवा (अपः) जलों में (वसानः) बसा हुवा (अर्षसि) हमें प्राप्त होता है और (रत्नधाः) रम्यपदार्थों का धारण कराने वाला (देवः) दिव्यगुणयुक्त (हिरण्ययः) चमकीला (उत्सः) द्रवरूप (ऋतस्य) यज्ञ के (योनिम्) स्थान में (आ सीदसि) अपने धूम से सब ओर फैल कर स्थित होता है॥

निघण्टु १ । १० का प्रमाण और ऋ० ९ । १०७ । ४ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १ ॥

अथ द्वितीया ॥

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १
(५१२) परीतो षिञ्चता सुतꣳ सोमो य उत्तमꣳ हविः। दधन्वाँ
२र ३ २ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २
यो नर्यो अप्स्वा३न्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥ २ ॥

भाषार्थः-(यः) जो (सोमः) सोम (उत्तमं हविः) उत्तम हव्य पदार्थ है, उस (सोमम्) सोम को (यः) जो अध्वर्यु आदि पुरुष (अप्सु अन्तः) जलों के मध्य में (अद्रिभिः आसुषाव) पाषाणों से रस खींचता है वह पुरुष (नर्यः) मनुष्यों का हितकारी है और (सुतम्) खींचे हुवे उस सोम को (दधन्वान्) धारण करने वाले तुम लोग (इतः) इस संसार में (परिषिञ्चत) हवन से सब ओर छिड़को=फैलाओ ॥

यद्वा-(यः) जो (सोमः) परमात्मा रूपी अमृत (उत्तमं, हविः) सर्वोत्तम ज्ञानयज्ञ का हवि ग्रहणयोग्य पदार्थ है, उस (सोमम्) परमात्मा रूपी अमृत (अप्सु अन्तः) कर्मों के साक्षिभूत को (यः) जो उपासक (अद्रिभिः) प्राणायामों से (आसुषाव) साक्षात्करता है, वह पुरुष (नर्यः) मनुष्यमात्र का हितकारी है और तुम लोग उस (सुतम्) साक्षात् किये हुवे परमात्मा रूपी अमृत को (दधन्वान्) धारण करते हुवे (इतः) इस संसार में (परिषिञ्चत) सब ओर छिड़को=आत्मज्ञान का उपदेश करो ॥

उणादि ४ । ६४ निघण्टु २ । १ इत्यादि प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । १०७ । १ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीया-

१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३
(५१३) आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया । जनो
२ ३ २ ३क २र ३ २ ३ २ ३ १ २
न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दध्रिषे ॥ ३ ॥

भाषार्थः-(अद्रिभिः) प्राणायामों से (स्वानः) साक्षात् किये जाते हुवे और (अव्यया, वाराणि, तिरः) नहीं घटने वाली, सूर्य की किरणों को, तिर-

स्कृत [मात] करते हुवे (हरिः) सब का ग्रहण करने वाले आप (सोम) हे अमृतस्वरूप ! परमात्मन् ! (चम्वोः) द्युलोक और पृथिवी लोकों में (आविशत्) सर्वत्र प्रवेश किये हुवे वर्त्त रहे हैं । दृष्टान्त-(न) जैसे (जनः) प्राणिवर्ग (पुरि) नगर में सर्वत्र प्रविष्ट रहते हैं तद्वत् । वह आप (वनेषु) एकान्त ध्यानयोग्य देशों में (सदः) हृदय कमलरूपी स्थान में (दध्रिषे) धारण किये जाते हैं ॥

यद्वा-(अद्रिभिः स्वानः) शिलवट्टों से स्वरस निकाला जाता हुवा और (अव्यया) न घटने वाली (वाराणि) सब की आच्छादक सूर्यकिरणों को (तिरः) अपनी चमक से तिरस्कृत करता हुवा (हरिः) हरितवर्ण धूम वाला (सोम) ओषधिविशेष । (चम्वोः) हवन से पृथिवी आकाश में (आविशत्) सर्वतः प्रवेश करके वर्त्तमान होता है (जनो न पुरि) जैसे नगरी में प्राणिवर्ग। और (वनेषु) मेघस्थ जलों में (सदः दध्रिषे) स्थान में धारण कराया जाता है ॥

अर्थात् जब मनुष्य शिलवट्टों से सोम का स्वरस निकाल कर अग्नि में हवन करते हैं, तब हरे रङ्ग के धुवें वाला सोम आकाश और पृथिवी में सूर्यकिरण सा चमकता हुवा मेघस्थ जलों में स्थान पाता है ॥

निघण्टु ३ । ३० का प्रमाण और ऋग्वेद ९ । १०१ । १० का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थी-

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
(५१४) प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा । अंशोः

२र ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥४॥

भावार्थः-(सोम) हे अमृत ! परमात्मन् ! (न) जैसे (सिन्धुः) समुद्र (अर्णसा) जल से (प्र पिप्ये) सर्वतः पूर्ण है, ऐसे ही आप (अंशोः पयसा) अमृत रूपी जल से पूर्ण हैं । अतएव कृपा करके (मदिरः) हर्षकारक (न) और (जागृविः) चेतन आप (देववीतये) विद्वान् उपासकों की तृप्ति के लिये (मधुश्चुतं कोशम्) आत्मा रूपी मधु को उपदेश द्वारा फैलाने वाले हृदय कोश को (अच्छ) प्राप्त हों ॥

यद्वा-(सोम) ओषधिविशेष ! (सिन्धुर्नाऽर्णसा प्र पिप्ये) जैसे समुद्र जल से पूर्ण है, वैसे (अंशोः पयसा) लताखण्ड के रस से तू पूर्ण है, अतः (मदिरः) हर्षकारक (न) और (जागृविः) आलस्यनिवारक (देववीतये) देवयजन

कीजिये (मधुश्रुतं कोशम्) मधु टपकाने वाले द्रोणकलश को (अच्छ) प्राप्त हो॥

जिस प्रकार समुद्र सर्वतः जल से पूर्ण है, इसी प्रकार सोम सर्वतः रस से पूर्ण है। हृष्टिपुष्टिकारक, आलस्यनिवर्त्तक वह सोम देवयजन के लिये द्रोणकलशादि पात्रों में रखकर वर्त्तनः चाहिये। यह तात्पर्य है॥

आत्मा का मधु नाम से वर्णन शतपथ के १४ वें काण्ड में आया है। ऋ० ९। १०७। १२ में भी॥ ४॥

अथ पञ्चमी--

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २

(५१५) सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधिष्णुभिरवीनाम्। अश्वयेव

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया॥ ५॥

भाषार्थः--(इव) जिस प्रकार (सोमः) सोम (सोतृभिः) अभिषव करने वाले अध्वर्युओं से (अवीनाम्) पर्वतों के (स्नुभिः) टुकड़ों=पाषाणों द्वारा (स्वानः) छेत कर स्वरस निकाला जाता हुवा (अश्वया) शीघ्रगामिनी (हरिता धारया) हरी धूमधारा से (अधि याति) ऊपर को जाता है (उ) इसी प्रकार [उपासित अमृत परमात्मा भी] (मन्द्रया धारया) गम्भीर धारणा से ध्यान किया हुवा (याति) भक्तों को प्राप्त होता है॥

अमरकोश ३। ३। २०६॥ २। ३। ५ के प्रमाण और ऋ० ९। १०७। ८ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ५॥

अथ षष्ठी--

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(५१६) तवाहꣳसोम रारण सख्य इन्दो दिवे दिवे। पुरूणि

३ १ २ ३ १ २र ३ २र ३ १ २

बभ्रो निचरन्ति मामव परिधीꣳरति ताꣳ इहि॥ ६॥

भाषार्थः-(बभ्रो) विश्वम्भर! (इन्दो) परमैश्वर्यवन्! (सोम) अमृत! परमात्मन्! (अहं तव सख्ये) मैं आप की आज्ञानुवर्त्तिता में (दिवे दिवे रारण) प्रति दिन रमण करता हूं (पुरूणि) अनेक योनियातनायें (माम्) मुझे (अव-निचरन्ति) सताती हैं। कृपया (तान् परिधीन्) उन उपाधि=बन्धनों को (अतीहि) निवारण करके प्राप्त हूजिये=मुक्ति दीजिये॥

उणादि १ । २१, १ । २२ अमर० ३ । ३ । १७० तथा हैमकोषादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ९ । १०७ । १९ में भी ॥ ६ ॥

अथ सप्तमी—

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
(५१७) मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि । रयिं पिशङ्गं
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाऽभ्यर्षसि ॥ ७ ॥

भावार्थः—(पवमान) हे पवित्र ! (सुहस्त्या) शोभनप्रकाश ! परमेश्वर ! (मृज्यमानः) अन्वेषण किये हुये आप (समुद्रे) हृदयान्तरिक्ष में (वाचम् इन्वसि) वाणी को प्रेरित करते हैं=वेदोपदेश करते हैं और (पिशङ्गम्) सुवर्णादि (पुरुस्पृहम्) बहुतों से चाहे हुवे (बहुलम्) बहुत (रयिम्) धन को (अभ्यर्षसि) सब ओर से प्राप्त कराते=देते हैं ॥

उणादि ३ । ८६ निघण्टु १ । ३ ॥ २ । १४ के प्रमाण और ऋ० ९ । १०७ । २१ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ७ ॥

अथाऽष्टमी—

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
(५१८) अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् । समुद्र-
२र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
स्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥ ८ ॥

भावार्थः—(मनीषिणः) ज्ञानी (सोमासः) जिन्हों ने अमृत पाया है वे (मत्सरासः) इसी से आनन्द में मग्न और (मदच्युतः) आनन्द को उपदेश से फैलाने वाले (आयवः) मनुष्य (मद्यम्) आनन्दकारक (मदम्) रस को (समुद्रस्य) हृदयान्तरिक्ष के (अधि) भीतर (विष्टपे) स्थान में (अभिपवन्ते) सम्पादित करते हैं ॥

निघण्टु २ । ३ का प्रमाण और ऋग्वेद ९ । १०७ । १४ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ८ ॥

अथ नवमी—

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ १
(५१९) पुनानः सोम जागृविरव्या वारैः परि प्रियः । त्वं

२र ३ १ २ ३ १ २
विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तम मघ्वा यज्ञं मिमिक्ष णः ॥ ९ ॥

भावार्थः-(सोम) हे अमृत ! (अङ्गिरस्तम) हे मेधावियों में उत्तम ! परमेश्वर ! (त्वम्) आप (पुनानः) पवित्र (जागृविः) चेतन (प्रियः) सर्वहितैषी (विप्रः) सर्वज्ञ (अभवः) हैं । कृपा करके (वारैः) अपने वरणीय गुणों से (परि अव्याः) हमारी सब ओर से रक्षा कीजिये । तथा (नः) हमारे (यज्ञम्) ज्ञानयज्ञादि को (मध्वा) आनन्दरस से (मिमिक्ष) सींचने की इच्छा कीजिये ॥

निघण्टु ३ । १५ का प्रमाण और ऋ० ९ । १०७ । ६ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ९ ॥

अथ दशमी-

१ २ ३ २३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३
(५२०) इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः । सहस्रधारो

१ २र ३ १ २ १ १२
अत्यव्यमर्षति तमीं मृजन्त्यायवः ॥ १० ॥

भावार्थः-(मदः) हर्षकारक (सुतः) संपादित (सहस्रधारः) बहुत धारों वाला (सोम) ओषधिरस, वा आत्मिकानन्द रस (मरुत्वते इन्द्राय) ऋत्विजों वाले यज्ञमान वा प्राणों वाले इन्द्रियाधिष्ठाता आत्मा के लिये (पवते) प्राप्त होता है, (ईम्) इसी लिये (तम्) उस को (आयवः) मनुष्य (मृजन्ति) संपादित करते हैं और वह (अव्यम्) रक्षायोग्य पुरुष को (अति) बहुतायत से (अर्षति) प्राप्त होता है ॥ ऋ० ९।१०७।१७ में भी ॥१०॥

अथैकादशी-

१२ ३ १ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १
(५२१) पवस्व वाजसातमोऽभि विश्वानि वार्या । त्वं समुद्रः

२ ३ २र ३ १ २ ३ १
प्रथमे विधर्मन्देवेभ्यः सोम मत्सरः ॥ ११ ॥

भावार्थः-(सोम) हे अमृत ! परमात्मन् ! (वाजसातमः) अन्नादि के अत्यन्त दाता (मत्सरः) आनन्दस्वरूप और आनन्ददायक (त्वम्) आप (विश्वानि) सब (वार्या) वरणीय स्तोत्रों को (अभि) लक्ष्य करके (प्रथमे विशाल वा श्रेष्ठ (विधर्मन्) विशेष करके धारक (समुद्रः) हृदयान्तरिक्ष में

(देवेभ्यः) अपने उपासकों के लिये (पवस्व) अपनी प्राप्ति का विधान कीजिये ॥ ऋ० ९ । १०७ । २३ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ११ ॥

अथ द्वादशी-

१२ ३२ ३२३ १ २ ३ १ २
(५२२) पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया । मरुत्वन्तो

३१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र
मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभि प्रयांऽसि च ॥१२॥

* इति पञ्चमाऽध्याये पञ्चमी दशतिः ॥ ५ ॥ *

भाषार्थः-(पवमानाः) पवित्र हुवे (मरुत्वन्तः) प्राणी (मत्सराः) आनन्द में मग्न (धारया) अमृत धारा से (पवित्रम्) पवित्र परमात्मा को (अभि) सर्वतः प्राप्त होकर (हया) घोड़े रूपी (इन्द्रिया) इन्द्रियों को, (मेधाम्) बुद्धि और उस से उपलक्षित मन चित्त अहङ्कार को (च) और (प्रयांसि) धान्यादि सांसारिक सामग्री को (असृक्षत) त्याग देते हैं=मोक्ष पाते हैं ॥

निरुक्त ५ । ६ और निघण्टु २ । ७ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋग्वेद ९ । १०७ । २५ में भी ॥ १२ ॥

* यह पञ्चमाध्याय में पांचवीं दशति पूर्ण हुई ॥ ५ ॥ *
तथा यह बृहती छन्दों का प्रकरण हुवा ॥

प्र तु द्रवेति दशती त्रिष्टुभो दश कीर्त्तिताः ॥ १ ॥

अथ षष्ठी दशतिस्तत्र-

प्रथमायाः-उशना ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २र३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १
(५२३) प्र तु द्रव परि कोशं निषीद नृभिः पुनानो अभि

२र २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
वाजमर्ष । अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा

३१ २ ३ १ २
बर्हीं रशनाभिर्नयन्ति ॥ १ ॥

भाषार्थः-प्रकरण से-सोम ! (नृभिः) अध्वर्युसंज्ञक मनुष्यों से (पुनानः) शोधा जाता हुवा (प्र द्रव) त्वरा से चलता है (तु) और (कोशम्) द्रोणकलश

को (अभि परि निषीद) व्याप=भर कर स्थित होता है। (अच्छ) भले प्रकार से (वाजिनम्) बलवान् (अश्वम्) घोड़े को (मर्जयन्तः) मार्जन करते हुवे अश्वसेवक (रशनाभिः) लगामों से (न) जैसे (नयन्ति) ले जाते हैं, वैसेही (त्वा) तुझ को अध्वर्यु लोग (बर्हिः) यज्ञकुण्ड को ले जाते हैं, वह तू (वाजम्) बल को (अर्ष) प्राप्त कराता है ॥

अर्थात् सोमरस को स्वच्छ सम्पन्न करके द्रोणकलशादि पात्रविशेष में स्थापित करके अध्वर्यु लोग यज्ञ को ले जाते हैं, उस से वह बलदायक होता है। जैसे कि सुशिक्षित और सुसंस्कृत घोड़ों को युद्धयज्ञ को ले जाते हैं और बल संपादित करते हैं (बल में उपमा है) और विजय को प्राप्त करते हैं॥

यद्यपि मूलसंहिता में (तु) पाठ है, परन्तु न जाने किस कारण से सायणाचार्यादि ने (नु) की व्याख्या की है। यह भी सन्देह नहीं कर सक्ते कि संहिता में "तु" पाठ अशुद्ध हो और लेखक का प्रमाद हो, क्योंकि-अश्वसाम, वृषौशन साम, जनस्याभीवर्त्त २ सामों और त्रिष्टुबौशनसाम इन ५ सामगानों में, जीवानन्द के छापे पुस्तक और पं० गुरुदत्त के लाहौर से छापे पुस्तक और बुम्बई के छपे ऋग्वेद ९। ८७। १ मन्त्रस्थपाठ में; इस प्रकार ८ स्थानों में (तु) ही देखा जाता है, (नु) नहीं ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः—वृषगणो वासिष्ठ ऋषिः। सोमोदेवता। त्रिष्टुप्छन्दः॥

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(५२४) प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा-
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २
विवक्ति। महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो
३क २र ३ १ २
अभ्येति रेभन् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(महिव्रतः) वाणी का करने=बनाने वाला (शुचिबन्धुः) पवित्र पुरुषों का बन्धु के समान हितकारी (पावकः) पवित्रस्वरूप और पवित्रकर्त्ता (देवानां देवः) देवों का देव परमात्मा (उशनेव) चाहता हुवा सा (काव्यम्) वेद का (प्र ब्रुवाणः) उपदेश देता हुवा (जनिम) सोमादि पदार्थों के जन्म को (आविवक्ति) विशेष करके बतलाता है। (पदा) वेदपदों को (अभि) हृदयाभ्यन्तर में (रेभन्) बतलाता हुवा (वराहः) श्रेष्ठ कल्परूपी दिन वाला (एति) [कल्पारम्भ में वेदप्रकाशक ऋषियों को] प्राप्त होता है ॥

यद्यपि परमात्मा अपने आप निष्काम है, परन्तु संसार पर अनुग्रह की इच्छा से कामना वाला सा जान पड़ता है, वह प्रत्येक कल्परूपी दिन के प्रारम्भ में पवित्र ऋषियों के हृदय में वेदोपदेश देता हुवा सोमादि उत्तम अमूल्य पदार्थों के गुण कर्म स्वभाव और जन्म का सविशेष उपदेश करता है। वह वेद द्वारा वाणी का प्रवर्त्तक और बनाने वाला भी होने से वाक्कर्त्ता कहाता है। पवित्रस्वरूप, पवित्रों का हितकारी, देवों का देव, काव्य के समान अलङ्कारादियुक्तवेद का उपदेश करता हुवा, सारे जगत् पर दया करता है॥

उणादि ४। २३८ अष्टाध्यायी ३।१।८५ और ७।४।७८ निघण्टु १।११॥ २।१ और निरुक्त ५।४ तथा विवरणकार और सत्यव्रत सामश्रमी जी के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये॥

कोई लोग इस में 'वराह' शब्द के आजाने से वराहावतार का वर्णन करते हैं, परन्तु यह अयुक्त है। क्योंकि वेदों में कहीं भी किसी अवतार का वर्णन नहीं, न परमेश्वर का अवतार सम्भव है, और वेदों में निराकार=देहरहित होने का प्रतिपादन है, और सायणाचार्य ने भी इस मन्त्र के भाष्य में अवतार का अर्थ नहीं किया, विवरणकार और सत्यव्रत जी भी 'वराह' शब्द का अर्थ 'सोम' दिखाते हैं, अवतार नहीं। निरुक्तकार यास्क मुनि भी वराह शब्द का अर्थ-मेघ, इन्द्र इत्यादि ही करते हैं और अपने अर्थ में ब्राह्मण और वेद के उदाहरण देते हैं। निदान वराह पद से अवतारविशेष का ग्रहण किसी प्राचीन भाष्यकार ने नहीं किया और जो २ विशेषण इस ऋचा में आये हैं, वे वराह में घट भी नहीं सकते॥ ऋ० ९। ९७। ७ में भी॥ २॥

अथ तृतीयायाः—पराशर ऋषिः। सोमो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः॥

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
(५२५) तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो

३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
मनीषाम्। गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः

१ २ ३ १ २ ३ २
सोमं यन्ति मतयो वावशानाः॥ ३॥

भावार्थः—(वह्निः) ईश्वरदत्त ज्ञान के ले चलने वाला ऋषि (तिस्रः वाचः) तीन प्रकार की ऋग्, यजुः और साम लक्षणयुक्त वाणियों को (ऋतस्य धीतिम्) सत्य की धारणा और (ब्रह्मणः मनीषाम्) परमात्मा की सत्य प्रज्ञा को (प्र

ईरयति) लोक में प्रचारित करता है, इस लिये (गावः) वेदवाणियें (गोपतिं पृच्छमानाः) वाणीपति=परमात्मा से पूछती हुईं सी (यन्ति) बाहर जाती हैं अर्थात् ज्यों की त्यों प्रकाशित होती हैं, तथा (मतयः) वेदवाही ऋषियों की बुद्धियें (वावशानाः) सोमादि वेदप्रतिपादित पदार्थों की कामना करती हुईं (सोमम्) सोमोपलक्षित वस्तुमात्र को (यन्ति) प्राप्त होती हैं ॥

पूर्व मन्त्र में यह कहा गया था कि ऋषि लोग प्रत्येक कल्प के आरम्भ में ईश्वर से प्रातिभासिक ज्ञान को प्राप्त हुवा करते हैं। इस मन्त्र में यह कहा जाता है कि सर्वथा ज्यों का त्यों ही परमात्मा की ओर से हृदय में प्राप्त हुवा ज्ञान जो ऋग्, यजुः और साम इन तीन प्रकार की ऋचाओं में वर्णित होता है, उसे ऋषि लोग प्रचार किया करते हैं। न्यूनाधिक कुछ नहीं। जिस प्रकार एक दूत अपने स्वामी से पूछ कर ज्यों का त्यों संदेश ले जाता है, इसी प्रकार वेदवाणियें मानो परमात्मा से पूछ कर चलती हैं। इसी लिये वेदों में प्रतिपादित सोमादि पदार्थों की यथार्थ प्राप्ति वेदवाही ऋषियों को हो जाती है, किसी प्रकार का भ्रम नहीं होता ॥

यहां तीन प्रकार की वाणी कहने से वेदों की ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद इन तीन संहिताओं का ग्रहण नहीं है, प्रत्युत चारों संहिता ऋग् यजुः साम अथर्व में तीन प्रकार की ऋचा हैं। एक ऋक्, दूसरी यजुः, तीसरी साम। जैसा कि मीमांसादर्शन सूत्र २।१।३५-३६-३७ में जैमिनि जी ने माना है कि "जिन की अर्थवश से पादव्यवस्था है वे ऋक्, जिन में गीति हैं वे साम और शेष यजुः" ॥ मीमांसा के सूत्र और निघण्टु १।११ तथा निरुक्त परिशिष्ट और इस का अनुसरण करते हुवे विवरणकार का मत संस्कृत भाष्य में देखिये। निरुक्त के परिशिष्ट की व्याख्या सी करते हुवे इस प्रकार कहते हैं कि ३ वाणी ऋग् यजु साम, वा सत्त्व रज तम, वा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति वृत्तियां। जल और किरणों को वहन करने=ले चलने से सूर्य को वह्नि कहा है। ऋत का अर्थ आदित्य वा ब्रह्म है। मनु के (अग्नौ प्रास्ताहुतिः०) अनुसार आदित्य आहुतियों का वाहक है। गौ शब्द का अर्थ जल वा किरण है। इसी प्रकार गोपति का अर्थ किरणपति=सूर्य है। जिस से पूछती हुई सी मति अर्थात् किरणें चलती हैं। मति नाम किरणों का इस लिये है कि उन से प्रकाश होकर विषयों को जाना जाता है। सोम आदित्य का नाम है, जिस में कामना करती सी किरणें फिर लौट जाती हैं। आध्यात्मिक पक्ष

में वह्नि आत्मा का नाम है, क्योंकि वह वशित्वादि गुणयुक्त है। वह ३ वाणी=१ विद्या २ बुद्धि ३ मन को प्रेरित करता है। विद्या=महत्तत्व, बुद्धि=अहङ्कार और मन=प्रधानता से भूतेन्द्रियां, अत आत्मा की धीति अर्थात् मन चाहे कर्मों को प्रेरित करते हैं। ब्रह्म=आत्मा को जो इन्द्रियों का स्वामी है, इन्द्रियां पूछ करके काम करती हैं। क्योंकि आत्मा के अभिप्रायानुकूल चलती हैं। इसी प्रकार सोम=आत्मा की कामना करती हुई उसी में चली जाती हैं, फिर प्रकट नहीं होतीं ॥ ऋ० ९। ९७। ३४ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः-वसिष्ठ ऋषिः। सोमो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३
(५२६) अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
समपृक्त रसम्। सुतः पवित्रं पर्येति रेभन्
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥ ४ ॥

भाषार्थः-(अस्य) इस वेद की (हेमना) सुवर्णतुल्य बहुमूल्य (प्रेषा) आज्ञा से [आज्ञानुसार] (पूयमानः) शोधा हुवा और (सुतः) अभिषुत संपन्न हुवा सोम (रेभन्) अग्नि में हवन करने से चिट चिटाता हुवा (पर्येति) गगनमण्डल में सब ओर फैलता है, तब (देवः) सूर्य (देवेभिः) वायु आदि देवों सहित (पवित्रं रसम्) शुद्ध रस को (समपृक्त) छुवाता वर्षाता है। चिट चिटा शब्द करते हुवे सोम के आकाशमण्डल में जाने पर दृष्टान्त-(मितेव) जिस प्रकार गिनने वाला और (होता) बुलाने वा दुहने वाला पुकारता हुवा (पशुमन्ति) पशु वाले (सद्म) घरों में जाता है तद्वत् ॥

जिस प्रकार गवादि पशुवों का संभालने, दुहने वाला, पुकारता हुवा खरक को जाता और दुहता है, इसी प्रकार हवन किया हुवा सोम आकाशरूपी खरक में मेघरूपी पशुओं को पुकारता हुवा मानो जाकर दुहता है ॥

अष्टाध्यायी ६। १। १६८ ॥ ६। १। ३४ इत्यादि प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९। ९७। १ में भी ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः-प्रतर्दन ऋषिः। सोमो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
(५२७) सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता
२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
पृथिव्याः । जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य
३ २ १ २र
जनितोत विष्णोः ॥ ५ ॥

भावार्थः-(सोमः) अमृत परमात्मा जो कि (मतीनां जनिता) बुद्धियों का उत्पादक (दिवोजनिता, द्युलोक का उत्पादक (पृथिव्याःजनिता) पृथिवी का उत्पादक (अग्नेर्जनिता) अग्नि का उत्पादक (सूर्यस्य जनिता) सूर्य का उत्पादक (इन्द्रस्य जनिता) विद्युत् का उत्पादक (उत) और (विष्णोः) यज्ञ का (जनिता) उत्पादक है (पवते) याज्ञिकों को प्राप्त होता है ॥

और विवरणकार यह अर्थ करते हैं कि-"सोमः पवते० । इस का विनियोग यज्ञ के चतुर्थ दिन में है । अधियज्ञ पक्ष के अर्थ में-पर्णसोम पृथिवी आदि का उत्पन्न करने वाला कहना संभव है क्योंकि यज्ञ द्वारा स्थिति का हेतु है । मति, द्युलोक, अग्नि, सूर्य, इन्द्र और व्याप्ति वाले पदार्थ का भी पृथिव्यादि से रस लेकर बढ़ाने वाला होने से "सोम सब का उत्पादक है" यह अधिदैवत अर्थ हुवा । और आत्मपरक अर्थ करें तौ यह होगा कि-आत्मा सोम है, जो सब में बसा है और सब को बनाता है । भोक्ता होने से आत्मा वा उपादान कारण । भूतेन्द्रियों का उत्पादक है और दोनों (पृथिवी तथा द्युलोक) के ग्रहण से मध्यवर्ती अन्तरिक्ष का भी ग्रहण जानो और उन तीनों स्थानों के अग्न्यादि का भी तथा व्याप्ति वाले पदार्थ का भी" ॥

तथा निरुक्त के परिशिष्टकार ने यह अर्थ किया है कि-" सोमः पवते० ऋचा में सोम सूर्य का नाम है क्योंकि वह उत्पादक है । वह मति=प्रकाश कारक सूर्यकिरणों, द्यु=प्रकट करने वाली सूर्यकिरणों, पृथिवी=फैलाने वाली सूर्यकिरणों, अग्नि=चलने वाली सूर्यकिरणों, सूर्य=स्वीकार करने वाली सूर्यकिरणों, इन्द्र=ऐश्वर्य आकर्षण वशीकरण करने वाली सूर्यकिरणों और विष्णु=व्यापने वाली सूर्यकिरणों का [उत्पादक है] यह देवता पक्ष का अर्थ हुवा । और आत्मा के पक्ष में-सोम आत्मा है क्योंकि वह भी उत्पादक है इन्द्रियादि का । और संपूर्ण विभूतियों से विभु आत्मा है । यह आध्यात्मिक अर्थ कहा" । नि० प० २ । १२ ॥ ऋ० ९ । ९६ । ५ में भी ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ्याः—वसिष्ठ ऋषिः। सोमो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः॥

३ १ २ ३१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३

(५२८) अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशन्त

१ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १

वाणीः। वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा

२ ३ १ २

दयते वार्याणि॥ ६॥

भाषार्थः—(वाणीः) वेदवाणी (त्रिपृष्ठम्) तीन पृथिवी द्यु और अन्तरिक्ष अथवा प्रातःसवन, माध्यन्दिनसवन और सायंसवन ये तीनों जिस के स्थान हैं, उस (वृषणम्) कामनापूर्णकर्त्ता, वा वृष्टि के हेतु (वयोधाम्) आयु वा अन्न के धारक (अङ्गोषिणम्) स्तुति वा प्रशंसा के योग्य को (अभि अवावशन्त) सर्वतः कामना करें=चाहें। वह (वरुणः) वरणीय परमात्मा, वा सोम (रत्नधाः) रत्नों का धारक (वार्याणि) वरणीय श्रेष्ठ रत्नों को (वि दयते) विशेष करके देता है। दृष्टान्त-(न) जैसे (वना) जलों को (वसानः) बसाये हुवे (सिन्धुः) समुद्र रत्न धारण किये हुवे है और खोजने वालों को रत्न देता है॥

जिस प्रकार परमात्मा पूर्णरूप से त्रिलोकी में व्याप रहा है, कामना पूर्ण करता है, प्राणियों की आयुः को धारण कराता है और प्रसंशनीय है, इसी प्रकार किसी अंश में सोम भी पृथिवी में उत्पन्न होता, हवन से द्यु और अन्तरिक्ष में भी व्यापता है, वृष्टि करता है, अन्न उत्पन्न करता और "अन्न ही प्राणियों के प्राण हैं" इस कहावत के अनुसार आयु का भी धारण करने वाला और प्रशंसनीय है। इस लिये वेदानुसार मनुष्यों को परमात्मा और सोमादि उत्तम पदार्थों की कामना करनी चाहिये। जिस प्रकार समुद्र में रत्न हैं और खोजने वालों को मिलते हैं, इसी प्रकार परमात्मा के उपासक और सोमादि उत्तम पदार्थों के ढूंढने वालों को भी सब रम्य रत्नपदार्थ प्राप्त होते हैं॥

अष्टाध्यायी ७।१।३९ निघण्टु २।७ निरुक्त ५।११ के प्रमाण और ऋ० ९।९०।२ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ६॥

अथ सप्तम्याः—पराशर ऋषिः। सोमो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

(५२९) अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मञ्जनयन्प्रजा भुवनस्य

५ २ २ १ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २२
गोपाः। वृषा पवित्रे अधिसानो अव्ये बृहत्सोमो
३ १ २२
वावृधे स्वानो अद्रिः ॥ ७ ॥

भावार्थः-(स्वानः) अभिषव किया हुवा (अधिसानः) अभिषेक किया जाता हुआ (सोमः) सोमरस (अव्ये) ऊन के (पवित्रे) दशापवित्र पर [स्थापित] (प्रथने) विस्तृत (विधर्मन्) विशेष धारक यज्ञ में (अद्रिः) मेघरूप में परिणत (बृहत्) बहुत (वावृधे) बढ़ता है और (भुवनस्य) पृथिव्यादि लोक की (प्रजाः) प्रजाओं को (जनयन्) अन्नोत्पत्ति करके उत्पन्न करता हुवा (गोपाः) गौ आदि पशुओं की तृणोत्पत्ति करके रक्षा करने वाला (वृषा) वर्षा करने वाला (समुद्रः) जिस से जल वर्षते हैं, वह सोमरस (अक्रान्) सर्वतः क्रान्त होता है ॥

ईश्वरपक्ष में-(अव्ये) पर्वत के एकान्त (पवित्रे) शुद्ध देश में (स्वानः) ध्यान से अभिषव किया जाता हुवा और (अधिसानः) अभिषेचन किया जाता हुवा (सोमः) आत्मा।अमन्द।अमृत (अद्रिः) मेघ सा (बृहत्) बहुत (वावृधे) समंडता=बढ़ता है । क्योंकि (गोपाः) पृथिवी आदि लोकों का पालक (समुद्रः) जिस में लोक लोकान्तर घूम रहे हैं, वह अमृत परमात्मा (भुवनस्य) भूलोकादि की (प्रजाःजनयन्) प्रजाओं को उत्पन्न करता हुवा (प्रथमे) विस्तृत (विधर्मन्) विशेष करके धारने वाले गगनमण्डल में (अक्रान्) सब को आक्रान्त कर रहा है । (वृषा) वह कामना पूरी करता है ॥

निरुक्त के परिशिष्टकार ने इस का व्याख्यान इस प्रकार किया है कि- "आक्रमण करता है समुद्र=आदित्य जो कि वर्षा करने से प्रजा का उत्पादक और सब का राजा है । सोम पवित्र पर स्थित, वृष्टिकारक, अत्यन्त बढ़ता है । यह आधिदैविक अर्थ हुवा । अब आध्यात्मिक अर्थ यह है कि- क्रमण करता है समुद्र=आत्मा, जो बड़े आकाश में ज्ञान द्वारा सब का उत्पादक और राजा है । (उत्तरार्ध का अर्थ पूर्व के तुल्य है) निरुक्तपरिशिष्ट २।१६ अष्टाध्यायी ८ । २ । ६४ ॥ निघण्टु १ । १० इत्यादि के प्रमाण और ऋग्वेद ९ । ९७ । ४० का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये, तथा निरुक्तपरिशिष्ट में ऋग्वेदस्थ पाठ की ही व्याख्या है ॥ ७ ॥

अथाऽष्टम्याः प्रस्कण्व ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१२ ३ २३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(५३०) कनिक्रन्ति हरिरासृज्यमानः सीदन्वनस्य जठरे
३ २ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १
पुनानः । नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गा।मतो मतिं
२ ३ १ २
जनयत स्वधाभिः ॥ ८ ॥

भावार्थः-(यतः) जिस कारण (पुनानः) सोम पवित्रता का कर्ता है, वह (नृभिः) मनुष्यों से (आसृज्यमानः) चारों ओर बैठ कर अग्नि में छोड़ा जाता हुवा (वनस्य) काष्ठ=इन्धन के (जठरे) जाठराग्नि में (सीदन्) रक्खा हुवा (हरिः) हरे (निर्णिजम्) रूप को (कृणुते) करता है अर्थात् अग्नि में हवन करने से हरे धुवें को निकालता है और (कनिक्रन्ति) चड़चड़ाता है । (अतः) इस कारण (स्वधाभिः) आहुतियों के साथ (गाम्) वेदमन्त्रों के उच्चारणरूप वाणी और (मतिम्) उन के अर्थ की विचारणा को (जनयत) उत्पन्न करो । अर्थात् सोम की आहुति, वेदमन्त्रों का उच्चारण और उन के अर्थ का विचार करते हुवे यज्ञ करो ॥

अष्टाध्यायी ६ । १ । १८९ ॥ ७ । ४ । ६५ निघण्टु ३ । ७ ॥ १ । ११ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । ९५ । १ में "गा अतो मतीः" पाठ है, और सायणाचार्य ने वहीं के पाठभेदभ्रम से "गाः" की ही व्याख्या की है ॥ ८ ॥

अथ नवम्याः-उशना ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३
(५३१) एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णः
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
परि पवित्रे अक्षाः । सहस्रदाः शतदा भूरि-
१ २ ३ २ ३ २उ ३क २र
दावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात् ॥ ९ ॥

भावार्थः-(इन्द्र) हे राजन् ! यजमान ! (मधुमान्) मधुर रसयुक्त (स्यः) वह (पवित्रे) दशापवित्र पर स्थित (सोमः) सोमरस (वृष्णः तें) यज्ञ करके

वर्षा कराने वाले आप के (शश्वत्तमं बर्हिः) सनातन यज्ञ में (परि अस्थाः) सब ओर फैले (एषः) यह (वृषा) वर्षा का हेतु (सहस्रदाः) सहस्र का दाता (शतदाः) शत का दाता (भूरिदावा) बहुत का दाता (वाजी) बलयुक्त [सोम] आप के यज्ञ में (आ अस्थात्) सर्वतः स्थित होवे ॥

अष्टाध्यायी ६ । १ । १३३ ॥ ३ । २ । ७४ के प्रमाण और ऋ० ९ । ८७ । ४ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ९ ॥

अथ दशम्याः—प्रतर्दन ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३

(५३२) पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावाऽपो वसानो अधि-

२ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १

सानो अव्ये । अव द्रोणानि घृतवन्ति रोह मदि-

२ ३ १ २ ३ १ २

न्तमो मत्सर इन्द्रपानः ॥ १० ॥

इति पञ्चमाऽध्याये षष्ठी दशतिः ॥ ६ ॥

भावार्थः—(सोम) सोमरस ! (अपः वसानः) जलों में मिला हुवा (मधुमान्) मधुर रसयुक्त (ऋतावा) यज्ञवाला (अव्ये) ऊर्णामय दशापवित्र पर (अधिसानः) अभिषेक किया हुवा (मत्सरः) हृष्टिपुष्टियुक्त और (मदिन्तमः) अतिहृष्टिपुष्टिकारक (इन्द्रपानः) इन्द्र=सूर्य विद्युत् वा राजा यजमान के पान योग्य (पवस्व) प्राप्त हो, तथा (घृतवन्ति) जल वाले (द्रोणानि) द्रोणकलशों में (अव रोह) रक्खा जावे ॥

सोमरस के संपादन करने वालों को उस में मिठाई मिला कर, जलतुल्य गीला करके, ऊन के दशापवित्र पर द्रोणकलशों में भर कर, रखके यज्ञ में वर्त्तना चाहिये । वह हृष्टि पुष्टि स्वादु से युक्त, हृष्टि पुष्टि स्वादु बल आदि देता है ॥

निघण्टु १ । १२ का प्रमाण और ऋ० ९ । ९६ । १३ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १० ॥

यह पञ्चमाध्याय में छठी दशति समाप्त हुई ॥ ६ ॥

प्र सेनानीति सोमस्य त्रिष्टुभो द्वादश स्मृताः ॥ १ ॥

अथ सप्तमी दशतिस्तत्र–

प्रथमायाः–प्रतर्द्दन ऋषिः । सोमोदेवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(५३३) प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गव्यन्नेति हर्षते
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २उ
अस्य सेना । भद्रान्कृण्वन्निन्द्रहवान्त्सखिभ्य आ
३ १ २ ३ १ २
सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥ १ ॥

भाषार्थः–सोमसेवी (सेनानीः) सेना का नायक (शूरः) शत्रुओं का बाधक (गव्यन्) शत्रु की भूमि को चाहता हुवा (रथानाम्) रथों के (अग्रे) आगे (प्र एति) चलता है और (अस्य) इस की अधीन (सेना) सेना (हर्षते) हृष्ट होती है । (सोमः) सोमरस (इन्द्रहवान्) इन्द्र=राजा की प्रशंसा के शब्दों को (भद्रान्)यथार्थ सच्चा (कृण्वन्) करता हुवा (सखिभ्यः) मित्रों के हित के लिये(वस्त्रा) दूसरों को ढकलेने वाले (रभसानी) धावों को (आ दत्ते) ग्रहण करता है ॥

गौः=पृथिवी निघं० १ । १ ॥ ऋ० ९ । ९६ । १ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः–पराशर ऋषिः । सोमोदेवत । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ १ २र
(५३४) प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन् वारं यत्पूतो अत्येष्यव्यम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
पवमान पवसे धाम गोनां जनयन्त्सूर्यमपिन्वो अर्कैः ॥२॥

भाषार्थः–(पवमान) सोम । (मधुमतीः) मधुरतायुक्त (ते) तेरी (धाराः) धारें तब (माऽसृग्रन) छूटती हैं (यत्) जब कि (पूतः) स्वच्छ किया हुवा (अव्यं वारम्) ऊन के दशापवित्र को (अत्येषि) लांघ कर अग्नि में जाता है (गोनां धाम) किरणों के पुञ्ज को (जनयन्) उत्पन्न करता हुवा (अर्कैः) अपने तेजों से (सूर्यम्) सूर्य को (अपिन्वः आप्यायित करता और (पवसे) गगनमण्डल को जाता है ॥

सोमरस को स्वच्छ करके दशापवित्र से लेकर अग्नि में होम करने से उस

की मधुर धारें छूटतीं और आकाशमण्डल में अपने तेजोयुक्त सूक्ष्म अवयवों से सूर्य की किरणों को बसाती हुई वृष्टि और शुद्धि करती हैं। यह तात्पर्य है॥

अष्टाध्यायी ७। १। ५७ का प्रमाण और ऋ० ९। ९७। ३१ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः—इन्द्रप्रमतिर्वासिष्ठ ऋषिः। सोमोदेवता। त्रिष्टुप्छन्दः॥

१ २ ३क २र ३ १ २र ३ १ २र
(५३५) प्र गायताभ्यर्चाम देवान्त्सोमꣳ हिनोत महते धनाय।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
स्वादुः पवतामति वारमव्यमासीदतु कलशं देव इन्दुः॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! (देवः) दिव्य उत्तम (इन्दुः) सोमरस (कलशम्) द्रोणकलश में (आसीदतु) रक्खा जावे, फिर (स्वादुः) स्वादुयुक्त सोमरस (अव्यम् वारम्) ऊन के दशापवित्र से (अति) उतर कर (पवताम्) छोड़ा जावे। तुम (सोमम्) सोमरस को (हिनोत) अग्नि में हवन करो। उस से (देवान्) वायु आदि देवतों को (अभ्यर्चाम) सत्कृत करो=सुधारो और (महते धनाय) बड़े धन की प्राप्ति के लिये (प्र गायत) भले प्रकार वेदमन्त्रों का उच्चारण करो॥

अष्टाध्यायी ७। १। ४३। २। ३। १४ के प्रमाण और ऋ० ९। ९७। ४ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये॥३॥

अथ चतुर्थ्याः—वसिष्ठ ऋषिः। सोमोदेवता। त्रिष्टुप्छन्दः॥

१ २ ३ २ २३ १ २र ३ २ ३ १ २र
(५३६) प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजꣳ
३ १ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
सनिषन्नयासीत्। इन्द्रं गच्छन्नायुधा सꣳशि
२ ३ २ ३ २३ १ २ ३ १ २
शानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः॥ ४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! (रोदसोः जनिता) द्युलोक और भूमिलोक का उत्पादक [क्योंकि हविः पहुंचाने से द्युलोक और वर्षा के हेतु होकर भूमि का आप्यायन सोमयज्ञ द्वारा होता है] (हिन्वानः) अग्नि में हवन किया हुआ (वाजं सनिषन्) जो अन्न देवेगा [वह सोम] (इन्द्रं गच्छन्) इन्द्र=सूर्य

वा विद्युत् के समीप जाता हुवा (आयुधा) मानो इन्द्र=सूर्य वा विद्युत् के आयुध=शस्त्रों को मेघहननार्थ (संशिशानः) पैनाता हुआ और (विश्वा) सब (वसु) धन को (हस्तयोः आदधानः) मानो हस्तगत करता हुआ (रथः न) रथ सा (प्र अयासीत्) आकाश को जाता है ॥

अष्टाध्यायी ६ । ४ । ५३ ॥ ७ । १ । ३९ निघण्टु २ । ७ ॥ ३ । ३० के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । ९० । १ में (सनिष्यन्) पाठ है और सायणाचार्य के भाष्य में भ्रम से उसी की व्याख्या हो रही है ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः-मृडीको वासिष्ठ ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

२ ३२ ३ १२ ३ १२ ३ १ २र३ १२ ३ १ २र

(५३७) तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग्ज्येष्ठस्य धर्मं द्युक्षोरनीके ।

१ २ ३ २३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

आदीमायन्वरमावावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम् ॥ ५ ॥

भावार्थः-(यदि) जब कि (मनसः) प्रशंसा करने वाले (वेनतः) कामना करते हुवे की (वाक्) प्रशंसा वाली वाणी (धर्मन्) धर्म अर्थात् यज्ञ में (ज्येष्ठस्य) बड़े श्रेष्ठ (द्युक्षोः) प्रकाशमान तेज वाले सवन के (अनीके) मुख्य समय में (तक्षत्) घड़ती है (आत्) तभी (कलशे) कलश में स्थित (ईम्) इस (जुष्टम्) प्रीतिपात्र (पतिम्) भर्त्ता के तुल्य (वरम्) वरणीय (इन्दुम्) सोम को (आवावशानाः) सर्वतः कामना करती हुईं सी (गावः) किरणें (आयन्) प्राप्त होती हैं ॥

यद्यपि यज्ञ के द्रोणकलश में स्थापित सोमरस का जब अग्नि में होम किया जावे, तब उस सोम का संपर्क किरणों से होवे, परन्तु जितने सवन का आरम्भ ही होता है और सोमरस द्रोणकलश में ही रक्खा रहता है और प्रशंसा करने वाले याज्ञिक पुरुष की वाणी वेदमन्त्रों से उस का वर्णन ही करती है, इतने ही किरणें मानो कोई स्त्रियें अपने प्यारे पति से स्पर्श करती हों, ऐसी कामना सी करती हुई, झट द्रोणकलशस्थित सोमरस से स्पर्श करती हैं ॥

अष्टाध्यायी ६ । ३ । १३६ ॥ ७ । १ । ३९ निघण्टु २ । ६ ॥ ३ । १४ निरुक्त २ । ६ के प्रमाण और ऋ० ९ । ९७ । २२ के पाठ का भेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ्याः-नोधा ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ १२ ३ १२३ २२ १२ २२३
(५३८) साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो
१२ २३ १२ ३ १ २र ३ १ २ ३
धनुत्रीः । हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे
२ ३ २ ३ २
अत्यो न वाजी ॥ ६ ॥

भावार्थः-प्रकरण से सोम प्रथम (द्रोणं ननक्षे) द्रोण कलश में भरा रहता है। फिर (धीरस्य) ध्यानशील होता की (साकमुक्षः) साथ खींचने वाली (स्वसारः) अच्छे फेंकने वाली (धनुत्र्यः) प्रेरणा करने वाली (दश धीतयः) १० अङ्गुलियें (मर्जयन्त) सोम को सुशोभित करती हैं। फिर (अत्यः) शीघ्रगामी (वाजी न) बलवान् अश्व सा [सोम] (हरिः) हरे रङ्ग वाला होकर (सूर्यस्य) सूर्य की (जाः) सन्तानरूप दिशाओं को (पर्यद्रवत्) सब ओर भागता है, अर्थात् अग्नि में हवन किया हुवा हरे धुवें के रूप में सब दिशाओं में फैलता है॥

स्रुव में जो अङ्गुलियों का आकार होता है, ५ वे और ५ होता के दहिने हाथ की मिलाकर १० अङ्गुलियां जानो ॥

निघण्टु २।५॥२।२॥२।१८ इत्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९। ९३।१ में भी ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः-काण्वो घोर ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ १२ ३ १ २३२३ १ २ ३ २१
(५३९) अधि यदस्मिन्वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः
२३१ २र ३१ २३ १ २ ३ १२ ३ १
सूरेन विशः। अपो वृणानः पवते कवीयान्व्रजं
२र ३ १ २ ३ १ २
न पशुवर्धनाय मन्म ॥ ७ ॥

भावार्थः-(यत्) जब कि (वाजिनीव) जैसे बलवान घोड़े पर तथा (सूरे न) जैसे सूर्य पर (शुभः) सुहाती हुई (विशः) किरणें (अस्मिन्) इस सोम पर (अधि स्पर्धन्ते) एक दूसरी से बढ़ कर प्रकाश करतीं हैं, तब (न) जैसे (कवीयान्) अतिचतुर गोपालक (मन्म व्रजम्) रक्षा वा सम्मानयोग्य खरक में (पशुवर्धनाय) पशुओं की वृद्धि के लिये (पवते) जाता है। वैसे

ही यह सोम भी (अपः) मेघस्थ जलों को (वृणानः) आच्छादित करता हुआ वृष्टि से पशु आदि की वृद्धि के लिये आकाश को जाता है ॥

निघण्टु १ । १६ ॥ २ । १४ ॥ ३ । १५ के प्रमाण और ऋग्वेद ९ । ९४ । १ के पाठभेदादि संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ किन्हीं २ पुस्तकों में मूल में (शुभः) पद विसर्गरहित देखा जाता है ॥ ७ ॥

अथाऽष्टम्याः-मन्युर्वासिष्ठ ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(५४०)इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातिं वरिवस्कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥८॥

भावार्थः-(इन्दुः) चूने वा टपकने के स्वभाव वाला (वाजी) बलवान् (गोन्योघाः) इन्द्रियों में नितरां बल पुरुषार्थ हो जिस का, ऐसा (सोमः) सोमरस (इन्द्रे) इन्द्रियों के अधिष्ठाता अन्तःकरण में (सहः) बल को (इन्वन्) पहुंचाता हुआ, यद्वा, इन्द्र=वृष्टि के कर्त्ता में बल पहुंचाता हुआ (पवते) चूता, टपकता वा वर्षता है और (रक्षः हन्ति) राक्षसगण का हननकर्ता तथा (अरातिम्) शत्रु का (परि बाधते) सर्वतः संहार करता है। ऐसा सोम (वरिवः) श्रेष्ठ धन को (कृण्वन्) उत्पन्न करता हुवा (वृजनस्य) बल वा सेना का (राजा) ऐश्वर्यकारी है ॥

अर्थात् सोमरस के हवन से इन्द्र वृष्टि करता और मेघों का हनन कर के धान्यादि धन को उत्पन्न करता है और सोमरस के सेवन से शरीर और मन को बल प्राप्त होता है, जिस से शत्रुओं को जीत कर राज्यादि ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं ॥

उणादि १ । १२ निघण्टु २ । १४ ॥ २ । ९ ॥ २ । २१ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ 'गोन्योघाः' पद में हमारे विचार में तो ओजस् का ओघस् है । ज का घ वर्णव्यत्यय से हुवा है । परन्तु सायणाचार्य ओघ शब्द अकारान्त की व्याख्या करते हैं, उस में दीर्घ पाठ विचारणीय ही रह जाता है । और श्री सत्यव्रत सामश्रमी जी कहते हैं कि "-'गोनी' शब्द महाभाष्य के पस्पशाह्निक में गमनशील के अर्थ में अपभ्रंश है, ऐसा पतञ्जलि ने लिखा है उस में 'ओघ' के स्थान में 'ओघाः' पाठ फिर विचारणीय ही रह जाता

है ॥ सायणाचार्य ने (अरातीः) ऐसा ऋग्वेद ९ । ९७ । १० का पाठ है, उसी की व्याख्या यहां सामवेद में (अरातिम्) पाठ होने पर भी की है ॥ ८ ॥

अथ नवम्याः कुत्स ऋषिः । सोमोदेवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १
(५४१) अया पवा पवस्वैना वसूनी माꣳश्चत्व
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २
इन्दोसरसि प्रधन्व । ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात् ॥ ९ ॥

भावार्थः—(इन्दो) सोम ! (अया) इस (पवा) पवित्र धारा से (मांश्चत्वः) अश्ववत् वेगगामी (सरसि) उदकपूर्ण आकाश में (प्र धन्व) ऊंचा जा, तथा (एना) इन (वसूनी) धान्यादि धनों को (पवस्व) वर्षाव । (यस्य) जिस तेरे (वातः न) वायु के समान (न रम्) लेचलने वाले (जूतिम्) वेग को (तकवे) गमन के लिये (पुरुमेधाः) बहुत प्रज्ञा वाला पुरुष (चित्) भी (ब्रध्नः चित्) और सूर्य (धात्) धारण करे ॥

यज्ञ में भले प्रकार अभिषव किया हुवा सोम अग्नि में हवन किया जाता है जिस से सूर्यादि भौतिकदेवों का आप्यायन होता है और उस के पान से विद्वान् यज्ञकर्त्ताओं का आप्यायन होता है । सोम तरलस्वभाव वाला, बुद्धि का उत्पादक और गतिवालों की गति का सहायक है। यह तात्पर्य है॥

अष्टाध्यायी ३ । २ । १०१ ॥ ६ । १ । १६९ ॥ ३ । ३ । ९७ ॥ निघण्टु १ । १४ ॥ १ । १२ ॥ २ । १४ इत्यादि के प्रमाण और ऋ० ९ । ९७ । ५२ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ९ ॥

अथ दशम्याः—पराशर ऋषिः । सोमोदेवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २
(५४२) महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥१०॥

भावार्थः—(सोमः) सोमरस वा अमृत परमात्मा (यत्) जोकि (अपां

गर्भः) जलों का ग्राहक वा कर्मों का ग्राहक (देवान् अवृणीत) वायु आदि देवतों, वा विद्वानों वा इन्द्रियों का वरण करता है, (महिषः) गुणों से महान् सोम (तत् महत्) यह बड़ा काम (चकार) करता है। तथा (पवमानः) शुद्धि का हेतु सोम (इन्द्रे) बिजुली वा आत्मा में (ओजः) बल को (अदधात्) धारण करता है और वही (इन्दुः) सोम (सूर्ये) आदित्य मण्डल में (ज्योतिः) प्रकाश को (अजनयत) उत्पन्न करता है॥

परमात्मा यह सब करता है, इस में तो विवाद ही नहीं, परन्तु सोम भी किसी अंश तक जलों का ग्राहक, वायु आदि देवों का वा पान करने से इन्द्रियों का वरण करने वाला, वृष्टिकारक, विद्युत्तत्त्व वा आत्मा में बल का धारण करने वाला और सूर्य की किरणों में फैलकर प्रकाश का उत्पन्न करने वाला कहा जा सकता है॥

निरुक्त के परिशिष्टकार २। १७ में कहते हैं कि यहां इन्दु=आत्मा वा आदित्य का नाम है। और निघण्टु २। १॥ ३। ३ के प्रमाण भी संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ऋ० ९। ९७। ४१ में भी॥ १०॥

अथैकादश्याः—कश्यप ऋषिः। सोमोदेवता। त्रिष्टुप्छन्दः॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १

(५४३) असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमा

२ ३ २ २ ३ १ १ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३

मनीषा। दश स्वसारो अधि सानो अव्ये मृजन्ति

२ ३ १ २ ३ १ २

वह्निं सदनेष्वच्छ॥ ११॥

भावार्थः—(यथा) जिस प्रकार (आजौ) संग्राम में (रथ्ये) जहां रथादि हों वहां (वक्वा) बोली बोलने वाले नायक से (प्रथमा) श्रेष्ठ (मनोता) जिस में मन ओत प्रोत हों उस (मनीषा) मन की चलाने वाली (धिया) बुद्धि अर्थात् पूर्ण सावधानी से (असर्जि) अस्त्र शस्त्र वा अश्वादि चलाये जाते हैं, इसी प्रकार (दश स्वसारः) १० अङ्गुलियें (अव्ये) पर्वत के (अधि सानो) सानुप्रदेश में (सदनेषु) सोमोत्पत्ति के स्थानों में (अच्छ) भले प्रकार से (वह्निम्) ले चलने की शक्ति वाले सोम को (मृजन्ति) शुद्ध करें और छोड़ें॥

अष्टाध्यायी ७। १। ३९ निघ० २। ५ इत्यादि के प्रमाण और ऋ० ९।९१।१

में जो पाठों के भेद हैं वे संस्कृतभाष्य में देखिये और सायणाचार्य ने पाठों में बहुत भेद होने पर भी उन्हीं ऋग्वेदस्थ पाठों का अनुसरण करके व्याख्या की है। इसी लिये असंबद्धता स्पष्ट जान पड़ती है ॥ ११ ॥

अथ द्वादश्याः–प्रस्कण्व ऋषिः। सोमो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ २ ३ २ ३ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३
(५४४) अपामिवेदूर्मयस्तर्त्तुराणाः प्र मनीषा ईरते
२ ३१ २ ३ २ ३१२ ३ २ ३ १ २र
सोममच्छ। नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चा च
३ २ ३१ २
विशन्त्युशतीरुशन्तम् ॥ १२ ॥

भावार्थः–(मनीषाः) बुद्धियें (अपाम्) जलों की (ऊर्मयः) तरङ्गों के (इव) समान (तर्तुराणाः) फुरतीली (इत्) सी (सोमम्) सोमरस के सेवन से सौम्यस्वभाव वाले पुरुष को (अच्छ) अच्छे प्रकार (प्र ईरते) प्राप्त होती हैं। (नमस्यन्तीः) मानो उस को नमस्कार करती हुई (उशतीः) और चाहती हुई (उशन्तम्) चाहते हुए उस पुरुष के (उप यन्ति च) समीप भी जाती हैं (सं च) और उस से मिलती हैं (आ विशन्ति च) और उस में अपना आवेश करती हैं ॥

अष्टाध्यायी ६। १। १८९ इत्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९। ९५। ३ में भी ॥ १२ ॥

* यह पञ्चमाऽध्याय में ७ वीं दशती समाप्त हुई ॥ ७ ॥ *
और यह त्रिष्टुप्छन्दों का प्रकरण हुआ ॥

पुरोजितीति दशतौ पावमान्यो नव स्मृताः ॥
अनुष्टुप्छन्दसोऽष्टौ च बृहती सप्तमी मता ॥ १ ॥
ऋषीणां विप्रकीर्णत्वात्तत्र तत्राभिदध्महे ॥

श्लोकार्थः-पुरोजिती० इस दशति में ९ ऋचा हैं, जिन का पवमान देवता है। ७ वीं का बृहती छन्द है। शेष ८ का अनुष्टुप्छन्द है ॥ १ ॥ सब ऋचाओं के भिन्न २ ऋषि हैं, उन का वर्णन उस २ ऋचा के शीर्षक पर ही किया जायगा ॥

अथ प्रथमा दशतिस्तत्र-

प्रथमायाः-श्यावाश्व ऋषिः । पवमानोदेवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(५४५) पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।
३ २ १ २ ३ १ २ ३क २र
अप श्वानꣳ श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥ १ ॥

भावार्थः-(सखायः) हे मित्रो ! (वः) तुम्हारे (मादयित्नवे) हर्ष वा आनन्ददायक (पुरोजिती) आगे जय कराने वाले (सुताय) संपादित सोम रूपी (अन्धसः) तृप्तिकारक अन्न के लिये अर्थात् उस की रक्षार्थ (दीर्घजिह्व्यम् श्वानम्) लम्बी जीभ वाले कुत्ते को (अप श्नथिष्टन) भगाओ ॥

यज्ञ स्थान एक पवित्रस्थान है, उस में रक्खे हुवे सोमादि उत्तम हव्य पदार्थों को कुत्ते और उस से उपलक्षित अन्य लम्बी जीभ वाले जो जीभ निकाल कर पानी पीते हैं उन मांसाहारादि परायी हानि करने वाले जन्तुओं से अवश्य बचाना चाहिये । इसी को मूल मान कर लोक में भी कहावत है कि " कुत्ती जैसे यज्ञमण्डप के योग्य नहीं " इत्यादि ॥ " इन ऋचाओं का ज्योतिष्टोम नामक यज्ञ में विनियोग है " ऐसा विवरण कार लिखते हैं ॥ परमेश्वर विषयक अर्थ में भी श्वन् शब्द से पराये अनिष्ट करने वाले क्रोधादि से अपने ध्यानाऽमृत की रक्षा करना आवश्यक है, जो कि आत्मा की तृप्ति का हेतु ध्यानाऽमृतरूप अन्न है ॥

उणादि १ । १५९ अष्टाध्यायी ७ । १ । ३९ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । १०१ । १ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः-ययातिर्नाहुष ऋषिः । पवमानोदेवता । अनुष्टुप्छन्दः

३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
(५४६) अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
१ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥ २ ॥

भावार्थः-हे मित्रो ! (अयं सोमः) यह सोम वा परमात्मा (पूषा) पुष्टिकर्त्ता (भगः) सब को सेवनीय (रयिः) धनदायक (पुनानः) पवित्रता का सम्पादक (अर्षति) कलश वा आकाश वा पवित्र हृदय में प्राप्त

होता है। तथा (विश्वस्य) सब (भूमनः) प्राणिवर्ग का (पतिः) पालन करने वाला, (उभे रोदसी) दोनों पृथिवी लोक और द्युलोक को (व्यख्यत्) अपने प्रभाव से प्रकाशित करता है। विवरणकार कहते हैं कि इस का विनियोग ज्योतिष्टोम यज्ञ के दूसरे दिन में है॥ ऋ० ९। १०१। ७ में भी॥ २॥

अथ तृतीयायाः—ऋष्यादयः पूर्ववत्॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(५४७) सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवित्रवन्तो अक्षरन्देवान् गच्छन्तु वो मदाः॥ ३॥

भाषार्थ—हे मित्रो! (वः) तुम्हारे (मदाः) हृष्टियुक्त (मन्दिनः) हर्षदायक (मधुमत्तमाः) अत्यन्त मधु मिले हुए (इन्द्राय सुतासः) इन्द्र के लिये अभिषुत किये हुवे (पवित्रवन्तः) दशापवित्रादि वाले (सोमाः) सोम (अक्षरन्) अग्नि में छिड़के जावें और (देवान्) देवतों को (गच्छन्तु) प्राप्त होवें॥ इस का विनियोग ज्योतिष्टोम के तीसरे दिन में विवरणकार कहते हैं॥ ऋ० ९। १०१। ४ में भी॥ ३॥

अथ चतुर्थ्याः—मनुः सांवरण ऋषिः। पवमानो देवता। अनुष्टुप्छन्दः॥

१ २ ३ १ २ १ ३ २ ३ १ २
(५४८) सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः॥ ४॥

भाषार्थः—(इन्दवः) दीप्तिवाले (गातुवित्तमाः) अधिकतया ठीक मार्ग को पाने और पहुंचाने वाले (मित्राः) सब के हितकारी (स्वानाः) अपने आप जीवन करने वाले (अरेपसः) पापरहित (स्वाध्यः) भले प्रकार से ध्यान करने वाले (स्वर्विदः) लगभग सब कुछ जानने वाले (सोमाः) सोम का सेवन करने वाले लोग (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (पवन्ते) प्राप्त होवें॥

निरुक्त १०। ४१ निघण्टु २। १४॥ १। १ के प्रमाण और ऋ० ९। १०१। १० का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ४॥

अथ पञ्चम्याः—ऋजिश्वाम्बरीषौ द्वावृषी। पवमानो देवता। अनुष्टुप्छन्दः॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(५४९) अभी नो वाजसातमꣳ रयिमर्ष शतस्पृहम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम् ॥ ५ ॥

भावार्थः—(इन्दो) प्रकाशस्वरूप ! (नः) हमारे लिये (वाजसातमम्) अन्न वा बल के अत्यन्त दाता (शतस्पृहम्) बहुतों से चाहे हुवे (सहस्रभर्णसम्) अनेक प्रकार से भरण पोषण करने वाले (तुविद्युम्नम्) बड़े यशस्वी (विभासहम्) बड़े बड़ों के प्रकाश को दबा सकने वाले (रयिम्) विद्यादि धन को (अभि अर्ष) सब ओर से प्राप्त कराइये ॥

निरुक्त ५ । ५ में द्युम्न=अन्न वा यश । सत्यव्रत सामश्रमी कहते हैं कि (विभासह) शब्द यहीं एक स्थान में ३ वेद संहिताओं में आया है ॥

ऋग्वेद ९ । ९८ । १ में (अभि) और (विभ्वासहम्) पाठ हैं ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ्याः—ऋभसूनू काश्यपौ ऋषी । पवमानो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
(५५०) अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वत्सं न पूर्व आयुनि जातꣳ रिहन्ति मातरः ॥ ६ ॥

भावार्थः—पूर्वोक्त सोमसेवी सौम्य पुरुष (अद्रुहः) किसी से द्रोह नहीं करते, सब पर प्यार करते हैं और (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (प्रियम्) प्यारे (काम्यम्) उत्तम काम्य कर्म को (अभि नवन्ते) प्राप्त करते हैं=अनुष्ठान करते हैं। दृष्टान्त-(न) जैसे (पूर्वे आयुनि) पूर्व आयु में (जातम्) उत्पन्न हुवे (वत्सम्) पुत्र पर (मातरः) उन की मातायें (रिहन्ति)[प्रेमसे] प्यार करती हैं ॥

निघण्टु २ । १४ इत्यादि के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । १०० । १ में भी ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः-ऋषिदेवते उक्ते । बृहती छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ
(५५१) आहर्यताय धृष्णवे धनुष्टन्वन्ति पौꣳस्यम् । शुक्रा
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
वियन्त्यसुराय निर्णिजे विपामग्रे महीयुवः ॥ ७ ॥

भावार्थः-पूर्वोक्त सोमसेवी धीर (शुक्राः) वीर्यवान् ब्रह्मचर्यबलयुक्त मनुष्य (आहर्यताय, घृष्णवे, असुराय) आक्रमण करते हुवे, धृष्ट, असुर=पराई हानि और स्वार्थसाधन में तत्पर पुरुष के लिये (पौंस्यम् धनुः) पौरुषयुक्त धनुष् को (तन्वन्त) चढ़ाते हैं। (महीयुवः) विजय से पृथिवी को चाहने वाले वे (विशाम्) विद्वानों के (अग्रे) आगे वर्त्तमान हुवे (निर्णिजे) अपने रूप की रक्षा के लिये (वियन्ति) लड़ते हैं॥

यद्यपि पूर्वोक्त प्रकार के सौम्य पुरुष सब का प्रियाचरण करते हैं, परन्तु जो कोई दुष्ट धृष्ट उन पर आक्रमण करे तो अपने स्वरूप की रक्षा के लिये उन से युद्ध करने में समर्थ होते हैं और विद्वानों के आगे होकर अपनी रक्षा और दुष्टों का दमन कर सकते हैं॥

निघण्टु २। १४॥ ३। ७॥ ३। १५ के प्रमाण और ऋ० ९। ९९। १ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये॥ सायणाचार्य ने ऋग्वेद के पाठ (वयन्ति) की ही व्याख्या यहां (वियन्ति) पाठ होते हुवे भी भ्रान्ति से की है॥७॥

अथाऽष्टम्याः-ऋजिश्वाम्बरीषवृषी। पवमानोदेवता। अनुष्टुप्छन्दः॥

२ ३ १ २ ३ १ ३२ ३ १ २ ३ १२

(५५२) परि त्यꣳ हर्यतꣳ हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण।

२ ३ २उ ३ २उ ३ १२ ३१ २र

यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति॥८॥

भावार्थः-(त्यम्) उस (हर्यतम्) सब से चाहने योग्य (हरिम्) हरे और (बभ्रुम्) श्वेतवर्ण सोम को (वारेण) वाल से रचे हुवे दशापवित्र से (परि पुनन्ति) सब प्रकार शोधते हैं। (यः) जो सोम (विश्वान्) सब (इत्) ही (देवान्) वायु आदि देवतों को (मदेन) रस के (सह) साथ (परि गच्छति) सब ओर जाता है॥

विवरणकार कहते हैं कि इस मन्त्र का विनियोग ज्योतिष्टोम यज्ञ के नवें दिन में है॥ ऋ० ९। ९८। ७ में भी॥८॥

अथ नवम्याः-प्रजापतिर्ऋषिः। पवमानोदेवता। अनुष्टुप्छन्दः॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

(५५३) प्र सुन्वानायान्धसो मर्त्तो न वष्ट तद्वचः।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३२ ३ १ २र

अप श्वानमराधसꣳ हता मखं न भृगवः॥९॥

इति पञ्चमाऽध्यायेऽष्टमी दशतिः ॥८॥

इत्यानुष्टुभम्

भावार्थः—(सुगवः) हे ज्ञानी मनुष्यो ! जो कोई (अन्धसः) सोमादि ओषधिरूप अन्न का (सुन्वानाय) सम्पादन करने वाला (मर्त्तः) मनुष्य अध्वर्यु और उस के उपलक्षण से अन्य ऋत्विज् हैं (तद्वचः) उस के वा उन के वचन [याचना] की (न प्र वष्ट) मत इच्छा करो अर्थात् विना याचना ही दक्षिणा दो और (अराधसम्) विना दक्षिणा के (मखम्) यज्ञ को (न हत) मत नष्ट करो किन्तु (श्वानम्) कुत्ता आदि कर्मविघ्नकारी प्राणि-वर्ग को (अप हत) हटाओ ॥

अर्थात् यजमान को चाहिये कि अध्वर्यु आदि ऋत्विज् लोग जो सोम रस के सवन आदि कामों को करते हैं उन की याचना की प्रतीक्षा न करे, किन्तु विना मांगे ही श्रद्धा और योग्यतानुसार दक्षिणा दे । और विना दक्षिणा के यज्ञ नष्ट न करे । लोक में भी (विना दक्षिणा यज्ञ हत=नष्ट है) इत्यादि कहावतों का मूल ऐसे मन्त्र ही जान पड़ते हैं ॥ ऋ० ९ । १०१ । १३ में जो अन्तर है वह संस्कृतभाष्य में देखिये ॥९॥

यह पञ्चमाध्याय में आठवीं दशति पूर्ण हुई ॥८॥

जगत्योऽभिप्रियाणीति सौम्यो द्वादश संमताः ।
ऋषीणां विप्रकीर्णत्वाद्दृश्यन्ते तत्र तत्र हि ॥ १ ॥

अथ नवमी दशतिस्तत्र—

प्रथमायाः—कविर्ऋषिः । पवमानोदेवता । जगती छन्दः ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(५५४) अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि
३ २उ ३ २ ३ १ २ १ २र ३ २
यह्वो अधि येषु वर्धते । आ सूर्यस्य बृहतो
३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २
बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥ १ ॥

भाषार्थः-(वनोहितः) अन्नोत्पत्ति के लिये हितकारी (महः) महान् सोम (नमानि) नम्रशील (प्रियाणि) जगत् का प्रीणन करने वाले जलों को (अभि पवते) सब ओर से वर्षाता है । (येषु) जिन अन्तरिक्षस्थ जलों के (अधि) ऊपर आकाश में (वर्धते) प्रवृद्ध होता है । (बृहतः सूर्यस्य) बड़े आदित्य मण्डल की [किरणों में] (विष्वञ्चं रथम्) तिरछा चलने वाले रथ में (विचक्षणः) विलक्षण प्रकाश वाला (बृहन्) बढ़ता हुवा सोम (अध्यरुहत्) चढ़ता है ॥

ऐसा ही मनुने भी कहा है कि "अग्नि में छोड़ी आहुति सूर्य को प्राप्त होती है और सूर्य से वर्षा, उस से अन्न, उस से वीर्य, उस से प्रजा उत्पन्न होती हैं" ३ । ७६ ॥ निरुक्त ६ । १६ निघं० ३ । ३ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये । ऋ० ९ । ७५ । १ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः-कविर्ऋषिः । पवमानो देवता । जगती छन्दः ॥

३ १२ ३ १ २३ २ ३ १ २

(५५५) अचोदसोनो धन्वन्त्विन्दवः प्रस्वानासो

३२३२ ३१२ १ २ ३२ ३ २ ३

बृहद्देवेषुहरयः । वि चिदश्नाना इषयो

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अरातयोर्यो नः सन्तु सनिषन्तु नो धियः ॥२॥

भाषार्थः-(अचोदसः) अनन्यप्रेरित (स्वानासः) अभिषुत किये जाते हुवे (हरयः) हरित धूमरूप में परिणत, वा हरणस्वभाव वाले (इन्दवः) सोम, वा आत्मायें (नः) हमारे (देवेषु) वायु आदि देवतों वा इन्द्रियों में (बृहत्) बहुत (प्र धन्वन्तु) दृढ़ता से प्राप्त होवें । (चित्) तथा (नः) हमारे (अरातयः) दानरहित (अर्यः) शत्रुतुल्य (इषयः) विषयेच्छु कामादिगण (वि-अश्नानाः सन्तु) निर्विषय होजावें और (नः) हमारी (धियः) बुद्धियें, वा कर्म (सनिषन्तु) संविभाग को प्राप्त होवें ॥

निघण्टु २ । १४ का प्रमाण और ऋ० ९ । ७९ । १ का पाठ भेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥२॥

अथ तृतीयायाः-ऋष्याद्य उक्तवत् ॥

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३
(५५६) एष प्रकोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो
१ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वपुषो वपुष्टमः। अभ्यृ३तस्य सुदुघा घृतश्चुतो
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वाश्रा अर्षन्ति पयसा च धेनवः ॥ ३ ॥

भाषार्थः-(एषः) यह (इन्द्रस्य वज्रः) इन्द्र का वज्रतुल्य प्रहार का साधन (वपुषः, वपुष्टमः) बोने वाले से अधिक बोने वाला [क्योंकि सोम ही अन्न और ओषधियों का उत्पादक है] (मधुमान्) मधुरतायुक्त सोम (कोशे) द्रोण कलशादि में (प्र अचिक्रदत्) अत्यन्त शब्द करता है (च) और (ऋतस्य) जल की (धेनवः) धारण करने वाली (सुदुघाः) भले प्रकार दुहने योग्य (घृतश्चुतः) जल को टपकाने वाली (वाश्राः) शब्द करती हुई (पयसा) जल से (अभि अर्षन्ति) सब ओर वर्षती हैं ॥

ऋ० ९ । ७७ । १ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः-ऋषिगण ऋषिः । पवमानोदेवता । जगती छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १
(५५७) प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतꣳसखा सख्युर्न
२र ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
प्रमिनाति संगिरम् । मर्यइव युवतिभिः समर्षति
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
सोमः कलशे शतयामना पथा ॥ ४ ॥

भाषार्थः-(इन्दुः) सोम,वा जीवात्मा (इन्द्रस्य) विद्युत, वा परमात्मा के (निष्कृतम्) स्वच्छ पद को (प्रो अयासीत्) उन्नत होकर प्राप्त होता है (सख्युः) अनुकूलवर्त्ती के (सखा) अनुकूल रहता हुआ (संगिरम्) सुन्दर शब्द, वा वाणी को (न प्रमिनाति) नहीं नष्ट करता है किन्तु (इव) जैसे (मर्यः) मनुष्य (युवतिभिः) युवतियों के साथ (समर्षति) प्रीति से सङ्गत होता है वैसे (सोमः) सोम, वा आत्मा (कलशे) द्रोण कलश, वा परमात्मा में (शतयामना पथा) अनेकों की गति वाले मार्ग से प्राप्त होता है ॥

निघण्टु २ । ३ और अष्टाध्यायी ३ । १ । १२३ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । ८६ । १६ में भी ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः—कविर्भार्गव ऋषिः । पवमानोदेवता । जगती छन्दः ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३
(५५८) धर्ता दिव.पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो
१ २ १ २ ३ २उ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
नृभिः। हरिःसृजानो अत्योन सत्वभिर्वृथा पाज.ंसि
३ २
कृणुषे नदीष्वा ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(सत्वभिः नृभिः) प्राणधारी नेता ऋत्विजों से (सृजानः) अभिषुत किया हुवा (देवानामनुमाद्यः) देवतों का हर्षकारक (दिवःधर्ता) द्युलोक का धारक (कृत्व्यः) संपादन किया हुआ (रसः) रसरूप (दक्षः) बलकारक (हरिः) हरितवर्ण सोम (अत्यः न) घोड़े के समान वेग से (पवते) जाता है तथा (नदीषु) नदी आदि जलप्रवाहों में (वृथा) विना यत्न ही (पाजांसि) बलों को (आ कृणुषे) सब ओर से बढ़ाता है ॥

निघण्टु २ । ९ ॥ १ । १४ ॥ २ । ९ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये । विवरणकार कहते हैं कि इस का यज्ञ के अष्टम दिन में विनियोग है । ऋ० ९ । ७६ । १ में तो "कृणुते" पाठ है और सायणाचार्य ने उसी की व्याख्या यहां भी कर दी है ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ्याः—कविर्ऋषिः । पवमानोदेवता । जगती छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र
(५५९) वृषा मतीनां पवते विचक्षणःसोमो अह्नां प्रतरीतोषसां
३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३
दिवः। प्राणा सिन्धूनां कलशां अचिक्रददिन्द्रस्य
१ २ ३ १ २ ३ १ २
हार्द्याविशन्मनीषिभिः ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(मतीनां वृषा) बुद्धियों का वर्षाने वाला, (विचक्षणः) विशेष से प्रकाशक; (अह्नाम्, उषसाम्, दिवः) दिनों, प्रभातों और द्युलोक का

(प्रतरीता) जगाने वाला, (सिन्धूनाम् प्राणा) नदियों का [वर्षा से] पूर्ण करने वाला (सोमः) सोम (कलशान्) द्रोण कलशों के प्रति (अचिक्रदत्) शब्द करता है और (मनीषिभिः) बुद्धिमान् याज्ञिकों से हवन किया जाता हुआ (इन्द्रस्य) विद्युत् के (हार्दि) हृदय में (आविशन्) प्रविष्ट होता हुआ सा (पवते) आकाश को जाता है ॥

निघण्टु १ । १३ का प्रमाण और ऋ० ९ । ८६ । १९ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये । विवरणकार कहते हैं कि इस का विनियोग सोमयज्ञ के तीसरे दिन में होता है ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः-रेणुर्भार्गवऋषिः । पवमानोदेवता । जगती छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(५६०)त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमेव्योमनि।
३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणी चक्रे यदृतैरवर्धत ७

भावार्थः-(यत्) जब कि सोम (ऋतैः) यज्ञों से (अवर्धत) बढ़ता है [तब] (सप्त) ७ सात (धेनवः) वाणियें (अस्मै) इस सोम के लिये (सत्याम्) सच्चे (आशिरम्) आशिष् को (दुदुह्रिरे) पूरित करती हैं । तथा यह सोम (परमे) बड़े (व्योमनि) आकाश में (अन्या चत्वारि) अन्य चार (भुवनानि) भुवन अर्थात् पृथिवी अन्तरिक्ष द्यौः और दिशाओं को (निर्णिजे) शुद्ध करने के लिये (चारूणि) सुन्दर कल्याणरूप (चक्र) करता है ॥

विवरणकार कहते हैं कि " इस का विनियोग ३ तीसरे दिन में होता है। इस सोम के लिये । ७ धेनु=७ छन्द । ३=प्रातः, माध्यन्दिन और तृतीय सवनों में पूरित करते हैं । अथवा ३ सवनों से ७ धेनु=७ अहोरात्र, वषट्कारी लोग=१होता २ मैत्रावरुण ३ ब्राह्मणाच्छंसी ४ पोता ५ नेष्टा ६ अच्छावाक ७ आग्नीध्र; इन की वाणियें दुही जाती हैं । अथवा धेनुओं से दुहा जाता है सच्चा आशिर=आश्रयण वा मिश्रण । उत्तम व्योम=स्थान वा यज्ञ में । ४ अत्यग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी और अतिरात्र चौथा । अथवा पृथिवी अन्तरिक्ष, द्यौ और दिशायें । अथवा ४ वेद । अथवा ४ महाऋत्विज् । अथवा ४ समुद्र । भुवनों को शोधने के लिये=१४ भुवन-७ भू आदि लोक ७ पाताल; इन को भी कल्याण रूप करता है । किस प्रकार से ? जब कि ऋत=रसों वा यज्ञों से बढ़ता है । अथवा उस के लिये ७ धेनु=७ किरणें प्रपूरित करती

हैं। अथवा ७ सूर्यकिरणों के रङ्ग। अथवा ७ अग्नि की लपटें। वा ७ माता= भूआदि लोक। ७ पाताल=७ लोकसंस्था वा ७ समुद्र वा ७ द्वीप वा ७ स्वर। ये ७ पूर्ति करते हैं। आशिर=दूध। बड़े आकाश में। ४ अन्य भुवनों= पृथिव्यादिकों को सुन्दर करता है। जब यज्ञों से बढ़ता है। अथवा ७ धेनु= ७ शिरःस्थानी प्राण। ३ उत्पत्ति स्थिति प्रलयों में सत्य ज्ञान को। ४ भुवन= जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तुरीयावस्थाओं में=अद्वैत अवस्था वाले में नित्य। उन मनुष्यों से विज्ञानार्थ बढ़ता है॥" ऋ० ९। ७०। १ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ७॥

अथाऽष्टम्याः-वेनोभार्गव ऋषिः। पवमानोदेवता। जगती छन्दः॥

१ २ ३ १ २३ १ २३ १ २र ३ १२ ३२
(५६१)इन्द्राय सोम सुषुतः परिस्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः ८

भावार्थः-(सोम) हे परमात्मन्!, वा सोम! (सुषुतः) भले प्रकार साक्षात् किया हुवा, वा अभिषुत किया हुवा तू (इन्द्राय) जीवात्मा, वा विद्युत् के लिये (परिस्रव) अमृत वर्षाव, वा वृष्टि की योग्यता का संपादन कर। (अमीवा) रोग (रक्षसा सह) वायु आदि में स्थित दुष्ट विकार के साथ (अप भवतु) दूर हो। (ते) तेरे (रसस्य) आनन्दरस, वा रस से (द्वयाविनः) झूंठ सच वाले पापी लोग (मा मत्सत) न हृष्ट हों किन्तु (इह) इस ध्यान यज्ञ में, वा क्रिया यज्ञ में (इन्दवः) तेरे रस (द्रविणस्वन्तः) भक्ति भावादि धन, वा धान्यादि धन वाले (सन्तु) होवें॥

ऋ० ९। ८५। १ में भी॥ ८॥

अथ नवम्याः-भरद्वाजो वसुर्ऋषिः। पवमानोदेवता। जगती छन्दः॥

१२ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(५६२) असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो
३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
अभिगा अचिक्रदत्। पुनानो वारमत्येष्यव्ययं श्येनो
२र ३ १ २ ३ १ २
न योनिं घृतवन्तमासदत्॥ ९॥

भावार्थः—(अरुषः) रूपवान् (हरिः) हरित धुवें के वर्णवाला (वृषा) वृष्टिकारक (पुनानः) अभिषुत किया हुवा (राजा) प्रकाशमान (सोमः) सोम (असावि) प्रथम अभिषुत किया जाता है, फिर (दस्मः) अन्धकार का निवारक विजुली में चमकता हुवा (गाः) पृथिवियों की ओर (अभि) लक्ष्य करता हुवा (इव) सा (अचिक्रदत्) शब्द करता है (अव्यम्) और ऊर्णामय (वारम्) दशापवित्र को (अत्येषि) उल्लङ्घित करता है और (श्येनो न) श्येन=बाज़सा बलवान् (घृतवन्तम्) जलयुक्त(योनिम्) आकाश स्थान को (आसदत्) प्राप्त होता है ॥

इस का विनियोग नवमें दिन में विवरणकार ने माना है ॥ निघण्टु १।१॥१।१२॥३।७ उणादि १।१४५ के प्रमाण और ऋ० ९।८२।१ के पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ९ ॥

अथ दशम्याः—वत्सप्रीर्ऋषिः । पवमानोदेवता । जगती छन्दः ॥

२ ३२उ ३ १२ ३ २३१ २ ३ २३
(५६३) प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवोऽसिष्यदन्त गाव
२उ ३१२ ३ १२ ३१२३१२ ३१
आ न धेनवः । बर्हिषदो वचनवन्तऊधभिःपरिस्नु-
२ ३१ २ ३१ २
तमुस्रिया निर्णिजं धिरे ॥ १० ॥

भावार्थः—(मधुमन्तः) माधुर्य्ययुक्त (इन्दवः) सोम (वचनवन्तः) शब्दयुक्त हुवे (अच्छ) व्याप कर (देवम्) इन्द्रनामक विद्युत् को (प्र, असिष्यदन्त) ग्रहनामक घटों में से टपक [निकल] कर जाते हैं तथा (गावः) सूर्य की किरणें (बर्हिषदः) जोकि यज्ञ में स्थित हैं वे (परि-स्नुतम्) उस टपके हुवे (निर्णिजम्) शुद्धिकारक सोम का (आ धिरे) आधान करती हैं (न) जैसे (धेनवः उस्रियाः) दुधार गौवें (ऊधभिः) बाखों से दूध का आधान करती हैं ॥

अब हम उन घटों के नाम बताते हैं कि जो व्यावहारिक भिन्न भिन्न देवतों की आहुति देने के लिये सोम से भरे हुवे रक्खे जाते हैं । ३-सवनों में ३४ घट होते हैं । प्रातः सवन में २५ होते हैं । जैसा कि १-उपांशु २-अन्तर्याम ३-ऐन्द्रवायव ४-मैत्रावरुण ५-आश्विन ६-शुक्र ७-मन्थी ८-आग्रयण ९-उक्थ १०-ध्रुव ११ से २३ तक तेरह ऋतुग्रह २४-ऐन्द्राग्न और २५-वैश्वदेव ॥

माध्यन्दिन सवन में ४ होते हैं। ३ मारुत्वतीय, चतुर्थ माहेन्द्र॥ तृतीयसवन में ५ होते हैं। १-आदित्य २-सावित्र ३ महावैश्वदेव ४-पात्नीवत और ५-हारियोजन ॥३४॥ निघण्टु २। ११ में उस्रिया गौ का नाम है॥ ऋ० ९। ६८। १ में भी॥ १०॥

अथैकादश्याः-अत्रिर्ऋषिः। पवमानो देवता। जगती छन्दः॥

३ २ ३क २र १ १२ ३ १२ १ २ ३क
(५६४) अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुꣳ रिहन्ति मध्वा-
२र १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
भ्यञ्जते। सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणꣳहि-
३ २ ३ २ ३ १ २
रण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते॥ ११॥

भावार्थः-(हिरण्यपावाः) ज्योति से पवित्र करने वाले अध्वर्यु लोग (क्रतुम्) यज्ञ को (अञ्जते) विस्तारित करते (व्यञ्जते) प्रकट करते और (समञ्जते) भले प्रकार से देखते भालते हैं। तथा (पशुम्) प्रकाश से दिखाने वाले सोम को (अप्सु) जलों में (गृभ्णते) ग्रहण करते और (मध्वा) शहद आदि मिठाई से (अभ्यञ्जते) सानते हैं। तथा (सिन्धोः) समुद्र के (उच्छ्वासे) श्वासरूप मेघमण्डल में (पतयन्तम्) गिरते हुये को (रिहन्ति) चखते हैं॥ इस का विनियोग उपहव्य और प्रवर्ग्य में विवरणकार मानते हैं॥

व्याकरण और निरुक्त तथा सायणाचार्य के संमत प्रमाण तथा ऋ० ९। ८६। ४३ के पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ११॥

अथ द्वादश्याः-पवित्र ऋषिः। पवमानो देवता। जगती छन्दः॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
(५६५) पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि
३ १ २ १२ ३ २उ ३ ३ २ ३ २ १
विश्वतः। अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास
१ २र ३ १ २र
इद्वहन्तः सं तदाशत॥ १२॥

* इति पञ्चमाध्याये नवमी दशतिः॥ ९॥ *

इति जागतम्॥

भाषार्थः-(ब्रह्मणस्पते) हे वेद के पति ! परमात्मन् !, वा चतुर्वेदविद् ब्रह्मा के रक्षक ! सोम ! (ते) तेरी (पवित्रम्) पवित्रता (विततम्) विस्तृत है, (प्रभुः) प्रभावशाली तू (सर्वतः) सब ओर से (गात्राणि) देह के अङ्गों को (पर्येषि) व्यापता है । परन्तु (अतप्ततनूः) देह से व्रताचरणादि तप न करने वाला पुरुष (आमः) कच्चा है और (तत्) उस पवित्रता को (न अश्नुते) नहीं भोगता । किन्तु (शृतासः) जो परिपक्व हैं, वे (तत्) उस पवित्रता को (सम् आशत) भोगते हैं ॥

इसी से अज्ञानवश चक्राङ्कित लोग केवल अग्नितप्त चक्रादि से भुजा का एक देश दग्ध करवा कर समस्त शरीर से तप न करने पर ही अपने को वैदिक मानते हैं। वस्तुतः इस का विनियोग ज्योतिष्टोम के तीसरे दिन में है। यही सत्यव्रत जी की सम्मति है । ऋ० ९ । ८३ । १ में का पाठव्यत्ययमात्र संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १२ ॥

* यह पञ्चमाध्याय में नवीं दशति पूर्ण हुई ॥ ९ ॥ *

यह जगती छन्दों का प्रकरण समाप्त हुवा ॥

—=:0※0:=—

इन्द्रमच्छेति खण्डेऽस्मिन् ऋचो द्वादशसंख्यकाः ।
उष्णिहः पावमान्योऽत्र वक्ष्यन्तऋषयः पृथक् ॥ १ ॥

अथ दशमी दशतिस्तत्र-

प्रथमायाः-अग्निश्चाक्षुष ऋषिः । पवमानो देवता । उष्णिक्छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
(५६६) इन्द्रमच्छ सुताइमे वृषणं यन्तु हरयः ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥ १ ॥

भाषार्थः-(इमे) ये (सुताः) अभिषव किये हुवे (जातासः) उत्पन्न हुवे (स्वर्विदः) सुखदायक (हरयः) हरे धूम के रङ्ग के (इन्दवः) सोम (श्रुष्टे) शीघ्र (वृषणम् इन्द्रम्) वृष्टिकारक विद्युत् को (अच्छ) अच्छे प्रकार (यन्तु) प्राप्त हों ॥

निघण्टु ४ । ३ में श्रुष्टी शीघ्र का नाम है और ऋ० ९ । १०६ । १ में पाठ भी ठीक श्रुष्टी ही है ॥ १ ॥

अथ द्वितीयया:-चक्षुर्मानव ऋषि: । पवमानोदेवता । उष्णिक्छन्द: ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(५६७) प्र धन्वा सोम जागृविरिन्द्रायेन्दो परिस्रव ।

३ २ १ ३ २ १ २ ३ १ २

द्युमन्तꣳ शुष्ममाभर स्वर्विदम् ॥ २ ॥

भाषार्थ:-(सोम) हे शान्तस्वरूप ! (इन्दो) परमेश्वर ! (जागृवि:) चेतनस्वरूप आप (इन्द्राय) जीवात्मा के लिये (परिस्रव) अमृत वर्षाइये (प्र धन्व) और [हमें] प्राप्त हूजिये । तथा (द्युमन्तम्) प्रकाशयुक्त (स्वर्विदम्) मोक्षदायक (शुष्मम्) बल (आभर) पहुंचाइये ॥

भौतिकपक्ष में-(इन्दो) गीले ! (सोम) सोमरस ! (जागृवि:) शरीर को चेताने वाला (इन्द्राय) विद्युत् के लिये (प्र धन्व) प्राप्त हो और (परिस्रव) वृष्टि कर और (द्युमन्तम्) प्रकाशयुक्त (स्वर्विदम्) सुखदायक (शुष्मम्) बल को (आभर) पहुंचा ॥

निघण्टु २ । १४ और २ । ९ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥

ऋ० ९ । १०६ । ४ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीयाया:-पर्वतनारदावृषी । पवमानोदेवता । उष्णिक्छन्द: ॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

(५६८) सखाय आनिषीदत पुनानाय प्रगायत ।

२ ३ २ ३ १ २र ३ २

शिशुं न यज्ञै: परिभूषत श्रिये ॥ ३ ॥

भाषार्थ:-(सखाय:) हे मित्रो ! (आनिषीदत) आओ बैठो और (पुनानाय) शुद्धिकारक पवमान=सोम के लिये (प्रगायत) गुण वर्णन करो तथा (यज्ञै:) यज्ञों से (श्रिये) शोभा के लिये (परिभूषत) सुसंस्कृत=सुशोभित करो । दृष्टान्त-(न) जैसे (शिशुम्) बालक को संस्कारों से भूषित=शोभित करते हैं, तद्वत् ॥ ऋ० ९ । १०४ । १ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्या:-ऋष्यादय उक्तवत् ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

(५६९) तं व: सखायो मदाय पुनानमभि गायत ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

शिशुं न हव्यै: स्वदयन्त गूर्तिभि: ॥ ४ ॥

भावार्थः-(सखायः) हे मित्रो ! (वः) तुम अपने (मदाय) हर्ष= आनन्द के लिये (पुनानम्) पवित्रताकारक (तम्) उस सोम को (अभिगायत) प्रशंसित करो (हव्यैः) और हव्य मधु आदि द्रव्यों के मिलाने से (स्वदयन्त) स्वादु बनाओ (न) जैसे (शिशुम्) बालक को सत्कृत करते हैं, तद्वत् ॥

निघण्टु ३ । १४ का प्रमाण और ऋ० ९ । १०५ । १ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः त्रितऋषिः । पवमानोदेवता । उष्णिक्छन्दः ॥

३ १ २२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(५७०) प्राणा शिशुर्महीनांहिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥ ५ ॥

भावार्थः-(महीनाम्) भूमियों अर्थात् भूमिनिवासी मनुष्यादि का (शिशुः) बालक समान (प्राणा) प्राणाधार सोम (ऋतस्य दीधितिम् हिन्वन्) यज्ञ की दीप्ति को प्राप्त कराता हुवा (विश्वा) सब (प्रिया) प्यारे द्रव्यों को (परिभुवत्) तिरस्कृत [मात] करता है अर्थात् सर्वोपरि द्रव्य है (अध) और (द्विता) दो प्रकार पृथिवी और अन्तरिक्ष में स्थित होता है॥

विनियोग इसका छठे दिन में है ॥ ऋ० ९ । १०२ । १ में प्राणा=क्राणा पाठ है और सायणाचार्य ने यहां भी उसी का अर्थ कर दिया है ॥ ५ ॥

अथ षष्ठयाः-मनुर्ऋषिः । पवमानोदेवता । उष्णिक्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(५७१) पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा ।
२ ३ २ ३ १ २
आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥ ६ ॥

भावार्थः-(इन्दो) सोम ! (धाराभिः) प्रवाहों से (ओजसा) बलपूर्वक (देववीतये) वायु आदि देवों के भोजनार्थ (पवस्व) जा । तथा (सोम) ओषधे ! (मधुमान्) माधुर्ययुक्त (नः) हमारे (कलशम्) द्रोणकलश में (आ सदः) स्थित हो ॥

अथवा—(इन्दो) परमेश्वर ! (देववीतये) विद्वान् उपासकों को मिलने के लिये (पवस्व) प्राप्त हूजिये (ओजसा) अपने अनन्त सामर्थ्य से (मधुमान्) आनन्दस्वरूपयुक्त (सोम) शान्तस्वरूप ! भगवन् ! (धाराभिः) अमृतद्रव के प्रवाहों से (नः) हमारे (कलशम्) हृदय घट में (आसदः) विराजिये ॥

वी धातु का क्रम से भोजनार्थ और गत्यर्थ मान कर देववीतये प्रयोग है। इस का अग्निष्टोम यज्ञ के ९ वें दिन में विनियोग है। यह विवरणकार का मत है ॥ ऋ० ९। १०६। ७ में भी ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः—अग्निर्ऋषिः। पवमानोदेवता। उष्णिक्छन्दः ॥

१ २ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
(५७२) सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं विधावति ।
१ २ ३ १ २र ३ १ २
अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(पुनानः) पवित्र और (पवमानः) अन्यों को पवित्र करने वाला (सोमः) सोम (ऊर्मिणा) लहरी के साथ (अव्यम्) ऊन के (वारम्) दशापवित्र को (विधावति) विविध प्रकार से चलता है। तथा (वाचः) वेदमन्त्रोच्चारण के (अग्रे) आगे [साथ २] (कनिक्रदत्) शब्द करता है॥

अथवा—(पुनानः) स्वयं पवित्र और (पवमानः) अन्यों को पवित्र करने वाला (सोमः) शान्त आत्मा (ऊर्मिणा) मानस उन्नति से (अव्यं वारम्) सूर्य के मण्डल को (विधावति) विशेष कर प्राप्त होता है॥

इस का विनियोग चौथे दिन में है ॥ ऋ० ९। १०६। १० में अव्यः पाठ है ॥ ७ ॥

अथाऽष्टम्याः- द्वितऋषिः। पवमानोदेवता। उष्णिक्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २३ १ २ ३ १ २
(५७३) प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उच्यते ।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते ॥ ८ ॥

भावार्थः—(पुनानाय) पवित्र (वेधसे) बुद्धितत्त्वयुक्त, वा मेधावी

(सोमाय) सोमौषधि, वा शान्तात्मा के लिये यह (वचः) वचन (प्रोच्यते)कहा जाता है कि (मतिभिः) बुद्धियों से (जुजोषते) अत्यन्त सेवा करने वाले के लिये (भृतिम् न) नौकरी सी (भर) भरो ॥

ऋग्वेद ९ । १०३ । १ में उच्यते=उद्यतम् पाठ है ॥ निघण्टु ३ । १५ में वेधाः=बुद्धिमान् का नाम है ॥ ८ ॥

अथ नवम्याः-पर्वतनारदावृषी । पवमानोदेवता । उष्णिक्छन्दः ॥

१२ ३ १२ ३१ २
(५७४) गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धनिव ।
१२ ३ २३२३ १२
शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ॥ ९ ॥

भावार्थः-(इन्दो) परमेश्वर ! वा सोम ! (सुदक्ष) सुन्दरबलयन् ! (सुतः) हृदय में ध्यान किये हुवे, वा अभिषुत किये हुवे (नः) हमारे लिये (गोमत्) गौ आदि दुग्धदायक पशुयुक्त, वा इन्द्रिययुक्त और (अश्ववत्) अश्वादि सवारी वाले, वा प्राण वाले [धन और बल] को (धनिव) प्राप्त कराइये (च) और (गोषु) गवादि पशु, वा इन्द्रियों में (शुचिं वर्णम्) शुद्ध रङ्ग (अधि धारय) धारित कीजिये ॥

निघण्टु २ । १४ अष्टाध्यायी ३ । १ । ८५ के प्रमाण और ऋ० ९ । १०५ । ४ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ९ ॥

अथ दशम्याः-ऋष्यादयः पूर्ववत् ॥

३ १ २ ३१ २३१ २र
(५७५) अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत ।
१ २३ १२३१२
गोभिष्टे वर्णमभिवासयामसि ॥ १० ॥

भावार्थः-प्रकरण से-हे परमेश्वर! वा सोम! (वाचः) वेदवाणी (अस्मभ्यम्) हमारे हित के लिये (वसुविदम् त्वा) ज्ञानादि, वा धान्यादि धन के प्रापक तुझ को (अभि अनूषत) स्तुत करती हैं, वा गुण बताती हैं। हम (गोभिः) इन वेदवाणियों से (ते) तेरे (वर्णम्) स्वरूप को (अभि वासयामसि) जानते हैं ॥ ऋग्वेद ९ । १०४ । ४ में भी ॥ १० ॥

अथैकादश्याः—अग्निश्चाक्षुष ऋषिः । पवमानोदेवता । उष्णिक्छन्दः ॥

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

(५७६) पवते हर्यतो हरिरतिह्वरांसि रंह्या ।

३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥ ११ ॥

भाषार्थः—(हरिः) धूम्र वना सोम (ह्वरांसि) कुटिल (हर्यतः) इधर उधर जाते हुवे पदार्थों को (अति) उल्लङ्घन करके (रंह्या) वेग से (पवते) जाता है । तथा (स्तोतृभ्यः) यजमानादि स्तोताओं के लिये (वीरवत्) वीर सहित (यशः) कीर्त्ति (अभ्यर्ष) प्राप्त कराता है ॥

विनियोग प्रथम दिन में है ॥

निघण्टु २ । १४ इत्यादि प्रमाण और ऋग्वेद ९ । १०५ । १३ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ११ ॥

अथ द्वादश्याः—द्वित ऋषिः । पवमानोदेवता । उष्णिक्छन्दः ॥

१ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

(५७७) परि कोशं मधुश्चुतं सोमः पुनानो अर्षति ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २

अभि वाणीर्ऋषीणां सप्ताऽनूषत ॥ १२ ॥

इति पञ्चमाध्याये दशमी दशतिः ॥ १० ॥

भाषार्थः—(पुनानः सोमः) पवित्र करता हुवा सोम (मधुश्चुतं कोशम्) मीठा जल चुआने वाले मेघमण्डलरूप कोश को (परि अर्षति) सब ओर से जाता है । [इत्यादि, यश] (ऋषीणाम्) वेदमन्त्रों की (सप्त) गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप् और जगती ७ (वाणीः) वाणियें (अभि अनूषत) सर्वतः वर्णित करती हैं ॥

ऋग्वेद ९ । १०३ । ३ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १२ ॥

यह पांचवें अध्याय में दशवीं दशति पूर्ण हुई ॥ १० ॥

यह उष्णिक्छन्दों का प्रकरण हुआ ॥

पवस्वेति दशत्यां तु ककुभोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ।
ससुन्वे इति गायत्री यवमध्येति केचन ॥ १ ॥
अक्षरव्यूहनादेषा ककुबेवेति केचन
एष स्य धारया सुतः प्रगाथः काकुभोन्तिमः ॥ २ ॥
ऋषीणां विप्रकीर्णत्वात्तत्र तत्राभिदध्महे ॥

"पवस्व" इत्यादि ग्यारहवीं दशति में आठ ऋचा हैं। जिन में ५ वीं "ससु न्वे" इत्यादि गायत्री छन्द की है। शेष ककुप्छन्द की हैं। कोई लोग ५ वीं को यवमध्या गायत्री कहते हैं ॥

विपरीता यवमध्या । पिं० ३ । ५८ ॥

यदाद्यान्त्यौ पादौ लघ्वक्षरौ, मध्यमोबह्वक्षरश्च भवति ।
तदा यथा यवोमध्ये स्थूलस्तथात्वाद्यवमध्येति प्रोच्यते ॥३॥

जब कि पहला और अन्त का पाद थोड़े अक्षरों वाला और मध्यम पाद बहुत अक्षरों से युक्त हो तब जैसे जौ (यव) बीच में से मोटा होता है, उस के तुल्य होने से यह "यवमध्या" कहाती है ॥ १ ॥

कोई कहते हैं कि यह (५ वीं) अक्षरव्यूहन से ककुप् ही है। "एष स्य धारया सुतः" इत्यादि अन्त की दो ऋचाओं का प्रगाथ फिर ककुप् है ॥२॥

ऋषि भिन्न २ हैं, इस लिये उस २ ऋचा के ऊपर ही कहते जावेंगे ॥

अथैकादशी दशतिस्तत्र-

प्रथमायाः—गौरिवीतिः शाक्त्य ऋषिः । पवमानोदेवता । ककुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(५७८) पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः ।
१ २ ३ १ २ ३ २ १
महि द्युक्षतमो मदः ॥ १ ॥

भावार्थः-(सोम) परमेश्वर ! वा ओषधे ! (मधुमत्तमः) अत्यन्त मधुरता से युक्त (क्रतुवित्तमः) अतिशय प्रज्ञा वा कर्म का प्राप्त कराने वाला (मदः) आनन्द वा हर्षदायक (महि) पूजनीय, वा सत्करणीय (द्युक्षतमो

मदः) प्रकाश की बहुतायत वाला आनन्दस्वरूप, वा हर्षमद तू (इन्द्राय) जीवात्मा, वा विद्युत्तत्त्व के लिये (पवस्व) प्राप्त हो ॥

ऋग्वेद ९ । १०८ । १ में भी ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः-ऊर्ध्वसद्मा ऋषिः । पवमानोदेवता । ककुप्छन्दः ॥

३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

(५७९) अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दीदिहि देव देवयुम् ।

१ २र ३ १ २

वि कोशं मध्यमं युव ॥ २ ॥

भावार्थः-(इषस्पते) अन्न के पति ! परमेश्वर !, वा सोम ! (देव) दिव्यप्रकाशादिगुणवन् ! (अभि) सर्वतः (द्युम्नम्) प्रकाशित (बृहत्) बड़े (यशः) कीर्त्ति, वा अन्न जल को (दीदिहि) प्रकाशित कीजिये । तथा (देवयुम्) विद्वानों, वा वायु आदि देवों को चाहने वाले (मध्यमं कोशम्) बीच के कोश हृदय को, वा मेघमण्डल को (वि युव) खोल दीजिये ॥

अष्टाध्यायी ८ । १ । ३२ ॥ ८ । १ । १९ ॥ ६ । १ । १९८ निघण्टु २ । ७ ॥ १ । १२ ॥ १ । १० के प्रमाण और ऋ० ९ । १०८ । ९ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ इस का विनियोग पांचवें दिन में है ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः-अग्निश्वा ऋषिः । पवमानोदेवता । ककुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

(५८०) आ सोता परि षिञ्चताऽश्वं न स्तोममप्तुरं

३ १२ ३ १ २ ३ १ २

रजस्तुरम् । वनप्रक्षमुदप्रुतम् ॥ ३ ॥

भावार्थः-हे ऋत्विजो ! (अश्वं न) अश्व के समान वेगवान् (स्तोमम्) प्रशंसनीय (अप्तुरम्) जलों के प्रेरक (रजस्तुरम्) और तेज के प्रेरक (वनप्रक्षम्) जल से मिले हुवे (उदप्रुतम्) जल में तिरने वाले सोम को (आ-सोत) अभिषुत करो (परिषिञ्चत) और सब ओर फैलाओ ॥

अष्टाध्यायी ७ । १ । ४५ निरुक्त ४ । १९ के प्रमाण और ऋ० ९ । १०८ । ७ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः-कृतयशा ऋषिः । पवमानोदेवता । ककुप्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २
(५८१) एतमु त्यं मदच्युतꣳ सहस्रधारं वृषभं दिवोदुहम् ।
२ ३ १ २ ३ १ २
विश्वा वसूनि बिभ्रतम् ॥ ४ ॥

भावार्थः-(त्यम्) उस पूर्व प्रकरण में कहे (एतम् उ) इस ही (मद-च्युतम्) हर्ष के टपकाने वाले (सहस्रधारम्) असंख्यधार (वृषभम्) वर्षाने वाले (दिवः) द्युलोक को (दुहम्) दुहने वाले (विश्वा वसूनि बिभ्रतम्) समस्त धान्यादि धन को धारण करते हुवे सोम का [अभिषव करो और सब ओर फैलाओ] यह पूर्व मन्त्र में अन्वय है ॥

ऋ० ९ । १०८ । ११ में दुहः पाठ है ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः-ऋणव ऋषिः । पवमानोदेवता । गायत्री वा यवमध्या वा ककुप् छन्दः ॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
(५८२) स सुन्वे योवसूनां योरायामानेता यइडानाम् ।
२ ३ १ २ ३ २
सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥ ५ ॥

भावार्थः-(यः सोमः) जो सोम (वसूनाम्) वसुसंज्ञक ८ देवों का (आनेता) प्राप्त कराने वाला है, (यः) जो (रायाम्) धान्यादि धनों का प्रापक है, (यः) जो (इडानाम्) भूमियों का प्रापक है (यः) जो (सुक्षितीनाम्) सुन्दर मनुष्यों का प्रापक है (सः) वह सोम (सुन्वे) अभिषुत किया जावे ॥

निघण्टु १ । १ ॥ २ । ३ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये । ऋ० ९ । १०८ । १३ में भी ॥ इस का विनियोग छठे दिन में देखा जाता है ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ्याः-शक्तिर्ऋषिः । पवमानोदेवता । ककुप्छन्दः ॥

२ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(५८३) त्वं ह्याउङ्ग दैव्यं पवमान जनिमानि द्युमत्तमः ।
३ १ २ ३ १ २
अमृतत्वाय घोषयन् ॥ ६ ॥

भाषार्थः-(अङ्ग) हे प्रिय ! (पवमान) पवित्र परमात्मन् !, वा सोम ! (त्वं हि) तू ही (द्युमत्तमः) अत्यन्त प्रकाशमान (दैव्यम्) विद्वानों के (जनिमानि) जन्मों को (अमृतत्वाय) मोक्षभाव के लिये (घोषयन्) विख्यात करता हुवा सा वर्त्तमान है ॥

परमात्मा विद्वानों वा याज्ञिकों के जन्मों को मोक्षभाव के लिये विख्यात करता हुवा है । सोम भी जब अग्नि में हवन किया हुवा शब्द करता है तब यज्ञकर्त्ताओं के अन्तःकरण की शुद्धि के द्वारा उत्तरोत्तर ज्ञान की प्राप्ति से मानो मोक्ष को विख्यात करता है ॥

इस का विनियोग तीसरे दिन में है । ऋ० ९ । १०८ । ३ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः-ऊरुर्ऋषिः । पवमानोदेवता । ककुप्छन्दः ॥

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ ३
(५८४) एष स्य धारया सुतोऽव्या वारेभिः पवते मदिन्तमः ।
१ २ ३ २ ३ १ २
क्रीडन्नूर्मिरपामिव ॥ ७ ॥

भावार्थः-(स्यः) वह (एषः) यह (सुतः) अभिषव करके निकाला हुवा सोम (अव्या) ऊनी (वारेभिः) दशापवित्र के बालों से (अपाम्) जल की (ऊर्मिः) लहर (इव) सा (क्रीडन्) उभरता हुवा (मदिन्तमः) अतिहर्षकारक (धारया) धारा से (पवते) चलता है ॥

इस का सप्तम दिन में विनियोग देखा जाता है ॥ ऋ० ९ । १०८ । ५ में भी ॥ ७ ॥

अथाष्टम्याः-ऋजिश्वा ऋषिः । पवमानोदेवता । ककुप्छन्दः ॥

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
(५८५) य उस्रिया अपिया अन्तरश्मनि निर्गा अकृन्तदोजसा ।

३ २ ३१ २ ३ २३१ २ ३१२ ३ १ २
अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज
१ ३१२ ३१ २
(ओ३म् वर्मीव धृष्णवा रुज) ॥ ८ ॥

इत्येकादशी दशतिः ॥ ११ ॥

इति काकुभम् ॥

इति षष्ठः प्रपाठकः ॥ ६ ॥

*इति पञ्चमाऽध्याये एकादशी दशतिः ॥ ११ ॥

इति श्रीमत्कण्व वंशावतंस पण्डित हजारीलालस्वामि सूनुना
हस्तिनापुरपार्श्ववर्त्ति परीक्षितगढ़निवासिना
तुलसीरामस्वामिना कृते सामवेदभाष्ये
पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

इति पावमानं पर्व ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(धृष्णो) धर्षणशील (यः) जो सोम (उस्त्रियाः) गीली (अपियाः) अन्तरिक्ष में स्थित (गाः) किरणों को (अश्मनि अन्तः) मेघ के मध्य में स्थित हुइयों को (निरकृन्तत्) निकालता=वर्षाता है [वह सोम] (गव्यम्) गौवों के और (अश्व्यम्) घोड़ों के (व्रजम्) समुदाय को (अभि तत्निषे) वर्षा से विस्तृत करता है। तथा (वर्मीव) कवचधारी वीर पुरुष सा (आ रुज) शत्रुदल को नष्ट करता है ॥ ( ) कोष्ठक के मध्यस्थ पाठ दो वार जो पढ़ा है, किन्हीं किन्हीं पुस्तकों में है और अध्याय की समाप्ति सूचनार्थ है ॥

सोमयज्ञ से वर्षा, उस से तृणादि, उस से गौ आदि दुग्धदायक पशु और घोड़े आदि सवारियों की वृद्धि तथा सोम के सेवन से शत्रुनाशनयोग्य बल की प्राप्ति सुलभ ही है ॥

निघण्टु १।१०॥ २।११॥ १।३ निरुक्त ४।१९ अष्टाध्यायी ३।२।१०५ के प्रमाण और ऋ० ९।१०८।६ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ८॥

यह पञ्चमाध्याय में ग्यारहवीं दशति पूर्ण हुई ॥ ११ ॥

तथा यह ककुप्छन्दों का प्रकरण भी पूर्ण हुवा ॥

यह छठा प्रपाठक समाप्त हुवा ॥ ६ ॥

कई लोगों के मत में छन्दआर्चिक ग्रन्थ भी यहीं समाप्त माना जाता है। परन्तु अन्य लोग अगले छठे अध्याय आरण्यक काण्ड की समाप्ति पर छन्दआर्चिक की समाप्ति मानते हैं ॥

कण्ववंशावतंस श्रीमान् पं० स्वामी हज़ारीलाल के पुत्र,

परीक्षितगढ़ (ज़िला मेरठ) निवासी

तुलसीरामस्वामिकृत

सामवेदभाष्य में यह पांचवां अध्याय समाप्त हुवा ॥ ५ ॥

यह पवमानपर्व ३ भी समाप्त हुवा ॥

ओ३म्

अथ षष्ठाऽध्यायः

छन्दआर्चिके मुख्यानि त्रीणि पर्वाणि–आग्नेयमैन्द्रं पावमानं चेति । वक्ष्यमाणमारण्यकं पर्वापि छन्दआर्चिकेऽन्तर्भूतमेव । परंत्वऽत्र नास्ति कस्याश्चिदेकस्या देवताया वर्णनमपि तु बह्वीनाम् । अतएव नेदं पर्वत्रयेऽन्तर्भावयितुं शक्यमासीत् । आरण्यकपदनिर्वचनं तु–

अरण्यान्मनुष्ये ४ । २ । १२९

इत्यस्योपरि–पथ्यध्यायन्यायविहारमनुष्यहस्तिष्विति वक्तव्यम् । अरण्येऽधीयते आरण्यकोऽध्याय इति ॥

आरण्यकाऽभिधः षष्ठोऽध्यायोव्याक्रियतेऽधुना ।
तत्रेन्द्रेत्यादिकानां तु पञ्चपञ्चाशतां क्रमात् ॥१॥
ऋषिच्छन्दोदैवतानि तत्र तत्राभिदध्महे ॥

भाषार्थः–छन्दआर्चिक में मुख्य तीन पर्व हैं १–आग्नेय २–ऐन्द्र ३–पावमान । यह अगला आरण्यक पर्व भी छन्दआर्चिक के अन्तर्गत ही है, परन्तु इस में मुख्य करके किसी एक देवता का वर्णन नहीं है किन्तु बहुतों का है। इसी से एक के सा नाम भी नहीं प्रसिद्ध हुवा । आरण्यक शब्द का अर्थ यह है कि जो वन में पढ़ा जावे, वह अध्याय । इस विषय में अष्टाध्यायी ४ । २ । १२९ और इस के वार्त्तिक और उदाहरण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥

अब आरण्यक नाम छठे अध्याय का भाष्य आरम्भ किया जाता है, इस में "इन्द्र" इत्यादि ५५ ऋचाओं के ऋषि, देवता, छन्दों को क्रम से वहां वहां वर्णित करते जायंगे ॥ १ ॥

अथ प्रथमा दशतिस्तत्र-

प्रथमायाः-भरद्वाज ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(४८३) इन्द्र ज्येष्ठं न आभर ओजिष्ठं पुपुरि श्रवः ।
१२ २२ ३ १ २ ३ १ ३ २२
यद्दिधृक्षेम वज्रहस्त रोदसी उभे सुशिप्र पप्राः ॥१॥

भावार्थः-(वज्रहस्त) आयुध वा शस्त्र हाथ में रखने वाले ! वा कड़क को धारित करने वाले ! (सुशिप्र) सुन्दर नासिका-युक्त ! (इन्द्र) राजन् वा विद्युत् ! (यत्) जिस से (उभे) दोनों (रोदसी) द्युलोक और भूमि को (पप्राः) पूरित करता है [वही] (ज्येष्ठम्) बहुत (ओजिष्ठम्) बलिष्ठ (पुपुरि) तृप्तिकारक (श्रवः) अन्न (नः) हमारे लिये (आभर) प्राप्त कराव । तथा जो हम (दिधृक्षेम) धारण करना चाहें वह भी ॥

इन्द्र शब्द से यहां राजा और पक्षान्तर में विद्युत् का ग्रहण है । राजा को तो स्पष्ट ही वज्रधारी और सुन्दर नासिकादि अङ्गों से युक्त तथा अन्न-वर्धक कहना ठीक है । विद्युत् के पक्ष में यह रूपकालङ्कार है । विद्युत् का प्रहार वज्रतुल्य है और चमक नासिका की उपमा देने में युक्त है ॥

यहां कोई २ लोग वज्रहस्तादि विशेषण देखकर और निरुक्त में देवतों के पुरुषाकार होने के वर्णन को देखकर शङ्का में पड़ते हैं कि कहीं यह स्वर्गस्थ पुरुषाकार माने हुवे इन्द्र का वर्णन तो नहीं है ? उन के भ्रम निवारणार्थ उस प्रकरण का सब निरुक्त उदाहरणों और अर्थों सहित नीचे लिखा जाता है:-

"अथाकारचिन्तनं देवतानाम् । पुरुषविधाःस्युरित्येकं चेतनावद्धि स्तुतयोभवन्ति तथाभिधानानि । अथापि पौरुषविधिकैरङ्गैः संस्तूयन्ते ॥

ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू ॥

अर्थात् अब देवताओं के आकार का विचार करते हैं । एक प्रकार देवतों का मनुष्याकार है क्योंकि चेतन के समान स्तुतियां हैं और नाम भी । और मनुष्यों के अङ्गों का वर्णन भी पाया जाता है (जैसा कि-)

उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप स्थेयाम शरणा बृहन्ता ॥
(ऋ० ६ । ४७ । ८ ॥)

अर्थ-(इन्द्र) हे राजन् ! (स्थविरस्य) जिस विद्याविनयवृद्ध (ते) आप के (शरणा) शत्रुनाशक (बृहन्ता) बड़ी (ऋष्वा) श्रेष्ठ (बाहू) भुजाओं को हम (उपस्थेयाम) उपस्थित होवें (विद्वान्) वह आप विद्वान् जिससे (नः) हम को (उरुन्) बहुत (स्वर्वत्) सुखयुक्त (ज्योतिः) प्रकाश और (अभयम्) भयरहित (स्वस्ति) सुख और (लोकम्) दर्शन को (अनु नेषि) प्राप्त कराते हो ॥

इस में राजा को मनुष्याकार देवता मानकर प्रशंसा (स्तुति) की है। दूसरा उदाहरण निरुक्तकार ने देवता के मनुष्याकार होने का यह दिया है कि-

यत्संगृभ्णा मघवन्काशिरित्ते

इस का अर्थ यह है कि हे (मघवन्) धनवन् ! राजन् ! (यत्) जो कि (ते) आप की (काशिः) मुट्ठी है वह (संगृभ्णा) संग्रह करने वाली हो ॥

काशिर्मुष्टिः निरुक्त ६ । १ फिर निरुक्तकार कहते हैं कि-

"अथापि पौरुषविधिकैर्द्रव्यसंयोगैः । आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याहि । कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते ।

अर्थात् मनुष्यों के से द्रव्यों का भी वर्णन देवतों में पाया जाता है। जैसा कि नीचे के मन्त्र में है-

आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याह्या चतुर्भिरा षड्भिर्हूयमानः ।
आष्टाभिर्दशभिः सोमपेयमयं सुतः सुमख मा मृधस्कः ॥
ऋ० २ । १८ । ४ ॥

अर्थ-(इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त राजन् ! (हूयमानः) बुलाये हुवे आप (द्वाभ्यां हरिभ्याम्) दो हरणशील पदार्थों से युक्त यान द्वारा (आ याहि) आइये (चतुर्भिः) चार से (आ) आइये (षड्भिः) छः से (आ) आइये (अष्टाभिः) आठ से (आ) आइये (दशभिः) दश हरणशील पदार्थों से युक्त यान के द्वारा आइये (अयम्) इस (सुतः) उत्पन्न किये रस के (सोम-

पेयम्) सोमपानार्थ आइये (सुमख) हे सुन्दर यज्ञ वाले। (मृधः) संग्रामों को (मा कः) न कीजिये ॥

अर्थात् राजा को योग्य है कि अग्नि आदि पदार्थों से सम्पादित यन्त्र आदि निर्मित यानों द्वारा जावे आवे। सज्जनों से सोमपानादि आदर सत्कार ग्रहण करले, संग्राम न करे॥ फिर निरुक्त ने दूसरा प्रतीक नीचे लिखे मन्त्र का दिया है:—

अपाः सोममस्तमिन्द्र प्र याहि कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो दक्षिणावत्॥
ऋ० ३। ५३। ६॥

अर्थ-(इन्द्र) हे राजन्! (यत्र) जिस गृह में (बृहतः) बड़े (रथस्य) विमान रथ और (वाजिनः) अग्निजन्य घोड़े का (निधानम्) स्थापन और (विमोचनम्) खोलने का (दक्षिणावत्) दक्षिणा के तुल्य है (गृहे) जिस आप के गृह में (कल्याणीः) सुखदायिका (जाया) स्त्री है उस (अस्तम्) गृह को [निघण्टु ३।४] (प्रयाहि) आइये जाइये और (सोमम्) सोमरस को (अपाः) पीजिये, जिस से (सुरणम्) अच्छे प्रकार संग्राम हो। तथा निरुक्त—

अथापि पौरुषविधिकैः कर्मभिः। अद्धीन्द्र
पिब च प्रस्थितस्य। आ श्रुत्कर्ण श्रुधी हवम्॥

अर्थात् निरुक्तकार कहते हैं कि मनुष्यों के से काम भी देवतों के वेद में पाये जाते हैं। जैसा कि-(इन्द्र) हे राजन्! (अद्धि) भोजन कीजिये (पिब च) और पान कीजिये। इत्यादि। और (श्रुत्कर्ण) सुनने की शक्ति रूप कान वाले! (हवम्) पुकार को (आ श्रुधी) सब ओर से श्रवण कीजिये॥

यहां तक निरुक्तकार ने यह बताया है कि मनुष्यों के से कर्म, मनुष्यों के से वाहनादि और मनुष्यों के से अङ्ग देवतों के वेद में वर्णन किये प्रतीत होते हैं। इस से मनुष्य भी दान, दीपन, द्योतनादि गुणों से इन्द्रादिपदवाच्य देवता हैं। इस से आगे निरुक्तकार यह बतलाते हैं कि वायु, सूर्य, अग्न आदि पदार्थ जो मनुष्याकार नहीं हैं, वह भी देवता हैं॥ यथा—

अपुरुषविधाः स्युरित्यपरमपि तु यद्दृश्यतेऽपुरुषविधं तद्यथाऽग्निर्वायुरादित्यः पृथिवी चन्द्रमा इति। यथो एत-

च्चेतनावद्धिस्तुतयो भवन्तीत्यचेतनान्यप्येवं स्तूयन्ते । यथा ऽक्षप्रभृतीन्योषधिपर्यन्तानि । यथो एतत्पौरुषविधिकैरङ्गैः संस्तूयन्त इत्यचेतनेष्वप्येतद्भवति । अभिक्रन्दन्ति हरितेभिरासभिः इतिग्रावस्तुतिः । यथो एतत्पौरुषविधिकैर्द्रव्यसंयोगैरित्येतदपि तादृशमेव । सुखं रथं युयुजे सिन्धुरश्विनमिति नदीस्तुतिः । यथो एतत्पौरुषविधिकैः कर्मभिरत्येतदपि तादृशमेव । होतुश्चित्पूर्वे हविरद्यमाशतेति ग्रावस्तुतिरेव । अपि वोभयविधाः स्युरपि वा पुरुषविधानामेव सतां कर्मात्मान एते स्युर्यथा यज्ञो यजमानस्यैष चाख्यानसमयः । निरुक्ते ७ । ७ ॥

अर्थात् निरुक्तकार कहते हैं कि बहुत से देवता मनुष्याकार नहीं भी हैं। जैसे देखा जाता है कि अग्नि, वायु, सूर्य, पृथिवी, चन्द्रमा ये देवता हैं। जिस प्रकार चेतनों की प्रशंसा पाई जाती है वैसी जड़ (अचेतन) देवतों की भी पाई जाती हैं। जैसे कि अक्ष से लेकर ओषधि पर्यन्त हैं। और जिस प्रकार मनुष्याकार अङ्गों से स्तुति पाई जाती हैं, ऐसी अचेतन जड़ पदार्थों की भी प्रशंसा पाई जाती हैं। "पत्थरों के हरे मुख" (हरे मसाले पीसने से) कहे गये हैं। और जिस प्रकार चेतनों के वाहनादि द्रव्यों का वर्णन है इसी प्रकार जड़ पदार्थों के भी वाहनादि का वर्णन देखा जाता है, जैसा कि "नदी ने सुखदायक रथ जोड़ा" (प्रवाह से अभिप्राय है) ॥ और जिस प्रकार मनुष्याकार देवतों के कर्म पाये जाते हैं इसी प्रकार अचेतनों के भी। जैसा कि "होता से पहले सिल बट्टों ने मसाला चाट लिया" यहां देखा जाता है। इस से या तो देवता दोनों प्रकार के हों, अथवा मनुष्याकारों के ही कर्म रूप देवता निराकार हों, जैसे यजमान मनुष्याकार देवता और उस का कर्म "यज्ञ" निराकार देवता है। और यह आख्यान का समय है ॥ ऋ० ६ । ४६ । ५ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः-वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(५८७) इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधिक्षमा विश्वरूपं यदस्य।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतं चिदर्वाक् २

भावार्थः-(राजा) प्रजापालक राजा (जगतः) जङ्गम पशु आदि तथा (चर्षणीनाम्) मनुष्यों का (इन्द्रः) ईश्वर अर्थात् स्वामी है। तथा (यत्) जो कुछ (विश्वरूपम्) सब प्रकार का धन है (अस्य) इसी राजा का है। (ततः) उस अपने धन में से (दाशुषे) दानादि करने वाले पुण्यात्मा पुरुष के लिये (वसूनि) धन (ददाति) राजा देता है। (चित्) और (अर्वाक्) हमारे सामने को (उपस्तुतम्) मनोवाञ्छित (राधः) धन को (चोदत्) प्रेरित करे॥

निघण्टु २। ३॥ १।१॥ २। १० अष्टाध्यायी ६। १। १२ के प्रमाण और ऋ० ७। २७। ३ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः वामदेव ऋषिः। इन्द्रोदेवता। गायत्री छन्दः॥

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३क २र
(५८८) यस्येदमा रजोयुजस्तुजे जने वनंस्वः।
१ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् ॥ ३ ॥

भावार्थः-(यस्य) जिस (रजोयुजः) ज्योतिवाले (इन्द्रस्य) राजा का (रन्त्यम्) रमणीय (बृहत्) बड़ा (वनम्) संभाग करने योग्य (इदम्) यह (स्वः) सुख (तुजे जने) दानी पुरुष के निमित्त (आ) सब ओर वर्त्तमान है [वह हमारे लिये धन को प्रेरित करे] यह पूर्व मन्त्र से अन्वय है॥

निरुक्त ५। १९ निघण्टु ३। २० के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥३॥

अथ चतुर्थ्याः-शुनःशेप ऋषिः। वरुणोदेवता। चतुष्पाज्जगती छन्दः॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २
(५८९) उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमंश्रथाय।
१ २ ३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
अथादित्य व्रते वयं तवानागसो अदितये स्याम॥ ४॥

भावार्थः-(आदित्य) सूर्यवत् प्रकाशमान ! (वरुण) वरणीय। राजन्! (अस्मत्) हम से (उत्तमम् मध्यमम् अधमम्) उत्तम मध्यम अधम तीनों

(पाशम्) बन्धन (उत् अव वि अपाय) शिथिल कर दीजिये (अथ) और (वयम्) हम लोग (तव व्रते) आप के नियम में (अदितये) दुःख वा खण्डन से रहित होने के लिये (अनागसः) अपराधरहित (स्याम) होवें॥

ऋ० १ । २४ । १५ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः-गृत्समद ऋषिः । पवमानोदेवता ।
चतुष्पाज्जगती छन्दः ॥

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २र २र ३ १ २
(५९०)त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं विचिनुयाम शश्वत्।

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः

३ २ ३ २
पृथिवी उतद्यौः ॥ ५ ॥

भाषार्थः- (सोम) हे शान्तस्वरूप ! परमात्मन् ! (वयम्) हम लोग (पवमानेन) पवित्र करने वाले (त्वया) आप की सहायता से (भरे) भरण पोषण करने योग्य गृहाश्रम में (कृतम्) कर्म को (विचिनुयाम) संगृहीत करें और (नः) हमारे (तत्) उस कर्म को (मित्रः) प्राण (वरुणः) अपान (अदितिः) बुद्धि (सिन्धुः) अन्तरिक्ष (पृथिवी) भूमि (उत)और (द्यौः) द्युलोक (मामहन्ताम्) बढ़ावें । ऐसी कृपा कीजिये ॥

ऋ० ९ । ९७ । ५८ में भी ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ्याः-वामदेव ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । एकपाज्जगती छन्दः ॥

३ १र २र ३ २उ ३ २
(५९१) इमं वृषणं कृणुतैकमिन्माम् ॥ ६ ॥

भाषार्थः-पूर्वोक्त मित्रादि गण (इमम्) इस (माम्) मुझ (एकम्) असहाय को (इत्) ही (वृषणम्) कामनाओं का पूर्ण करने वाला (कृणुत) करें । अर्थात् परमात्मन् ! आप की कृपा से प्राणादि हमारे अनुकूल हों॥६॥

अथ सप्तम्याः-अमहीयुर्ऋषिः । पवमानोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(५९२) स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।

३ १र २र
वरिवोवित्परिस्रव ॥ ७ ॥

भावार्थः—(सः) वह पवित्र परमात्मा (नः) हमारे (वरिवोवित्) धान्यादि धन के दिलाने वाले आप (यज्वने) यजन करने योग्य (इन्द्राय) विद्युत् (वरुणाय) अपान और (मरुद्भ्यः) वायुओं के लिये (परिस्रव) वृष्टि करने की योग्यता दें ॥

" परमात्मा प्राणों का भी प्राण है " इत्यादि उपनिषदों के प्रमाणों से सिद्ध है कि परमात्मा प्राण अपानादि को अपने २ काम में प्रवृत्त करने वाला है ॥ वरुण पद से यहां मेघस्थ जल को नीचे खसकाने वाले अपान नामक वायुविशेष के ग्रहण में ऋग्वेद ४ । ४ । ३० । ३ और निरुक्त १० । ४ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९ । ६१ । १२ में भी ॥ ७ ॥

अथाऽष्टम्याः—अमहीयुर्ऋषिः । पवमानो देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १२ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २

(५९३) एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् ।

१ २

सिषासन्तो वनामहे ॥ ८ ॥

भावार्थः—हे परमात्मन् ! हम लोग (मानुषाणाम्) मनुष्यों के (एना) इन (विश्वानि) सब (द्युम्नानि) अन्नों को (अर्यः) प्राप्त करते और (सिषासन्तः) बांटना चाहते हुवे (आ वनामहे) सब ओर से न्यायपूर्वक बांटते हैं ॥ निरुक्त ५ । ५ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० ९।६१।११ में भी ॥ ८ ॥

अथ नवम्याः—आत्मा ऋषिः । अन्नं देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(५९४) अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

यो मा ददाति स इदेवमावदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि ॥ ९ ॥

* इति षष्ठाध्याये प्रथमा दशतिः ॥ १ ॥ *

भावार्थः—परमात्मा वा अन्न कहता है कि—हे मनुष्यो ! (अहम्) मैं (देवेभ्यः) वायु विद्युत् आदि देवतों से (प्रथमजाः) पूर्वज (अस्मि) हूं और (ऋतस्य) सच्चे (अमृतस्य) अमृत का (नाम) टपकाने वाला हूं । (यः) जो पुरुष (मा ददाति) मेरा दान करता है (सः इत्) वही (एवम्)

ऐसे (आवत्) प्राणियों की रक्षा करता है। [और जो किसी को न देकर आप ही खाता है] उस (अन्नम् अदन्तम्) अन्न खाते हुवे को (अहम् अन्नम्) मैं अन्न (अद्मि) खा जाता हूं=नष्ट कर देता हूं॥

अर्थात् परमात्मा कहता है कि मैं सब का प्राणाधार जीवनाधार होने से अन्न हूं। जो लोग स्वयं मुझ को जान कर अन्यों के लिये मेरा दान करते हैं अर्थात् ब्रह्मज्ञानोपदेश करते हैं, वे प्राणियों की रक्षा करते और पुण्यभागी होते हैं, परन्तु अन्यों को उपदेश न करने वाले ज्ञानित्वाऽभिमानियों को मैं नष्ट कर देता हूं॥

दूसरे पक्ष में कल्पना की रीति पर अन्न कहता है कि प्रत्येक देवता से पूर्व मैं हूं। कोई वस्तु अपने भक्ष्य (मुझ) विना नहीं रह सकती। इस लिये जो लोग मेरा दान (अन्नदान) करते हैं वे प्राणियों की रक्षा करते हैं और जो असुर केवल अपना ही पेट पालते हैं, अन्य अतिथि आदि को अन्नदान नहीं करते, उन उदरम्भरियों को मैं अन्न नष्ट कर देता हूं॥

इस ऋचा के सम्बन्ध में निरुक्त परिशिष्ट १४। १-१० तक देखना चाहिये, जो विस्तार के भय से हमने यहां उद्धृत नहीं किया॥ ९॥

* यह षष्ठाऽध्याय में प्रथम दशति पूर्ण हुई॥ १॥ *

अथ द्वितीया दशतिस्तत्र-

प्रथमायाः-श्रुतकक्ष ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(५९५) त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च।
१ २ ३ २ ३ १ २
परुष्णीषु रुशत्पयः॥ १॥

भाषार्थः-हे परमात्मन्! (कृष्णासु) काली (रोहिणीषु) लाल (च) और (परुष्णीषु) पर्वों वाली [निरुक्त ९। २६] नदी वा गौवों में (एतत्) इस (रुशत्) चमकते हुवे (पयः) जल वा दुग्ध को (त्वम्) आपने (अधारयः) धारित किया है॥

अष्टाध्यायी ४। १। ३९ निरुक्त ९। २६॥ २। २० के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ऋग्वेद ८। ९३। १३ में भी॥ १॥

अथ द्वितीयायाः-पवित्र ऋषिः। पवमानो देवता। जगती छन्दः॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
(५९६) अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति
१ २ ३ २ ३ १ २
भुवनेषु वाजयुः । मायाविनो ममिरे अस्य
३ १ २ ३ २ १ ३ २ ३ २ ३ १ २
मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमादधुः ॥२॥

भाषार्थः-सोमयज्ञ का फल कहते हैं-(उषसः पृश्निः) उषा को छूने वाला सूर्य (अग्रियः) मुख्य (अरूरुचत्) उत्तमता से तपता है और (उक्षाः) मेघ (भुवनेषु) लोकों में (वाजयुः) अन्नोत्पत्ति वा बलवृद्धि चाहता हुवा (मिमेति) सदा गर्जता है और (मायाविनः) बुद्धि वाले (अस्य) इस सोम के (मायया) बुद्धितत्त्व से (ममिरे) बनते हैं और (नृचक्षसः) मनुष्यों को प्रकाश देने वाली (पितरः) चन्द्रकिरणें (गर्भम्) ओषधियों में गर्भ का (आदधुः) आधान करती हैं ॥

निरुक्त २ । १४ ॥ ४ । २० निघण्टु २ । ७ ॥ २ । ९ ॥ ३ । ९ तथा सायण-भाष्य के प्रमाण और ऋ० ९ । ८३ । ३ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ २॥

अथ तृतीयायाः-मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रोदेवता । गायत्री छन्दः ॥

२ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(५९७) इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ३ ॥

भाषार्थः-इस पूर्वोक्त सूर्य, चन्द्र, मेघ, बिजुली आदि का नियन्ता कौन है ? इस के उत्तर में कहते हैं कि-(इन्द्रः) परमेश्वर (इत्) ही (वचोयुजा) वचनबद्ध (हर्योः) सूर्य चन्द्रमाओं के (सचा) साथ व्यापक होने से (आ संमिश्लः) सर्वत्र मिला हुवा है (इन्द्रः) वही परमेश्वर (वज्री) दण्ड देने वाला और (हिरण्ययः) जोतिःस्वरूप है । इसी से यह जगत् नियमित है ॥

शतपथ ६ । ७ । १ । २ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥

ऋग्वेद १ । ७ । २ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः-ऋष्यादय उक्तवत् ॥

२ ३ १ २ ३ १ २
(५९८) इन्द्र वाजेषु नोव सहस्रप्रधनेषु च।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ४ ॥

भावार्थः- (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (उग्रः) महावली होने से किसी से न दबने वाली आप (उग्राभिः) न दबने वाली (ऊतिभिः) रक्षाओं से (वाजेषु) छोटे संग्रामों (च) और (सहस्रप्रधनेषु) बड़े बड़े संग्रामों में (नः) हम को (अव) बचाइये ॥

निघण्टु २। १७ में वाजे संग्राम का नाम है ॥ ऋ० १। ७। ४ में भी ॥४॥

अथ पञ्चम्याः-प्रथ ऋषिः। विश्वेदेवा देवता। त्रिष्टुप्छन्दः॥

१ २ ३ १ २ २ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २ १ २
(५९९) प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामानुष्टुभस्य हविषो हविर्यत्।
३ १ २२ १ २ ३ १ २ ३ १ २२ ३ १ २
धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णोरथन्तरमाजभारा वसिष्ठः॥५

भावार्थः-(यस्य) जिस (आनुष्टुभस्य) अनुष्टुप् आदि छन्दोयुक्त (हविषः) ग्रहण करने योग्य वाणीरूप हवि का (प्रथः च सप्रथः च नाम) प्रथ और सप्रथ विख्यात नाम है और (यत् हविः) जो हव्य (वसिष्ठः) वेदवाणी रूपी है, वही (धातुः) जगत् के विधाता (च) और (सवितुः) उत्पादक (विष्णोः) परमात्मा से (रथन्तरम्) रथन्तरादि नामक सामों को (आजभार) लाता है ॥

अर्थात् वेदवाणी रूप हव्य ही, जो अनेक छन्दोयुक्त है, रथन्तरादि संज्ञायुक्त अनेक सामों की सूचना देता है ॥

शतपथ १४। ९। २। २ निरुक्त ११। १० और १०। ३१ तथा १२। १८ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १०। १८१। १ में भी ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ्याः-गृत्समद ऋषिः। वायुर्देवता। गायत्री छन्दः॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(६००) नियुत्वान्वायवागह्ययꣳ शुक्रो अयामि ते।
१ २ ३ २ ३ २
गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥ ६ ॥

भाषार्थः-(वायो) प्राणादि वायु ! वा सर्वगेश्वर ! (नियुत्वान्) सामर्थ्ययुक्त [आप] (आगहि) प्राप्त हूजिये (अयम्) यह (शुक्रः) श्वेत सोम, अथवा शुद्ध आत्मा (ते) आप के लिये (अयामि) नियमित है। (सुन्वतः) अभिषव करने वाले अथवा ध्यान करने वाले के (गृहम्) घर अथवा हृदयरूपी घर को (गन्तासि) आप प्राप्त होते हैं ॥

निघण्टु २। २२ निरुक्त १०। १ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥

ऋग्वेद २। ४१। २ में भी ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः—नृमेधपुरुमेधावृषी। इन्द्रो देवता। अनुष्टुप्छन्दः ॥

१ २र ३१२ ३१२
(६०१) यज्जायथा अपूर्व्य मघवन्वृत्रहत्याय।
१ २३ १२ ३ १२ ३१ २र
तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम् ॥ ७ ॥

* इति षष्ठाध्याये द्वितीया दशतिः ॥ ॥ २ ॥ *

भाषार्थः—(मघवन्) हे यज्ञ वा धन वाले ! परमेश्वर ! (अपूर्व्य) हे अनादे ! (यत्) जब कि आप (वृत्रहत्याय) अज्ञाननिवारणार्थ (जायथाः) हृदय में साक्षात् अनुभव में आते हैं (तत्) तब (पृथिवीम्) पृथिवी को (अप्रथयः) सुख से बढ़ाते (उतो) और (तत्) तभी (दिवम्) द्युलोक को (अस्तभ्नाः) अच्छा आधार देते हैं ॥

अर्थात् जब मनुष्य परमात्मा का ध्यान करते हैं और वह साक्षात् अनुभव को प्राप्त होता है तभी भूमि और द्युलोक की अच्छी सुधरी अवस्था होती है। ऋ० ८। ८९। ५ में। उत द्याम्—पाठ है ॥ ७ ॥

* यह षष्ठाध्याय में दूसरी दशति पूर्ण हुई ॥ २ ॥ *

अथ तृतीया दशतिस्तत्र—

प्रथमायाः—वामदेव ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। अनुष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ १ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र
(६०२) मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत्पयः।
३ २ ३ १ २ ३ १ २र
परमेष्ठी प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु ॥ १ ॥

भाषार्थः-(परमेष्ठी, प्रजापतिः) सर्वव्यापि प्रजापालक (मयि) मुझ में (वर्चः) ब्राह्म तेज (अथो) और (यशः) कीर्त्ति (अथो) तथा (यत्) जो कि (यज्ञस्य) यज्ञ का (पयः) जल है [उस को] (दृंहतु) बढ़ावे। दृष्टान्त-(दिवि) आकाश में (द्यामिव) जैसे द्युलोक को बढ़ाता है तद्वत् ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः-गोतम ऋषिः। पवमानो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ २ ३ १२ ३ २३ १र २र

(६०३) सं ते पयांꣳसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्य-

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र

भिमातिषाहः। आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि

२र ३ १ २

श्रवांꣳस्युत्तमानि धिष्व ॥ २ ॥

भाषार्थः-(अभिमातिषाहः) हे गर्व दूर करने वाले ! (सोम) शान्त! परमात्मन् ! (ते) आप के दिये हुवे (पयांसि) जल (सं यन्तु) सङ्गत होवें (उ) और (वाजाः) अन्न (सम्) सङ्गत हों (वृष्ण्यानि) वीर्य भी सङ्गत हों। (आप्यायमानः) महान् से महान् आप (अमृताय) मोक्ष दान के लिये (दिवि) आकाश में (उत्तमानि श्रवांसि) उत्तम यशों को (धिष्व) धारण कराइये ॥ ऋ० १। ९१। १८ में भी ॥ २ ॥

अथ तृतीयायाः-ऋष्यादिकं पूर्ववत् ॥

२ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

(६०४) त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः।

१र २र ३ २उ १ २ ३ १ २र ३ १र २र

त्वमा ततन्थोर्वाऽन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥३॥

भाषार्थः-(सोम) परमात्मन् ! (त्वम्) आपने (इमाः) इन (विश्वाः) सब (ओषधीः) ओषधियों को (अजनयः) उत्पन्न किया है (त्वम्) आपने ही (अपः) जलों को (त्वम्) और आपने ही (गाः) गौ आदि पशुओं को उत्पन्न किया है [निरुक्त २। ५] (त्वम्) आपने ही (उरु) बड़े (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष लोक और उस के पदार्थों को (आततन्थ) फैलाया है (त्वम्) आप ने ही (ज्योतिषा) ज्योति से (तमः) अन्धकार को (वि ववर्थ) अस्त व्यस्त किया है ॥

ऋ० १ । ९१ । २१ में "त्वमाततन्थोर्वन्तरिक्षम्" पाठ है ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः-मधुच्छन्दाऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः ॥

३ १ २ ३ १ २ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(६०५) अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।

१ २ ३ १ २
होतारं रत्नधातमम् ॥४॥

भावार्थः-हे परमेश्वर ! (अग्निम्) प्रकाशस्वरूप (पुरोहितम्) सर्वव्यापक होने से सब के आगे वर्त्तमान (यज्ञस्य) यज्ञ के (देवम्) प्रकाशक (ऋत्विजम्) प्रत्येक ऋतु में पूजनीय (होतारम्) सब के दाता और आदाता (रत्नधातमम्) संपूर्ण रम्य पदार्थों को बहुतायत से धारण करने वाले [आप की] (ईडे) स्तुति करता हूं ॥

अथवा ज्ञानयज्ञ के आप ही अग्नि, आप ही पुरोहित, आप ही देवता आप ही ऋत्विज्, आप ही होता हैं । एकेले ही आप सर्व कार्य साधते हैं ॥

निरुक्त ७ । १५ और २ । १२ फिट् सूत्र १ उण.दि ४ । ५७ अष्टाध्यायी ३ । १ । ३ ॥ ६ । १ । १०७ ॥ ८ । २ । ५ ॥ ८ । १ । २८ ॥ ८ । ४ । ६६ ॥ १ । २ । ३९ ॥ ५ । ३ । ३९ ॥ ७ । ४ । ४२ । ॥ १ । ४ । ६७ ॥ २ । २ । १८ ॥ ६ । २ । २ ॥ ६ । २ । १३९ ॥ ६ । २ । ४९ ॥ १ । २ । ४० इत्यादि प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १ । १ । १ में भी ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः-वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
(६०६) तेमन्वत प्रथमं नाम गोनां त्रिःसप्त परमं नाम जानन् ।

१ २ ३ २३कर२ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
ता जानतीरभ्यनूषत क्षा आविर्भुवन्नरुणीर्यशसा गावः ॥५॥

भावार्थः-पूर्व मन्त्र में से अनुवृत्ति लेकर, अग्ने ! प्रकाशस्वरूप ! परमात्मन् ! (ताः) पृथिवीस्थ प्रजायें (ते) आपके (नाम) ओंकारादि नाम को (गोनाम्) वेदवाणियों में (प्रथमम्) मुख्य (अमन्वत) मानती हैं और (त्रिःसप्तपरमम्) ३ गुणे ७=२१ प्रकार के छन्दोयुक्त वेदमन्त्रों में प्रधान (नाम) नाम (जानन्) जानती हैं । (ताः) वे (जानतीः) जानती हुई प्रजायें (अभ्यनूषत) आप की स्तुति करती हैं । (वाचः) वाणियें (यशसा) आप की कीर्त्ति से (अरुणीः) दीप्तियुक्त (आविर्भुवन्) प्रकट होती हैं ॥

अष्टाध्यायी ७ । १ । ५७ का प्रमाण और २१ छन्दों के २१ नाम तथा-ऋ० ४ । १ । १६ के पाठों के भेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ्याः—गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

२३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३क२र

(६०७) समन्या यन्त्युपयन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यस्पृणन्ति ।

२३ २ ३ १ २ ३ १ २३१र २र ३१२३ १ २

तमू शुचिं शुचयो दीदिवांꣳसमपान्नपातमुपयन्त्यापः ६

भावार्थः—अग्ने ! परमेश्वर ! जिस प्रकार (अन्याः आपः) कोई जल तो (ऊर्वम्) समुद्र में स्थित वड़वानल में (सं यन्ति) मिल जाते हैं (अन्याः) और दूसरे जल (उपयन्ति) समीप तक पहुंचने पाते हैं । और कोई (नद्यः) नदी बन कर (समानम्) एक साथ (पृणन्ति) अपने को देते हैं (उ) ऐसे ही (तम्) उन (दीदिवांसम्) अत्यन्त प्रकाशमान (अपां न पातम्) कर्मों के न गिराने वाले आप को (शुचयः) पवित्र पूर्वोक्त वाणियें (उपयन्ति) समीप प्राप्त होती हैं, उन में कोई साक्षात् और कोई परम्परा से आप का वर्णन करती हैं ॥

यद्वा, एक प्रकार के जल जो यज्ञ में "एकधन" कहाते हैं और दूसरे जो "वसतीवरी" संज्ञक होते हैं वे सब चात्वाल और उत्कर नामक स्थानों में मिलकर, मेघमण्डल द्वारा वर्षा कर, नदी बन कर, समुद्र को प्राप्त होते हैं। अन्य सब पूर्व के तुल्य है। वेददीप (यजुर्भाष्य) ५ । ७ में लिखा है कि जिन घड़ों से सोमकण्डनार्थ जल लाया जाता है, वे "एकधन" कहाते हैं। इसी से उन के जल को भी एकधन कह सकते हैं । तथा वहीं लिखा है कि उत्तरवेदि के निचयार्थ जिस भूमिभाग में मिट्टी खोदते हैं वह स्थान "चात्वाल" कहाता है और "उत्कर" भी यज्ञ के स्थानविशेष का नाम है। वेददीप १ । २५ में लिखा है कि "स्पय" नाम यज्ञपात्रविशेष से उखाड़ी हुई मिट्टी को "उत्कर" नामक स्थान में डाले । निघण्टु ३ । २० का प्रमाण और ऋ० २ । ३५ । ३ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः—वामदेव ऋषिः । रात्रिर्देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

१र २र ३१ २३ १र २र ३१ २र १ २ ३ २

(६०८) आप्रागाद्भद्रा युवतिरह्नः केतून्समीर्त्सति । अभूद्भद्रा

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

निवेशनी विश्वस्य जगतो रात्री ॥ ७ ॥

भावार्थः—हे अग्ने ! प्रकाशस्वरूप! परमात्मन् ! (भद्रा) सांसारिक क्षणिक सुखदायिनी (युवतिः) दृढ़ (विश्वस्य) सब (जगतः) जगत् की (भद्रा) भली (निवेशनी) सुलाने वाली (रात्री) रात्री वा मोहावस्था जो आप से ध्यान से पराङ्मुख करने वाली (अभूत्) है, (आप्रागात्) हम पर चढ़ी आती है। वही (अह्नः) दिन वा ज्ञानप्रकाश की (केतून्) किरणों को (समीर्त्सति) दूर करना चाहती है। उस से हमें बचाइये। यह तात्पर्य है ॥

निरुक्त २। २० निघण्टु २। १४ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥७॥

अथाऽष्टम्याः—भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः। वैश्वानरो देवता। जगती छन्दः॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२ ३ २ ३ १ २
(६०९) पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू महः प्र नो वचो
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३
विदथा जातवेदसे। वैश्वानराय मतिर्नव्यसे
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
शुचिः सोम इव पवते चारुरग्नये ॥ ८ ॥

भावार्थः—हे अग्ने ! परमात्मन् ! (पृक्षस्य) सब से छुये हुवे (वृष्णः) सर्व कामनाओं के वर्षाने वाले (अरुषस्य) प्रकाशमान आप की (महः) पूजावरक (नः) हमारा (वचः) वचन (नु) शीघ्र (प्र) समर्थ हो। तथा (जातवेदसे) जिन आप से ज्ञान प्रकट हुवा है उन (वैश्वानराय) सर्व-नियन्ता आप के लिये (शुचिः) पवित्र (मतिः) बुद्धि प्राप्त हो (इव) जैसे (नव्यसे) नये उत्पन्न किये (अग्नये) अग्नि के लिये (चारुः) सुन्दर (सोमः) सोम (विदथा) यज्ञ में (पवते) प्राप्त होता है ॥ तद्वत्-

निरुक्त १२। ७ ॥ ७। २१ ॥ ७। १९ निघण्टु ३। १७ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ८ ॥

अथ नवम्याः—भरद्वाज ऋषिः। विश्वेदेवा देवता। त्रिष्टुप्छन्दः॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १र २र
(६१०) विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञमुभे रोदसी
३ १र २र ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १
अपान्नपाच्च मन्म। मा वो वचाꣳसि परिच-
२ ३ २उ ३ १ २
क्ष्याणि वोचꣳसुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम ॥ ९ ॥

भावार्थः—हे अग्ने ! परमात्मन् ! (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् और भौतिक देव (उभे) दोनों (रोदसी) द्युलोक और पृथिवी लोक (च) और (अपान्नपात्) देवदूत अग्नि (मम) मेरे (मन्म) माननीय (यज्ञम्) यज्ञ को (शृण्वन्तु) ग्रहण करें । और मैं (वः) आप के (परिचक्ष्याणि) निन्दायोग्य (वचांसि) वचनों को (मा वोचम्) न बोलूं । तथा (वः) आप के (अन्तमाः) अतिसमीपस्थ हुवा मैं (सुम्नेषु इत्) सुखों में ही (मदेम) दृढ़ होऊं ॥

निरुक्त १० । १८ ॥ ७ । ५ निघण्टु १ । ३ ॥ २ । २ ॥ ३ । ६ अष्टाध्यायी ३ । १ । ८५ इत्यादि पर संस्कृत भाष्य में ध्यान देना चाहिये ॥

ऋग्वेद ६ । ५२ । १४ में यज्ञम्=यज्ञियाः पाठ है ॥ ९ ॥

अथ दशम्याः—वामदेव ऋषिः । लिङ्गोक्ता देवता । महापङ्क्तिश्छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
(६११) यशो मा द्यावापृथिवी यशो मेन्द्रबृहस्पती ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यशो भगस्य विन्दतु यशो मा प्रतिमुच्यताम् ।
३ २ २ ३ २३ १ २ ३ १ २
यशस्व्या३स्याः सꣳसदोऽहं प्रवदिता स्याम् ॥१०॥

भावार्थः हे अग्ने ! परमेश्वर ! (मा) मुझे (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी लोक (यशः) कीर्त्ति को प्राप्त करावें । (मा) मुझे (इन्द्र-बृहस्पती) राजा और विद्वान् पुरुष (यशः) यश को प्राप्त करावें । (भगस्य) ऐश्वर्य का (यशः) यश (विन्दतु) प्राप्त होवे । (यशः) यश (मा प्रतिमुच्यताम्) कभी न छोड़े । (यशस्वी) कीर्त्तिवाला (अहम्) मैं (अस्याः) इस (संसदः) विद्वत्सभा का (प्रवदिता) प्रगल्भता से बोलने (स्याम्) होऊं ॥ १० ॥

अथैकादश्याः—हिरण्यस्तूप ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

१ २ ३ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
(६१२) इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचं यानि चकार प्रथ-

१ २ ३ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
मानि वज्री । अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा
३ १ २
अभिनत्पर्वतानाम् ॥ ११ ॥

भावार्थः-(इन्द्रस्य) सूर्य वा विद्युत् के (वीर्याणि) पराक्रमयुक्त कर्मों को (प्रवोचम्) वर्णित करता हूं (यानि) जिन को कि (वज्री) वज्रवाला इन्द्र (प्रथमानि) मुख्य और विख्यात (चकार) करता है । ये ये हैं— (अहिम्) मेघ को (अहन्) मारता (अनु) फिर (नु) शीघ्र (अपः) जलों को (ततर्द) बहाता और (पर्वतानाम्) मेघों की (वक्षणाः) नदियां (प्र अभिनत्) तोड़ता अर्थात् दोनों किनारों में रगड़ कर बहाता है ॥

बिजुली का प्रहार वा गिरना वज्र कहा गया है ॥

निघण्टु १ । १० ॥ १ । १३ निरुक्त ७ । १० और उस के भाष्य का प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ ११ ॥

अथ द्वादश्याः-विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ १२ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३
(६१३) अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुर-
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ र ३ १ र
मृतं म आसन् । त्रिधातुरर्को रजसो विमानो-
२ र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ऽजस्रं ज्योतिर्हविरस्मि सर्वम् ॥ १२ ॥

भावार्थः-(अग्निः अस्मि) मैं अग्नि हूं। जो कि (जन्मना) जन्म से ही (जातवेदाः) ज्ञान के साधन प्रकाश का उत्पादक हूं । (घृतम्) घृत (मे) मेरा (चक्षुः) प्रकाशक है (अमृतं मे आसन्) अमृत=प्रकाश मेरे मुख में है (त्रिधातुः) तीन प्रकार अपने को धारण करने वाला हूं १-(अर्कः) प्राण रूप हो कर (रजसः) अन्तरिक्ष का (विमानः) अधिष्ठाता हूं । २-(अजस्रं ज्योतिः) निरन्तर ज्योति=सूर्य हो कर द्युलोक का अधिष्ठाता हूं । ३-(सर्वम् हविः) सब हव्य (अस्मि) मैं हूं ॥

अर्थात् जब अग्नि प्रकट होता है तभी साथ ही प्रकाश भी प्रकट होता है । घी का सेचन मानों अग्नि की आंख में अञ्जन डाल कर प्रकाश का बढ़ाना

है। इसी से यह भी जतलाया है कि घृत का भोजन आंखों को गुणदायक है। अग्नि ही प्राणादि ३ रूपों से स्थित है। १-प्राण होकर अन्तरिक्ष, २-सूर्य हो कर द्युलोक और ३-सब हव्य पदार्थों में व्याप कर पृथिवीका अधिष्ठाताहै। जो प्रकाश के बढ़ाने वाले घृतादि हव्य पदार्थ हैं, वे सब आग्नेय हैं। तभी तो अग्नि के सहायक हैं॥ अग्नि जड़ पदार्थ में भी उत्तम पुरुष के साथ वर्णन करना वेद की विचित्र मनोहर शैली मात्र है॥ ऋ० ३। २६। ७ का पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये॥ १२॥

अथ त्रयोदश्याः-ऋष्यादय उक्ताः॥

२ ३ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १र
(६१४) पात्यग्निर्विपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्च-
२र ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
रणꣳ सूर्यस्य। पाति नाभा सप्तशीर्षाण-
३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
मग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः॥ १३॥

इति षष्ठाऽध्याये तृतीया दशतिः॥ ३॥

भाषार्थः-(अग्निः) व्यापक अग्नि (वेः) गतिस्वभाव वाली (विपः) पृथिवी के (अग्रम्) मुख्य (पदम्) स्थान की (पाति) रक्षा करता है (यह्वः) महान् अग्नि (सूर्यस्य) सूर्य के (चरणम्) पद=स्थान की (पाति) रक्षा करता है। (ऋष्वः) महान् अग्नि ही (देवानाम्) देवतों के (उपमादम्) हर्षकारक यज्ञ की (पाति) रक्षा करता है॥

अथवा-(विपः) विद्वान् (अग्निः) पूजनीय ईश्वर (वेः) चलने के स्वभाव वाले जीवात्मा रूप पक्षी के (अग्रं पदम्) मुख्य पद=मोक्षधाम की (पाति) रक्षा करता है। (यह्वः) महान् आत्मा (सूर्यस्य) गतिशील आत्मा की (चरणम्) गति की (पाति) रक्षा करता है (अग्निः) वही पूज्य परमेश्वर (नाभा) नाभिमण्डल में (सप्तशीर्षाणम्) ५ इन्द्रियें ६ ठा मन, ७ वीं बुद्धि वाले जीवात्मा की (पाति) रक्षा करता है। (ऋष्वः) महान् परमात्मा (देवानाम्) इन्द्रियों के (उपमादम्) हर्षकारक जीवात्मा की (पाति) रक्षा करता है॥

निघण्टु १। १॥ २। १४। ३। ३॥ अष्टाध्यायी ३। १। ३९ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥१३॥

यह छठे अध्याय में तीसरी दशति पूर्ण हुई॥ ३॥

अथ चतुर्थी दशतिस्तत्र-

प्रथमायाः—वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । पङ्क्तिश्छन्दः ॥

१ २ ३ १ १ ३ २ ३ १ २
(६१५) भ्राजन्त्यग्ने समिधान दीदिवो जिह्वा चरत्यन्तरासनि
१र २र ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २
स त्वं नोअग्ने पयसा वसुविद्रयिं वर्चोदृशे दाः ॥१॥

भावार्थः—(अग्ने) परमेश्वर ! (समिधान) प्रकाशमान ! (दीदिवः) सर्वोपरि विराजमान ! (भ्राजन्ती) आप के अनुग्रह से प्रकाश करती हुई (जिह्वा) जीभ (अन्तः आसनि) भीतर मुख में (चरति) खाती वा चलती है (सः) वही (त्वम्) आप (अग्ने) अग्ने ! (वसुविद्) धनधान्य के प्रापक (पयसा) दुग्ध के साथ [बाल्यावस्था में ही] (रयिम्) धन और (वर्चः) तेज (दृशे) देखने को (दाः) देते हैं ॥

अष्टाध्यायी ६ । १ । ६३ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ १ ॥

अथ द्वितीयायाः—वामदेव ऋषिः । ऋतवो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः ॥

३ १र २र ३ १र २र
(६१६) वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः ।
३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र
वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिर इन्नु रन्त्यः ॥२॥

भावार्थः—हे अग्ने ! परमेश्वर ! आप की कृपा से (वसन्तः) चैत्र वैसाख २ मासों का ऋतु (रन्त्यः) रमणीय हो (इत्) और (नु) निश्चय (ग्रीष्मः) ज्येष्ठ आषाढ़ २ मासों का ऋतु (रन्त्यः) रमणीय हो (इत्) और (नु) निश्चय (वर्षाणि) श्रावण भाद्रपद का ऋतु (अनु) तत्पश्चात् (शरदः) आश्विन कार्त्तिक का ऋतु (हेमन्तः) मार्गशिर पौष का ऋतु (इत्) और (नु) निश्चय (शिशिरः) माघ फाल्गुन का ऋतु (रन्त्यः) रमणीय हो ॥

इसी प्रसङ्ग का निरुक्त भी ४ । २७ देखने योग्य है । उस का अर्थ यह है कि—" सप्तयुञ्ज० " ऋ० एक चक्र अर्थात् एक प्रकार चलने वाले रथ को ७ जोड़ते हैं । चक्र शब्द चकति वा चरति वा क्रामति से बना है । एक अश्व ले चलता है जिस के ७ नाम है, वह सूर्य है । उस की ७ किरणें (रश्मि)

हैं। रश्मि इस लिये कहाती हैं कि उस को रस पहुंचाती हैं । इसी बात को यूं भी कहा करते हैं कि इस की ७ ऋषि स्तुति किया करते हैं। यह ऋषि नाम भी इसी कारण है कि किरणें रस को पहुंचाती हैं। अगले आधे मन्त्र में संवत्सर का वर्णन है। संवत्सर नाम का चक्र है। ३ नाम ग्रीष्म वर्षा और हेमन्त हैं। इस को संवत्सर इस से कहते हैं कि इस में सर्व भूतमात्र वसते हैं ग्रीष्म इस से कहाता है कि उस में रस ग्रसे जाते हैं । वर्षा इस लिये कि उस में मेघ वर्षता है । हेमन्त इस से कि उस में हिम (पाला वा बर्फ़) पड़ता है। हिम शब्द हन्ति वा हिनोति से बना है। संवत् को अजर इस लिये कहा कि यह पुराणा नहीं पड़ता, सदा नवीन है। अनर्व इस लिये है कि और में और नहीं समाता। जिस संवत् में ये सब प्राणी जन्मते मरते रहते हैं, उस का वर्णन सब प्रकार से विभाग करके किया जाता है। जैसा के 'पञ्चारे चक्रे०' इस में ५ ऋतु करके वर्णन हैं। 'संवत्सर' की ५ ऋतु हैं, ऐसा ब्राह्मण में भी कहा है, हेमन्त और शिशिर को मिलाकर एक करले वे 'षडर आहुरर्पितम्' इस स्थान में षट् ऋतु करके वर्णन है। अराः इस लिये कहाते हैं कि अरे नाभि में पोये रहते हैं। और षट् शब्द सहात से बना है। 'द्वादशारम्' इत्यादि वाक्य में १२ मासों के विभाग से वर्णन है। मास इस लिये कहाते हैं कि इन से काल को मापते हैं। प्रधि चारों ओर का घेरा कहाता है॥ 'तस्मिन्साकंत्रिशता०' इत्यादि में संवत्सर चक्र की ३६० कील गिनायी हैं। ब्राह्मण में भी लिखा है कि संवत्सर के दिन रात्रि मिलाकर ३६० हैं । 'सप्त शतानि विंशतिश्च०' इस स्थान में ७२० कहे हैं ये भिन्न भिन्न दिन और रात्रि को बांट कर ७२० कील जानो । यह भी ब्राह्मणवाक्य है" ॥ २॥

अथ तृतीयायाः--नारायण ऋषिः। पुरुषोदेवता। अनुष्टुप्छन्दः॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(६१७) सहस्रशीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
स भूमिꣳ सर्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥३॥

भावार्थः--हे अग्ने। परमात्मन् । (सहस्रशीर्षाः) जिस में बहुत शिर (सहस्राक्षः) बहुत आंख (सहस्रपात्) बहुत पांव हैं (सः) वह आप (भूमिम्) ब्रह्माण्ड भूमि को (सर्वतः) बाहर भीतर सर्वत्र (वृत्वा) व्यापकर (दशाङ्गुलम्) हृदय देश को (अत्यतिष्ठत्) उल्लङ्घन करके स्थित हैं ॥

अर्थात् आप ही सर्वेश्वर हैं । सायणाचार्य कहते हैं कि " सम्पूर्ण प्राणियों का समष्टि रूप ब्रह्माण्ड रूपी देहवाला विराट् नाम जो पुरुष वह सहस्रशीर्षाः है। सहस्र शब्द के उपलक्षणार्थ होने से यह अर्थ हुवा कि वह अनन्त शिरों से युक्त है । जो २ सर्व प्राणियों के शिर हैं वे २ सब उस ब्रह्माण्ड देह के अन्तर्गत होने से उसी पुरुष के कहे गये हैं। ऐसे ही सहस्राक्ष और सहस्रपात् होना"जानो। यजुः। ३१। १ और ऋ० १०। ९०। १ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः-ऋष्यादिकं पूर्ववत् ॥

३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(६१८) त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः ।

२ ३ १ ३क २र ३ २ ३ २

तथा विष्वङ् व्यक्रामदशनाऽनशनेअभि ॥ ४ ॥

भावार्थः-अग्ने! परमात्मन्! (अस्य) इन आप का (पादः) एक देशमात्र (इह) इस जगत् में (पुनः) वार वार (अभवत्) होता है और (त्रिपात्) शेष आप का सच्चिदानन्दस्वरूप संसार के स्पर्श से रहित ही (पुरुषः) पूर्ण (ऊर्ध्वः) संसार से बाहर (उदैत्) उच्चभाव से रहता है (तथा) तथा जो जगत् में आया हुवा एक देश है वह (अशनाऽनशने) खाने आदि व्यवहारयुक्त चेतन प्राणिवर्ग और उस से रहित अचेतन पर्वत नदी आदिपदार्थ, इन दोनों में (विष्वङ्) छिपा हुवा (अभि व्यक्रामत्) अभिव्याप्तहोकर स्थित है ॥

अर्थात् जिस प्रकार परमात्मा अनन्त है, वैसे जगत् परमात्मा के बराबर अनन्त नहीं है, किन्तु परमात्मा के एक देश में सब जगत् वार २ सृष्टिकाल में स्थित रहता है, शेष परमात्मा जगत् के बाहर बहुलता से वर्त्तमान है, परमात्मा जितना जगत् में है, उतना ही सब चेतनाऽचेतन को अपनी एकदेशीय व्याप्ति से व्याप्त कर देता है ॥ ऋ० १०। ९०। ४ और यजुः ३१। ४ के पाठभेद संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः-ऋष्यादय उक्ताः ॥

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २उ ३ १ २

(६१९) पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्याऽमृतं दिवि ॥५॥

भाषार्थः—उपादान कारण प्रकृति वा प्रधान सहित परमात्मा को यहां 'पुरुष' कहा है, क्योंकि यह पुर्=ब्रह्माण्ड में शयन करता है। (इदम्) यह वर्तमान कल्पस्थ जगत् (यत्) और जो (भूतम्) भूत कल्पस्थ (च) और (यत् भाव्यम्) जो होने वाले कल्प में स्थित जगत् है (सर्वम्) यह सब (पुरुषः) पुरुष (एव) निश्चय कहा जाता है। (अस्य) इन आप का (पादः) एक पाद-मात्र (विश्वा) सब (भूतानि) प्राणी हैं (अस्य) और इन आप के (त्रिपाद्) तीन पाद (अमृतम्) अमर (दिवि) अवकाश=रिक्त स्थान मात्र में हैं॥

यद्यपि परमात्मा को "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इत्यादि उपनिषदों में अनन्त माना है, इस लिये वह "इतना है" इस परिमाण में नहीं आ सका और परिमाणातीत पदार्थ में पादकल्पना नहीं बन सकती, परन्तु यह त्रिकालस्थ जगत् परमात्मा की अपेक्षा बहुत छोटा है। इस बात के वर्णन करने को पादकल्पना करके वर्णन कर दिया है॥

ऋग्वेद १०। ९०। २ यजुर्वेद ३१। २ से पूर्वार्ध की तुल्यता और यजुर्वेद ३१। ३ से उत्तरार्ध की कुछ न्यून तुल्यता है॥ ५॥

अथ षष्ठ्याः—ऋष्यादयः पूर्ववत्॥

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
(६२०) तावानस्य महिमा ततो ज्यायाꣳश्च पूरुषः।
३ १ २ ३ १ २र ३ १र २र ३ १ २
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥ ६॥

भाषार्थः-भूत भविष्यत् वर्तमान जगत् का आधार जितना है, (तावान्) उतना सब (अस्य) इस परमात्मा का (महिमा) सामर्थ्य विशेष है, न कि केवल इतना ही परमात्मा है। (च) किन्तु (पूरुषः) परमात्मा तो (ततः) उस महिमा से (ज्यायान्) अत्यन्त महान् है। (यत्) जो कुछ (अन्नेन) अन्न से (अतिरोहति) उपजता है उस का (उत) और (अमृतत्वस्य) मोक्ष का (ईशानः) अधिष्ठाता परमात्मा ही है॥

ऋग्वेद १०। ९०। २ के उत्तरार्ध से तुल्यता है और १०। ९०। ३ के पूर्वार्ध में "एतावान्, अतः" इतना पाठान्तर है॥ ६॥

अथ सप्तम्याः—नारायण ऋषिः। त्वष्टा देवता। अनुष्टुप्छन्दः॥

१२ ३१२ ३ २३ २३ १२
(६२१) ततो विराडऽजायत विराजो अधि पूरुषः ।
२ ३ १र २र ३ २उ ३ १ २ ३ २
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ७ ॥

भावार्थः-(ततः) उस निमित्तकारण पुरुष से (विराट्) ब्रह्माण्डदेह (अजायत) उत्पन्न हुवा करता है (विराजः) ब्रह्माण्ड देह का (अधि) अधिष्ठाता (पूरुषः) परमात्मा होता है (सः) वह (जातः) उत्पन्न हुवा ब्रह्माण्ड देह (पश्चात्) फिर (भूमिम्) पृथिवी (अथो) और (पुरः) ग्राम नगरादि वा प्राणिदेहों को (अत्यरिच्यत) लांघकर वर्त्तमान रहा करता है। अर्थात् ग्राम नगरादि सब उसके भीतर आजाते हैं, वह इन सबसे बड़ा होता है॥

" परमात्मा का कोई कार्य वा कारण नहीं है " इत्यादि प्रमाणों से यह शङ्का नहीं करनी चाहिये कि इस मन्त्र में वा ऐसे ही अन्य मन्त्रों में परमात्मा से विराट् की उत्पत्ति में परमात्मा उपादानकारण हो ॥ यजुः ३१। ५ में भी ॥ ऋ० १० । ९० । ५ में-ततः=तस्मात् पाठभेद है ॥ ७ ॥

अथाऽष्टम्याः-वामदेव ऋषिः । द्यावापृथिवी देवते । त्रिष्टुप् (उपरिष्टाज्ज्योतिः) छन्दः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १र २र
(६२२) मन्ये वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ ये अप्रथे-
३ १ २ ३ १र २र १ २ ३ १२
थाममितमभि योजनम्। द्यावापृथिवी भवतं
३ १र २र ३ १ २
स्योने ते नो मुञ्चतमꣳहसः ॥ ८ ॥

भावार्थः-(द्यावापृथिवी) परम पुरुष से रचित ! और उसी से व्याप्त द्युलोक और पृथिवीलोको ! और उन में स्थित प्राणि तथा अप्राणिवर्गो ! (वाम्) तुम २ को (सुभोजसौ) भले प्रकार से पालन करने वाले (मन्ये) मानता हूं (ये) जो तुम (अमितम्) अपरिमित (योजनम्) देश तक (अभि अप्रथेथाम्) व्याप्त होकर फैले हो (ते) वे तुम (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवीलोको ! (नः) हम को (अंहसः) दुःख वा पाप से (मुञ्चतम्) छुड़ाओ और (स्योने) सुखदायक (भवतम्) हो ओ ॥ जड़ संबोधन वैदिक शैलीमात्र है ॥ ८ ॥

अथ नवम्याः-वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

१ २　३　१ २ ३ १ २ ३ २ ३　१ २
(६२३) हरी त इन्द्र श्मश्रूण्युतो ते हरितौ हरी ।
१　२　३ १ २　३ १ २ ३ १ २
तं त्वा स्तुवन्ति कवयः पुरुषासो वनर्गवः ॥ ९ ॥

भाषार्थः-(इन्द्र) परम पुरुष के रचे हुवे ! सूर्य ! (ते) तेरी (श्मश्रूणि) किरण रूप मूछें (हरी) हरण करने वाली हैं (उतो) और (ते) तेरे (हरी) अश्व के समान धारण और आकर्षण गुण (हरितौ) हरण करने वाले हैं (तम्) उस (त्वा) तुझ को (कवयः) बुद्धिमान् (वनर्गवः) सेवनीय वैदिकी वाणी वाले (पुरुषासः) पुरुष (स्तुवन्ति) वेदानुसार वर्णित करते हैं ॥

अष्टाध्यायी ६ । १ । ७ ॥ ७ । १ । ५० ॥ ३ । १ । ८१ ॥ १ । २ । ४८ ॥ निघण्टु १ । १५ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ९ ॥

अथ दशम्याः-वामदेव ऋषिः । आत्मा देवता । अनुष्टुप्छन्दः ॥

२उ ३　१ २　३ २ ३　२ ३　१ २ ३ २
(६२४) यद्वर्चो हिरण्यस्य यद्वा वर्चो गवामुत ।
३ २ ३ १ २ ३　२ ३ १ २　३　१　२
सत्यस्य ब्रह्मणो वर्चस्तेन मा सꣳसृजामसि ॥१०॥

भाषार्थः-(हिरण्यस्य) सुवर्ण का, वा ज्योति का, वा लक्ष्मी का (यत्) जो (वर्चः) तेज है (उत) और (गवाम्) किरणों वा अन्य गोशब्दवाच्य पदार्थों का (यत्) जो (वर्चः) तेज है (सत्यस्य) त्रिकालैकरस (ब्रह्मणः) ब्रह्म का (वर्चः) जो तेज है (तेन) उस तेज से (मा) हम लोग अपने को (संसृजामसि) संसर्ग वाला करें ॥

निरुक्त २ । १० ॥ ३ । १३ । निघण्टु १ । १ ॥ १ । ४ ॥ १ । ११ ॥ ३ । १६ ॥ ४ । १ और अष्टाध्यायी ७ । १ । ४६ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥ १० ॥

अथैकादश्याः-वामदेवऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

२ ३ १ २　३ २ ३ २ ३क　२ ३ १
(६२५) सहस्तन्न इन्द्र दद्ध्योज ईशे ह्यस्य महतो
२　२ ३ १ ३ १र　२र　३ १ २
विरप्शिन् । क्रतुं न नृम्णꣳस्थविरं च वाजं

३२३ १२ ३१२
वृत्रेषु शत्रून्त्सहना कृधी नः ॥ ११ ॥

भावार्थः-(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (नः) हमारे लिये (सहः) शत्रुओं का दमन करने वाला (तत्) वह ओजः बल (दद्धि) दीजिये (विरप्शिन्) हे महन् ! (हि) क्योंकि (अस्य महतः) इस बड़े बल वा ब्रह्माण्ड के (ईशे) आप ईश्वर हैं (च) और (क्रतुं न) कर्मानुसार (नृम्णम्) धन (च) और (स्थविरं वाजम्) स्थिर धान्यादि [दीजिये] (नः) हमको (वृत्रेषु) पापियों में (शत्रून्) शत्रुओं का (सहना) साथ घातक (कृधि) कीजिये ॥

निघण्टु ३ । ३ ॥ २ । १० के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ११ ॥

अथ द्वादश्यावामदेव ऋषिः । गौर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ॥

३१२ ३१२ ३२३१ २ ३२३
(६२६) सहर्षभाः सहवत्सा उदेत विश्वा रूपाणि
१२ ३२३२३१ २ ३२
बिभ्रतीर्द्व्यूध्नीः उरुःपृथुरयं वो अस्तुलोक
३१२ २२ ३ २ ३१ २
इमा आपः सुप्रपाणा इह स्त ॥ १२ ॥

* इति षष्ठाध्याये चतुर्थी दशतिः ॥ ४ ॥ *

भावार्थः– गौवो ! तुम (विश्वा) सब (रूपाणि) रूपों को (बिभ्रतीः) धारण करती हुईं (द्व्यूध्नीः) सायं प्रातःकाल दूध देने वाली (सहर्षभाः) सांडों सहित (सहवत्साः) बछड़ों सहित (उदेत) उच्चभाव से प्राप्त होओ (वः) तुम्हारे लिये (अयम्) यह (लोकः) स्थान (उरुः) लम्बा (पृथुः) चौड़ा (अस्तु) होवे (इमाः) ये (आपः) जल (सुप्रपाणाः) सुन्दर पीने योग्य होवें । इस प्रकार (इह) इस लोक में (स्त) सुखयुक्त होओ ॥

जड़सम्बोधन वैदिक परिपाटी मात्र है । तात्पर्य यह है कि गौवों को सांड़ों बैलों बछड़ों सहित, दो काल दुग्ध देने वाली रखना चाहिये और उन के गोष्ठ (खरक) लम्बे चौड़े विशाल हों, पीने को सुन्दर स्वच्छ जल हो ॥

* यह छठे अध्याय में चौथी दशति पूर्ण हुई ॥ ४ ॥ *

—:०*०:—

अथ पञ्चमी दशतिस्तत्र-

प्रथमायाः-वैश्वानर ऋषिः। अग्निः पवमानो देवता। गायत्री छन्दः॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(६२७) अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः।
३ १ २ ३ १ २
आरे बाधस्व दुच्छुनाम्॥ १॥

भावार्थः-(अग्ने) प्रकाशस्वरूप! परमात्मन्! वा भौतिकाग्ने! (आयूंषि) हमारी आयुओं को (पवसे) तू पवित्र करता है, वह तू (नः) हमारे लिये (ऊर्जम्) रस (च) और (इषम्) अन्न को (आसुव) प्रेरित कर प्राप्त करा। तथा (दुच्छुनाम्) दुष्ट कुत्तों के समान राक्षसों को (आरे) हम से दूर [निघं० ३। २६] (बाधस्व) बाध=भगा॥ यजुः १९। ३८ तथा ३५। १६ में और ऋ० ९। ६६। १९ में भी॥ १॥

अथ द्वितीयायाः-विभ्राट् सूर्यपुत्र ऋषिः। सूर्यो देवता। जगती छन्दः॥

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३
(६२८) विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपता-
१ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
वविह्रुतम्। वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः
२ ३ १२ २२
पिपर्त्ति बहुधा विराजति॥ २॥

भावार्थः-(विभ्राट्) प्रकाशमान सूर्यलोक (बृहत्) बहुत (सोम्यम्) सोमयुक्त (मधु) मधुर रस को (पिबतु) पीवे=खींचे (यः) जो सूर्य (यज्ञपतौ) यजमान के निमित्त (अविह्रुतम्) अकण्टक (आयुः) आयु वा अन्न का (दधत्) धारण करता हुवा (वातजूतः) वायु के चलाने वाला (त्मना) अपने आपे से (प्रजाः) प्रजाओं को (पिपर्त्ति) पालता है (अभिरक्षति) सब ओर से रक्षा करता है और (बहुधा) बहुत सा (विराजति) प्रकाश करता है॥

यजुः ३३। ३० और ऋ० १०। १७०। १ का पाठभेद और अष्टाध्यायी ५। ४। १३७॥ ४। ४। १३८॥ ७। २। २१॥ ६। ४। १४१ निघण्टु १। १६॥ २। ७ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ २॥

अथ तृतीयायाः–कुत्साऋषयः । सूर्योदेवता । त्रिष्टुप्छन्दः ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
(६२९) चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२
आप्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षꣳसूर्य आत्मा
२र २ ३ १
जगतस्तस्थुषश्च ॥ ३ ॥

भावार्थः–(सूर्यः) सूर्यलोक वा परमात्मा (देवानाम्) देवों=तारागणों वा ज्योतिर्गणों के (चित्रम्) विचित्र (अनीकम्) समूह को (उदगात्) लांघ कर उदय होता है अर्थात् सर्वोपरि प्रकाशमान है । तथा (मित्रस्य) प्राण (वरुणस्य) अपान और (अग्नेः) अग्नि का (चक्षुः) प्रकाशक प्रेरक है । तथा (जगतः) चलने वाले (च) और (तस्थुषः) स्थावर=न चलने वाले जगत् का (आत्मा) आत्मा है । वही (द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम्) द्युलोक भूलोक अन्तरिक्षलोक इन तीनों को (आप्राः) सब ओर से पालित पोषित करता और प्रकाश से भरपूर करता है ॥

संपूर्ण स्थावर जङ्गम का आत्मा सूर्य को इस लिये कहा है कि जैसे जीवात्मा शरीरेन्द्रियों का जीवनहेतु है, वैसे ही सूर्य चराचर का जीवन-हेतु है । सूर्य के उदय होते ही मृतसमान चराचर फिर चेतन हो जाते हैं ॥

निरुक्त १२ । १६ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ यजुः ७ । ४२ और १३ । ४६ में तथा ऋग्वेद १ । ११५ । १ में भी ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ्याः–सार्पराज्ञी ऋषिः । सूर्योदेवता । गायत्री छन्दः ॥

१र २र ३ १ २ ३ २ १ २ ३ २
(६३०) आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः ।
३ १ २ ३ १ २
पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ ४ ॥

भावार्थः–(अयम्) यह (गौः) अपनी कक्षा में गमनशील वा रसों का चलाने वाला (पृश्निः) सूर्यलोक (प्रयन्) स्वस्थान में घूमता हुआ (असदत्) स्थित है । तथा (मातरम्) पृथिवी माता (पितरम्) द्युलोक पिता (च) और (स्वः) मध्यस्थ अन्तरिक्ष लोक को (पुरः) सामने (आअक्रमीत्) आक्रान्त करता है ॥

अर्थात् सूर्य अपने स्थान में स्थित होकर घूमता हुवा ही लोकत्रय को प्रकाशित करता है ॥ निरुक्त २ । १४ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥

यजुर्वेद ३ । ६ और ऋ० १० । १८९ । १ में भी ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम्याः—ऋष्यादयः पूर्ववत् ॥

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २
(६३१) अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती ।
२र ३ १ २र
व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ ५ ॥

भावार्थः-(अस्य) इस सूर्य की (रोचना) चमक (अन्तः) शरीर के भीतर वा द्युलोक और भूलोक के बीच में (प्राणात्) वायु के ऊर्ध्व गमन से (अपानती) वायु का अधोगमन कराती हुई अथवा उदय से अस्त करती हुई (चरति) विचरती है । ऐसे (महिषः) पृथिवी से बड़ा सूर्य (दिवम्) अन्तरिक्ष को (व्यख्यत) प्रकाशित करता है ॥

मुख्य प्राण की प्राण अपान उदान समान व्यान नामक पांच वृत्तियें हैं, उन में से प्राण को सूर्य की चमक प्रेरित करती तब स्थावर जङ्गमों के शरीरों में वायु का नीचे ऊपर जाना आदि व्यवहार होता है शेष स्पष्ट है ॥

अष्टाध्यायी ३ । २ । १२४ ॥ ४ । १ । ६ ॥ ६ । १ । १७३ ॥ ३ । २ । १४९ ॥ ३ । ४ । ६ ॥ ३ । १ । ५२ उणादि १ । ४५ निघण्टु ३ । ३ निरुक्त ३ । १३ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥

यजुर्वेद ३ । ७ ऋग्वेद १० । १८९ । २ में भी ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ्याः—ऋष्यादय उक्ताः ॥

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(६३२) त्रिंशद्धाम विराजति वाक्पतङ्गाय धीयते ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
प्रतिवस्तोरह द्युभिः ॥ ६ ॥

भावार्थः-(पतङ्गाय) सूर्य के लिये (वाक्) वेदवचन (धीयते) धारण किया जाता है कि (अह) अहो (प्रतिवस्तोः) प्रतिदिन (द्युभिः) किरणों से [सूर्य] (त्रिंशद्धाम) ३० घटीपरिमित दिनपर्यन्त (विराजति) प्रकाशता है ॥

अष्टाध्यायी २। ३। ५ निघण्टु १। ९ निरुक्त १। ६ ॥ १। ५ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ यजुः ३। ८ ऋ० १०। १८९। ३ में भी ॥ ६ ॥

अथ सप्तम्याः-काण्वः प्रस्कण्व ऋषिः। सूर्यो देवता। गायत्री छन्दः॥

२३ २ १ ३२ ३ १ २ ३ १ २
(६३३) अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः।
१ २ ३ १ २
सूराय विश्वचक्षसे ॥ ७ ॥

भावार्थः-(विश्वचक्षसे) सब के प्रकाशक (सूराय) सूर्य के लिये (यथा) जैसे (नक्षत्रा) नक्षत्र=तारागण (अक्तुभिः) रात्रियों के साथ (अपयन्ति) भाग जाते हैं, ऐसे ही (त्ये) वे भी जो कि (तायवः) चोर हैं, भाग जाते हैं ॥

अर्थात् यदि सूर्य न होतो सदा रात्रि रहे और तस्कर लोग संसार की लूट मार किया करें। अथवा परमात्मा न हो तो संसार में वेदोपदेश के अभाव से धर्माऽधर्म का ज्ञान प्रवृत्त न हो और ऐसा होने पर सब, सब को लूटें खसोटें और बड़ी दुरवस्था हो जावे ॥ ऋ० १। ५०। २ में भी ॥ ७ ॥

अथाऽष्टम्याः-ऋष्यादिकमुक्तवत् ॥

१ २ ३ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
(६३४) अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु।
१ २ ३ १ २
भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ ८ ॥

भावार्थः-(अस्य) इस सूर्य की (केतवः) प्रकाशक (रश्मयः) किरणें (जनान्) प्राणियों को (अनु) लक्ष्य करके (वि अदृश्रन्) विविधप्रकार से दीखती हैं (यथा) जैसे (भ्राजन्तः) दहकते हुवे (अग्नयः) अङ्गारे ॥

निघण्टु ३। ९ का प्रमाण और यजुः ८। ४० तथा ऋ० १। ५०। ३ का पाठान्तर संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ८ ॥

अथ नवम्याः-अपि ऋष्यादय उक्ता एव

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(६३५) तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य।
२ ३ १ २ ३ २
विश्वमाभासि रोचनम् ॥ ९ ॥

भावार्थः-(सूर्य) हे सूर्य ! तू (तरणिः) अन्धकारादि से तिराने वाला है (विश्वदर्शतः) क्योंकि सब का दिखाने वाला है। क्योंकि (ज्योतिष्कृत) प्रकाश करने वाला (असि) है, (विश्वम्) सब (रोचनम्) चमकते पदार्थ को (आभास) तू ही चमकाता है ॥

इस पर सायणाचार्य ने भी लिखा है कि "रात्रि में सूर्यास्त होने पर चन्द्रादि पर सूर्य की किरणें गिर कर लौटतीं और अन्धकार को निवृत्त करती हैं। जैसे गृह के द्वार पर दर्पण में सूर्य की किरणें पड़तीं और वहां से लौट कर गृह के भीतर का अन्धकार हटाती हैं, तद्वत्" इस से जाना जाता है कि सूर्य के प्रकाश से चन्द्रादि का प्रकाशित होना विदेशीय आधुनिक विद्वानों का नवीन आविष्कार (ईजाद) नहीं है, किन्तु वैदिक विज्ञान है और सायणाचार्य के समय तक लोग इस को जानते रहे ॥

यद्वा-हे (सूर्य) अन्तर्यामी होने से सब के प्रेरक ! परमात्मन् ! (तरणिः) आप संसार समुद्र से तिराने वाले और (विश्वदर्शतः) सब मुमुक्षुवों को देखने=साक्षात् करने योग्य और (ज्योतिष्कृत्) सूर्य चन्द्रादि ज्योतियों के बनाने वाले (असि) हैं। यजुः ३१। १२ में भी लिखा है कि सूर्यचन्द्रादि को परमपुरुषने उत्पन्न किया। (विश्वम्) सब (रोचनम्) प्रकाशमान जगत् को (आभासि) आप ही प्रकाशित करते हैं । जैसा कि मुण्डकोपनिषद् २। १० और श्वेताश्वतरोपनिषद् ६। १४ में कहा है कि "उसी के प्रकाश से सब चमकते हैं" इत्यादि ॥ सायणभाष्य, यजुः ३१ । १३, मुण्डक २। १०, श्वेताश्व० ६। १४, उणादि २। १०२ ॥ ३। ११० के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ यजुः ३३। ३६ और ऋ० १। ५०। ४ में भी ॥ ९ ॥

अथ दशम्याः-ऋषि ऋष्यादय उक्तवत् ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २
(६३६) प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् ।
१ २उ ३क ३ २
प्रत्यङ् विश्वꣳ स्वर्दृशे ॥ १० ॥

भावार्थः-सूर्य ! वा परमात्मन् ! [पूर्वमन्त्र से अनुवृत्ति लेकर] आप (दृशे) सब को सब कुछ दिखाने या देखने के लिये (देवानां विशः) देवतों की प्रजा अर्थात्मरुत=वायु के स्थान अन्तरिक्षलोकस्थों के (प्रत्यङ्ङुदेषि) सामने

उदय होते वा वर्त्तमान रहते हैं तथा (मानुषान्) मनुष्यलोक=पृथिवी लोकस्थों के भी (प्रत्यङ्) सामने वर्त्तमान होते हैं और (विश्वम्) समस्त (स्वः) द्युलोकस्थों के भी (प्रत्यङ्) सामने हैं ॥

अर्थात् सूर्य सदा सब के सामने ही उदय होता है, सायणाचार्य भी कहते हैं कि इसी से सब कोई सूर्य को यह जानता है कि मेरे सामने उदित हुवा है ॥ तथा परमात्मा भी तीनों लोकों की प्रजा के सामने हैं, कोई उस से छिपाकर कुछ नहीं कर सकता ॥ ऋ० १ । ५० । ५ में भी ॥ १० ॥

अथैकादश्याः—अपि ऋषिदेवताछन्दांस्युक्तानि वेद्यानि ॥

१२ २ १२ ३२ ३ २३ १२
(६३७) येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु ।
१ २ ३ १ २
त्वं वरुण पश्यसि ॥ ११ ॥

भाषार्थः-(पावक सब के शोधक ! (वरुण) वरणीय वा अनिष्ट के रोकने वाले ! सूर्य ! वा परमात्मन् ! (जनान्) प्राणियों का (भुरण्यन्तम्) धारण वा पोषण करते हुवे इस लोकत्रय को (येन) जिस (चक्षसा) प्रकाश से (अनु) क्रमपूर्वक (पश्यसि) आप प्रकाशित करते वा देखते हैं [उस उस प्रकाश की हम प्रशंसा करते हैं] यह अध्याहारवाक्य जानिये । यद्वा-अगली ऋचा में "उदेषि" क्रिया से अन्वयकरके [उस प्रकाश से आप उदय को प्राप्त होते हैं] यह अर्थ जानिये ॥ यास्क मुनि ने निरुक्त में इस मन्त्र के अगले पिछले दोनों मन्त्रों को मिला कर तीनों की व्याख्या जो कुछ की है वह निरुक्त अ० १२ के २२ । २३ । २४ । २५ खण्डों के प्रमाण संस्कृतभाष्य में संपूर्ण उद्धृत हैं, वहीं देखिये । यजु० ३३ । ३२ और ऋ० १ । ५० । ६ में भी ॥११॥

अथ द्वादश्याः—ऋष्यादय उक्ताएव ॥

१र २र३ १२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
(६३८) उद्द्यामेषि रजः पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः ।
२ ३ १ २
पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥ १२ ॥

भाषार्थः-(सूर्य) सूर्य ! वा परमात्मन् ! तू (अहा) दिनों को (अक्तुभिः) रात्रियों से (मिमानः) मापता हुआ और (जन्मानि) प्राणियों को (पश्यन्)

दिखलाता वा देखता हुवा (पृथु) विस्तृत (द्याम्) आकाश (रज) लोक को (उदेषि) उदय वा प्राप्त हो रहा है ॥

दिन रात्रि का विभाग स्पष्ट सूर्याधीन वा परमात्माधीन तो है ही। और तीन लोक के रहने वाले प्रत्येक प्राणी को देखने की सहायता भी वही ही देता है ॥

निरुक्त १२। २३ का प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १। ५०। ७ में भी ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदश्याः—ऋष्यादयः पूर्ववत् ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ १ ३ क२र

(६३९) अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः।

१ २ ३ १ २

ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ १३ ॥

भावार्थः—(सूरः) सूर्य (रथस्य) अपने रमणीयस्वरूप के (नप्त्यः) न गिराने वाली (शुन्ध्युवः) शुद्ध करने वाली (सप्त) सात रङ्ग की किरणों को (अयुक्त) जोड़ता है और (ताभिः) उन (स्वयुक्तिभिः) अपनी जोड़ी हुई किरणों से (याति) अपने स्थान में घूमता है ॥

शुद्ध करने से सूर्य और उस की किरणों को शुन्ध्यु कहते हैं। निरुक्त ४। १६ ॥ ४। २६ और मुण्डकोपनिषद् २। १ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १। ५०। ९ में भी ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दश्याः—ऋष्यादयः पूर्ववत् ॥

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

(६४०) सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य ।

३ १ २

शोचिष्केशं विचक्षण ॥ १४ ॥

* इति षष्ठाऽध्याये पञ्चमी दशतिः ॥ ५ ॥ *

इति—चतुर्थमारण्यं पर्वाऽऽरण्यं काण्डं वा ॥

इति—

सामवेदसंहितायां छन्दआर्चिकोनाम पूर्वार्धः समाप्तः ॥१॥

भापार्थः-(देव) दिव्यगुणयुक्त ! (विचक्षण) सब के प्रकाशक ! (सूर्य) सूर्य ! (शोचिष्केशम्) तेज रूपी केशों वाले (त्वा) तुझ को (सप्त) सात (हरितः) हारक किरणें (वहन्ति) प्राणियों तक पहुंचाती हैं ॥

यद्यपि सूर्य एकत्रस्थित है, परन्तु अपनी ७ रङ्ग की किरणों से हमें तथा अन्य लोकों को प्राप्त समझा जाता है ॥

निघण्टु १ । १५ ॥ १ । ५ ॥ १ । १७ निरुक्त २ । २३ ॥ २ । १५ ॥ १२ । ६५ निरुक्तपरिशिष्ट २ । २१ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ऋ० १ । ५० । ८ में भी ॥ १४ ॥

* यह छठे अध्याय में पांचवीं दशति पूर्ण हुई ॥ ५ ॥ *

यह-

चौथा आरण्य काण्ड वा आरण्य पर्व समाप्त हुआ ॥

और यह-

श्रीमत्कण्ववंशावतंस पण्डित हज़ारीलाल स्वामी के पुत्र,

परीक्षितगढ़ (ज़िला-मेरठ) निवासी,

तुलसीराम स्वामी

के रचित सामवेदभाष्य में छठा अध्याय समाप्त हुवा ॥ ६ ॥

तथा-

सामवेदसंहिता का छन्दआर्चिक नाम पूर्वार्ध समाप्त हुआ ॥ १ ॥

ओं शन्नो मित्रः शंवरुणः शं नो भवत्वर्यमा ।
शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥

ओ३म्

अथ महानाम्न्यार्चिकः

अब—" महानाम्न्यार्चिक " का आरम्भ किया जाता है। ये महानाम्नी ऋचायें न तो पिछले छन्दआर्चिक में अन्तर्गत हैं और न अगले उत्तरार्चिक में गिनी जाती हैं। किन्तु छन्दआर्चिक के अन्त और उत्तरार्चिक के आदि में बीचला एक महानाम्न्यार्चिक नाम भिन्न ही तीसरा आर्चिक है। इसी प्रकार आरण्यगान समाप्त होने पर ही महानाम्नी ऋचों का सामगान पाठ गानग्रन्थ में भी सब पुस्तकों में पाया जाता है और सायणभाष्य भी ऐसा ही है। परन्तु न जाने श्री सत्यव्रत सामश्रमी जी ने किस कारण इस को परिशिष्ट समझा है ?

ऐन्द्रय एता महानाम्न्यः शक्वर्यो वा विकर्षिताः ।
पञ्चभिः सहिता अन्ते पुरीषपदनामभिः ॥ १ ॥
एताः प्रकृतितस्तिस्र उपसर्गैस्तु संयुताः ।
नवसंख्या इति प्राहुर्वेदाध्ययनशालिनः ॥ २ ॥
ऐतरेयब्राह्मणेऽपि शस्त्रे षोडशिनामके ।
तिस्रः प्रोक्ता महानाम्न्यस्त्रैलोक्यात्मत्रिवर्णनात् ॥३॥

श्लोकार्थ-ये महानाम्नी एक प्रकार से शक्वरी छन्द की ऋचा हैं, जिन का इन्द्र देवता है और जिनके अन्त में पुरीष पद नाम से प्रसिद्ध ५ पद हैं ॥ १ ॥ ये मूल में तीन ३ ऋचा हैं परन्तु उपसर्गों के सहित वेदपाठी लोग इन्हें ९ नव करके पढ़ते हैं ॥ २ ॥ ऐतरेय ब्राह्मण षोडशी शस्त्र में भी तीन ३ ही महानाम्नी कही हैं, त्रैलोक्यात्मा के विशेष वर्णन से ॥ ३ ॥

प्रथमं द्विपदा त्रीणि शाक्वराणि पदान्यतः ।
पञ्चार्णाऽष्टाक्षरी चोपसर्गावेकश्च शाक्वरः ॥ १ ॥

पञ्चार्णउपसर्गोथ त्रयस्ते बहिरन्तिमाः ।
इयमाद्या, द्वितीयैवं, तृतीया पुनरन्तिमः ।
अधिकोऽष्टाक्षरः पादउपसर्गइति स्थितिः ॥ २ ॥

अब प्रश्न यह है कि यदि ये शक्वरी छन्द की ऋचा हैं तो इन में छप्पन २ अक्षर होने चाहियें। क्योंकि चतुर्विंशति २४ अक्षरों से लेकर चार २ अक्षर बढ़ाते हुवे जो पिङ्गलानुसार गायत्री से अतिधृति पर्यन्त २१ छन्द हम ने भूमिका भाष्यारम्भ पृष्ठ (४०) में लिखे हैं, तदनुसार ५६ अक्षर की शक्वरी होती है। परन्तु इन महानाम्नियों में तो ५६ से अधिक अक्षर पाये जाते हैं ?

उत्तर यह है कि स्वतः तो इन में भी ५६ ही अक्षर हैं। परन्तु बीच २ में " उपसर्ग " नामक पाद मिल रहे हैं, जिन से अधिक अक्षर जान पड़ते हैं। यही बात सायणाचार्य ने भी स्वीकार की है ॥

अब प्रश्न यह है कि बताओ कौन २ से शक्वरी के पाद हैं ? और कौन कौन से उपसर्ग हैं ?

उत्तर–प्रथम ऋचा में (विदामघवन्विदा०) इत्यादि द्विपदा ऋचा उपसर्ग है। फिर (शिक्षा शचीनां पते) इत्यादि आठ २ अक्षरों के तीन शक्वरी के पाद हैं। फिर (स्वर्णांशुः) यह पांच अक्षर का पाद है [यहां अक्षर= व्यञ्जनों को पृथक् २ करके पञ्चाक्षर माने गये हैं] और (प्रचेतन प्रचेतय) यह आठ अक्षर का पाद, ये दो उपसर्ग हैं। (इन्द्र द्युम्नाय न इषे) यह आठ अक्षरों का शक्वरी का पाद है। (एवा हि शक्रः) इत्यादि तीन शक्वरी के पाद हैं। (आयाहि पिब मत्स्व) यह आठ अक्षर का पाद उपसर्ग है ॥

दूसरी महानाम्नी में–(विदा राये सुवीर्यम्०) इत्यादि द्विपदा उपसर्ग है। (मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे) इत्यादि तीन पाद आठ २ अक्षरों वाले शक्वरी के हैं। फिर (अंशुर्न शोचिः) यह पांच अक्षर का पाद और (चिकित्वो अभि नोनय) यह पाद, ये दोनों उपसर्ग हैं। (इन्द्रो विदे तमु स्तुहि) यह आठ अक्षर का शाक्वर पाद है। (ईशे हि शक्रः) यह पांच अक्षरों का उपसर्ग पाद है। (तमूतये हवामहे) इत्यादि आठ २ अक्षरों के तीन पाद शाक्वर हैं। (क्रतुश्छन्दऋतं बृहत्) यह पाद उपसर्ग है ॥

तीसरी में–(इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे०) इत्यादि द्विपदा उपसर्ग है। (स नः स्वर्षदति द्विषः) इत्यादि आठ २ अक्षरों के ३ तीन शाक्वर पाद

हैं। (अंशुमंदाय) यह पांच अक्षरों का पाद, तथा (सुम्नआधेहि नो वसो) यह आठ अक्षर का पाद, ये दो उपसर्ग हैं । (पूर्तिः शविष्ठ शस्यते) यह आठ अक्षरों का शाक्कर पाद है । (वशी हि शक्रः) यह पांच अक्षरों का उपसर्ग है (नूनं तन्नव्यं संन्यसे) इत्यादि आठ २ अक्षरों के तीन पाद शाक्कर हैं। (शूरो यो गोषु गच्छति०) इत्यादि दो उपसर्ग हैं ॥

इस प्रकार पहिली महानाम्नी में आठ २ अक्षरों के सात शक्करी के पाद होकर ५६ अक्षरों का शक्करी छन्द हुवा, शेष पांच पाद उपसर्ग हैं। ऐसे ही दूसरी में भी । तीसरी में सात शक्करी के पाद और छः उपसर्ग हैं ॥

इसी तात्पर्य को निदानकल्प में सूत्रादि को भले प्रकार से विचारने वाले पूर्वाचार्यों ने दो श्लोकों में संग्रह करके दिखलाया है । जैसा कि—(देखो श्लोक संस्कृत भाष्य पृष्ठ ८३३ पं० १ में) ॥

इस प्रकार इन तीनों में उपसर्गाक्षरों को छोड़ कर प्रत्येक में शाक्करी छन्द के आठ २ अक्षरों के सात २ पादों से छप्पन २ अक्षर ही बचते हैं, जितना कि एक शक्करी छन्द होता है ॥

एतासु गीयते साम यत्तच्छाक्करमुच्यते ।
तत्पञ्चमेह्नि पृष्ठेषु होतुः पृष्ठं विधीयते ॥ १ ॥
उपसर्गैस्संयुतानामासामिन्द्रोधिदेवता ।
माध्यंदिनं यत्सवनं सर्वमैन्द्रमिति स्थितम् ॥ २ ॥

श्लोकार्थ-इन महानाम्नियों में जो साम गाया जाता है वह भी शाक्कर साम ही कहा जाता है। वह (यज्ञ के) पञ्चम दिन में पृष्ठों में होता का पृष्ठ विधान किया गया है ॥ १ ॥ इन उपसर्गसहितों का इन्द्र देवता है । (यज्ञ का) माध्यंदिन जो सवन है वह सब इन्द्र देवता वाला है। यह मर्यादा है ॥ २ ॥

"प्रचेतन प्रचेतयायाहि पिब मत्स्व ।
क्रतुश्छन्दऋतं बृहत् सुम्न आधेहि नोवसो" इत्यनुष्टुप् ॥
"चिकित्वो अभि नो नय शूरो यो गोषु
गच्छति सखा सुशेवो अद्वयुः" इति गायत्री ॥

परन्तु आश्वलायन ने अपने ब्राह्मण के अनुसार कोई एक अनुष्टुप् और गायत्री का सम्पादनादि दिखाया है। जैसा कि " प्रचेतन प्रचे० " इत्यादि (देखो पूरे श्लोक संस्कृत भाष्य पृष्ठ ८२३ पं० ११ में) अनुष्टुप् और "चिकित्वो०" इत्यादि गायत्री ॥ इस प्रकार जहां तहां के पद छोड़कर उस ने यज्ञसम्बन्धी प्रयोग की सुगमता के लिये कल्पना की हैं। और हमने मूल का अर्थ समझने की सुगमता के विचार से पूर्वोक्त छन्द का निश्चय किया है ॥

अथ प्रथमास्त्रिस्रः सर्वासां प्रजापतिर्ऋषिः ॥

३ १ २ १ २ ३ १र २र ३ १ २
(६४१) विदा मघवन्विदा गातुमनुशंसिषो दिशः ।
१ २ ३ १ २
शिक्षा शचीनां पते पूर्वीणां पुरूवसो ॥ १ ॥

२ २उ ३ १ २ ३ २ ३
(६४२) आभिष्ट्वमभिष्टिभिः स्वा३ र्नांशुः ।
१२ ३ १२३१२ ३ १ २ ३२
प्रचेतन प्रचेतयेन्द्र द्युम्नाय न इषे ॥२॥

३ २उ ३ २ ३ १र २र
(६४३) एवाहि शक्रो राये वाजाय वज्रिवः ।
१ २ ३२३ १ २ ३ २३
शविष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जस
१ २ ३ २ ३ १ २
आयाहि पिब मत्स्व ॥ ३ ॥

भावार्थः—प्रथम उपसर्गभाग द्विपदा का अर्थ कहते हैं—(मघवन्) हे यज्ञवाले! परमेश्वर! (विदाः) आप सब जानते हैं (गातुम्) यजमान उपासक के गन्तव्य देश को (विदाः) जानते हैं। इस लिये (दिशः) मार्गों का (अनुशंसिषः) उपदेश कीजिये=बताइये। अब शक्वरी छन्द का भाग कहते हैं—(पुरूवसो) हे बहुत विद्यादि धन वाले! (पूर्वीणां शचीनां पते) हे सनातन बुद्धियों के स्वामिन्। (आभिः) इन (अभिष्टिभिः) स्तुतियों से (त्वम्) आप (शिक्ष) विद्यादि धन दीजिये क्योंकि आप बहुधन हैं। अब फिर उपसर्ग भाग कहते हैं—(स्वः) सूर्य के (न) तुल्य (अंशुः) व्यापने

वाले आप हैं। (प्रचेतन) हे प्रकाशकारक। (प्रचेतय) कृपया हमें चेताइये। अब दोनों भाग कहते हैं—(हि) क्योंकि (त्वम्) आप (नः) हमारे लिये (इषे) अन्न (द्युम्नाय) और यश के लिये (शक्रः) समर्थ (एव) निश्चय हैं। अब शक्करी का भाग कहते हैं—(वज्रिवः) हे दुष्टों के ऊपर दण्डधारक! (राये) धन के लिये और (वाजाय) आत्मिक बल के लिये [प्रसन्न हूजिये] (शविष्ठ) हे बलिष्ठ! (वज्रिन्) दण्डधर! (ऋञ्जसे) आप को प्रसन्न किया जाता है। (मंहिष्ठ) हे पूजनीयतम! (वज्रिन्) वज्र वाले! (ऋञ्जसे) आप को प्रसन्न किया जाता है॥ अब उपसर्ग भाग द्वारा पूर्वोक्त प्रार्थित परमात्मा प्रसन्न होकर आशीर्वाद देते हैं कि (आयाहि) आ, और (पिब) अमृत को पी, और (मत्स्व) आनन्दित हो॥

अष्टाध्यायी ३।४।७॥ ३।४।९४ निघण्टु १।१॥ ३।९॥ ३।२०॥ २।१८॥ ३।५ निरुक्त ४।२॥ २।१४॥ ५।५ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये॥ ३॥

अथ द्वितीयस्त्रिकः

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

(६४४) विदा राये सुवीर्यं भुवो वाजानां पतिर्वशाँअनु।

१ २ ३ २ ३ १ २ २ २ ३ १ २

मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे यः शविष्ठः शूराणाम्॥ ४॥

१ २ २ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ २

(६४५) यो मंहिष्ठो मघोनामंशुर्न शोचिः।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ २

चिकित्वो अभि नो नयेन्द्रो विदे तमु स्तुहि॥ ५॥

२ ३ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

(६४६) ईशे हि शक्रस्तमूतये हवामहे जेतारमपराजितम्।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

स नः स्वर्षदति द्विषः क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत्॥ ६॥

भावार्थः-प्रथम द्विपदा उपसर्ग कहते हैं—(वाजानाम्) सेनाओं के (पतिः) पति (वशान्) स्वाधीन और (अनु) अनुकूल (भुवः) बनाइये और (राये) धनप्राप्ति के लिये (सुवीर्यम्) सुन्दर पुरुषार्थ को (विदाः)

प्राप्त कराइये ॥ अब शाक्कर भाग कहते हैं—(मंहिष्ठ) हे अतिसत्कारयोग्य ! (वज्रिन्) शस्त्रों अस्त्रों के धर्त्ता ! (ऋञ्जसे) आप प्रसन्न किये जाते हैं । (यः) जो कि आप (शूराणाम्) शूरवीरों में (शविष्ठः) बलिष्ठ हैं (यः) और जो आप (मघोनाम्) धनवानों में (मंहिष्ठः) अतिदानी हैं ॥ अब उपसर्ग भाग कहते हैं—(चिकित्वः) हे ज्ञानवन् ! (अंशुः) सूर्य के (न) तुल्य (शोचिः) प्रकाशयुक्त आप (नः) हम को (अभि) सब ओर से (नय) ले चलिये ॥ अब उपसर्ग और शाक्कर दोनों भाग मिला कर कहते हैं—(इन्द्रः) परमैश्वर्ययुक्त (विदे) प्राप्त होता है (तम्) उस को (उ) ही (स्तुहि) हम स्तुत करते हैं (हि) क्योंकि (शक्रः) वह शक्तिमान् (ईशे) सब को दबा सकता है ॥ अब शाक्कर भाग कहते हैं—(तम्) उस (अपराजितम्) न हारने वाले किन्तु (जेतारम्) जीतने वाले को (ऊतये) रक्षार्थ (हवामहे) हम पुकारते हैं (सः) वह (द्विषः) शत्रुओं को (अति) लांघ कर (नः) हम को (स्वर्षत्) ले जावे ॥ अब उपसर्ग फिर कहते हैं—जिस से (क्रतुः) यज्ञ (छन्दः) वेद और (ऋतम्) सत्य (महत्) बहुत हो ॥

अर्थात् सेनापति अन्यों को स्वाधीन करे, धनादि ऐश्वर्य के लिये उत्तम पुरुषार्थ को बढ़ावे, शस्त्रास्त्रों का धारक, सत्कारयोग्य, सब का प्रसन्न करने योग्य, बलियों में बलिष्ठ, धनियों में सर्वोत्तम धनी और दाता, ज्ञानवान्, सूर्य के समान तेजस्वी, सेना के पुरुषों का नायक और रक्षक, स्तुति योग्य, शक्तिमान्, विजयी, न हारने वाला, जहां उपद्रव हो वहीं रक्षार्थ जाने वाला और शत्रुओं का भगाने वाला होना चाहिये ॥

अष्टाध्यायी ७ । ३ । ८८ ॥ ८ । ३ । १ ॥ ३ । २ । १३४-१३५ निघण्टु ३ । २० ॥ २ । १० ॥ २ । १४ ॥ ३ । १० निरुक्त १० । ८ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिये ॥ ६ ॥

अथ तृतीयास्त्रिस्त्रः

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

(६४७) इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे जेतारमपराजितम् ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३

स नः स्वर्षदतिद्विषः स नः स्वर्षदतिद्विषः ॥ ७ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १र २र
(६४८) पूर्वस्य यत्ते अद्रिवोऽंशुर्मदाय ।
३ १र २र ३ १ २
सुम्न आधेहि नो वसो पूर्त्तिः शविष्ठ शस्यते ॥
३ २उ ३ २ ३ १र २र ३ १ २
वशी हि शक्रो नूनं तं नव्यंसंन्यसे ॥ ८ ॥
३ १र २र ३ २ १
(६४९) प्रभो जनस्य वृत्रहन्समर्येषु ब्रवावहै ।
२ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शूरो यो गोषु गच्छति सखा सुशेवो अद्वयुः ॥ ९ ॥

भावार्थः—द्विपदा उपसर्ग को प्रथम कहते हैं—हम उपासक लोग (धनस्य) विद्यादि धन के (सातये) लाभार्थ (अपराजितम्) न हारने वाले किन्तु (जेतारम्) विजय करने वाले (इन्द्रम्) परमैश्वर्ययुक्त को (हवामहे) पुकारते हैं॥ शक्वरी छन्द का पाद कहते हैं—(सः) वह परमात्मा (नः) हमारे (द्विषः) द्वेष करने वालों को (अति स्वर्षत) दूर करे (सः) वह (नः) हमारे (द्विषः) द्वेषपात्रों को (अतिस्वर्षत) दूर करे इस लिये वेद में ऐसी परिपाटी प्रायः है, जैसा कि [योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः] इत्यादि से द्वेष्टा और द्वेष्य दोनों के नाश की प्रार्थना आया करती हैं। (अद्रिवः) हे अखण्डवज्रधर! (पूर्वस्य ते) सनातन आप के [उपासक हम हैं]। (अंशुः) आप की किरणरूप ध्यानानन्द का लेश (मदाय) अत्यन्त आनन्द के लिये होता है। वह आप (नः) हम को (सुम्ने) सुख में (आधेहि) स्थित करें। अब शक्वरी और उपसर्ग भाग को साथ २ कहते हैं—(शविष्ठ) हे बलिष्ठ! (पूर्त्तिः) आप का किया पालन पोषण (शस्यते) प्रशंसित है (हि) क्योंकि शक्रः आप सर्वशक्तिमान् (वशी) लोकत्रय को वश में रखने वाले हैं। अब शाक्वर भाग कहते हैं—(प्रभो) हे प्रभो! (वृत्रहन्) हे दुष्टनिवारक! (तत्) इस कारण (नूनम्) निश्चय (नव्यम्) नूतन क्षणभंगुर सांसारिक सुख को (संन्यसे) मैं त्याग करके संन्यासी होता हूं। जिस से (अर्येषु) संन्यासि स्वामियों में (संब्रवावहै) भले प्रकार एकदूसरे से संवाद करें। अब उपसर्ग भाग में यह कहते हैं कि किस विषय का संवाद करें (यः) जो (शूरः)

स्वामी (सखा) सब का मित्र (सुशेवः) आनन्दस्वरूप और (अद्वयुः) अद्वितीय है वही (गोषु) पृथिवी आदि सब लोकों में (गच्छति) व्यापक होकर वर्त्तमान् है। उस के विषय में संवाद करें, यह संबन्ध जानिये ॥

निघण्टु ३। ६॥ ३। २८ अष्टाध्यायी ३। १। ८५॥ २। १। ४॥ ८। १। ३८॥ ३। १। १०३ उणादि २। २५ के प्रमाण संस्कृतभाष्य में देखिये ॥९॥

अथ पञ्च पुरीषपदानि ॥

३ २ ५ ५ ५ ५ ५ ५ २ ३ १ २ ३ २ ३

(६५०) एवा ह्यो ३ ऽ ३ ऽ ३ ऽ ३ व एवा ह्यग्ने एवा हीन्द्र।

३ १र २र ३ १र २र

एवा हि पूषन् एवा हि देवाः ॥ १० ॥

इति महानाम्न्यार्चिकः समाप्तः ॥ २ ॥

भावार्थः—अब पांच पुरीष पदों की व्याख्या करते हैं। ये सब इन्द्र देवता के हैं। क्योंकि इन्द्र का सम्बन्ध पीछे से चला आता है और यहां भी तीसरे पद में इन्द्र शब्द आया है। शेष अग्नि आदि नाम भी इस कारण इन्द्र=परमेश्वर के ही समझने चाहियें जैसा कि निरुक्त ७। १८ में लिखा है कि " इसी महान् अग्नि महान् आत्मा एक आत्मा को विद्वान् लोग इन्द्र मित्र वरुण अग्नि दिव्य गरुत्मान् आदि नामों से बहुत प्रकार वर्णन करते हैं॥" उन में से प्रथम पद-(एव, हि, एव) जैसा कि पूर्वार्ध में वर्णन कर आये, वह ठीक है। द्वितीय पद-(अग्ने, एवं, हि) हे प्रकाशस्वरूप और प्रकाशकर्त्ता! ऐसा ही आप का वर्णन है जैसा पूर्व कहा। तृतीय पद-(इन्द्र एव हि) हे परमैश्वर्यवन्! ऐसा ही है। चतुर्थ पद-(पूषन्, एव, हि) हे पालक पोषक! ऐसा ही है॥ पञ्चम पद-(देवाः) हे पूर्वोक्त देवो! (एव हि) यथोक्त ही आप के गुण कर्म स्वभाव और प्रशंसा है॥

यह समस्त छन्दआर्चिक और महानाम्न्यार्चिक का उपसंहार है ॥१०॥

श्रीमान् कपववंशावतंस पं० हज़ारीलाल स्वामी के पुत्र,

परीक्षितगढ़ ज़िला मेरठ निवासी,

तुलसीराम स्वामि कृत

सामवेदभाष्य में महानाम्न्यार्चिक नाम

दूसरा आर्चिक संपूर्ण हुआ ॥ २ ॥

स्वामीमेशीन प्रेस मेरठ का लघु सूचीपत्र

भर्तृहरिनीति शतक भाषा टीका ≠)
वृक्षों में जीवविचार≈)॥ वि० एम० शर्मा
वर्णव्यवस्थामीमांसा -)॥ ,,
प्रकरणप्रमाणदर्शिका ।) ,,
मूर्त्तिपूजामीमांसा ≡) ,,
होमपद्धति ≡), यवनमतपरीक्षा ।)
पुराणभेद ≡)
ज्योतिषचन्द्रिका ≡)
स्वर्ग में महासभा ।)
ऐतिहासिकनिरीक्षण प्रथम भाग ≠)
,, द्वि० भाग ≢)
संगीतरत्नप्रकाश ५ भाग ॥=)
ज्ञानभजनावली चारों भाग सजिल्द ॥-)
भजन पचासा -)
ध्यानयोगप्रकाश १।)
वाल्मीकिरामायण सार -)
होममन्त्रप्रकाश)।
धर्मशिक्षा प्रथम ।=) द्वितीय भाग ≠।)

उपनिषदें—

श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्य ।)
ईशादि ६ उपनिषद् भाष्य १) सजि० १।)
वैदिकविवाहादर्श १)
संस्कारचन्द्रिका २)

Abstract of Marsden's History as. 6
Oriental Astrology by P. Janardan Joshi. B. A. 1—8

The THESAURUS OF KNOWLEDGE
Divine and Temporal
OR
THE VEDAS
and their
ANGAS AND UPANGAS
Volume I.
BY
Behari Lal B. A., Shastri M R. A. S
Price with binding Rs. 5

वेदमन्त्रार्थप्रकाश प्रथम -)॥
,, द्वितीय ।)
सरस्वती कोष मजिल्द १।)

वैदिक प्रेस के पुस्तक—

यजुर्वेदभाष्य १०)
सत्यार्थप्रकाश १)
भूमिका १) संस्कारविधि ॥)
उणादिकोश ॥) निरुक्त ॥=)
आर्याभिविनय≡) पञ्चमहायज्ञविधि-)॥
शतपथ ब्राह्मण मूल ४)
धातुपाठ ।) गणपाठ ≡(
अष्टाध्यायी मूल मोटा अक्षर ।)

आर्यसमाज के नियम नागरी ≋)। १००
,, अंग्रेज़ी में ।) १०० सैकड़ा

व्याख्यानका विज्ञापन—जो चार जगह खानापुरी करके सब उपदेशकों के काम में आता है ≠) के १०० अंग्रेज़ी भी

अपने पुस्तकोंपर ६) में १) और १०) में २) कमीशन छोड़े जायंगे। सर्वसाधारण को पारमार्थिक और लौकिक सुधार के पुस्तक लेने का अच्छा अवसर है॥

मैनेजर—स्वामिपुस्तकालय—मेरठ

भास्करप्रकाश १।) सजिल्द १॥)
सामवेदभाष्यका पूर्वार्ध ७॥) उत्तरार्ध७॥)
मनुस्मृतिभाषानुवाद १) सजिल्द १।)
गीता भाषानुवाद॥=) पुष्टजिल्दकी॥।=)
न्यायदर्शन भाषानुवाद सूत्रसूची सहित
॥) व ॥=) जिल्द का -) आना
योगदर्शन भाषानुवाद ॥) सजिल्द ॥-)
सांख्यदर्शन भाषानुवाद सजिल्द १)
वैशेषिकदर्शनभाषानुवाद ॥=)सजि०॥≋)
दिवाकरप्रकाश ।) (दुबारा छपा)
हितोपदेश भाषानुवाद तथा श्लोक १)
श्लोकयुक्त वैदिक निघण्टु ≋)
वेदप्रकाश मासिकपत्र के २ रे वर्ष के १२
अङ्क॥=) १० वां वर्ष ॥) ११ वां ॥) १२ वां
वर्ष ॥), १३ वां वर्ष ॥),
१५वां वर्ष ॥),१६वां वर्ष ॥) १७वां वर्ष॥)
सु० रा० स्वामी के ४ व्याख्यान ।)
धार्मिक-संस्कृत (६) व्याख्यानम् -)
संस्कृतस्वयं शिक्षावेशाली संस्कृतभाषा
प्रथम पुस्तक)।। द्वितीय पुस्तक -)
तृतीय पुस्तक =)॥ चतुर्थ ।=) चारों
की १ जिल्द ॥≋)
स्वामी जी का रङ्गीन चित्र पूना का =)
आर्यसमाजकी रसीदबुक≋) चिकबुक≋)
दाखलाफ़ार्म।)सैंकड़ागायत्रीम०॥)सैंकड़ा
सन्ध्योपासन)। सरल भाषार्थ सहित
ऋगादिभाष्यभूमिकेन्दु: | मन्त्रब्राह्मण
पराने द्वितीयोंऽश: -)।॥ | निर्णय है
भागवतसमीक्षा ।=) बढ़िया काग़ज़॥)

भागवतविचार -) भागवतपरीक्षा)॥
वैदिकविज्ञान -) पञ्चकन्याचरित्र)॥
विवाह के मन्त्र अर्थसहित)।
चाणक्यनीतिसार भाषाटीका सहित-)
विवाहवयोविचार -) विवाह की उमर
नियोगनिर्णय =) नारीअक्षरप्रदीप)।
अक्षरप्रदीप)। बालकों को नागरी
रीडर नं० १ मूल्य)॥ नागरी रीडर
नं० २ मूल्य-) नागरी रीडर नं० ३ -)॥
आर्यसमाज ने क्या किया)॥
गङ्गा का मेला)॥
सुभाषितरत्नमाला १=) १२०० श्लोकयुक्त
व्याख्यानपञ्चक ।॥)
अष्टाध्यायी भाषानुवाद ३)

स्त्रीशिक्षा के पुस्तक—

नारीउपदेश ॥=) नारायणीशिक्षा १।)
वनिताबुद्धिप्रकाश ≋) मोटे टाइप में
मोहनीमन्त्र)॥
कन्योपनयनसंस्कार ।)
नारीधर्मविचार प्रथम भाग ॥)
" द्वितीय भाग १)
बालाबोधनी पाञ्चों भाग ।॥=)
सीताचरित्र ६ भाग टाइप मोटा २।)

आर्यनियमोदयकाव्य =) पं० अखिला०
आर्यशिरोभूषण काव्य ।) "
लघुकाव्यसंग्रह ≋) "
वैधव्यविध्वंसनचम्पू ।=) "
भामिनीभूषण काव्य ।) "
दयानन्दलहरी =) "
पिङ्गलसभाष्य ॥) "
काव्यालङ्कार सभाष्य ॥) "